प्रताप नारायण श्रीवास्तव

अमर कथाशिल्पी श्रीप्रतापनारायण श्रीवास्तव-ग्रन्थावली

प्रताप नारायण श्रीवास्तव

जिज्ञासा प्रकाशन

देवनगर – कानपुर

अमर कथाशिल्पी श्रीप्रतापनारायण श्रीवास्तव-ग्रन्थावली

मूल्य : सात रुपया

पुस्तक— वंचना (उपन्यास)
लेखक— प्रतापनारायण श्रीवास्तव
प्रकाशक— जिज्ञासा प्रकाशन, कानपुर
मुद्रक— विवेक प्रिन्टर्स, कानपुर

VANCHANA (Novel); Written by Pratap Narain Srivastava
Published by JIGYASA Prakashan, Deo Nagar, Kanpur-3
Price Rs. 7.00

परम स्नेही सुहृद्वर

श्री सोमेश्वरनाथ जी सुकुल एम०ए०

को

सस्नेह
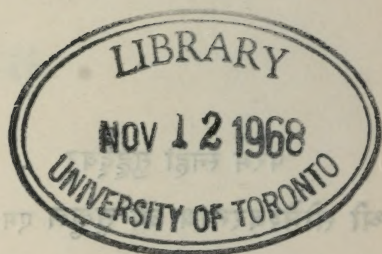
विशाल जन-समूह को पार कर अपनी सुरक्षित कुर्सियों पर बैठने के पश्चात् गायत्री पूछा—"भाभी, लामाओं का बड़ा समूह एकत्रित हुआ है ?"

मणिमाला ने उत्तर दिया–"हाँ दीदी भगवान बुद्ध की ढ़ाई हजारवीं जयंती का आयोजन है। बौद्ध भिक्षु और लामा लोग तो एकत्रित होंगे ही, इसमें आश्चर्य की क्या बात है। ?

गायत्री मुग्ध दृष्टि से उनको देखती हुई बोली—"ये लोग कितने शान्त हैं, और देखो सभी दत्तचित्त होकर मालाएं फेर रहे हैं। मण्डप की दूसरी ओर नारंगी परिधानों से अलंकृत युवतियाँ कौन हैं ?

"ये चीनी नवयुवतियाँ हैं, जो आज भिक्षुणी बनेंगी।"

"इतनी छोटी उम्र में ये भिक्षुणी बनेंगी ?"

"बुद्ध धर्म में इनके लिए विधान है।"

"किन्तु क्या ये कोमलांगियाँ धार्मिक अनुशासन की कठोरताएं सहन करने में समर्थ होंगी ! सहसा विश्वास नहीं होता।"

"बौद्ध धर्म में नारी जाति की 'वही प्रतिष्ठा है जो पुरुषों को प्राप्त है। अतीत में अशोक महान् की पुत्री भी भिक्षुणी हुई थी। वह क्या इन युवतियों की अपेक्षा कम कोमलांगी होगी ? परिस्थितियाँ, और लगन मानव को कठोर से कठोर अनुशासन में रहने की क्षमता प्रदान करती हैं।"

"परन्तु..........।"

"परन्तु-वरन्तु कुछ नहीं। परिस्थितियाँ मनुष्य से सब करवा लेती हैं। मेरा ही उदाहरण लो। नारी होते हुए भी मैंने ब्रिटिश साम्राज्य से टक्कर ली थी। क्रान्तिकारियों के साथ माता-पिता का प्यार और घर की सुविधाओं को

त्याग कर जंगलों-जंगलों फिरती रही। उन कष्टों को मैंने हंसते-खेलते झेला था।"

"तुममें देश को आजाद करने की लगन थी।"

"और इन में निर्वाण प्राप्त करने की लगन होगी।"

"निर्वाण प्राप्त करने तथा देश की आजादी प्राप्त करने में बड़ा अन्तर है।"

"दोनों ही स्वतंत्रतायें हैं, एक से आत्मा आवागमन के चक्र से मुक्त होती है, दूसरी से देश विदेशियों के पंजे से मुक्त होता है। पहली को तुम आध्यात्मिक कह सकती हो, और दूसरी को भौतिक !"

"मालूम होता है कि तुम अब भौतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् आध्यात्मिक स्वतंत्रता प्राप्त करने का विचार कर रही हो।"— गायत्री हंसने लगी।

"कुछ ऐसे ही विचार आजकल मन में उठते हैं।"

"ठीक है, तब आज ही तुम भी इन चीनी नवयुवतियों के साथ दीक्षा ले लो।"

"यदि मैं दीक्षा नहीं लेती, तो शायद कोई और दीक्षा ले सकता है।"

"वह दूसरा कौन ? क्या अविनाश भैया। ?

"नहीं वह किसी धर्म पर विश्वास नहीं करते।"

"और तुम क्या बौद्ध धर्म पर विश्वास करती हो।"

"बौद्ध धर्म ही क्यों, मैं सभी धर्मों पर विश्वास करती हूँ।"

"उधर देखो, मंच पर चीनी नवयुवतियाँ सभा-मंच पर प्रधान लामा के सामने खड़ी हो रही है।"

इसी समय सभा-मंच पर एकत्रित लामाओं ने एक स्वर में उच्चार किया—

बुद्धं शरणं गच्छामि ।
धम्मं शरणं गच्छामि ।
संघं शरणं गच्छामि ।

इसके पश्चात् चीनी नवयुवतियों को मन्त्रोपदेश देते हुए दीक्षा संस्कार आरम्भ हो गया।

दीक्षा समाप्त होने पर गायत्री ने कहा—"ये भिक्षुणियाँ अब कहाँ जाएगी ?"

"यहीं सारनाथ अथवा अन्य बौद्ध-संघों में रहकर धर्म प्रचार करेंगी।"

"किन्तु अब संघ तो नहीं रहे। इनके केवल ऐतिहासिक चिह्न मात्र मिलते हैं। ढ़ाई हजार वर्षों में इतिहास ने अनेक मोड़ बदले हैं। क्या हमारी बीसवीं शताब्दी ढ़ाई हजार वर्ष पीछे जाना स्वीकार करेगी ? मुझे तो इसमें संदेह है।'

"समय की पुकार के अनुकूल इस परिपाटी में भी कोई परिवर्तन किया जायगा। महात्मा गान्धी ने जिस प्रकार भगवान बुद्ध की अहिंसा शक्ति को पुनः जाग्रत किया है, उसी प्रकार उस सिद्धान्त को विश्व-व्यापी बनाने के लिए कोई सूत्र तो ढूढ़ निकाला ही जायगा। भगवान बुद्ध की यह ढाई हजारवीं जयन्ती विश्व के इतिहास को एक नया मोड़ देगी, इसमें मैं रञ्चमात्र सन्देह नहीं करती।"

"अथवा दूसरे शब्दों में तुम विश्वास करती हो कि संसार हिंसात्मक विचारों से अपने को मुक्त करेगा, और वह अटूट शान्ति तथा धर्म का पालन करेगा ?"

"मेरा अनुमान तो यही है। संसार के सभी राष्ट्र हिंसात्मक प्रवृत्तियों से ऊब गये हैं। उनका कल्याण अब पारस्परिक द्रोह, ईर्षा और युद्ध में नहीं है, यह सत्य सबको भासित हो गया है, और इसी उद्देश्य से राष्ट्र संघ का निर्माण हुआ, तथा शुद्ध शान्त शक्तियाँ सर्वत्र बलवती हो रही हैं।"

"किन्तु जब तुम अहिंसा का इतना बखान करती हो, तब मनुष्य की पाशविक प्रवृत्ति को भूल जाती हो। पाशविक जीवन के उत्तरोत्तर विकास से मानव अवतीर्ण हुआ है। उसमें पाशविक शक्तियाँ सदैव रहेंगी। सभ्यता के आवरण में वह थोड़ी देर के लिये मूच्छित तथा अचेतन अवश्य रहे, परन्तु कभी वह मृत हो जाएगी, इसमें संदेह है यह बात बिल्कुल कल्पनातीत भी है।"

"इतना तो तुम स्वीकार करती हो कि इस युग में बौद्धिक प्रवृत्तियाँ मूच्छित तथा अचेत हैं ?"

"हाँ ऐसी स्थिति प्रायः सभी युद्धों के पश्चात् प्रकट होती देखी गई है, परन्तु वह कभी स्थायी न हुई है, और न होगी। मानव एक संघर्षपूर्ण प्राणी है। संघर्ष उसके जीवन की क्रिया है, उसके जीवन का तत्व है। संघर्ष समाप्त होते ही उसके जीवन की समाप्ति हो जाती है। लगभग यही बात राष्ट्रों के

लिये भी लागू होती है। संघर्ष मनुष्य इसलिये करता है, क्योंकि उसमें स्वार्थ की भावना जन्मजात है। संसार के प्रायः सभी विचारकों, धर्म-संस्थापकों ने पड़ोसी को प्यार करने का उपदेश दिया है, परन्तु क्या यह कभी कार्य में परिणित हुआ है ? बुद्ध, मूसा, ईसा आदि सबों ने शान्ति का पाठ पढ़ाने की चेष्टा की है, परन्तु संसार में युद्ध बन्द तो नहीं हुए।"

"उस समय संसार की स्थिति ऐसी नहीं थी। यातायात के साधनों का इतना विकास नहीं हुआ था, जितना आजकल है, इस समय सारा संसार सिमट कर एक मुट्ठी में आ गया है। आवागमन की सुविधा से समस्त संसार के प्राणी एक सूत्र में बँध गये हैं, इसलिये एकसूत्री शासन की व्यवस्था की बात भी सोची जा रही है।"

"परन्तु यह एक 'अलभ्य आदर्श' बन कर रहेगा। इन शक्कर-लिपटी बातों की चर्चा केवल उस समय तक है, जब तक कोई राष्ट्र बलवान होकर संसार को अपने अधीन करने की चुनौती नहीं देता।"

"क्या मतलब ?"

"वह तो स्पष्ट ही है। अहिंसा का वातावरण केवल आगामी हिंसा अर्थात् युद्ध की भूमिका मात्र है।"

"तब तुम भी उन्नीसवीं शताब्दी के जर्मन 'युद्ध-संचालक' 'बिस्मार्क' की भांति युद्धों को अनिवार्य समझती हो ?"

"हाँ मेरा विचार वैसा ही है। 'स्वार्थ के लिए संघर्ष', 'जीवन के लिए संघर्ष' जब तक इनमें परिवर्तन नहीं होता, तब तक युद्ध कभी समाप्त नहीं हो सकते। अविराम शान्ति की कल्पना जब मनुष्य ने की तब उसने 'वैकुन्ठ' अथवा 'स्वर्ग' को धरातल के ऊपर ही बनाया है—पृथ्वी पर नहीं।"

"किन्तु हम उस कल्पित स्वर्ग को धरती पर बनाने का प्रयत्न करेंगे–नहीं, कर रहे हैं।"

"तब तुमको 'कामधेनु' और 'कल्पतरु' की भी रचना करनी पड़ेगी, जिससे सब प्रकार के अभाव पूर्ण हों, और प्रत्येक मनुष्य की मनचाही वस्तुएँ बिना श्रम और उद्योग के प्राप्त होती रहें, जिनसे ईर्ष्या तथा द्वेष उत्पन्न ही न हो सके।"

मणिमाला उत्तर देने जा रही थी कि सभाभूमि पुन: भगवान बुद्ध के जय-घोष से प्रतिध्वनित होने लगी रंगमञ्च पर चीन देश के बौद्ध धर्माध्यक्ष अपनी भाषा में भाषण देने के लिए आए। उन्होंने जो कुछ अपनी भाषा में कहा–उसका अनुवाद संक्षेप में दुभाषिए द्वारा इस प्रकार किया गया :–

"इस एशिया महाद्वीप का दक्षिणी और पूर्वीय भू-भाग एक ऐसे देवदूत की वाणी का अनुयायी है जो शाश्वत शान्ति और अहिंसा का प्रचार करता है। चीन, तिब्बत और भारत ऐसे देश हैं, जिन्होंने कभी अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए युद्ध नहीं किया है और जो स्वयं के जीने तथा दूसरों को जीने देने में विश्वास करते हैं। संसार के शान्तिप्रेमी इन्हीं देशों की ओर ताकते हैं, और यहीं से वे प्रेरणा प्राप्त करते हैं। भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है, जहाँ अधिक से अधिक विचारक, मनीषी, और तत्वज्ञानी उत्पन्न हुए हैं, और वह सृष्टि के आदि से भगवान के अवतरों की क्रीड़ा भूमि रही है। इसी पवित्र भूमि पर आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान बुद्ध का जन्म हुआ था, और जहां आप लोग आज विराजमान हैं, वहाँ पर उनका पहला मन्त्रोपदेश हुआ था। जब वह दीपक जो ढाई हजार वर्षों से निरन्तर जलता हुआ दिव्य प्रकाश दे रहा था, वह मानवों की सहज ईर्ष्या, द्वेष मत्सर के भावों से कुछ क्षीण तथा धूमिल-सा होगया, तब महात्मा गाँधी ने इसी पुण्यभूमि में जन्म लेकर पुन: अहिंसा को नवचेतना प्रदान की। उन्होंने शान्तिपूर्ण उपायों से अपने देश को सशक्त साम्राज्यवादी राष्ट्र से मुक्त कर एक ऐसा अभूतपूर्व उदाहरण रखा है, जो सभ्य संसार के लिये अनुकरणीय है। चीन हृदय से भगवान बुद्ध के इस द्वितीय अवतार का अनुयायी बनना चाहता है। वह भी हिंसा पर विश्वास नहीं करता, और भारत के कदम-ब-कदम चल कर संसार से युद्ध, कलह, और वैमनस्य को नष्ट करना चाहता है। आज उसी प्रेरणा के वशीभूत होकर चीन ने अपनी कई कुमारियों को भिक्षुणी की दीक्षा दिलाई है। ये भिक्षुणियाँ संसार के कोने-कोने में पहुंच कर शान्ति तथा अहिंसा का मन्त्र सुनाएँगी, और इस प्रकार हम पुन: भगवान बुद्ध की प्रतिपादित प्रणाली, भिक्षु-भिक्षुणी प्रथा को पुनर्जनन्म दे रहे हैं। ये भिक्षुणियाँ अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई अपना जीवन भगवान बुद्ध

और महात्मा गांधी के विचारों को विश्वव्यापी बनाने में उत्सर्ग करेंगी।"

जनता ने हर्षध्वनि की, और तालियों की गड़गड़ाहट से पंडाल गूंज उठा।

चीनी धर्माध्यक्ष प्रसन्न होकर पुन: कहने लगे—"चीन और भारत संसार के महाराष्ट्र हैं। इन दोनों देशों की जनसंख्या लगभग एक अरब से ऊपर है, और वह संसार की जनसंख्या का अर्धांश है। सहअस्तित्व और पंचशील के सिद्धान्तों को प्रतिपादित कर इन दोनों देशों ने संसार के राष्ट्रों के सामने एक अभूतपूर्व उदाहरण रखा है, और यदि इन दोनों देशों की आवाज जो दुनिया की आधी आवाज है, सुनी जायगी, तब हमें विश्वास है कि संसार युद्धों की विभीषिका से मुक्त हो सकेगा। भगवान बुद्ध और महात्मा गांधी ने मानव-प्रेम का पाठ पढ़ाया है और हमारा परम कर्त्तव्य है कि हम उनके सन्देश को घर घर पहुंचावें।"

जनता ने पुन: हर्षध्वनि कर उनके प्रस्ताव का स्वागत किया।

मणिमाला ने हर्षविभोर होकर कहा—"देखा, कैसी उच्च भावनायें चीनी धर्माध्यक्ष ने व्यक्त की हैं। गायत्री, यह युग अब शान्ति-युग है। मानव अब पशु-प्रवृत्तियों को छोड़ने का विचार कर चुका है—वह सच्चे अर्थों में मानव बनेगा, और सभ्यता उसे वैसा बनने में सहायता देगी।"

गायत्री ने कोई उत्तर नहीं दिया।

मणिमाला पुन: कहने लगी—"तुम्हें विश्वास नहीं होता! विश्वास करो या न करो, परन्तु इतना जान लो कि बीसवीं शताब्दी में अब युद्ध नहीं होंगे।"

"ठीक है, मैं भी यही मानती हूँ कि मनुष्य शान्ति से रहना सीखे परन्तु...।"

"वह सीख नहीं सकता।" मणिमाला ने उसके वाक्य को पूरा करते हुए कहा, और उसकी व्यंग्य से ओतप्रोत हँसी ने अन्य दर्शकों का भी ध्यान आकर्षित किया।

समीप बैठी एक दर्शिका ने कुछ खिन्न होकर कहा—"बहस-मुबहिसा यदि अपने घर में करें तो अधिक उपयुक्त होगा।" मणिमाला और गायत्री ने तिरछी भृकुटियों से उस दर्शिका की ओर देखा। दर्शिका बिना ध्यान दिए मंच की ओर देख रही थी।

तालियों की गड़गड़ाहट के बीच मंच पर एक तिब्बती लामा उठे, और वह तिब्बती भाषा में बोलने लगे। उन्हों ने भारत और तिब्बत के हजारों वर्षों के सम्बन्धों की प्रशंसा की, और बताया कि लामाओं के देश ने कभी किसी युद्ध का सूत्रपात नहीं किया है, और बौद्धिक ज्ञान का सदा दोनों देशों में विनिमय हुआ है। भारत के अनेक प्राचीन ग्रन्थों का भण्डार आज दिन भी तिब्बत में सुरक्षित है, जब भारत में वह नष्ट हो गया है। इसके पश्चात् चीन के साथ अपने देश के नव सम्बन्धों की चर्चा कर आशा प्रकट की कि चीन की कुमारियों को भिक्षुणी बना कर जो धर्म-प्रम का उदाहरण उसने रखा है वह सर्वथा श्लाघनीय और अनुकरणीय है।"

मणिमाला पुनः कुछ गायत्री से कहने जा रही थी कि उसने उस दर्शिका की ओर संकेत किया, जिसने कुछ देर पहले उन्हें बातें करने के लिए मना किया था। मणिमाला रुष्ट होकर उसकी ओर देखने लगी।

दर्शिका अपनी झिड़की से स्वयं दुखी थी। वह कनखियों से बार बार उन दोनों की ओर देख रही थी।

अन्त में उससे न रहा गया, और वह धीमे स्वर में मणिमाला से बोली—"क्षमा कीजियेगा बहिन, शायद मैंने अभद्रता की है। मैंने आपको पहले पहिचाना नहीं था।"

मणिमाला ने म्लान हँसी के साथ कहा – "पहिचान जाने से क्या आपकी वह खिन्नता मिट गई, जो हम दोंनों की बातों से उत्पन्न हुई थी।"

"ठीक है, परन्तु अपनी व्यथा को कुछ दूसरे शब्दों में व्यक्त करना था। मैंने आपके चित्र तो बहुत बार देखे हैं, किन्तु आप को नहीं देखा था, इसलिए पहली दृष्टि में मैं पहचान नहीं सकी। क्षमा कीजिएगा।"

मणिमाला की खिन्नता को उसके प्रशंसात्मक शब्दों ने गला कर बहा दिया। उसने मुस्कराते हुए कहा—"इसमें क्षमा माँगने की कोई आवश्यकता नहीं है। आपने उपयुक्त ही बात कही थी। मुझ को स्वयं इसका ध्यान रखना था कि श्रोताओं को मेरे कारण कोई कष्ट सुनने में न हो।"

दर्शिका ने बड़े विनयपूर्ण स्वर में कहा—"मैं बहुत दिनों से आप से मिलने

का विचार कर रही थी, किन्तु साहस न होता था। आज अनायास वह अवसर आ गया है कि मैं आपकी सेवा में उपस्थित होने का आपका कुछ बहुमूल्य समय माँगू। क्या आप कोई समय बताएगी, जब सेवा में उपस्थित हो सकती हूँ ?"

"आप अपनी सुविधानुसार कभी आ सकती हैं। मुझे हर समय अवकाश है क्या आप मेरा घर जानती हैं ?"

"हाँ, अच्छी तरह। कई बार आप के घर के दरवाजे तक गई हूँ, किन्तु आगे जाने को साहस न हुआ।"

"अरे, ऐसी क्या बात थी ? मैं इतनी भयंकर तो नहीं हूँ कि आप को मेरे सामने आने में भय लगता हो।"

"भय नहीं आतँक था। वैसा आतंक जो किसी महापुरुष के सामने आने में हुआ करता है। कहाँ आप पर्वतश्रङ्ग की भाँति उच्च हैं, और कहाँ मैं रज की एक कण।"

मणिमाला हँसने लगी और बोली—"कण तो सदा उच्च है, क्योंकि वही पर्वत-शिखर पर वायु के साथ उड़कर आसीन होता है। इन औपचारिक बातों को छोड़िये। आप कल प्रातःकाल चाय हमारे साथ पीजिए।"

दर्शिका ने नतमस्तक होकर निमन्त्रण स्वीकार किया।

इसी समय भगवान बुद्ध की जयध्वनि के साथ सभा विसर्जित हुई।

२

मणिमाला अपने पति अविनाश बाबू के प्याले में चाय भरने जा रही थी कि उसके नौकर ने आकर कहा—"दो महिलाएँ आप से मिलने आई हैं।"

मणिमाला ने भ्रूकुञ्चित करते हुए पूछा—"दो महिलाएँ !"

"जी हाँ, एक तो अपने देश की मालूम होती है, और दूसरी देखने में चीनी लगती है।"

मणिमाला को सहसा याद आया कि उसने उस दर्शिका को, जिसने उसे कल सभा पंडाल में गायत्री के साथ बात करने से रोका था, आज चाय पीने के लिए निमन्त्रित किया है। अपनी इस भूल से उसे अपने ऊपर क्षोभ हुआ, और उसने कहा—"जाओ उन दोनों को यहीं ले आओ।"

नौकर के चले जाने के पश्चात् अविनाश बाबू ने पूछा—"कल जलसे में तुमने इन चीनियों से क्या जान-पहचान कर ली ?"

"किसी चीनी महिला से मेरा आलाप नहीं हुआ, किन्तु एक भारतीय नव-युवती को अवश्य मैंने आज चाय पर आमन्त्रित किया था। संभव है वह किसी चीनी महिला को अपने साथ लाई हो। आजकल बनारस चीनी, तिब्बतियों और जापानियों के आगमन से उतरा-सा रहा है।"

"भारत बुद्ध की ढाई हजारवीं जयन्ती मनाकर अपने पड़ोसियों को अपने समीप ला, उनको संगठित करने का प्रयत्न कर रहा है। हमारे राजनीतिक नेताओं ने इस साहसपूर्ण कदम को उठाकर गहरी दूरदर्शिता का परिचय दिया है। यदि इसमें सफलता मिल गई तो दक्षिण-पूर्वीय एशिया के देशों का शान्ति संघ संसार के अन्य राजनीतिक संघों–जैसे 'नाटो' तथा 'सीयटो' से अधिक प्रभावशाली होगा।"

"हाँ, आधी दुनियाँ की आबादी से अधिक जनता इस नव संगठन में होगी, और तब उसकी बात आदर के साथ सुनी जाएगी।"

"विदेशी सत्ताएँ जो हमें लड़ाकर अपने स्वार्थ सिद्ध करना चाहती हैं, उन्हें निराशा होगी, और मेरा तो यह अनुमान है कि इससे संसार का कल्याण ही होगा। इस महान संगठन में शान्ति को बल मिलेगा, और यदि इसी भाँति पश्चिमीय एशिया भी संगठित हो जाय तो फिर संसार की राजनीति का नक्शा ही बदल जाएगा। यद्यपि युद्ध अभी तक योरप की भूमि पर ही लड़े गए हैं, किन्तु वे एशिया पर अपना प्रभुत्व जमाने के लिए लड़े गए हैं। संगठित एशिया सभी प्रकार के युद्धों के लिए चुनौती साबित होगा।"

"पश्चिमी एशिया भी संगठित हो रहा है। उस अंचल के सब राष्ट्र इसलामी हैं। पाकिस्तान से लेकर अरब तथा मिश्र आदि देशों का यदि एक संगठन बन जाय तो………।"

इसी समय नौकर के साथ आमन्त्रित दर्शिका के साथ एक चीनी महिला ने प्रवेश किया। पति-पत्नी ने उठकर उनका स्वागत कर, बैठने के लिये आमन्त्रित किया।

मणिमाला ने अपने पति का परिचय देते हुये कहा—"यह मेरे पति हैं, और खेद है, कि मैं आप दोनों का परिचय इनसे नहीं करवा सकती,क्योंकि मैं स्वयं इस सौभाग्य से वंचित हूँ।"

कल की दर्शिका ने बैठकर कहा—"मैं स्वयं अपना और अपनी सखी का परिचय दूँगी। यह कौन मेरे लिये कम सौभाग्य की बात है, जो आपने एक अपरिचित को चाय के लिये आमन्त्रित किया है। मैं इसके लिए अभारी हूँ।"

"कल जो मेरे कारण आपको सभा पण्डाल में खिन्नता हुई थी, उसी की क्षमा-याचना का यह उद्योग है।"

अविनाश बाबू प्रश्न भरी दृष्टि से मणिमाला की ओर देखने लगे।

मणिमाला ने उनका आशय समझ कर कहा—"कल मुझसे एक बड़ा अपराध हो गया था। दीक्षा-समारोह के अवसर पर मैं गायत्री दीदी के साथ बातें कर रही थी जिससे इनको कष्ट पहुँचा और…… ।"

आगुन्तका ने उन्हें आगे बोलने नहीं दिया। वह शर्माई हुई वाणी में बोली-"उस बात का उल्लेख कर मुझे 'बड़े भैया' के सामने लज्जित न करें। मैं धृष्टता के लिए पहले ही क्षमा माँग चुकी हूँ।"

अविनाश बाबू वाराणासी में 'बड़े भैया' के नाम से विख्यात थे, और मणिमाला 'भाभी' के नाम से।

अविनाश बाबू ने मुस्कराते हुए कहा—"ठीक किया आपने, जो इनकी मरम्मत की। इन्हें बात करने का मर्ज है। जब देखो तब बकवास किया करती हैं।"

नवागन्तुका ने शर्माए हुए स्वर में कहा—"आपको यह कहने का अधिकार है, पर मुझे तो अपने से बड़ों का सन्मान करना चाहिए। हाँ, मेरा नाम चन्द्र-

कला है, और मैं स्थानीय कन्या कालिज में अध्यापिका हूँ, और मेरी यह साथिन चीनी छात्रा है, जो मेरे कालिज में हिन्दी भाषा का ज्ञान प्राप्त कर रही हैं। इनका नाम श्री चिनचुन है। चीन में एक धार्मिक संस्था है, 'चीनी महिला संघ',। उसी संस्था ने इनको यहाँ धर्म-प्रचार के उद्देश्य से भारत भेजा है। कल के समारोह में इन्होंने भी भिक्षुणी की दीक्षा ली है।"

मणिमाला की सुप्त उत्सुकता जाग उठी। उसने हर्ष से कहा—"बहिन चन्द्र-कला, मैं बड़ी कृतज्ञ हूँ, जो आपने कुमारी चिनचुन को अपने साथ लाकर इनको अधिक निकट से जानने का अवसर दिया है। मेरी पूर्ण सहानुभूति है, इस धार्मिक आन्दोलन से, और मैं इसके उत्थान में अपनी सेवाएँ अर्पित करती हूँ।"

चन्द्रकला ने हर्ष से ताली बजाते हुये कहा—"मैं कृतकृत्य हो गई। जिस याचना को अपने मन में लिए आई थी, उसको बिना कहे हुए आपने पूरा कर दिया। कुमारी चिनचुन से मैंने आज प्रातःकाल चलने के पहले कहा था कि 'मैं आज आपको एक ऐसी नारीरत्न से मिलाने लिए चलती हूँ, जहाँ आपको प्रत्येक प्रकार की सहायता बिना प्रयास के मिलेगी।' मेरा वह विश्वास फलीभूत हुआ।"

"आपको मेरे प्रति इतना विश्वास है, इसके लिये धन्यवाद ! हाँ, कुमारी चिनचुन जी, मैं किस प्रकार आपकी सेवा कर सकती हूँ। आपकी सेवा का अर्थ है चीन की सेवा, जो हमारा सहस्त्राब्दियों का पड़ोसी मित्र है, और इतिहास जिसका साक्षी है। आजकल हमारे दोनों देशों के नेतागण इस पुरानी मित्रता को अधिकाधिक दृढ़ बनाना चाहते हैं, और यदि यह मित्रता जनता के स्तर पर आ जावे, तो मैत्री-बन्धनों में अभूतपूर्व मजबूती आ जायगी, जिसका विच्छिन्न करना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव होगा। मुझे आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई है।"

कुमारी चिनचुन ने उन्हें नमस्कार करते हुए कहा—"हाँ, हमारी 'महिला-संघ' का भी ऐसा ही विचार है। आपके शब्दों में मुझे उन उद्देश्यों की प्रीति-ध्वनि मिलती है, जिनसे अनुप्राणित होकर आपकी सेवा में उपस्थित हुई हूँ। हम यहाँ पर बिल्कुल अपरिचित हैं, और जब तक आप जैसी नेत्रियों का सहयोग

हमें प्राप्त नहीं होगा, तब तक हम अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकतीं।"

इस देश में आप अपरिचित क्यों हैं–ऐसा अनुभव आप न कीजिए। चीन और भारत की विभाजन रेखा हिमालय, अब वैज्ञानिक साधनों के द्वारा केवल पत्थर की एक दीवालमात्र रह गया है, जिसको अतिक्रमण करना कोई कठिन कार्य नहीं है। रेडियो और टेलीविज़न जैसे आविष्कारों से वह दूरी सिमिट कर केवल एक रेखामात्र रह गई और वायुयानों ने तो आवागमन की वह सुविधा प्रदान कर दी है, कि हम कुछ घण्टों में एक देश से दूसरे देश में आ-जा सकते हैं।"

"आपका कथन सत्य है, तभी हम चाहते हैं कि भारत और चीन की जनता में वह मैत्री उत्पन्न हो सके जो विदेशियों के षड़यन्त्रों से कभी विच्छिन्न न हो। यह तो आप जानती हैं कि विदेशी हमारी इस मित्रता को सुदृष्टि से नहीं देखते। वे अनेकानेक प्रयत्न हमारी मैत्री को भंग करने के लिए करेंगे। यह प्रचार का युग है—प्रचार के द्वारा सभी कुछ संभव है। राष्ट्रों में शत्रुता के भाव भरना अति सुगम है। किन्तु वह सुगमता नष्ठ हो जाती है, यदि हम एक दूसरे को अधिकाधिक निकट से जानने लगते हैं, और उनके प्रचार का परदाफाश करते रहें।"

"आप जितनी आयु में कम हैं, उतनी ही अधिक दूर-दर्शी भी हैं। आपसे मिलकर वास्तव में मुझे प्रसन्नता हुई है।"

कुमारी चिनचुन ने सलज्ज दृष्टि से देखते हुए कहा—"आप बड़ी भाभी होकर अन्याय करती हैं। मैं आपके चरणों में बैठकर कुछ सीखने आई हूँ। हमारी 'गुराणी जी' ने आपके सम्बन्ध में वे सब बातें बताई हैं जो आपने अपने देश को स्वतन्त्र करने में की हैं। आपके सामने मेरा मस्तक श्रद्धा से अपने आप नत हो जाता है।"

चन्द्रकला ने सन्तोष भरी मुस्कान के साथ कहा—"मुझे 'गुराणी' कहकर क्यों भाभी के सामने अपदस्थ करती हो। मैं तो वयस में लगभग तुम्हारे ही समान हूँ।"

"जो शिक्षा देते हैं, वे गुरु की पदवी से विभूषित होते हैं। यही हमारे

दोनों देशों की परम्परा है। आपने जिस लगन और स्नेह से मुझे देवभाषा संस्कृत तथा हिन्दी का ज्ञान कराया है, उसके लिए मैं अनेकानेक जन्मों तक आभारी रहूँगी। क्यों भाभी, मैं ठीक कहती हूँ न ?"

'भाभी' सम्बोधन की आत्मीयता ने मणिमाला की हृतंत्री को झंकरित कर दिया। वह और उनके समीप आ गईं। उन्होंने सरसता के साथ मुस्कराते हुए कहा—"तुम्हारे दोनों के कथनों में सत्यता है। कार्य से गुरु शिष्य और वयस से मित्र हो।"

चन्द्रकला और चिनचुन दोनों इस निर्णय से प्रसन्न होकर हँसने लगीं। अविनाश बाबू भी मुस्कराए।

चन्द्रकला ने कहा—"भाभी, वस्तुतः आप उससे कहीं अधिक महान और उच्च निकलीं, जितने ऊँचे महल आपके सम्बन्ध में मैंने अपनी कल्पना में बनाए थे।"

अविनाश बाबू ने मुस्कराते हुए कहा—"इनके निकट और अधिक आप न आइयेगा, नहीं तो इनकी बकवास से वे हवाई महल ढह जाएँगे।"

"अथवा वे केवल हवाई न रहकर सत्य में परिणित हो जाँयगे।" चन्द्रकला ने सोत्साह कहा। हँसी का फौव्वारा उन सबको सिक्त करने लगा।

अविनाश बाबू ने फिर कहा—"दूर से बोल सुहावने लगते हैं, नजदीक आने पर वे कर्णकटु हो जाते हैं।"

"जो सुहावना है वह दूरी अथवा समीपता की अपेक्षा नहीं करता।" चन्द्रकला ने अविलम्ब कहा। मुक्त हास्य पुनः वातावरण को झंकरित करने लगा।

मणिमाला ने अविनाश बाबू को लक्ष्य कर कहा—"क्यों क्या कुछ और सुनना चाहते हो ? अभी तक तुम पुरुषगण नारी को अबला ही समझते हो।"

"नहीं मैं इतनी घृणा नहीं कर सकता ! नारी तो इस युग की संचालिका है। आगामी इक्कीसवीं शताब्दि नारी-शक्ति की शताब्दि होगी। संसार का शासन-सूत्र उन्हीं के द्वारा संचालित होगा।"

"और बीसवीं शताब्दि का अर्धांश ?"

"इसमें पुरुषों की शक्ति क्षय होगी। एक ऐसा महासमर इस शताब्दि के अर्धांश में होगा, जिससे पुरुष की शक्ति विनाश को प्राप्त होगी और उसके पश्चात् नारी-शक्ति का उदय होगा। समर सदैव किसी की बढ़ी हुई शक्ति का नाश कर अन्य क्षीण को सबल बनाते हैं।"

"तब क्या आप भी किसी आगामी युद्ध की कल्पना करते हैं ?" चिनचुन ने पूछा।

"युद्ध और शान्ति का चक्र सदैव चलता रहता है। कभी कोई ऊपर आता है, और कभी कोई। न कभी शाश्वत शान्ति रह सकती है, और न कभी युद्ध, युद्ध के बाद शान्ति और शान्ति के बाद युद्ध—यही प्राकृतिक नियम है। प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन मानव शक्ति की परिधि के बाहर है।" अविनाश बाबू ने भविष्यवक्ता की गंभीरता के साथ कहा।

"हमारे और इनके विवाद का यही मूलधार है, बहिन चन्द्रकला। मैं समझती हूँ कि अब संसार युद्धों से त्राण पा जाएगा, किन्तु इनकी बकवास केवल युद्धों की रहती है। कुमारी चिनचुन जी, आपका क्या विचार है।"

"आप लोगों के सामने मेरे विचारों का क्या मूल्य है ? मैं राजनीति से दूर रहना चाहती हूँ, क्योंकि मेरा क्षेत्र धार्मिक है।"

"किन्तु वर्तमान युग राजनीतिक चेतना का है, और मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि राजनीति हमारे प्रत्येक विचार तथा कार्य में प्रविष्ट हो गई है। हम उसके बिना कुछ सोच ही नहीं सकते।"

"भाभी जी, राजनीति साँसारिक है, और धर्म दैविक। इन दोनों में मिलान कहाँ होता है ? जब राजनीति धर्म में प्रवेश पा जाएगा, तब मनुष्य जाति का विनाश हो जाएगा।"

"यही तो मैं भी कहता हूँ। आजकल राजनीति नहीं वरन् कूटनीति हमारे सभी कार्य-क्षेत्रों में छा-सी गई है, और यही आगामी युद्ध की भूमिका बन रही है। सबल राष्ट्र मरात्मक अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण में संलग्न हैं, इनका एक न एक दिन व्यवहार होगा ही, और उस समय इस धरातल के निरीह प्राणियों का भविष्य क्या होगा, हमारे अनुमान के बाहर नहीं है ?" अविनाश

बाबू ने कहा।

"परन्तु यदि धर्म के ऊपर आस्था मानव जाति में उत्पन्न हो जाय, तब युद्धों का भय मिट सकता है। धार्मिक बन्धन मनुष्य को लड़ने के लिए उत्साहित नहीं करते।" चन्द्रकला ने चिनचुन के समर्थन में कहा।

"चन्द्रकला जी, आपके कथन की पुष्टि इतिहास नहीं करता। संसार का मध्ययुग धार्मिक युद्धों का युग रहा है।"

"तब क्या निरस्त्रीकरण की योजनाएँ, केवल कल्पनाएं हैं ?"

"ये मानव के आन्तरिक द्वन्द्व को समाधान करने का प्रयत्न करती हैं। निर्बल राष्ट्र ही ऐसी योजनाएं बनाते हैं; और सबल राष्ट्र अपने को अधिक सबल बनाने के लिए उनका समर्थन करते हैं।" चिनचुन अपनी तटस्थता छोड़ कर बोल उठी।

अविनाश बाबू आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगे।

चिनचुन को अपनी भूल मालूम हुई, उसको सुधारने के लिए वह बोली—"मैं राजनीति में कोई भाग नहीं लेती, आप लोगों से जो सुनती हूँ, वही मैंने भी कह दिया।"

"नहीं आपका विचार बिल्कुल ठीक है। आप अपनी राजनीतिक सूझ-बूझ को छिपाने की चेष्टा क्यों करती हैं ? आज का कोई व्यक्ति राजनीति से अपने को अलग नहीं कर सकता।" अविनाश बाबू ने उसकी ग्लानि को दूर करने का प्रयत्न किया।

"क्या करूँ, पुराने जीवन के सम्बन्ध एकदम से नहीं मिटाये जा सकते। मैंने भिक्षुणी की दीक्षा ली है, मेरा अब साँसारिक बातों से कोई सम्बन्ध नहीं रहना चाहिए।"

"क्या मैं पूछ सकती हूँ कि आपने भिक्षुणी की दीक्षा स्वेच्छा से ली है?" मणिमाला ने प्रश्न किया।

"मनुष्य प्राय: स्वेच्छा से ही काम किया करता है ?"

"मेरी शंका थी कि शायद आपको किसी मजबूरी ने इस कठिन मार्ग को ग्रहण कराया है।"

"नहीं, नहीं ऐसी कोई बात नहीं है। चीन की कम्यून व्यवस्था में यद्यपि धर्म का कोई स्थान नहीं है, तथापि वह हमारी अन्तरात्मा की प्रेरणा को नष्ट नहीं कर सका है। मैं उस राजनीतिक व्यवस्था से ऊब कर भिक्षुणी बनी हूँ। धर्म में मेरी जन्मजात आस्था हैं, और उसकी भूख भौतिक भूख से सर्वथा भिन्न है। मेरा विचार है कि मनुष्य केवल साँसारिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नहीं बनाया गया। उसकी रचना का ध्येय कुछ और है। निर्वाण प्राप्त करने का माध्यम मनुष्य-जन्म है, और जो इस ध्येय को भूलकर अन्य लक्ष्य को प्राप्त करने की चेष्टा करता है, वह गेंद की भाँति इधर-उधर लुढ़कता रहता है।"

चन्द्रकला ने चिनचुन की प्रशंसा में कहा—"भाभी जी, मैंने अत्यन्त निकट से साथ रहकर देखा है कि चिनचुन जी का अधिकांश समय बौद्ध धर्म से सम्बन्धित ग्रंथों के पठन-पाठन में व्यतीत होता है। ये प्रायः कहीं आती-जाती नहीं, केवल आपके दर्शनों का मोह इन्हें यहाँ घसीट लाया है।"

"आप यहाँ रहती कहाँ हैं ?"

"ज्ञानवापी पर आपके धर्म पिता की दूकान है, उन्हीं के साथ रहती हैं।"

"धर्म पिता ?"

"जी हाँ इनके जन्मदाता माता-पिता चीन में रहते हैं। जैसा यह अभी कह चुकी हैं कि इनको बाल्यकाल से ही बौद्ध धर्म से प्रेम था, इसलिए यह बौद्ध तीर्थों को देखने के लिये एक चीनी शिष्ट-मण्डल के साथ आई थीं, और फिर इन्होंने भारत में रहने का संकल्प कर लिया।"

"क्या शिष्टमण्डल के अध्यक्ष ने यहाँ रहने की स्वीकृति दे दी थी ?"

चिनचुन ने उत्तर दिया—"यद्यपि मेरा हठ नियमों के विपरीत था, तथापि अध्यक्ष की सहृदयता से मुझे किसी प्रकार आज्ञा मिल गई।"

"यह भेद अपने मुख से नहीं बताती कि इनको इस आज्ञा प्राप्ति के लिए एक सप्ताह का अनशन करना पड़ा था। इन्होंने स्पष्ट कह दिया कि मेरा मृत शरीर ही अब चीन वापस जा सकता है। इनकी इस प्रतिज्ञा से वे लोग बहुत हैरान हुए, और चीन सरकार के साथ परामर्श करने के पश्चात् इनको भारत में रहने की आज्ञा मिल गई और चाऊचुंग की संरक्षता में इनके रहने का प्रबन्ध

कर दिया।" चन्द्रकला ने कनखियों से चिनचुन की ओर देखते हुए कहा।

"चाऊचुंग क्या कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति है ?"

"जी हाँ, 'चाऊ' शब्द का प्रयोग वही करते हैं, जिनका सम्बन्ध चीन के अभिजात वंशों से होता है। इनके पूर्वज चीन के प्राचीन जागीरदारों में थे परन्तु समय के उलट-फेर से जागीर निकल गई, किन्तु कुलीनता का चिन्ह लगाए रखने का मोह वह नहीं त्याग सके। उनके पूर्वज चीन की राज्यक्रान्ति में भाग कर भारत आए और फिर वे यहीं बस गये। अब महाशय चाऊचुंग अपने दिन भगवान बुद्ध की आराधना में बिताते हैं; जीविका उपार्जन के लिए जूते बनाने का छोटा सा कारखाना खोल रखा है।"

"उनके परिवार में आजकल कितने व्यक्ति हैं ?"

"उनकी पत्नी का देहान्त गतवर्ष हो गया। वह केवल एक पोष्य पुत्री छोड़ गई है, और उसने भी कल हमारे साथ भिक्षुणी की दीक्षा ली है।"

"आप उनको अपने साथ क्यों नहीं लाईं ?"

"वह तो आना चाहती थी, किन्तु मैं ही उसे नहीं लाई।"

"पहले आप स्वयं मेरे घर का वातावरण देखना-समझना चाहती थीं, क्यों ?"

' नहीं, यह अनुमान आपका गलत है। आपकी सदाशयता के सम्बन्ध में बहुत कुछ सुन चुकी थी, इससे कोई भय नहीं होता था, परन्तु फिर भी लोका-चार का विचार तो करना ही पड़ता है।"

"अब आप जब कभी आवें, तब लोकाचार को विसर्जित करके ही आवें। हमारा घर तो सदैव से प्रत्येक देशभक्त के लिए खुला रहा है और जब तक हम दोनों जीवित हैं, तब तक खुला ही रहेगा। हाँ, लड़कों के समय में क्या होगा, नहीं कह सकती।"

"आपके जीवन की छाप उन पर भी पड़ी होगी। वे भी आपका अनुकरण करेंगे।"

"विनोद के सम्बन्ध में मेरा भी यही अनुमान है। हाँ, दूसरा यशोधर अवश्य दूसरे विचारों का है। वह राजनीतिक प्रसंगों से दूर रहकर अपना समय

अध्ययन तथा पठन-पाठन में व्यतीत करता है। उसे पुरातात्विक विषयों में रुचि है और आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि बौद्ध-धर्म उसका प्रिय विषय है।"

"तब क्या उनके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा ?"

"मैं नहीं कह सकती कि वह अभी घर में है या नहीं। जब से भगवान बुद्ध की ढ़ाई हजारवीं जयन्ती की चर्चा चली है और तिब्बती लामा आए हैं, तबसे उनके पीछे-पीछे घूमता है। समय मिला तो खा गया; नहीं तो प्राय: वह रात्रि में ही आया करता हैं। बहुत सम्भव है कि वह इस समय किसी तिब्बती लामा से धार्मिक ज्ञान प्राप्त कर रहा हो।"

"उनसे मिल कर मुझे हार्दिक आनन्द होगा। जिन पर भगवान बुद्ध की विशेष कृपा होती है, उनके ही ऐसे संस्कार बनते हैं। चिनचुन कहते-कहते हर्ष-विभोर हो उठी।"

"मुझे भय है कि वह कहीं लामाओं के साथ तिब्बत न चल देवे।"

"आपको यह भय न करना चाहिए। यदि कदाचित् ऐसा हो जाय, तो भी आपको घबड़ाना न चाहिए। निर्वाण-लाभ का तो यही एक मार्ग है।"

"परन्तु मैं निर्वाण में विश्वास नहीं करता।" अविनाश बाबू बोले।

"यह आप क्या कहते हैं ? शायद आप मज़ाक़ में ऐसा कह रहे हैं।"

"नहीं, मैंने सत्य ही अपना विश्वास प्रकट किया है।"

"क्या आपकी बुद्ध धर्म पर आस्था नहीं है ?"

"मैं सभी धर्मों पर आस्था रखता हूँ। मेरा विश्वास है कि धर्म सामाजिक व्यवस्था को सुगठित रखने के लिए बनाया गया है। उसका सम्बन्ध केवल इस लोक तक है। मरण के उपरान्त जिन बातों का वर्णन वे करते हैं, वे सब प्रलोभन हैं, आडम्बर हैं, जो अपने अनुयाइयों को सदाचार एवं व्यवस्थित रूप से चलने की प्रेरणा देते हैं। मृत्यु के पश्चात् जीव का क्या होता है, आज तक कोई नहीं जान सका है। जितने धर्म हैं, उन सबों में जहां तक लौकिक आचार-विचार का प्रश्न है, प्राय: एकरूपता है, क्योंकि सत्य के विभिन्न रूप नहीं हुआ करते, परन्तु जब हम मरणोपरान्त उनके बताये प्रसंगों पर ध्यान देते हैं, तब

हम उनमें भिन्नता पाते हैं। कोई कुछ कहता है और कोई कुछ। यह विभिन्नता क्यों है ? इसलिए कि मृत्यु के पश्चात् की बातें सभी अस्पष्ट हैं, अनजान हैं। जिसने जो सर्वोत्तम वैभव तथा ऐश्वर्य अपने सामाजिक विचारों के अनुसार समझा, वही उसने अपने अनुयायियों के समक्ष रखा।"

"किन्तु बुद्ध भगवान तत्वज्ञानी थे, क्या उन्होंने जो कुछ कहा, वह भी झूठ है ? क्या आत्मा का आवागमन नहीं होता ? क्या वह कर्म के बंधनों से बद्ध नहीं है ? क्या पूर्व जन्म की सत्यता के प्रमाण आज दिन भी यदा-कदा नहीं मिलते ?" चिनचुन ने किञ्चित तेजी के साथ कहा।

"हमें धार्मिक विषयों पर कभी बहस नहीं करना चाहिये, क्योंकि इससे केवल कटुता उत्पन्न होती है, धार्मिक विश्वास बिल्कुल व्यक्तिगत प्रश्न है।"

"परन्तु सत्य को प्रतिपादित करना चाहिए।"

"सत्य और असत्य क्या है, इसका निरूपण नहीं हो सकता, और विशेष-कर विश्वास में। प्रत्येक धर्म पहले विश्वास की मांग करता है, इसलिये उसको वही सत्य मानना पड़ता है, जो उस धर्म के संस्थापक कहते हैं, शेष मिथ्या है। मनुष्य विश्वास के वशीभूत होकर कभी-कभी वह करता है, जो अन्य दृष्टि से सर्वथा अनुचित होता है। जैसे एक शाक्त पशुओं के बलिदान में मोक्ष अथवा निर्वाण को प्राप्त करने पर विश्वास करता है, किन्तु बौद्ध इसके विपरीत विश्वास करते हैं।"

"किन्तु हिंसा का परिणाम कभी सुखद नहीं हो सकता।"

"वैसे ही आत्म-दमन भी सुखद नहीं माना जा सकता।"

"मेरा भी यही मत है कि धार्मिक विश्वासों पर कभी बहस न करना चाहिये। अच्छा भाभी, अब आज्ञा दीजिये। आपका बहुमूल्य समय हम लोगों ने नष्ट किया, इसके लिये मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।" चन्द्रकला ने कहा। चिनचुन ने भी उठते हुए कहा—"मेरी धृष्टता के लिए क्षमा कीजिएगा, मेरे शब्दों से जो आप लोगों को चोट पहुँची हो, उसके लिये मैं अनुतप्त हूँ। अब मैं भी स्वीकार करती हूँ कि धार्मिक प्रश्नों पर कभी बहस न करना चाहिये।"

मणिमाला ने उठकर सहास्य कहा—"किसी के विश्वास को जब ठेस पहुँचती

है, तब क्रोध उत्पन्न होना स्वाभाविक है। आप किसी दिन फिर कृपा कीजियेगा।"

"मुझे तो आपकी सेवा में बार-बार उपस्थित होना पड़ेगा। अनेक सामाजिक कार्य, आपकी सहायता के बिना सम्पन्न नहीं हो सकते, और मैं सर्वथा इस देश से अपरिचित हूँ।"

"मैं सदैव यथाशक्ति आपकी सहायता करूँगी, आप निस्संकोच आइएगा।"

"इसी विश्वास से मैं आपके पास इनको लाई हूँ। इनको बड़ी चिन्ता थी कि कैसे वह इस अपरिचित देश में अपने विचारों का प्रसार कर सकेंगी ! आपके आश्वासन से हमारी वह चिन्ता दूर हुई।"

यह कह कर उन दोनों ने विदा ली।"

उनके जाने के पश्चात् अविनाश बाबू ने कहा—"मुझे तो यह बड़ी रहस्यपूर्ण रमणी जान पड़ती है। समझ में नहीं आता कि क्यों इतनी कम आयु में इसने दीक्षा ली है।"

"तुम्हारा शक्की स्वभाव हर बात में रहस्य देखता है।" यह कह कर मणिमाला अन्यत्र चली गई।

अविनाश बाबू विचारों में मग्न बैठे रहे।

अविनाश बाबू का विश्वास महात्मा गाँधी की अहिंसात्मक क्राँति पर नहीं था, इसलिए हिन्दू विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करते हुये वह क्रांतिकारियों की खोज में संलग्न रहते थे। वाराणसी अथवा बनारस क्रान्तिकारी दल का एक प्रमुख केन्द्र था, और अपनी लगन से उनका प्रवेश उस दल में हो गया। उनमें अपूर्व साहस और क्रान्ति की पद्धति पर अटूट विश्वास था। अपने साहस और शौर्य के कारण वह शीघ्र उस दल के नेता हो गए, और क्रान्ति का संचालन अत्यन्त सीमित साधनों से करने लगे। प्रकृति ने जहाँ उन्हें विलक्षण

मस्तिष्क प्रदान किया था, वहाँ उन्हें बलिष्ट शरीर भी दिया था। उनकी लंबाई लगभग ६ फुट थी, और स्नायु निरन्तर व्यायाम से दृढ़ तथा पुष्ट थे। उनकी शारीरिक शक्ति साधारण मनुष्यों की अपेक्षा चौगुनी या पंचगुनी थी। बचपन से ही उन्हें कुश्ती लड़ने का शौक था, और कालिज में प्रवेश करने के साथ उन्होंने लाठी और बन्दूक चलाने की विद्या में भी अपूर्व निपुणता प्राप्त की। तैरने में उनका कोई प्रतिद्वन्दी बनारस में नहीं था। सावन भादों की गंगा को पार करना उनके लिये हँसी खेल था, और तैराकी की सभी कलाओं के वह मश्शाक थे। दौड़ने में भी वह कम नहीं थे, पाँच-छः मील तक अविराम रूप से दौड़ते जाना उनका दैनिक व्यायाम था। घुड़सवारी में भी वह दक्ष थे। वह घोड़े की नंगी पीठ पर उछल कर बैठ जाते, तथा बिना लगाम के उसे अपनी इच्छानुसार चलाना जानते थे। उच्छृङ्खल से उच्छृङ्खल घोड़े उनकी रानके नीचे दब कर सीधे तथा सरल हो जाते, और जब वह उसकी गर्दन पर झुक कर उसके कानों को उमेठते तब वह उसे मनचाही दिशा में दौड़ने के लिए मजबूर कर देते। एक बार एक बनारसी रईस ने उनकी क्षमता सुन कर उन्हें अपना एक कुटिल घोड़ा सीधा करने के लिए बुला भेजा। वह किसी भाँति अपनी पीठ पर ज़ीन नहीं कसवाता था, और लगाम लगवाने में वह कई जीवट साईसों की उँगलियाँ चबा चुका था। अविनाश बाबू उसकी बदमाशी की कथा सुन कर तनिक भी नहीं शंकित हुए, और तबेले में जाकर उसे देखा। घोड़े से उनकी आँखें मिलीं, और दोनों एक दूसरे की शक्ति का अनुमान लगाने लगे। गले में रस्सी बाँध कर घोड़ा मैदान में लाया गया, किन्तु वह भी चौकन्ना था। किसी एक स्थान पर ठहरता न था, और इतनी उछल-कूद मचाये था, कि दोनों ओर से उसके गले को बाँधे दो-दो साईस घबड़ा रहे थे। अविनाश बाबू ने उसे डाँटा, और जहाँ वह क्षण भर के लिए स्तब्ध हुआ कि वह एक छलाँग में उसकी नंगी पीठ पर बैठ गये, तथा उसके पेट को अपनी लम्बी टाँगों से दबा कर ऐंठ दिया। यह सब पलक मारते हो गया। जब वह उसकी पीठ पर जम गये, तब उस बेचारे को महसूस हुआ कि कोई उसकी पीठ पर बैठ गया है। घोड़ा भयानक स्वर में हिनहिनाता हुआ अपने पिछले पैरों पर खड़ा हो गया, किन्तु

अविनाश बाबू की दोनों रानें सँड़सी की भाँति उनके पेट को जकड़े थीं, जो उत्तरोत्तर शक्ति से दबाती उसकी साँस घोटने लगीं। घोड़ा पागल-सा होकर साईसों को घसीटता हुआ एक ओर जी छोड़ कर भागा। कुछ दूर तक साईस घिसटे, किन्तु रस्सियाँ उनके हाथ से छूट गईं, और उनसे मुक्त होकर वह हवा से बातें करने लगा। अविनाश बाबू इस समय उसकी गर्दन पर भी गोफा डाले हुए उसे दबा रहे थे। दुतरफी दबाव को घोड़ा सहन नहीं कर सका, वह कुछ दौड़ कर खड़ा हो गया, और उसके मुँह से झाग निकलने लगा। उसने एक-दो बार पुनः अपने पिछले पैरों पर खड़ा होकर उनको गिराने की चेष्टा की, परन्तु जब उस में कृतकार्य नहीं हुआ तो भीगी बिल्ली सा खड़ा होकर हाँफने लगा, अविनाश बाबू ने आगे हाथ बढ़ा कर उसकी दोनों कनौतियाँ पकड़ लीं। गले का दबाव ढीला होने पर वह फिर उछलने लगा, किन्तु वह उसके कान ऐंठते ही गये। वह इस प्रहार से और घबराया। थोड़ी देर की उछल कुद के बाद वह फिर स्थिर हो गया, मानो उसने हार मान ली हो। अविनाश बाबू तुरन्त उसकी पीठ से नीचे उतर पड़े तथा गर्दन पकड़ कर उसे थपथपाने लगे। घोड़ा तनिक भी नहीं बिचका और उनका प्यार पाकर वह हिनहिनाने लगा, मानो उसने उनका आधिपत्य स्वीकार कर लिया हो।

अविनाश बाबू का मस्तिष्क भी उनके शरीर की भाँति पुष्ट था। वह बड़े दूरदर्शी थे। अपनी क्रान्तिकारी योजनाओं को बड़ी चतुरता से बनाते, तथा उनको इस प्रकार संचालित करते थे कि कोई निष्फल नहीं जाती थी। वह स्वयं घर के धनी थे, और प्रायः पार्टी का व्यय वही उठाते थे। उनका घर प्रत्येक राष्ट्रसेवी के लिए, चाहे वह गाँधीवादी हो, और चाहे क्रान्तिकारी, खुला हुआ था। अपनी क्रान्तिकारी चेष्टाओं को छिपाने के लिये उन्होंने अहिंसक आन्दोलन में भी भाग लेना आरम्भ किया, तथा धीरे-धीरे वह नगर काँग्रेस के प्रधान मन्त्री हो गये। ब्रिटिश सरकार उनकी दोरुखी चाल को कई वर्षों तक नहीं जान सकी, परन्तु एक दिन पर्दाफाश होगया, और उन्होंने घर त्याग कर जंगलों का रास्ता लिया। सरकार के दबाव से उनके पिता ने उन्हें उत्तराधिकार से वँचित कर दिया, तथा उस विषय की एक विज्ञप्ति भी पत्रों में प्रकाशित कर

दी। इससे उनकी सम्पत्ति जब्त होने से बच गई, तथा रायबहादुर की पदवी पर भी कोई आँच नहीं पहुँची। यह सब अविनाश बाबू के परामर्श से हुआ था, और इसमें सन्देह नहीं कि उनकी दूरदर्शिता से उनकी सम्पत्ति सुरक्षित रही।

अविनाश बाबू अपने पिता की अकेली सन्तान थे। उनकी माता का देहांत उनके बाल्यकाल में हो गया था, और पिता ने अपना दूसरा विवाह नहीं किया था। उनकी एक फुफेरी बहिन गायत्री अनाथ हो जाने से उनके परिवार में पली थी, जिसके प्रति उनका अटूट स्नेह था। उनके क्रान्तिकारी विचारों से वह भी प्रभावित हुई थी, किन्तु सक्रिय आन्दोलन में भाग नहीं लेती थी। उसी के द्वारा अविनाश बाबू के समाचार उनके पिता को मिला करते थे। उनके पिता गंगाप्रसाद की इच्छा नहीं थी कि उनका एकमात्र पुत्र राष्ट्रीय आन्दोलन में फँसे, परन्तु अविनाश बाबू की ज़िद से वह लाचार होगए थे। सी. आई. डी. की दृष्टि हमेशा उनके मकान पर रहती थी, परन्तु वह कभी अविनाश बाबू को वहाँ आते जाते पकड़ नहीं सकी।

अविनाश बाबू का चारित्रिक स्तर भी बहुत ऊँचा था। ब्रह्मचारी और संयमी थे। अनुशासन के कट्टर पक्षपाती होने से वह छोटी-सी-छोटी भूल भी क्षमा नहीं करते थे। उनके साथी उनको हृदय से प्यार करते हुए भी उनसे शंकित रहते थे। उनके दल में कुछ लड़कियाँ भी थीं, जो उनके शिक्षित होने से पहले काम कर रही थीं। इन्हीं में एक मणिमाला भी थी। वह प्रायः लड़कियों से आलाप नहीं करते थे और उनको दल से पृथक कर देना चाहते थे, परन्तु उनकी कार्य-तत्परता उन्हें ऐसा करने से बार-बार रोकती थी। मणिमाला उनका सदैव मजाक उड़ाती थी, और वही उनको मुँह तोड़ उत्तर दिया करती थी। वह भी प्रायः दुस्साहसी कार्यों में उनसे पीछे नहीं रहती थी। उसका निशाना भी उतना ही अचूक था, जितना अविनाश बाबू का। उसकी बुद्धि भी उतनी कुशाग्र थी और वह उतनी ही कुशलता से कार्य सम्पादित करती थी। उसको अविनाश बाबू के अतिरिक्त दल के सभी सदस्य दीदी कह कर पुकारते थे, केवल वही उनका नाम लेते थे। उनके स्वर में न आत्मीयता

होती और न होता आदर । सेनापति के समान उनका स्वर कठोर और रूक्ष होता था । किन्तु वह कभी उससे आँख मिला नहीं सके । उससे बातें करते समय उनकी दृष्टि या तो नीचे रहती, या उसकी दृष्टि के विपरीत दूसरी ओर । उनकी शान्त वाणी के सम्मुख वह अपने को पराजितसा अनुभव करते और जब यह विचार उनके मस्तिष्क में सजग होता, तब वह अधिक कठोर हो जाते । उनका यह परिवर्तन यद्यपि दल के दूसरे सदस्य लक्ष्य नहीं कर पाते थे, तथापि मणिमाला की तीव्र दृष्टि से वह ओझल नहीं होता । वह भी अधिक कठोर और तन जाती थी ।

एक बार अविनाश बाबू ने उसे एक अंग्रेज पुलिस अधिकारी की हत्या की आज्ञा दी । यद्यपि दल के दूसरे सदस्य यह भार अपने ऊपर उठाने के लिए तैयार थे, और उन्होंने अपनी अपनी इच्छाये जाहिर की थीं, तथापि उन्होंने अपने विचार को परिवर्तित नहीं किया । मणिमाला भी पीछे नहीं हटी, और उसने अकेले ही उसको सम्पादित कर उन्हें निष्प्रभ कर दिया । अविनाश बाबू पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा, और धीरे-धीरे उनकी कठोरता मलिन होने लगी, परन्तु मणिमाला के स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ । वह वैसी ही हँसमुख किन्तु कठोर बनी रही ।

एक बार पुलिस ने जंगल में इनके दल को घेर लिया । दोनों ओर से गोलियों की बौछार होने लगी । पेंड़ों की आड़ से गोलियाँ चलाई जा रही थीं । मणि-माला उस बौछार की तनिक परवाह न करती हुई रीछ की छिप्रता से एक पेड़ पर चढ़ गई तथा वहाँ एक मोटी डाल की आड़ से वह गोलियाँ चलाने लगी । उसने अकेले पुलिस के एक दर्जन जवानों को धराशायी किया । पुलिस दल को प्राणरक्षा के लिये मैदान छोड़ना पड़ा। अविनाश बाबू के दल की विजय हुई उनका एक भी साथी नहीं मरा—चार पाँच घायल अवश्य हुए । वह अपने साथियों के साथ चम्बल घाटी के गुह्य स्थानों में छिपने के लिये चले गये । साथियों ने मणिमाला की प्रशंसा के पुल बाँध दिये, किन्तु अविनाश बाबू ने उसकी प्रशंसा में एक शब्द नहीं कहा । वह केवल गम्भीर तथा मौन रहे ।

एक बार अविनाश बाबू एक दूसरी मुठभेड़ में घायल हो गये । गोली

उनकी दाहिनी भुजा में लगी, वह बाएँ हाथ से पिस्तौल चलाने लगे। दुश्मन ने उनके इस दूसरे हाथ पर निशाना साधा, तथा उसे भी बेकार कर दिया। वह भूमि पर गिर पड़े, किन्तु मणिमाला ने उनका स्थान ग्रहण कर अपनी अचूक गोलियों से उन्हें यमलोक भेजने लगी। क्षणमात्र में पुलिस के जवान भागते नजर आये, परन्तु मणिमाला ने उनका पीछा किया, तथा किसी को भी जीवित नहीं जाने दिया। उसने वापस आकर अविनाश बाबू को संभाला। वह बेहोश पड़े थे। उनको उठा कर ले भागने की समस्या थी, क्योंकि वह किसी एक व्यक्ति के द्वारा उठाकर ले जाए नहीं जा सकते थे। मणिमाला ने उनके कान के समीप अपना मुँह ले जाकर कहा—"उठिये, जल्दी उठिये। पुलिस आ रही है।" न-मालूम कैसे इसका प्रभाव पड़ा। अविनाश बाबू ने आँखें खोल दीं और मणिमाला को अपने ऊपर झुके हुए देख कर पुनः बन्द कर लीं। मणिमाला ने उठते हुए कहा—"यह होश में आ गये हैं, अब आप लोग इन्हें परिस्थिति से परिचित करें। मेरा समीप्य इन्हें पसन्द नहीं।" उसका कंठस्वर यद्यपि शान्त था, तथापि वेदना उसके नेत्रों से झांक रही थी। अविनाश बाबू थोड़ी देर बाद उठ खड़े हुए और अपने साथियों के साथ भाग निकले। वे सब एक दूसरे सुरक्षित स्थान पर चले गये।

वहाँ पहुँच कर अविनाश बाबू की चिकित्सा का प्रश्न उपस्थित हुआ। चिकित्सा का भार मणिमाला पर था, क्योंकि वह उस दल की डाक्टर थी। उसने उनकी गोलियाँ निकालीं और सेवा करने लगी। चिकित्सा-काल में कोई किसी से बोलता नहीं था, और अविनाश बाबू सदैव दूसरी ओर देखा करते थे। एक दिन घाव धोते हुए मणिमाला ने कहा —' नायक, घाव आपका लगभग भर गया है, और यदि ऐसी ही गति रही, तो दो-तीन दिन में आप बिल्कुल अच्छे हो जायँगे। किन्तु शायद आपका हाथ अपनी पुरानी शक्ति प्राप्त नहीं कर सकेगा।" अविनाश ने कोई उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर बाद सहसा अविनाश बाबू ने कहा—"मेरी रक्षा तुमने की है, मैं इसके लिए सदैव तुम्हारा कृतज्ञ रहूँगा।" मणिमाला ने शुष्क स्वर में उत्तर दिया—"मैंने केवल अपना कर्त्तव्य पालन किया है, आपकी कृतज्ञता प्राप्त करने के लिये नहीं किया।"

अविनाश बाबू ने उसकी ओर देखा। मणिमाला दूसरी ओर देख रही थी, किन्तु उसके नेत्र घुचघुचाये हुये थे। अविनाश बाबू ने दूसरे हाथ से उसका हाथ पकड़ने की चेष्टा की, परन्तु मणिमाला ने उसे झिड़क दिया, तथा उठकर चली गई। उसने एक दूसरे साथी को पट्टी बाँधने के लिए भेज दिया।

उस दिन से अविनाश बाबू चिन्तित रहने लगे, और मणिमाला उनसे दूर-दूर भागने लगी। एक दिन अर्ध रात्रि में जब सब सो गये थे और अविनाश बाबू करवटें बदल रहे थे कि मणिमाला पहरा देती हुई उनके समीप से निकली। अविनाश बाबू ने उसे धीमे कंठ से बुलाया। उसने समझा कि शायद उन्हें किसी बात की आवश्यकता है। वह आकर उनके समीप खड़ी हो गई। अविनाश बाबू ने कुछ कहने के लिये संकेत किया। वह झुक कर उनके मुख के समीप अपना कान ले गई। ऐसा करने में उसके शुष्क बालों की एक लट उनके मुख पर गिर पड़ी। अविनाश बाबू ने उसे अपने दाँतों से दबा लिया। मणिमाला ने झिड़कते हुए कहा—"यह क्या बदतमीज़ी है, नायक!"

अविनाश बाबू ने उसकी साड़ी का पल्ला पकड़ते हुये कहा—"जब तक तुम मुझे क्षमा नहीं करती, तब तक मुझे आन्तरिक शान्ति नहीं मिलेगी।"

"मैं नहीं जानती कि आपको किस बात के लिए क्षमा करूँ। आपने मेरे साथ कोई अन्याय नहीं किया है।"

"तुम नहीं जानती, किन्तु मैंने किया है। मैं अपने को तुम्हारे मोहजाल से मुक्त होने के लिये जितनी तुम्हारी प्रतारणा करता था, उतना ही तुम मेरे समीप आती रहीं। मैं समझता था कि मैं अजेय हूँ, परन्तु वह मेरा गर्व भंग हुआ, और ....।"

"नायक, अपना निजत्व न भूलें, और मुझे अपना कर्त्तव्य करने दें।" मणिमाला ने कुछ रुष्ट होते हुये कन्ठ से कहा।

"देवी, तुम भी अपने को छलने का प्रयत्न मेरी भाँति न करो। मैं जानता हूँ कि तुम मुझे अपने प्राणों से अधिक चाहती हो।"

"दल की सदस्या होने के नाते, मैंने सदैव वही किया, जो मुझे करना आवश्यक था। मैं न किसी को छलती हूँ, और न अपने को ही धोखा देती हूँ।

दल के सदस्यों को प्रेम करना वर्जित है, क्या आपही इस नियम को भंग करेंगे !"

"हाँ, मैं इस दल की सदस्यता त्याग दूँगा। मेरा यहाँ से अन्यत्र चले जाना उचित है, यदि तुम मुझे ...... ।"

मणिमाला इस प्रकार यकायक बैठ गई, जैसे वह किसी भार को संभालने में असमर्थ हो। उसने कुछ देर तक सोचने के पश्चात् कहा—"आप क्यों जांय, मैं ही चली जाऊंगी। आपके जाने से दल निर्वीर्य हो जायगा, और देश की हानि होगी।"

"नहीं मुझे ही त्यागना चाहिए, क्योंकि मैं अपने मन पर कावू नहीं रख सका।"

"किन्तु आपके जाने के पश्चात् शायद मैं भी इस दल में नहीं रह सकूंगी। अभी आपकी शासन दृढ़ता मेरी नारी भावनाओं को रोके हुए है। आपके जाने के पश्चात् वे किस ओर प्रवाहित होंगी, नहीं जानती !"

"तब क्या हम तुम दोनों साथ नहीं रह सकते ?"

"केवल विवाहित होकर, परन्तु दल में रहते यह असम्भव है।"

"यदि तुम्हारी सम्मति हो तो मैं दल के समक्ष इस प्रश्न को उपस्थित करूँ।"

"कीजियेगा, किन्तु मेरे सामने नहीं।" यह कह कर वह अपना हाथ छुड़ा कर भाग गई। दूसरे दिन मणिमाला से विवाह करने का प्रश्न अविनाश बावू ने दल के समक्ष उपस्थित किया। सदस्यों ने इसे एकमत से स्वीकार किया, और एक दिन उनका विवाह हो गया। मणिमाला उस दिन से दीदी के स्थान पर भाभी बन गई।"

उसी प्रवासकाल में मणिमाला के दो यमज पुत्र-सन्तानें हुईं, जिनके क्रमश: नाम विनोद तथा यशोधर रक्खे गये। वह उनका पालन पोषण करने के लिए बनारस चली गई, जहाँ उसके रहने का प्रबन्ध एक अत्यन्त गोपनीय स्थान में अविनाश बावू के पिता ने गायत्री के माध्यम से कर दिया।

इसी प्रकार दिन बीतते गये, और सन् १६४२ की क्रान्ति आई। देश में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आयोजन तथा आन्दोलन होने लगे। अविनाश बावू के

दल ने खुल कर उसमें भाग लिया, परन्तु जब वह सरकार की तत्परता से कुछ काल के लिए दब गया, तब अविनाश बाबू पुनः जंगलों में छिप गये।

घटनायें समय के पर्दे पर बड़ी तेजी से बदल रही थीं, और अन्त में १९४७ में स्वतन्त्रता हस्तगत होने पर अविनाश बाबू प्रकट होकर अपने परिवार के साथ वाराणसी में रहने लगे। उस समय मणिमाला के दोनों पुत्रों की आयु बारह-बारह वर्ष थी। स्वतन्त्रता प्राप्त होने के एक साल पश्चात् उनके पिता का देहान्त हो गया, और गृहस्थी संचालन का भार उस पर आ गया।

४

अविनाश बाबू की फुफेरी बहिन गायत्री का विवाह वाराणसी में हुआ था, और उनके भूम्यंतर्गत हो जाने के पश्चात् वही रायबहादुर गयाप्रसाद की गृहस्थी का संचालन करती थी। रायबहादुर का स्वभाव बड़ा स्नेहपूर्ण और सरल था, जिससे वह अपने माता पिता का अभाव कभी अनुभव नहीं कर सकी। व्यापारी होने के कारण उन्हें द्वितीय महायुद्ध में बहुत लाभ हुआ था, और सटोरिया होने से उनकी सम्पत्ति में आशातीत वृद्धि हुई थी। चाँदी के सट्टे का बाज़ार उनकी खरीद फरोख्त से प्रभावित होता था, और प्रायः साधारण बाज़ार भाव में चार आने की बढ़ोत्तरी घटोत्तरी उनके क्रय-विक्रय में होती थी। वह नगर के भाग्यवान पुरुषों में गिने जाते थे, क्योंकि सट्टा बाज़ार में जहाँ लोग हानि उठाते देखे जाते, वहाँ रायबहादुर बहुत कम हारते पाये गये, अधिकतर वह जीतते ही थे। जनश्रुति थी कि रायबहादुर ने लड़का खो कर लक्ष्मी पाई है, और गायत्री उसी का अवतार है। गायत्री का रूप-रंग भी देवी के अनुरूप था, तथा गुणों में भी वह उन्हीं के सदृश थी। गायत्री की सेवा के सम्मुख रायबहादुर बहुत कुछ अविनाश बाबू का अभाव भूल-से गए थे।

विवाह हो जाने के बाद भी गायत्री अधिकतर रायबहादुर के यहाँ रहती थी, क्योंकि वह उसे अपने से दूर नहीं रख सकते थे। आने-जाने की सुगमता के विचार से उसका विवाह अपने ही नगर में किया था। गायत्री के पति श्यामसुन्दर भी एक धनी पिता की सन्तान थे, और वह रायबहादुर को पिता तुल्य मान कर उनकी इच्छा का यथारीति पालन करते थे। मणिमाला ने विवाह के पश्चात् सन्तान प्रसव के लिये इन्हीं श्याम सुन्दर के यहाँ आकर आश्रय लिया था, यद्यपि अविनाश बाबू की इच्छा थी कि उसके रहने का प्रबन्ध अन्यत्र हो। गायत्री ने इस विचार को तनिक भी पसन्द न किया, और बहुत बड़ा खतरा उठाते हुए भी वह अपने विचारों से नहीं डिगी। मणिमाला का परिचय बंगाल प्रवासी रिश्तेदार के रूप में दिया गया, और उसके पति के सम्बन्ध में यह प्रचारित किया गया कि वह शिक्षा-प्राप्ति के लिये विदेश गए हैं।

गायत्री उस समय निस्सन्तान थी। मणिमाला के दो पुत्र होने से उनके पालन-पोषण में उसे कुछ असुविधा होती थी, इसलिए उसने एक का भार स्वयं उठा लिया। वह उसे अपने साथ रायबहादुर के घर ले आई। पौत्र को पाकर रायबहादुर के हृदय की स्फूर्ति कुछ जाग्रत् हुई। सदैव उसको अपने पास रखने के लिए उन्होंने उसके गोद लेने की घोषणा की, और इस सम्बन्ध का एक बड़ा समारोह भी किया, जिसमें मणिमाला भी सम्मिलित हुई थी। जिस पुत्र को उन्होंने गोद लिया था उसका नाम उन्होंने विनोद रखा, वह कुछ घंटे दूसरे पुत्र यशोधर से बड़ा था। यशोधर का पालन-पोषण मणिमाला करने लगी।

अविनाश बाबू के दोनों पुत्र आकृति में अपने पिता के समान हृष्ट-पुष्ट और तेजस्वी थे, जो रायबहादुर को अविनाश बाबू के बचपन की याद दिलाते थे। वह विनोद को कभी आँखों से ओझल नहीं होने देते थे, यहाँ तक कि वह उसे अपने साथ सुलाते थे, इससे विनोद भी उनके इतना हिल-लगा बन गया था कि वह पल भर की जुदाई सहन नहीं करता था। पितामह और पौत्र की इस घनिष्टता को देख कर जब गायत्री कहती कि इस प्रकार के लाड़ प्यार से वह पढ़-लिख नहीं सकेगा, तब वह कहते कि इसके बाप को जो इतना पढ़ाया

लिखाया उसी का नतीजा है कि वह जंगलों की खाक छानता फिरता है।

किन्तु गायत्री इस ओर से उदासीन न रही। उसने यथारूप विनोद का शिक्षा-प्रबन्ध मणिमाला की सम्मति से किया और जो शिक्षक मणिमाला के दूसरे पुत्र यशोधर को पढ़ाने जाते थे ,वही विनोद को भी पढ़ाने लगे। शिक्षक महाशय अपने दोनों छात्रों की अनुरूपता देखकर आश्चर्य करते, किन्तु वास्तविकता वह कभी न जान पाये। एक दिन बातों ही बातों में शिक्षक महाशय ने गायत्री से इस विचित्र अनुरूपता की बात चलाई, और कहा कि उनके दोनों छात्रों में इतना सादृश्य है, जितना जुड़वाँ लड़कों में हुआ करता है। गायत्री जोर से हँस पड़ी और बोली "मास्टर साहब, यह काशी है --बाबा विश्वनाथ की नगरी, यहाँ ऐसी विचित्रतायें हुआ ही करती हैं।" नहीं कह सकते कि शिक्षक को गायत्री के इस उत्तर से सन्तोष हुआ या नहीं, परन्तु फिर कभी उन्होंने इस विषय पर चर्चा नहीं चलाई।

ब्रिटिश राज्य काल में रायबहादुर गंगाप्रसाद ने अपनी सब सम्पत्ति–अचल तथा चल-विनोद के नाम लिख दी थी और उनकी नाबालगी तक गायत्री को पूर्ण अधिकारों से युक्त कर उसका अभिभावक बनाया था, परन्तु स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् जब अविनाश बाबू प्रकट रूप से उनके साथ रहने लगे, उन्होंने उस दान-पत्र को खण्डित कर दिया तथा सब अधिकार उनको पुनः प्रदान कर दिया। यह परिवर्तन उन्होंने गायत्री के परामर्श से किया था, यद्यपि अविनाश बाबू इसकी कोई आवश्यकता अनुभव नहीं करते थे।

जिस वर्ष रायबहादुर गंगाप्रसाद की मृत्यु हुई, उसके दो वर्ष बाद गायत्री के एक पुत्र पैदा हुआ। लोगों ने कहा कि रायबहादुर ने पुनर्जन्म लिया है। सारनाथ के बिहार में रहने वाले एक बौद्ध भिक्षु का आना-जाना रायबहादुर के परिवार में था। वह उसका बहुत आदर तथा सत्कार करते थे, क्योंकि उसने कई बार अपनी भविष्यवाणियों से चाँदी के भावों की चढ़ा-उतरी की सूचनायें दी थीं, और संयोग से वे इतनी खरी उतरी थी कि रायबहादुर को आशातीत लाभ हुआ था। इन बौद्ध भिक्षुक का नाम था भदंत नागार्जुन। गायत्री का भी अविचल विश्वास उन पर था। उन्होंने ही

यह घोषणा की थी कि गायत्री की कोख से रायबहादुर ने पुनर्जन्म लिया है, और चाहे किसी को विश्वास हुआ हो या न हुआ हो किन्तु गायत्री ने इसे कुछ धूमिल सत्य माना। अविनाश बाबू कभी धार्मिक पचड़ों में न पड़ते थे, और वह धर्म को पूँजीपतियों का प्रचार-अस्त्र मानते थे। जब गायत्री के पुत्र के विषय में सुना कि वह उनके पिता का दूसरा अवतार घोषित हुआ है तब वह उसे गोद में उठा कर हँसते हुए बोले–"कहिये पिताजी, आप की सेवा किस प्रकार की जाय ?" फिर गायत्री को देते हुए कहा –"तेरा पालन-पोषण तो बाबू जी ने किया था, अब बदले में तू उनका कर । मैं तो इसे अपना भांजा ही मानूँगा, पिता नहीं।"

मणिमाला ने मुस्कराते हुए कहा था––"मुझे अपने श्वसुर की सेवा का अवसर नहीं मिला, इससे वह अपना प्राप्य लेने के लिए भांजे के रूप में आये हैं। मैं तो इस को उसी रूप में देखूँगी।"

भदंत नागार्जुन ने इस बालक का नाम रखा –आनन्द, जो भगवान बुद्ध के पट्ट शिष्य का नाम था। आनन्द की चेष्टायें भी ऐसी थीं, जिससे हृदय में स्वत: आनन्द का स्रोत उमड़ता था। उसके नेत्रों से अपूर्व ज्योति निकलती थी, जो अन्य बालकों से उसे स्पष्टत: पृथक् करती थी। उसका विशाल भाल, उसके भगवान होने की सूचना देता था। उसकी पीठ पर गर्दन के नीचे एक त्रिशूल के आकार का चिन्ह था, जिसको देख कर बडे-बड़े शरीर-वैज्ञानिक चकित होते और उनको आकस्मिक घटना कह कर टाल देते थे, परंतु भदंत नागार्जुन उसको दैवी कारण बताते थे। उनका कहना था कि यह बालक दैवी प्रतिभा से सम्पन्न होगा, और अपने जीवन में अनेक चमत्कारिक कृत्य करेगा। किसी अन्य को विश्वास भले न हुआ हो, परन्तु गायत्री माँ थी, उसको अवश्य विश्वास हुआ और वह बड़ी उत्कण्ठा से उस दिन की प्रतीक्षा करने लगी, जब उसकी भविष्यवाणी सट्टा बाजार के भावों की घटा बढ़ी की भाँति सत्य प्रमाणित होगी।

आनन्द में एक विशेषता तो बहुत शीघ्र देखी गई—वह यह कि वह कभी रोता न था। वह सदैव प्रसन्नचित्त रहता, यहाँ तक कि नहलाने-धुलाने में

भी वह रोता न था, जहाँ दूसरे बालक प्राय: रोते हैं। वह हमेशा अपने हाथ पैरों को चलाते हुए खेला करता था, केवल उस समय उसका यह व्यायाम बन्द होता जब वह निद्रा में निमग्न होता। उसकी हँसी बड़ी मन लुभाने वाली थी, और जब वह किलकता हुआ अपने हाथों में गायत्री की एक लट पकड़ लेता, तब यह हर्ष विभोर हो जाती, तथा उसके अरुण कपोलों पर वात्सल्य से स्निग्ध अनेक चुम्बन बार-बार अंकित करने लगती थी।

गायत्री के कारण भदन्त नागार्जुन का आना जाना बन्द नहीं हुआ था। वह प्रत्येक पूर्णिमा को अवश्य उसके हाथ का बना भोजन करने आते थे। यह दस्तूर रायबहादुर के समय से चला आ रहा था तथा अविनाश बाबू ने धार्मिक भावनाओं से दूर रहते हुये भी इसको बन्द नहीं किया था। वह प्राय: धर्म का उपहास करने के लिए उनसे बहस करते तथा धार्मिक विश्वासों का खंडन करते थे। भदंत नागार्जुन उनकी कटु आलोचनाओं का बड़ी सरल भाषा में उत्तर देते तथा कभी रुष्ट नहीं होते थे। उन दोनों के धार्मिक वाद-विवाद को यशोधर प्राय: सुना करता था, इससे बौद्ध धर्म की ओर उसका रुझान होने लगा। वह कभी-कभी सारनाथ जाकर बौद्ध भदंतों के साथ धार्मिक चर्चाओं में भाग लेने लगा। भदंत नागार्जुन का वह शीघ्र ही कृपा-भाजन बन गया। वह भी उसे बौद्ध धर्म की पुस्तकों का अध्ययन कराने लगे।

अविनाश बाबू के दोनों पुत्र अत्यन्त मेधावी, और कुशाग्रबुद्धि वाले थे। विनोद ने अपने पिता के गुणों को अपनाया था, और यशोधर पर मणिमाला की छाप थी। विनोद के स्वभाव पर अविनाश बाबू के राजनीतिक विचारों का प्रभाव पड़ा था और यशोधर ने अपने पिता की घुमक्कड़ वृत्ति पाई थी। वह सदैव देशाटन के स्वप्न देखा करता था। जब भदंत नागार्जुन उससे धार्मिक चर्चायें करते हुए तिब्बत के लामाओं का वर्णन करते, तब उसके मन में वहाँ जाकर उनका सत्संग करने की कामना बलवती हो उठती। भदंत नागार्जुन सदैव उसके इन विचार को प्रोत्साहित करते थे, यद्यपि इसकी कानोकान खबर उसके माता-पिता को न हुई और न गायत्री ही इस विषय में कुछ जान सकी। भदंत की यह चेष्टा थी कि यशोधर बौद्ध धर्म की दीक्षा लेकर बौद्ध भिक्षु

बने। तिब्बत के लामाओं की कथायें, उस रहस्मय देश की जनश्रुतियाँ, वह नमक मिर्च लगाकर उसे सुनाते थे, जिससे वहाँ जाने की उसकी अभिलाषा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी।

विनोद का अनुराग राजनीति की ओर था। हिन्दू विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करते हुए वह राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लेता था और उसकी अभिरुचि साम्यवाद की ओर थी। लेनिन तथा ऐन्जिल के सिद्धान्तों से वह बहुत प्रभावित हुआ था, तथा वह शनैः शनैः एक उग्र कम्युनिस्ट बन रहा था। नगर की कम्यूनिस्ट पार्टी में उसने सक्रिय भाग लेना आरम्भ किया और धीरे-धीरे उसने उसका नेतृत्व भी प्राप्त कर लिया। चीन में जिस प्रकार कम्यूनिज्म विजयी हुआ था, वह उसी प्रणाली का अनुकरण भारत में भी करना चाहता था। वह प्रजातंत्र प्रणाली को पूँजीवाद का ही एक बदला स्वरूप मानता था, तथा उसकी कटु आलोचना समय-असमय किया ही करता था। वह किसी धर्म को नहीं मानता था, और अपने पिता की भाँति उन्हें पूँजीवादियों का एक परम शक्तिशाली अस्त्र घोषित करता था। उसका मत था कि धार्मिक विचार केवल पुरुषों को जड़ तथा निर्जीव बनाकर परमुखापेक्षी बनाते हैं और मानव की क्रियाशीलता को पँगु तथा उसकी साहस-शक्ति पर कुठाराघात करते हैं।

गायत्री आजकल अपने घर में विशेष रूप से रहने लगी थी, क्योंकि उसके सास-श्वसुर की मृत्यु हो जाने से गृहस्थी के संचालन का भार उसी पर आ गया था। किन्तु शायद ही ऐसा कोई दिन जाता हो, जब मणिमाला और गायत्री एक दूसरे के घर जाकर न मिलती हों। इन दोनों पुत्रों के जन्म के पश्चात् मणिमाला के कोई दूसरी संतान न हुई थी, इसलिए उसके वात्सल्य की सरस धारा आनन्द की ओर प्रवाहित होने लगी थी। मणिमाला और गायत्री दोनों एक दूसरे से अटूट स्नेह-बन्धनों में बँधी हुई थीं, और दोनों एक दूसरे को देखे बिना नहीं रह सकती थीं। आनन्द उनके बीच जोड़ने वाली एक कड़ी के सदृश था, और वह दोनों का प्यार-दुलार पाकर उत्तरोत्तर बढ़ रहा था। वह कभी गायत्री के पास रहता, तो कभी मणिमाला के पास। उसको भी दोनों समान रूप से प्यारी थीं, और किसी की भी अनुपस्थिति से उसे

अनख नहीं होती थी ।

अविनाश बाबू ने राजनीति से एक प्रकार से अवकाश ले लिया था। कांग्रेस की रीति-नीति से न उन्हें कभी आस्था थी, और न अब उत्पन्न हुई। उनके बहुत साथी अन्यान्य दलों में सम्मिलित हो गये थे, उनमें से अधिकांश कम्यूनिस्ट विचारधारा के अनुयायी थे। उनकी पटरी कभी कांग्रेस दल से न बैठी, और उसकी शासन-प्रणाली में उन्हें कोई स्थान नहीं मिला। उनका मत था कि ब्रिटेन के सत्ता-हस्तान्तरण से देश को कोई वास्तविक लाभ नहीं पहुँचा। जनता क्रान्ति का मर्म ही न जान पाई, और न कभी उसको उसके मूल्य को समझने का अवसर मिला। सत्ता के हस्तान्तरण से शासन के ढाँचे में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, और यदि कोई बात हुई हैं तो वह यह कि गोरों के स्थान पर काले, विदेशियों के स्थान पर स्वदेशी, जम गये जो अधिक निरंकुश तथा स्वार्थी हैं। उनका मत था कि जब तक शासन में आमूल परिवर्तन नहीं होगा, तब तक देश में कोई उन्नति नहीं हो सकती। वह केवल निहित स्वार्थों की लड़ाई का अखाड़ा बना रहेगा। वह रूस और चीन की भाँति भ्रष्टाचार को तलवार के जोर से मिटाने के पक्षपाती थे और शनैः शनैः हृदय-परिवर्तन की प्रणाली पर उनका विश्वान नहीं था। उनका कहना था कि शासन को एक व्यवस्थित क्रान्तिकारी योजना के अनुसार जमाने के लिए आवश्यक है कि अवाँछनीय तत्व उसमें न घुसने पायें, तथा उनको किसी प्रकार न पनपने दिया जाए।

इसके विपरीत मणिमाला कांग्रेसी विचारधारा की थी। जब उसे पार्लियामेंट की सदस्यता के लिए कांग्रेस ने टिकट दिया, तब अविनाश बाबू की इच्छा थी कि वह उसे उसी भाँति अस्वीकार कर देवे, जिस भाँति उन्होंने इनकार कर दिया था, परन्तु मणिमाला सहमत नहीं हुई। अविनाश बाबू ने फिर कोई अड़ंगा नहीं लगाया तथा उस ओर से उदासीन हो गये। मणिमाला अपने विरोधी प्रत्याशियों को बहुमत से पराजित कर संसत्सदस्या निर्वाचित हो गई। नहीं जानते कि उसकी इस विजय से अविनाश बाबू को सन्तोष हुआ या नहीं। परन्तु उसकी विजय उनके बीच कोई कटुता नहीं उत्पन्न कर सकी, इतना

तो प्रत्यक्ष ही था। उनका दाम्पत्य जीवन पारस्परिक सरसता और सहयोग से उत्तरोत्तर मधुर बन रहा था। दोनों कभी राजनीतिक समस्याओं पर आलाप नहीं करते थे। वे अपने मनोनीत मार्गों पर पृथक्-पृथक चले जा रहे थे। उनका घर उस पर्वत की भाँति था जहाँ से नदियाँ निकल कर भिन्न-भिन्न दिशाओं में बहती हैं, किन्तु उसे उनकी दिशाओं की भिन्नता से मतलब न होते हुए समान रूप से सबको अपना जलदान कर उन्हें सम्पन्न बनाता है।

५

मणिमाला अपने कमरे में बैठी एक पुस्तक पढ़ रही थी। गायत्री ने बड़ी घबड़ाहट के साथ प्रवेश करते हुए कहा—"भाभी, तुम यहाँ निश्चिन्त बैठी पुस्तक पढ़ रही हो और जानती हो, सारनाथ में क्या हो रहा है?"

मणिमाला ने अपने सहज स्वर में उत्तर दिया—"हाँ जानती क्यों नहीं? वहाँ भगवान बुद्ध की ढाई हजारवीं जयन्ती मनाई जा रही है। इसमें न जानने की क्या बात है?"

"वह तो दुनियाँ जानती है, परन्तु क्या जानती हो कि यशोधर बौद्ध-धर्म की दीक्षा ले रहा है।"

"हाँ, यह भी जानती हूँ। वह मेरी अनुमति लेकर गया है।"

गायत्री अवाक् होकर उसका मुख निहारने लगी। उसने अत्यन्त विस्मित स्वर में पूछा—"वह तुम से अनुमति लेकर गया है, और तुमने अनुमति देदी?"

"हाँ दीदी।"

"तुम कैसी माँ हो। तुम्हारा कलेजा क्या पत्थर का है?"

"पत्थर का नहीं, मनुष्य का है, परन्तु कर्त्तव्य की कठोरता ने उसे ऐसा बना दिया है?"

"क्या तुम्हारा यह कर्त्तव्य था कि तुम उसे कुराह जाने दो ?"

"दीदी, बौद्ध भिक्षु होना क्या कुराह में जाना है ?"

"हमारे लिए तो यह उससे भी अधिक भयंकर है। कैसे कोई माँ अपनी सन्तान को अग्नि में प्रवेश करने की आज्ञा दे सकती है !"

"अग्नि में प्रवेश करना और बौद्ध-सन्यासी होना एक समान तो नहीं है, उन दोनों में वस्तुत: आकाश-पाताल का अन्तर है ?"

"कैसे ?"

"एक नाश करता है, और दूसरा निर्वाण प्राप्त कराता है ?"

"परन्तु क्या उसकी यह अवस्था निर्वाण प्राप्त करने की है ?"

"अवस्था से कोई अन्तर नहीं पड़ता। भगवान बुद्ध भी तो अपने यौवन में ही संसार-विरागी हुए थे। उन्होंने तो स्त्री-पुत्र, राज्य-ऐश्वर्य, सब त्याग दिया था ! मोह हो जाने से त्याग करना कठिन होता है, परन्तु साँसारिक प्रलोभनों में फंसे बिना उनको त्याग देना आसान है।"

"क्या भैया ने भी अनुमति दे दी है ?"

"वह धर्म पर विश्वास नहीं करते।"

"किन्तु मैं पूछती हूँ कि क्या उन्होंने यशोधर को बौद्ध भिक्षु हो जाने की आज्ञा प्रदान कर दी है ?" गायत्री के कंठ-स्वर में खिन्नता और क्रोध का आभास था।

"मैं नहीं जानती। यशोधर से पूछने पर मालूम होगा, या फिर तुम ही अपने भैया से पूछ आओ।"

"तुमने क्या यह बात भैया से नहीं कही ?"

"मैं क्यों कहती ! आज्ञा लेना यशोधर का काम था। उसने मुझसे कहा—'माँ, मैं बौद्ध-सन्यासी होना चाहता हूँ।' मैंने उससे पूछा—'क्या तुम उस जीवन की कठोरता से अवगत हो।' उसने उत्तर दिया—हाँ।' मैंने फिर पूछा—'क्या तुम अपनी आन्तरिक प्रेरणा से ऐसा कठोर व्रत लेने जा रहे हो।' उसने उत्तर दिया—'हाँ। मैंने इस प्रश्न पर महीनों विचार किया है। मेरा अन्त:करण मुझे बार-बार प्रेरित कर रहा है कि मैं बौद्ध-भिक्षु बन कर संसार में

शान्ति स्थापित कराने का प्रयत्न करूँ । मैं शान्ति का दूत बनकर उसका सन्देश घर-घर प्रचारित करना चाहता हूँ । भगवान बुद्ध की वाणी व्यापक बनाने से संसार युद्धों की कलुष-छाया से मुक्त हो सकता है ।' मेरे पास कोई तर्क उसको रोकने का नहीं था । मैंने उसे अनुमति दे दी । दीदी, इस जमाने में यही बहुत हुआ जो उसने मुझसे आज्ञा माँगी । भला आजकल की सन्तानें क्या आज्ञा माँगती हैं—मैंने कौन अपने माता-पिता से क्रान्तिकारियों में दीक्षित होने की आज्ञा माँगी थी, और तुम्हारे भैया ही कब अपने पिता से पूछ कर उस दल में सम्मिलित हुए थे ! दीदी सभी अपनी आन्तरिक प्रेरणा से संचालित होते है ।"

गायत्री विस्मय से उसका मुख निहारने लगी । उसे कोई उत्तर न सूझा ।

मणिमाला पुनः कहने लगी—"पुत्र जब तक वयस्क नहीं हो जाता, तब तक माता-पिता का दायित्व रहता है, परन्तु वह जब वयस्कता प्राप्त कर लेता है, तब वह अपना मार्ग ढूढ़ने के लिए स्वतन्त्र है । मनुष्य एक स्वतन्त्र प्राणी है, उस पर किसी प्रकार का दबाव डालना अनुचित है । हाँ, सुमार्ग और कुमार्ग का अवश्य ध्यान रखना चाहिए । यदि वह वयस्क होने पर कुमार्ग की ओर जाता है, तब नियन्त्रण का प्रश्न उपस्थित होता है, अन्यथा नहीं ।

"तुम्हारे विचार से इस अल्प अवस्था में सन्यासी होना सुमार्ग है "

"उसका उद्देश्य, जिसके लिए वह इस कठिन मार्ग को अपना रहा है, अवश्य सत् है, अतएव उसमें अपनी ओर से रुकावट पैदा करना अनुचित है । पशु-पक्षी, अर्थात् मनुष्य के अतिरिक्त प्रकृति के सभी प्राणी, अपनी सन्तान के कार्यों का संचालन तभी तक करते हैं, जब तक वे अपने पैरों पर खड़े नहीं होते । जहाँ वे आत्म-निर्भर हो गए, वहाँ उनके माता-पिता स्वेच्छा से विचरने देते हैं । ममत्व और मोह का अतिरेक ही मनुष्य को सहज प्रकृति के विरुद्ध कार्य के लिये उद्यत करता है ।"

"भाभी, अन्य प्राणियों और मनुष्यों में बड़ा भेद है । उनमें बुद्धि और ज्ञान अन्य प्राणियों से अधिक होता है । मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । किन्तु दूसरे प्राणियों का कोई समाज नहीं होता । समाज मनुष्य को स्वेच्छाचारी

होने की आज्ञा नहीं देता, उसे वह कर्त्तव्यों के बन्धनों से बाँधता है। उसका एकाकी अस्तित्व न होने से वह स्वतन्त्र नहीं है।"

'मैं इसके विपरीत कब उसकी स्वतन्त्रता का समर्थन करता हूँ। तुम बताओ कि यशोधर के सन्यासी हो जाने से किस सामाजिक बन्धन की उपेक्षा हुई ? वह तो समाज की सेवा के लिए इस कठोर दुष्कर मार्ग में जा रहा है। समाज इस समय विशृंखल है, युद्ध की लिप्सा से पागल—युद्ध समाज की शृंखला को छिन्न-भिन्न करते हैं, उनको मिटाने के प्रयास में ही उसने यह कठोर व्रत लिया हैं। उसका यह व्रत किस प्रकार समाज-विरोधी है, दीदी !"

"परन्तु ····।"

"तुम्हारे विचार से सांसारिक सुखों का भोग ही समाज सेवा है। विवाह करना, सन्तान उत्पन्न करना, और रोते-खीझते मर जाना ही यथेष्ट है। क्या इतना ही उसका कर्त्तव्य समाज के प्रति है ? परन्तु दीदी, यह सत्य नहीं है। समाज में शान्ति और सुव्यवस्था देना, उसकी युयुत्सिक भावनाओं को उपदेश और आग्रह से नष्ट करना क्या समाज के सिद्धान्तों के विपरीत है ? तुम्हीं बताओ, समाज का हित इसमें है या उसमें ?"

"मैं तुमसे बहस नहीं करती—कर भी नहीं सकती, क्योंकि मुझमें तुम्हारी जैसी योग्यता नहीं है, परन्तु इतना कह सकती हूँ कि यशोधर का यह कार्य सामाजिक प्रथा के विपरीत है। माता-पिता के प्रति अन्याय है।"

"जहाँ तक उसकी माता का प्रश्न हैं, वह इसे अन्याय नहीं समझती, और उसके पिता इस ओर से सर्वथा उदासीन हैं। उसने हम दोनों के जीवन से प्रेरणा ग्रहण की है। हम दोनों देश की स्वतन्त्रता के लिए गृह-त्यागी हुए थे, और वह संसार की स्वतन्त्रता के लिए गृह-त्यागी हो रहा है। यदि वह कोई अन्य मार्ग ग्रहण करता तो मुझे कुछ वेदना होती, परन्तु उसने मेरे पदाँकों पर चल कर मुझे परम सन्तोष दिया है।"

इसी समय अविनाश बाबू ने प्रवेश किया। गायत्री ने उनको देखते ही कहा—"भैया, क्या तुमको मालूम है कि यशोधर सन्यासी हो रहा है ?"

"हाँ गायत्री, वह बौद्ध-भिक्षु हो गया है।"

"तुमने उसको आज्ञा दे दी ?"

"पिता की अपेक्षा माता को सन्तान पर अधिक अधिकार है। जब उसको माँ ने उसे अनुमति दे दी, तब पिता को देना ही पड़ेगा ?"

"तुम उसको आँखों से सन्यासी देख सकोगे ?"

"क्यों नहीं गायत्री ? उसको भिक्षु वेष में देखने के लिए किसी दूसरे की आँखें माँगने नहीं जाऊँगा।" यह कह कर वह हँसने लगे।

"भैया, तुम तो हँसते हो, और मेरा कलेजा विदीर्ण होता है। न मालूम तुम दोनों हाड़-माँस के बने आदमी हो, या पत्थर से बने हो। मेरा यशोधर सन्यासी बने, मैं यह बरदाश्त नहीं कर सकती।"

"इसी डर से उसने तुमसे आज्ञा नहीं ली। वह जानता था कि तुम बवंडर खड़ा करोगी, इसलिए वह तुम्हारे यहाँ नहीं गया।"

"इससे क्या हुआ, मैं अभी जाकर उसे लिवाए लाती हूँ।"

"गायत्री, उसको छेड़ना व्यर्थ है। उसको इस जीवन का परीक्षण करने दो। तुम्हारे लिए विनोद और आनन्द काफी हैं।"

"यहाँ कौन खाने की कमी थी, जिससे मेरा बेटा सन्यासी हो जाय। इस भदंत नागार्जुन को घर में घुसाकर हमारा बड़ा अहित हुआ है। इस झूठे सन्यासी ने मेरी पीठ में छुरा भोंका है। उसी के साथ यशोधर की घनिष्टता थी। उसी ने मेरे बेटे का दिमाग फिरा दिया है। लोग सच कहते हैं कि घर में सन्यासियों को न आने देना चाहिए। मैंने गुरुजनों का कहना नहीं माना, उसी का प्रतिफल मुझे मिला है।"

"गायत्री, धैर्य से काम लो। नागार्जुन नहीं भी आता, तब भी यशोधर बौद्ध-भिक्षु होता। यह सब किसी खास उद्देश्य से हो हो रहा है। वह क्या है, यह अभी नहीं बताया जा सकता। अपना अपना रास्ता खोज कर उस पर चलने के लिए प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है। उसने स्वेच्छा से इस मार्ग को वरण किया है। हम क्यों उसमें अड़चनें उपस्थित करें ? जब उसका जी ऊब जायगा, तब अपने आप आ जायेगा। मैं भी इसी भाँति इस घर से पिता को त्याग कर निकल गया था, और जब वह कार्य पूर्ण हो गया, मैं वापस घर आ गया। उसी

प्रकार वह भी एक दिन आ जायेगा। अभी वह अन्य बौद्धों के साथ तिब्बत और चीन जायगा। समाजवादी देशों के भ्रमण से उसको ज्ञान-लाभ होगा, और सम्भव है कि वहाँ की प्रणाली से शिक्षित होकर अपने देश में उसकी प्रतिष्ठा करे।"

"तुम दोनों निर्मम हो। मामा जी को, और मुझको तुमने जन्म भर कुढ़ाया, अब तुम्हारा यह लड़का भी उसी मार्ग पर चलकर मुझे कुढ़ायेगा।" यह कह कर गायत्री शीघ्रता से कमरे के बाहर चली गई। अविनाश बाबू उसे पुकारते ही रहे।

मणिमाला और अविनाश बाबू हँसने लगे।

मणिमाला बोली—"दीदी, अब कभी नागार्जुन जी को घर में नहीं घुसने देंगी।"

अविनाश बाबू नेभी जाते-जाते कहा—'गायत्री तो स्नेह, ममता, और अपनत्व की साकार प्रतिमा है। उसके हृदय को बड़ी ठेस लगी है। हम लोगों ने जीवन को एक खेल समझ कर खेला है, और इसने उसमें चिपक कर रहना जाना है।"

कहते-कहते वह उसके पीछे-पीछे चले गये। मणिमाला केवल अकेली उन समस्याओं पर विचार करने लगी।

६

चाऊ चिन की दूकान जयन्ती के उपलक्ष में चीनी कला के अनुसार सजाई गई थी। वहाँ कई दिनों से बड़ी धूम-धाम रहती थी, और जिस दिन उसकी कथित पुत्री ली-सुंग बौद्ध धर्म की दीक्षा लेकर भिक्षुणी बनी, उस दिन एक विशेष समारोह का प्रबन्ध किया गया। उसमें भारत-चीन मैत्री संघ के सदस्य

भी आमन्त्रित थे, और प्राय: सभी उसमें सम्मिलित हुए। वे बीच-बीच में 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' का भी नारा लगा कर पंचशील की शिला पर आधारित मैत्री के बन्धनों को दृढ़ता प्रदान कर रहे थे। बौद्ध भिक्षु तथा भिक्षुणियाँ भी भोज में आमन्त्रित थीं।

अर्धरात्रि के लगभग समारोह समाप्त हुआ। आमन्त्रित भिक्षु आदि सारनाथ वापस चले गए थे। उस समय दूकान बन्द करते हुए चाऊचिन ने चिनचुन से, उस आयोजन की मुख्य संचालिका थी, पूछा—"क्यों, आज का आयोजन कैसा रहा ?"

चिनचुन ने दूकान के भीतरी भाग की ओर जाते हुए उत्तर दिया—"ठीक है। दूकान बन्द करके आइये, फिर हम भविष्य का कार्य-क्रम बनाएं। मैं तब तकली के पास बैठती हूँ।"

ली-सूँग अपने कक्ष में बौद्ध सन्यासी 'हो-चीन' के साथ आलाप कर रही थी। चिनचुन को देख कर ली-सूँग ने कहा—"आओ बहिन, आज का समारोह तो बड़ा सफल रहा। लगभग दो हजार भारतीय इस छोटे आयोजन में आ गए !"

बौद्ध सन्यासी होचीन ने कहा—"हम लोग तुम्हारी सहायता से अवश्य उद्देश्य में सफल होंगे।"

चिनचुन ने चाय के लिए पानी की केटली बिजली के स्टोव पर चढ़ाते हुए कहा—"आज तो अभी यशोधर ही फँसा है। जब उसकी भाँति अन्य भारतीय युवक हमारे जाल में फँस जाय, तब सफलता का शब्द व्यवहार में लाना उचित है। एक प्रकार से यह श्री गणेश है, और यह सन्तोष की बात है कि वह निर्विघ्न हुआ है।"

ली-सूँग ने मुस्कराते हुये कहा—"भारतीयों को परास्त करना हमारे बाएँ हाथ का खेल है। तुम उसकी माँ-जगत-भाभी से मिली थी ! उसको कैसा पाया।"

"शुद्ध हृदय की भोली रमणी हैं। यद्यपि उनका जीवन भारत के क्रान्तिकारियों में बीता है, तथापि उनमें वह दूरदर्शिता नहीं है, जिसका मुझे भय

था। वह भी अन्य भारतीय रमणियों की भाँति गावदी हैं। मैंने लक्ष्य किया कि वह 'भाभी' सम्बोधन से बहुत प्रसन्न होती है।''

ली-सूँग ने हँसते हुए कहा –''उसी प्रकार उनका यशोधर भी बुद्धू है। इससे हमारा बड़ा काम निकलेगा। इसकी आड़ में हम अपना खेल बड़ी सुगमता से खेल सकेंगी। उसकी माँ यानी जगत-भाभी से हमें हमारी योजना को आगे बढ़ाने में बड़ी सहायता मिलेगी।''

''हाँ भारतीय पार्ल्यामेंट की वह सदस्य हैं, और शीघ्र ही वह मन्त्रि-मण्डल में ले ली जायगी। इसकी सूचना एक विश्वस्त सूत्र से हमें मिल गई है।'' होचिन ने कहा।

''तब तो हमारा कार्य और सुगम हो जायगा।'' ली-सूँग ने आशा प्रकट की।

इसी समय चाऊचिन दूकान बन्द कर वहाँ आ गया। लीं-सूँग के कथन को उसने सुन लिया था। उसने आते ही पूछा–''किस कार्य की सुगमता की बात हो रही है।''

''बैठिये। पहले चाय पी ली जाय तब आगे की योजना बनाई जावे।'' चिनचुन ने कहा। और वह काली चाय प्यालों में उड़ेलने लगी।

''धन्यवाद ! शरीर थक कर अकड़ गया है। चाय से स्फूर्ति आएगी, और हम साफ मस्तिष्क से विचार करने में सक्षम होंगे।''

चाय के प्याले उन सबों को देते हुए चिनचुन बोली—''यह ढाई हजारवीं बुद्ध जयन्ती ने हमारे कार्य को बड़ा सुगम बना दिया है।'

''यह क्यों नहीं कहती कि हम लोगों की यह योजना भी सफल हुई। भारत की शान्ति नीति से ही हमें यह सुयोग मिला है। वह पुन: संसार को बौद्ध बनाना चाहता है, और सम्राट अशोक महान की भाँति शान्ति का संदेश संसार में प्रचारित करने का स्वप्न देखता है।''

''तभी तो उसने उसी के राज्य चिन्ह को अपनाया है। वह सम्राट अशोक की भाँति मानवों के हृदयों पर अपना आधिपत्य जमाने की सोचता है।''

''हमारे शिष्ट मंडलों ने भी भाई-चारे को दृढ़ता प्रदान की है।''

"हाँ, आज हिन्द-चीनी मैत्री संघ के प्रायः सभी सदस्य उपस्थित थे। हमारा अनुमान हैं कि चीनी कुमारियों के भिक्षुणी होने से भारत बहुत प्रभावित हुआ है। स्थानीय समाचार पत्रों ने बड़ी प्रशंसा की है।"

"हमने चाल ही ऐसी चली है, जो कभी चूक नहीं सकती।" होचिन परम सन्तोष के साथ चाय पीते हुये बुदबुदाया।"

"भारत शान्ति का अनुयायी है, हम भी शान्ति पूर्ण उपायों से उसे पराजित करेंगे।" चिनचुन ने कहा।

"कैसा सुन्दर, हरा-भरा देश है। संसार का सबसे अधिक स्वादिष्ट फल आमों की यह जन्मभूमि है। यहाँ शाश्वत वसंत खेलता है। उपजाऊ इतना है कि दुष्काल यहाँ आने से भयभीत होता है। चीन को इस प्रदेश की आवश्यकता है। छल, छद्म और कूटनीति से हमें इस देश को चीन में सम्मिलित करना है।" चाऊचिन ने कहा।

"देश के निवासियों के मन जब काबू में आ जाते हैं, तब भूमि पर कब्जा करना कठिन नहीं होता।" चिनचुन बोली।

"दोनों देशों के शिष्ट मण्डलों के आवागमन से हमारी मैत्री बहुत बढ़ गई है। इस देश में एक चीनी, विदेशी नहीं, स्वदेशी माना जाता है, और यह विश्वास हमारी जीत का सबसे बड़ा कारण बनेगी। जितना चीनी भारतीयों के निकट होते जायेंगे, उतनी ही हमारी योजना आगे बढ़ेगी।"

"यह समीपता अधिकाधिक हमारी चीनी कुमारियाँ लायेंगी जिनको हमने बौद्ध भिक्षुणियों के रूप में यहां स्थापित किया है।" होचिन ने कहा।

"हम लोग तो अपना कार्य करेंगी ही। हमारे पाश में बँधा हुआ व्यक्ति कभी मुक्त नहीं होगा, यह मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ।" चिनचुन ने जोश में आकर कहा।

चाऊचिन ने मुस्कराते हुए कहा—"हमें इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। एक नई बात यह सुनने में आई है कि यशोधर तिब्बत जाने का विचार कर रहा है।"

होचिन ने शंकित कंठ से पूछा—"वह तिब्बत क्यों जा रहा है?"

"इसलिये कि उस मूर्ख नागार्जुन ने उसके दिल में लामाओं के प्रति भक्ति जाग्रत कर दी है। वह उसके मठों में जाकर उनका सत्संग करना चाहता है।"

"परन्तु वहाँ हमारी योजना अब शीघ्र कार्य-परिणत होने वाली है।"

"उससे क्या हानि होगी ? वह बेचारा किसी मठ में पड़ा रहेगा।"

परन्तु हम लोग तो शीघ्र ही मठों का विनाश करना चाहते हैं। वहाँ के मठों पर अधिकार किए बिना तिब्बत पर अधिकार नहीं हो सकता।"

"जब मठों का विनाश आरंभ हो, तब उसे उत्तरी तिब्बत के किसी दुर्गम स्थान में भेज दीजिएगा, नहीं तो चीन ले जाइयेगा।"

"तिब्बत पर अधिकार करने के लिये चीन की सरकार लड़ेगी, हमसे क्या मतलब !" ली-सूँग ने कहा।

चाऊ बोल :—"यह ठीक है, परन्तु सफरमैना पलटन में हम लोग आते हैं, जो उनके अधिकार करने का रास्ता साफ करते हैं। परन्तु यदि चिन को यशोधर के साथ भेजा जाय, और यहाँ का कार्य ली-सूँग तथा चाऊ चलाए, तो कैसा रहेगा।" होचिन ने पूछा।

"मुझे तो कोई आपत्ति नहीं है।" चिनचुन ने उत्तर दिया।

"यशोधर की नकेल तुम्हारे हाथ में होने से वह बहुत शीघ्र पंचमांगी बनाया जा सकता है। जब एक तरुण हृदय को तरुणी संचालित करती है तक कार्य में अधिक सुगमता रहती है।" होचिन कह कर हँसने लगा। फिर हँसते-हँसते कहा—"कहीं सचमुच तुम उनके प्रेम में न फँस जाओ, इसका ध्यान रखना। यह प्रेम दो धारी तलवार है !"

चिनचुन ने कहा— "इसकी आप चिन्ता न कीजिए। मैंने अपना जीवन चीन की सेवा के लिए समर्पित किया है, उसमें कोई दूसरा रंग नहीं चढ़ेगा। किन्तु महाध्यक्ष की आज्ञा इसी देश में काम करने की है। आप उनका आदेश मँगा लीजिए। यदि वह कहेंगे तो मैं यशोधर के साथ तिब्बत चली जाऊँगी।"

"मैं चिन के दृष्टिकोणों से सर्वथा सहमत हूँ।" चाऊ ने समर्थन किया। फिर जम्हाई लेते हुये कहा — "मैं तो थक गया हूँ इसलिये सोऊँगा !" इस प्रस्ताव को सबने स्वीकार किया, और वे सब सोने के लिये चले गए।

७

यशोधर के भिक्षु वेष को देखकर गायत्री रोने लगी, और उसका दण्ड कमडल छीनती हुई बोली—"यह क्या सूझा, तुमको इस उम्र में बेटा ! छोड़ो इस वेष को ।"

यशोधर ने बड़ी शान्ति के साथ कहा—"बुद्धं शरणं गच्छामि ।"

"हटाओ इस बुद्ध-उद्ध को । हम बौद्ध नहीं वैष्णव हैं ।"

"परन्तु बुआजी, मैं तो अब बौद्ध भिक्षु हूँ । मैं तीर्थ यात्रा के लिए तिब्बत जा रहा हूँ ।, इसलिए बिदा माँगने आया हूँ ।"

"मैं कहती हूँ कि तुम कहीं नहीं जा सकते । यदि तुम तिब्बत जाओगे, तो हम लोग भी तुम्हारे साथ चलेंगे । भाभी, जरा देखो तो इसका पागलपन ?"

मणिमाला ने आकर कहा—"क्या है दीदी, किसका पागलपन देखूँ ?"

"अपने इस लाड़ले का । कहता है कि मैं तिब्बत जा रहा हूँ ।"

"दीदी, बौद्ध भिक्षु संघ का आदेश मानने के लिए बाध्य है ।"

"तो सचमुच तुम इसे सन्यासी हो जाने दोगी ।"

"हो जाने का अब प्रश्न कहाँ उठता है । उसने दीक्षा ले ली है, अब पुरावर्तन कैसे हो सकता है ?"

' ऐसे-ऐसे न-मालूम कितने खेल लड़के खेला करते हैं, उनसे कुछ बनता बिगड़ता है ? तुम तो पत्थर बन चुकी हो, परन्तु मैं अभी जीवित हूँ । इस घर को मैंने आबाद रखा है, मुझे इस पर पूर्ण अधिकार है । '

"दीदी, तुम्हें इस अधिकार से वंचित कौन करता है ?"

'तब फिर मुझसे बिना पूछे कैसे इसने दीक्षा ली ?"

"सामने खड़ा है, आप पूछिये ।"

" बोल, तूने कैसे यह अपकर्म किया । किससे पूछ कर तू बौद्ध सन्यासी हुआ ।

उस बौद्ध सन्यासी नागार्जुन को मैं समझ लूँगीं। मेरे भोले-भाले बच्चे को बहकाने का मजा चखा दूँगी।"

"बुआजी मैंने स्वेच्छा से इस पंथ को वरण किया है। भदंत जी का कोई अपराध नहीं है।"

"हमारे रहते तेरी कैसी इच्छा, बड़ा इच्छावाला बना है ! उतार इस वेष को, चल अन्दर कपड़े बदल !"

यशोधर पृथ्वी की ओर देखने लगा। गायत्री ने झिड़कते हुए कहा–"मेरी आज्ञा नहीं मानेगा ! मैं कहती हूँ कि तू बौद्ध सन्यासी नहीं हो सकता !"

इसी समय विनोद ने प्रवेश करते हुए कहा-'अच्छा, भिक्षु जी महाराज पधारे है। कहते हैं कि महत्मा बुद्ध प्रथम भिक्षा अपने परिवार से माँगने गये थे। शायद उसी विचार से प्रेरित होकर भदंत राहुल भी आये हैं। बुआ जी, इन्हें भिक्षा दीजिए।"

भिक्षु होने के पश्चात् यशोधर का नाम राहुल रखा गया था।

गायत्री की क्रोधाग्नि पर घी की धार पड़ी। वह सरोष बोली—"अब तू भी जलाने आया है। अच्छा, आ गया तो ठीक है। इसको पकड़ कर अन्दर ले जा, और यह पीली वर्दी उतार कर फेंक दे।"

"बुआ जी, मैं यह न कर सकूँगा, क्योंकि मैं भी इसके साथ तिब्बत जाने का विचार कर रहा हूँ।"

"क्या कहा तू भी बौद्ध सन्यासी होगा क्या ? भगवान, यह क्या हो रहा है ?"

"बुआ मैं सन्यासी-वन्यासी नहीं होने का। मैं तो केवल घूमने-फिरने जाऊँगा। तिब्बत एक दुर्गम स्थान है, वहाँ अद्भुत वस्तुएँ हैं। यह सदा से प्रवेश-निषिद्ध देश रहा है, किन्तु इस बौद्ध जयन्ती से हमारा मार्ग खुल गया है। हमें इससे लाभ उठाना चाहिए। बौद्धसंघ जा रहा है, मुझे इनके साथ जाने में सुविधा रहेगी इसलिये जा रहा हूँ।"

"भाभी बोलती क्यों नहीं, यह सब क्या खेल करवा रही हो। गायत्री ने खीझ कर कहा।"

मणिमाला अपनी मुस्कराहट छिपाती हुई बोली–"मैं क्या करूँ, ये लड़के अब बालिग हो गऐ हैं।"

"अच्छा, बालिगियत का बहाना ले बैठी। मारो दो थप्पड़, ठीक हो जाँयगे।"

"मैं क्या मना करती हूँ, आप ही क्यों नहीं मारतीं।"

"बुआजी कमजोर होने से आपको आदेश देती हैं, क्योंकि यह चाहे जितना जोर से मारें, हम लोगों को चोट नहीं लग सकती।" यह कह कर विनोद हँसने लगा।

"गायत्री छोभ और क्रोध के काँप रही थी। उसने विनोद की ओर रोष-पूर्ण नेत्रों से देखा। मणिमाला ने चुप रहने का संकेत किया।

शोरगुल सुनकर अविनाश बाबू भी वहाँ आ गये। उनको देखकर गायत्री का क्रोध गल कर नेत्रों से बहने लगा।

अविनाश बाबू ने पूछा—"गायत्री क्यों रो रही हो?"

गायत्री ने यशोधर को संकेत करते हुए कहा—"इसके वेष को देखकर क्या हँसूं? हम लोगों के रहते, यह सन्यास ले! कैसी विडम्बना है भगवान! यह सब देखने के लिये मुझे क्यों जिन्दा रखा!"

अविनाश बाबू ने धीर कण्ठ से कहा—'गायत्री प्रत्येक मनुष्य अपनी इच्छा-नुसार कार्य करता है। यशोधर ने सब कुछ सोच-समझ, आगा-पीछा विचार कर इस वेष को लिया है। मैं जानता हूँ, यह सब अस्थाई है। यौवन की एक बहक किया है, उसका एक स्वप्न है। थोड़े दिनों में यह पागल पन स्वत: नष्ट हो जायगा, और जब इसे इन बौद्ध भिक्षुओं का खोखलापन मालूम हो जायगा, तब वह पुन: लौटेगा, इसके पहले नहीं। हमने इन दोनो को शिक्षित कर अपना कर्तव्य पूर्ण कर दिया है। आगे का मार्ग ढूढ़ना इनका काम है।"

"तुम्हारी ऐसी बातों से ही आज का दिन सामने आया है। विनोद भी यशोधर के साथ जाने का विचार कर रहा है।"

"उसको अपने भाई के साथ जाने का अधिकार है।"

"किन्तु यह घर सूना हो जायगा।"

"इसी भय ने तो भारतीयों की साहसिक प्रवृत्ति का नाश किया है। भारतीय आज संसार का सबसे पिछड़ा प्राणी है। किन्तु अब परिस्थितियाँ बदल गई हैं। हमारी सन्तान को साहसी, उद्यमी, और कठिनाइयों से जूझने की क्षमता रखने वाला होना चहिए। किताबी ज्ञ न प्राप्त करने के पश्चात् इनको क्रियात्मक ज्ञान भी प्राप्त करना आवश्यक है और इसका सबसे सुलभ साधन भ्रमण है।"

"भ्रमण करें मैं, उसमें बाधक नहीं हूँ, परन्तु उसके लिए आवश्यक है कि वे सन्यासी बनें ? हमारे पास रुपयों की कौन कमी है। भले मानुसों की भाँति जाएँ।"

"वह भी एक तरीका है, किन्तु उसमें मनुष्य आत्म-निर्भर नहीं होता। अपने ही ऊपर निर्भर रहते हुये जो ज्ञान प्राप्त होता है, वही शुद्ध ज्ञान है। यशोधर अपने इस वेष में रह कर जो ज्ञान प्राप्त करेगा, वह उसको कहीं अधिक उपयोगी होगा, जो धन की सहायता से किए गए भ्रमण से प्राप्त होता है। मैं अपने अनुभव से यह बात जानता हूँ।"

"वह तुम्हारा ज्ञान तुम्हारे किस काम आया ? जब तक मामाजी जीवित रहे, वह कुढ़ते रहे और मैं आज तक कुढ़ रही हूँ।"

"यही हमारी कमजोरी है गायत्री ! हम लोग मोह में अपने को इतना फँसा लेते हैं कि व्यर्थ दूसरों के लिए दुख उठाते है।"

"दुख दूसरों के लिए नहीं, अपनों के लिए उठाया जाता है। मामाजी के लिए तुम दूसरे थे ! यदि ये बच्चे दूसरे हैं तो फिर अपना कौन हो सकता है ?"

"ठीक है किन्तु यह मोह और ममता ही तो है।"

"मोह ओर ममता तो मनुष्यत्व के चिन्ह हैं। इनसे रहित प्राणी केवल पशु है।"

"यह भी स्वीकार करता हूँ, परन्तु उसकी भी सीमा होती है। मोह की उत्पत्ति स्वार्थ से होती है। प्रत्येक मनुष्य संसार में कोई विशेष कार्य के लिए जन्म लेता है। वह कार्य उसके अतिरिक्त दूसरा व्यक्ति नहीं कर सकता। उसको कराने के लिए उसके चारो ओर ऐसी स्थिति बन जायगी कि वह उसी

निर्दिष्ट दिशा में चलने के लिये बाध्य होगा। यशोधर के मन में जो बौद्ध-भिक्षु होने की इच्छा जागृत हुई है, उसका कोई उद्देश्य अवश्य है।"

"तुम्हारी इन थोथी बातों से मेरे मन को सन्तोष नहीं हो सकता।" गायत्री ने आंसुओं को पोछते हुए कहा।

"अच्छा मैं एक दूसरा प्रस्ताव रखता हूँ। वह यह कि हम लोग क्यों न यशोधर के साथ भ्रमण के लिये चलें।

"यदि वह इस वेष को त्याग दे, तब मैं चल सकती हूँ।"

"जानती हो, तिब्बत में रेलगाड़ियाँ नहीं हैं, यहाँ तक कि सड़कें तक नहीं हैं। पैदल चलना पड़ता है, वह भी दुर्गम मार्गों से।"

"बदरीनाथ के मार्ग को लोग झापानों में पार करते हैं, ऐसी वहाँ भी कोई व्यवस्था अवश्य होगी।"

"हाँ, टट्टू, याक आदि जानवर जरूर मिलते हैं, परन्तु जिस प्रकार हम यहाँ मनों सामान लेकर चलते हैं, वैसा वहाँ सम्भव नहीं है। बहिन तुम वहाँ किसी प्रकार नहीं चल सकतीं। वहाँ केवल इसी रूप में जाने से सुविधा रहती है, जैसे यशोधर जा रहा है।

"तब क्या इसने सचमुच दीक्षा नहीं ली, केवल घूमने के लिए वेष धारण किया है।"

"हाँ।"

"क्यों यशोधर, भैया क्या ठीक कहते हैं?"

"यशोधर को अपने बचने का मार्ग दिखाई दिया उसने स्वीकारात्मक रूप में अपना सिर हिलाते हुए कहा—"हाँ, बुआ मैंने इसी विचार से इस वेष को लिया है।"

"तब ठीक है घूम आओ, किन्तु मुझसे प्रतिज्ञा करो कि तुम घूम कर वापस आओगे और मेरी इच्छानुसार विवाह कर संसारी बनोगे।"

"हाँ, बुआ, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आप की आज्ञा का पालन होगा।"

"तब ठीक है। जाओ, परन्तु इस वेष से यदि न जाते तो अति उत्तम होता।"

"बुआ जी, किन्तु इसी वेष में जाने से तिब्बत के महन्त हमारा विश्वास करेंगे। प्राचीन भारतीय सभ्यता की अमूल्य सामग्री, अप्राप्य पुस्तकें वहाँ सुरक्षित हैं, मैं उन्हें वहाँ से लाना चाहता हूँ। बौद्ध होने के नाते वे हमको सब दिखाएँगे, अन्यथा हम किसी भाँति अपनी प्राचीन संस्कृति के उस प्रच्छन्न भंडार तक नहीं पहुँच सकते।"

"तब यह सब क्यों नहीं बताया ?"

"बताऊँ कैसे, आप तो कुछ सुनने को तैयार नहीं थीं।"

"क्यों भैया, यशो क्या ठीक कहता है ?"

"गायत्री, यदि यह न होता तो मैं उसे भिक्षु होने की अनुमति कैसे देता। तुम्हारी भाभी ने भी यही सोच-समझ कर आज्ञा दी है। हमें तिब्बत से उन पुस्तकों को प्राप्त करना है, जिनका नाम-निशान तक भारत में नहीं है। किन्तु यह भेद हम किसी को बताना नहीं चाहते थे; क्योंकि प्रकट हो जाने से बौद्ध, लामा उन्हें देने से इनकार कर सकते हैं। नागार्जुन को यह भेद किसी भाँति न मालूम होने पावे, क्योंकि वह हमारी भारतीय संस्कृति का कट्टर विरोधी है, जिस प्रकार प्रत्येक बौद्ध होता है। तुमको अपने इस भेद में न लेने का कारण केवल यही था कि तुम्हारी भक्ति विशेष रूप से नागार्जुन पर है और यदि बातों-बातों में उसको यह मालूम हो गया, तो फिर वह हमारे रास्ते में रोड़े अटकायेगा।"

"तब इसमें नागार्जुन का हाथ नहीं है ?"

"नहीं, उसे यही विश्वास है कि यशोधर अपने माता-पिता की इच्छा के विपरीत बौद्ध धर्म की दीक्षा ले रहा है। परन्तु तुम सावधान रहना। हमलोग चाहते थे कि इस चाल से तुम नागार्जुन के मोह से मुक्त हो जाओगी, और उसका आना-जाना बन्द कर दोगी।"

"यदि पहले ही साफ-साफ बता दिया होता तो दो दिनों से जो दुख मैं भोग रही हूँ, वह न भोगती। नागार्जुन पर केवल इसीलिए श्रद्धा है कि मामा जी उसे अपना हितैषी समझते थे।"

"ठीक है, बिल्ली के भाग्य से छींका टूट पड़ा था। किसी आकस्मिक प्रसंग

से उसके बताए हुए चाँदी के भाव सही-सही उतरे, किन्तु कितने झूठ उतरे होंगे, इसकी कोई गिनती नहीं रखी गई। वह पुरानी परिपाटी में ठीक बैठता था, परन्तु इस नवीन पद्धति में उसका कोई स्थान नहीं है। इन सन्यासियों के प्रभाव से हमें देश को मुक्त करना है, क्योंकि ये लोग देश की क्रियात्मक शक्ति को पंगु बनाते हैं।

"और विनोद के बारे में तुम्हारा क्या विचार है ?"

"विनोद अभी यहीं रहेगा। उसे किसी शिष्ट-मंडल में भेजने का प्रबन्ध किया जायगा। आजकल चीन और भारत में अनेकानेक शिष्ट-मंडलों का आवागमन हो रहा है, वह उसके सदस्य के रूप में जायगा। वह दूसरे रूप में राजनीति का अध्ययन करेगा।"

"तुम लोगों की योजनाएँ बड़ी विचित्र हैं।"

"गायत्री, अभी तक हम लोग क्रान्तिकारी वृत्ति के हैं। हमारी वह क्रिया-शक्ति अभी तक जीवित है। हम दूसरी रीति से देश-सेवा कर रहे हैं। इस समय भारत का संक्रान्ति काल है। सरकार जो कर रही हैं, उसके अतिरिक्त भी कई अन्य काम हैं, जिन पर उसकी दृष्टि नहीं गई है। हम उसी उद्देश्य से अपने पुत्रों की इन पड़ोसी देशों में भेज रहे हैं। सावधान, इस सम्बन्ध में कोई बात किसी से न करना। हम लोग तुमको कुछ न बताते, परन्तु तुम्हारे मोह तथा स्नेह ने हमें यह भेद खोलने के लिए मजबूर कर दिया।"

मणिमाला ने यशोधर को अपने पीछे आने का संकेत किया। गायत्री ने जाते हुए कहा—"तुम लोगों की सारी बातें मेरी समझ के बाहर है। आओ, विनोद बेटा, हम तुम चलें।"

विनोद ने उसके साथ जाते हुए कहा—"लेकिन बुआजी, मैं भी तिब्बत जाऊँगा।"

"अरे जाना भई जाना, तुम लोगों के पंख निकल आए हैं, उड़ोगे ही। मेरे कहने से क्या मानोगे ?"

"लेकिन मैं अकेले नहीं, आनन्द को भी लेकर जाऊँगा।"

आनन्द गायत्री के पुत्र का नाम था।

"भाई को तो ले जाओगे, लेकिन क्या बुआ को छोड़ जाओगे।" दोनों हँसते हुए चले गये। अविनाश बाबू यशोधर से बात करने के लिए मणिमाला के कमरे में चले गये।

८

विनोद को साथ लेकर गायत्री अपने शयन कक्ष में आई और उसको बैठने को कह, आनन्द को ढूंढ़ने चली गई। वह चारों ओर उसे ढूँढ़ती हुई पूजागृह में गई, जहाँ वह भगवान विष्णु की प्रतिमा के पास बैठा था। इस समय उसकी आयु लगभग चार-पाँच वर्ष की थी, आनन्द को उसने पुकारा, किन्तु उसने कोई ध्यान नहीं दिया। वह उसके मोहक रूप को मुग्ध दृष्टि से देखने लगी। इसी समय आनन्द बड़बड़ाने लगा। उसका स्वर उत्तरोत्तर तीव्र हो रहा था, किन्तु जो कुछ वह कह रहा था, वह गायत्री की समझ में नहीं आ रहा था। माता को अपने पुत्र की वाणी सुनने से अद्भुत प्रसन्नता होती है, और वह उसे निरन्तर सुनने के लिए स्वयं तो लालायित रहती ही है और दूसरे प्रिय जनों को भी सुनाने के लिये सदैव व्यग्र देखी जाती है। आनन्द इस समय धारा-प्रवाह बोल रहा था। उसकी वाणी बड़ी गम्भीर थी, जैसे वह किसी को उपदेश दे रहा हो। गायत्री उसके शब्दों के अर्थ लगाने लगी, किन्तु वह कुछ न समझ सकी। वह दौड़ती हुई विनोद के पास गई, जो उसके शयनकक्ष में बैठा उस दिन का समाचार पत्र पढ़ रहा था। उसने उसका हाथ पकड़ कर अपनी ओर घसीटते हुए कहा—"विनू, विनू देख तो आनन्द क्या बक रहा हैं।"

विनोद का ध्यान उस दिन के समाचार पढ़ने में लगा था, इसलिये उसने न गायत्री के शब्द ही पूरी तरह सुने और न उसकी व्यग्रता को ही लक्ष्य किया। गायत्री ने उसे झकझोरते हुए कहा—"अरे विनू, सुन तो, चलकर। आज आनन्द बोल रहा है।"

विनोद ने हँसते हुए कहा—"वह तो बोलता ही, इसमें ताज्जुब की क्या बात है ?"

"उठता नहीं ! चल कर पहले सुन तो। ताज्जुब की बात न होती, तो मैं क्यों दौड़ कर आती। वह तो भदंत की भाँति भाषण दे रहा है। उसके मुँह से अभी साफ-शुद्ध शब्द निकलते नहीं, न-मालूम कहाँ से उसमें प्रवाह आ गया ?"

"क्या कहा बुआजी", आनन्द भाषण दे रहा है ? विनोद का ध्यान भंग हुआ।

"चलो मेरे साथ पूजागृह में, वह भगवान की मूर्ति के सामने पद्मासन लगाए बैठा है, मैंने आज तक उसको इस रूप में कभी नहीं देखा।"

विनोद पूजागृह की ओर दौड़ा, गायत्री भी उसके पीछे-पीछे गई। आनन्द अपने नेत्रों को बन्द किए—ध्यान से मग्न धाराप्रवाह बोल रहा था। विनोद उस अटपटी वाणी को समझने का प्रयत्न करने लगा, किन्तु उसका वह एक शब्द भी न समझ सका।

उसने धीमे स्वर में गायत्री से कहा—"मेरी समझ में कुछ नहीं आता कि यह क्या बक रहा है, परन्तु कुछ कह अवश्य रहा है। तुम माँ और बाबू को बुला लाओ। सम्भव है कि यशोधर अभी वहाँ हो, उसको भी बुला लाना। यह बड़े आश्चर्य की घटना है।"

गायत्री शीघ्रता से उन सबको यह विचित्र बात बताने के लिए चली गई, और विनोद वहीं दरवाजे पर खड़ा सुनने लगा। कुछ पलों में गायत्री के साथ वे तीनों वहाँ आगये। मणिमाला ने आते ही पूछा–"बिनू, क्या बात है ?"

"देखिये जरा आनन्द की मुद्रा को। वह कैसा पद्मासन लगाये बैठा धाराप्रवाह बोल रहा है। मेरी समझ में कुछ नहीं आता।"

मणिमाला, अविनाश बाबू और भिक्षु वेष-धारी यशोधर कान लगा कर सुनने लगे। यशोधर ने बड़े आश्चर्य के साथ कहा–"यह तो त्रि-पिटक का विनय भाग बोल रहा है।"

"त्रि-पिटक का विनय भाग क्या है ?" अविनाश बाबू ने पूछा।

"त्रि-पिटक बौद्धों का मूल ग्रन्थ है, जो विनय, सुत्त और अभिधम्म–तीन भागो में विभक्त है, इसी से इसका नाम 'त्रिपिटिक' अर्थात् 'तीन भाग' है।"

मणिमाला ने पूछा—"इस अबोध को इन बौद्ध ग्रन्थों का ज्ञान कैसे हुआ ?"

यशोधर ने विश्वास भरी वाणी में कहा—"इसको अपने पूर्व जन्म का ज्ञान हुआ है। मालूम होता है कि हमारा आनन्द अपने पूर्व जन्म में कोई सिद्ध बौद्ध मठाधीश था। उसकी भाव भंगी और वाणी से मालूम होता है कि वह अपने शिष्य वर्ग को उद्बोधन कर रहा है। यद्यपि मुझको इसका विशेष ज्ञान नहीं है, क्योंकि मैंने अभी इसका अध्ययन शुरू ही किया है, तथापि कुछ शब्दों को मैं स्पष्ट रूप से जानता हूँ। यह शुद्ध पाली भाषा भी नहीं है। मालूम होता है कि वह जिस भाषा में बोल रहा है वह तिब्बती और पाली मिश्रित है। सुनिये, यह स्पष्ट पाली है। और अब, यह कोई दूसरी भाषा बोलने लगा जो यहाँ आये हुए तिब्बती लामाओं की बोली से मिलती-जुलती है।"

"यह तो बड़े आश्चर्य की बात है ?" मणिमाला बोली।

"मालूम होता है कि हमारे घर पर जीवित तथा मृत बौद्धों ने एक साथ आक्रमण कर दिया है। जीवित नागार्जुन हैं, और मृत किन्तु पुनः अवतरित हमारे भदंत आनन्द स्वामी हैं।" अविनाश बाबू ने सहास्य कहा।

गायत्री ने आशंकित स्वर में पूछा—"इससे इसका अशुभ तो नहीं होगा ?"

"अशुभ कुछ नहीं होगा, इसको केवल पूर्वजन्म की याद हो आई है।"

"कहीं यह भी बौद्ध सन्यासी न हो जाय ?" गायत्री के स्वर से भय प्रकट हो रहा था।

"अभी तो यह केवल चार-पांच वर्षों का है, सन्यासी कैसे होगा ?"

"श्रीमद्भागवत में लिखा है कि शुकदेव मुनि को वैराग्य उनके बाल्यकाल में हो गया था। कहीं उसी प्रकार इसको भी वैराग्य उत्पन्न न हो जावे।"

अविनाश बाबू हँसने लगे। उन्होंने उपहासपूर्ण स्वर में कहा —"श्री मद्-भागवत के दिन अब पुनः वापस नहीं आवेंगे, विश्वास रखो गायत्री। यशो का कथन सत्य है तो यह अपने पूर्व जन्म में कोई बौद्ध सन्यासी अथवा कोई लामा

मठाधीश था। इसके मस्तिष्क का यह कोष्ट जाग्रत हुआ है, जहाँ पूर्व जन्मों की क्रियायें संचित रहती हैं। उस प्रकोष्ट के जाग्रत होने से इस जन्म का ज्ञान विस्मरण होजाता है, और पूर्व जन्म की चेतना क्रिया शक्ति से संचालित होने लगती है। उस समय वह वही कहता, करता है जिसका अभ्यास पूर्व जन्म में होता है।"

मणिमाला ने कहा— 'नागार्जुन को बुलाना चाहिए। वह इस पर अवश्य प्रकाश डालेंगे, क्योंकि उन्होंने बौद्ध ग्रंथों का पारायण किया है।"

"हाँ, तुम्हारा सुझाव ठीक है! विनोद तुम जाकर नागार्जुन को ले आओ।"

"जब तक वह आवेंगे, तब तक क्या आनन्द इसी मुद्रा में रहेगा?" विनोद यह पूछ कर मणिमाला की ओर देखने लगा।

'संभव है कि उसकी ऐसी दशा उस समय तक न रहे। अच्छा विनोद तुम अपना टेप-रिकार्डर ले आओ। उसमें इसकी वाणी भर लो। जाओ जल्दी जाओ।" मणिमाला विनोद को आदेश देकर पुनः सुनने में लीन हो गई।

विनोद टेप रिकार्डर लेने चला गया।

यशोधर ने कहा—'देखिए अब तो आप भी समझ जायेंगे, वह बौद्ध धर्म का मूल मन्त्र कह रहा है।"

आनन्द उस समय कह रहा था —'बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि संघं शरणं गच्छामि।" यह कहते हुए उसने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया, और चुप हो गया। मानो उसने अपना भाषण समाप्त कर दिया हो।

जब विनोद अपना टेप रिकार्डर लेकर वहाँ आया तब आनन्द शान्त मुद्रा में बैठा था।

मणिमाला हताश होकर बोली—"टेप रिकार्डर लाना व्यर्थ हुआ। अब जब इसकी पूर्व जन्म की चेतना जाग्रत होगी तब कुछ मालूम हो सकेगा। दीदी सावधान रहना, अब जब यह पुनः बोले, तब तुरन्त इसकी आवाज इस टेप-रिकार्डर में भर लेना।"

गायत्री ने सिर हिला कर सम्मति प्रकट की, और कहा— "देखो वह अभी तक ध्यान में मग्न है। भाभी, मुझे डर है कि मेरा आनन्द बड़ा हो कर कहीं बौद्ध संयासी न हो जाय!"

मणिमाला हँसने लगी, फिर सान्त्वना देती हुई बोली— "दीदी, यह संशय अपने मन से निकाल दो। यह एक चमत्कार था, जो इसके मस्तिष्क के तंतुओं में उथल–पुथल होने से घटित हुआ है। जिस प्रकार भूकम्प से कुछ विघटन, अथवा परिवर्तन पृथ्वीतल पर होते हैं, परन्तु वे स्थायी नहीं होते, उसी प्रकार आनन्द के मस्तिष्क में अकस्मात कोई उथल-पुथल हुई है, जिससे उसको पूर्व जन्म का स्मरण हो आया, तथा उस जन्म में जिन बातों के करने का उसे अभ्यास था, वह वही आचरण करने लगा। संभव है कि ऐसी अवस्था कुछ घंटों अथवा दिनों तक रहे, किन्तु यह स्थायी कभी नहीं रह सकती। जहां मस्तिष्क का भूचाल समाप्त हुआ, प्रकृति उसे नवीन वातावरण से परिवेष्ठित कर लेगी, और यह अप्राकृतिक अवस्था नष्ट हो जायगी।"

"मेरी समझ में यह कुछ नहीं आता। भैया और तुम दोनों ही मुझे बहलाने की कोशिश करते हो। तुम भी सीधी, सच बात नहीं कहती। वर्षों की तपस्या के पश्चात् तो एक सन्तान का मुख देखा और वह यदि सन्यास ले लेगी, तो बताओ, मैं किसके सहारे जीवित रहूँगी।" कहते-कहते उसके नेत्र चुचचुचा आये, और वह उसके कन्धे पर लुढ़क गई।

इसी समय आनन्द पुनः बोलने लगा। मणिमाला ने विनोद को संकेत किया कि वह उसके स्वर टेपरिकार्डर में भर लेवे। विनोद दबे पैरों ध्यानस्थ आनन्द के समीप जाकर स्वर-ग्राहक यन्त्र उसके सामने रख आया। टेप पर उसके स्वर अंकित होने लगे। सभी मूक तथा स्तब्ध होकर उसके शब्दों को सुनने तथा समझने का प्रयत्न करने लगे।

लगभग १५ मिनट तक आनन्द बराबर बोलता रहा, और फिर वह खड़ा होकर प्रतिमा के सामने बार-बार नमस्कार करने लगा। इसके बाद वह प्रतिमा के चारों ओर प्रदक्षिणा करने लगा। पहली परिक्रमा अभी पूर्ण नहीं हुई थी कि उसके पैर रास्ते में पड़ी एक चौकी से भिड़े, और वह उस पर गिर कर अचेत हो गया।

गायत्री विह्वल मन से उसका कृत्य देख रही थी। उसका मन अनेक संशयों का घर बना हुआ था। आनन्द को गिरते देख कर वह अपना आपा खोकर

दौड़ी और उसे उठा कर अपने अंक में भर लिया। आनन्द बिल्कुल निश्चेष्ट था। उसके मुख का वर्ण श्वेत था, तथा पलकें बन्द थीं।

अविनाश बाबू उसकी नाड़ी की परीक्षा करने लगे, वह बहुत धीमी गति से चल रही थी। गायत्री ने रोते हुए पूछा --"भैया, मेरा आनन्द ......।" उसका कंठ अवरुद्ध हो गया, आँखों में अजस्र अश्रुधार बहने लगी।

अविनाश बाबू ने धैर्य बँधाते हुए कहा--"गायत्री, धैर्य से काम लो। घबड़ाओ नहीं। अभी यह होश में आ जायगा। ज़रा पानी के छींटे डालो, और पंखा करो, अभी-अभी ठीक हुआ जाता है।"

मणिमाला और विनोद उसके उपचार में लग गये। थोड़ी देर पश्चात् आनन्द ने अपनी आँखें खोली, और पुकारा --"अम्माँ।"

विह्वला गायत्री ने उसे झपट कर अपने हृदय से चिपका लिया, और बार-बार उसका मुख चूमती हुई, हाँ, बेटा।" कहने लगी।

अविनाश बाबू ने जाते हुए कहा —"अब यह प्रकृतिस्थ हो गया। शायद अब पुनः इसको अपने पूर्व जन्म की याद न आवे।"

मणिमाला और विनोद, वहीं गायत्री के समीप बैठे एक दूसरे का मुख देखने लगे।

६

भदंत नागार्जुन तिब्बत की राजधानी ल्हासा के जोरवांग मन्दिर के अधिकारी लामा बासवा के चरणों के पास बैठे धर्म-चर्चा कर रहे थे। उनको घेरे हुए अनेक शिष्य रंग-बिरंगी मणियों की माला फेरते हुए बौद्ध धर्म के बीज मंत्र "ओ३म् मणे पद्मेहुँ" का जाप कर रहे थे। उनसे कुछ दूर हट कर कई चीनी भिक्षुणियाँ जिन्होंने कतिपय दिनों पूर्व संघ में प्रवेश-दीक्षा ली थी, धर्म चर्चा

सुन रही थीं। इसी बीच यशोधर अर्थात् राहुल अपना टेप रिकार्डर लिए हुए उस सभा मंडप में आया। उसके भव्य रूप के आकर्षण से सभी के नेत्र उसकी ओर उठ गये। चीनी सुन्दरियाँ मुग्ध हो कर देखने लगीं, तथा नागार्जुन ने उसको अपने समीप आने का संकेत किया। वह गयंद की चाल से बिना किसी ओर दृष्टिपात किए प्रधान पुजारी बासबा को प्रणाम कर उनके समीप बैठ गया।

नागार्जुन ने टेपरिकार्डर की ओर संकेत करते हुए कहा —"वत्स यह क्या है। बौद्ध भिक्षु के हाथ में माला और कोरलों के स्थान पर यह नवीन वस्तु क्या है ?"

(तिब्बत के लामा अपने साथ माला और कोरलो अर्थात् धर्मचक्र रखते हैं।)

यशोधर ने उत्तर में कहा —"आचार्य भदन्त, यह एक जर्मनी का बनाया हुआ यंत्र है, जिसमें शब्द भरे जाते हैं, और वे इच्छानुसार सुने जा सकते हैं।"

"इसको यहाँ सभा मण्डप में लाने का कारण क्या है ?"

"आचार्य, आज एक अद्भुत घटना हमारे घर में घटित हुई है।"

"वत्स वह अब तुम्हारा घर कहाँ रहा ? यह मत भूलो कि तुम श्रमण हो। समग्र संसार तुम्हारा घर है, और तुमने उसके निवासियों के उद्धार का व्रत लिया है।"

"हाँ, मैं अपनी प्रतिज्ञा नहीं भूला, और आज तो आपकी आज्ञा से ही गया था।"

"ठीक है, तुम गृहस्थ अविनाश के घर गये थे। वहाँ कौन अद्भुत घटना घटित हुई है ?"

"भदन्त जी, आप आनन्द से परिचित हैं ?"

"हाँ वह श्राविका गायत्री का पुत्र है"

"आज प्रातःकाल जब मैं विदा लेने गया था, तब वह विष्णु की मूर्ति के सामने बैठ कर पाली तथा एक अन्य भाषा में, जिसे कोई समझ नहीं सका, भगवान बुद्ध के स्तवनों का पाठ करने लगा।"

"अभी तो वह नितान्त बालक है, शब्दों का उच्चारण भी नही कर

सकता ?"

"हाँ आचार्य, यही तो आश्चर्यजनक घटना है । वह त्रिपिटक का विनय भाग जिसमें भिक्षुकों के नियमों का वर्णन है, शान्त भाव से समझा रहा था ।"

"त्रिपिटक के विनय भाग का ज्ञान उसे कैसे हुआ ? मैं चलकर देखूंगा !"

"उसके पहले वक्तव्य को हम केवल सुन सके, क्योंकि यह शब्द संग्रहक यन्त्र हमारे पास नहीं था । किंचित कालोपरान्त जब वह पुन: बोला तब उसके शब्दों को इस यंत्र में भर लिया है । वही आप को सुनाने के लिए आया हूँ ।"

"सत्य ही यह आश्चर्यजनक घटना है ।"

प्रधान पुजारी बासबा उनके कथोपकथन को सुन और प्रश्न भरी दृष्टि से टेपरिकार्डर को देख रहे थे । भदंत नागार्जुन ने तिब्बती भाषा में यशोधर से प्राप्त समाचार उनको सुनाकर पूछा —"क्या आप भी सुनेंगे ?"

प्रधान पुजारी ने उत्सुकता प्रकट की । नागार्जुन ने यशोधर को सुनाने का संकेत किया । उसने टेपरिकार्डर खोला, और यन्त्र संचालित किया । उससे शब्द निकलने लगे । भदंत नागार्जुन तथा अन्य लामा ध्यान से सुनने लगे । किन्तु पुजारी बासबा पर उन शब्दों का बिशेष प्रभाव पड़ा । वह मन्त्र मुग्ध की भाँति स्थिर, अचल तथा निर्निमेष होकर ध्यान-मग्न हो गए । इस समय उनके नेत्रों से अश्रुधार बह रही थी ।

वक्तव्य समाप्त होते ही पुजारी बासबा ने अवरुद्ध कंठ से कहा —"यह तो मेरे गुरु की बाणी है । यह उनका उपदेश है जो शरीर त्याग करने के पूर्व उन्होंने हम सब को सुनाया था । इसमें कुछ शब्द मुझको सम्बोधित करते हुए कहे गये हैं, जो आज भी मुझे अक्षरश: याद हैं । अभी तक उनका शरीर जोरवाँग के मन्दिर में सुरक्षित है । मृत्यु के समय वह कह गये थे कि उनका पुनर्जन्म किसी भद्रकुल में होगा । हम उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे । नीचंग मठ के अध्यक्ष ने जिन पर भगवान बुद्ध की छाया पड़ती है, और जो अचेत होकर योग शक्ति द्वारा मृतात्माओं के गन्तव्य स्थान का पता लगा लेते हैं, कहा था कि 'तुम्हारे गुरू की आत्मा दक्षिण दिशा में प्रस्थान करती जा रही है, अभी नहीं बता सकता कि वह कहाँ रुकेगी ?" इसके पश्चात वह उनकी आत्मा का अनुसरण नहीं कर

सके—उस अन्धकार में आत्मा की ज्योति विलीन-सी हो गई थी। अब मालूम होता है कि वह हिमालय शृंग-माला को पार कर भगवान अवलोकितेश्वर (भगवान बुद्ध का एक नाम, जिसका तिब्बत में महत्व है) के आदि उपदेश की भूमि में अवतीर्ण हुई है।"

प्रेमाश्रुओं से उनका पीताम्बर भीग गया। सभास्थल पर बैठे हुए सभी शिष्य उद्ग्रीव हो गये। नागार्जुन चकित होकर कभी टेपरिकार्डर की ओर देखते, कभी पुजारी बासवा की ओर। सभास्थल निस्तब्ध था। चीनी भिक्षुणियाँ कुछ गर्दन नीची किए, और कुछ यशोधर के विपुल सौंदर्य को उत्सुकता से देख रही थीं।

पुजारी बासवा बोलने लगे—"निश्चय ही मेरे गुरु ने इस बालक के रूप में अवतार लिया है। भदंत जी मैं उस बालक को देखने की अभिलाषा रखता हूँ।"

"यह कोई कठिन नहीं है आचार्य। बालक की माता श्राविका है। वह आचार्य का दर्शन कर अपने को कृतार्थ समझेगी।"

"आप इस 'गीनयेन'* को आदेश दें कि वह पुन: इन यन्त्र को चालित करे। मैं पुन: अपने गुरू की वाणी सुनना चाहता हूँ।"

नागार्जुन ने यशोधर को पुन: यन्त्र चालित करने का संकेत किया। यशोधर यन्त्र को चालित कर टेप को अपनी पूर्वावस्था पर ले आकर उसमें भरे आनन्द के शब्दों को सुनाने लगा।

---

*तिब्बत में बौद्ध महन्तों को तीन श्रेणियाँ पारित करना पड़ता है—(१) प्रथम श्रेणी नवदीक्षितों की होती है, जो 'गीनयेन' कहलाते हैं। दूसरी श्रेणी के "गेतईसूल" और तीसरी श्रेणी की संज्ञा "गीलांग" है। इन तीनों अवस्थाओं में उनको लगभग २५६ नियमों का पालन करना होता है, तथा पन्द्रह प्रकार की विधियाँ हैं जिनके पालन से निर्वाण प्राप्त होता है। चूँकि यशोधर नवदीक्षित था इसीलिये पुजारी बासवा ने उसे 'गीनयेन' नाम से सम्बोधित किया।

उसके शब्दों को सुनने के पश्चात् पुजारी बासबा नागार्जुन तथा अपने शिष्यों से तिब्बती भाषा में बोले जिसको नागार्जुन ने इस प्रकार समझा—"हमारे गुरू की आयु १०८ वर्षों की जब हुई तब उन्होंने एक दिन अपने प्रधान शिष्यों को एकत्रित कर कहा कि उनकी जीवन-माला की मणियां समाप्त हो गई हैं। अब इस शरीर को त्यागने का समय आ गया है। अभी मुझे निर्वाण प्राप्त करने में एक और जीवन की तपस्या की कमी रह गई है। चौदह विधियाँ मेरे इस जीवन से समाप्त होती हैं, अन्तिम पन्द्रहवीं विधि मैं आगामी जीवन में पूर्ण करूँगा। अतएव आज रात्रि के चतुर्थ प्रहर के आरम्भ होते ही अपना यह कलेवर त्याग करूँगा। मेरा शरीर उस विधि से सुरक्षित रखा जाय, जिसको हमारे पूर्वज त्रिकालदर्शी गुरुजन बता गए हैं, और जो इस निर्वाण को प्राप्त कर आनन्द भोग कर रहे हैं। कुछ वर्षों पश्चात् मैं पुन: यहां आने का प्रयत्न करूँगा, यद्यपि भगवान अवलोकितेश्वर और भगवान अमिताभ की किसी दूसरी इच्छा का आभास मुझे मिल रहा है। जिसमें मुझे इस जीवन का भान हो जावे, तथा इस टूटती हुई तपस्या का सूत्र पुन: प्राप्त कर सकूँ, इसीलिए मैं अपने इस शरीर को सुरक्षित रखने का आदेश तुमको दिए जाता हूँ। वत्स बासवा, तुम मेरे पश्चात् जोरबाँग मन्दिर की पूजा का भार ग्रहण करना। ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारे द्वारा मेरा कल्याण होगा।"

नागार्जुन चकित होकर सुन रहे थे। उन्होंने कहा—"आप अवश्य उनके दर्शन करिए। श्राविका गायत्री बड़ी भाग्यशालिनी है, जिसकी कोख से उत्पन्न होने के लिए आपके गुरू ने उसको वरण किया है। हमारे धर्म ग्रन्थों पर उसे पूरी आस्था है। भगवान बुद्धदेव की माता के समान ही वह पुण्य-शालिनी है।"

"अवश्य उस पर भगवान अवलोकितेश्वर की पूर्ण कृपा है। आप कब उनके तथा मेरे गुरु के दर्शन कराएंगे। मैं बड़ी उत्कंठा से उस पुण्य घड़ी की प्रतीक्षा कर रहा हूं।"

"अभी अपने इस शिष्य से बात कर के बताऊँगा। मेरे इस शिष्य की इच्छा है कि वह कुछ दिनों तक आपके चरणों में रह कर धर्म-ज्ञान प्राप्त करें।

क्या आप इसे अपने साथ तिब्बत ले जाना स्वीकार करेंगे ?'

नागार्जुन ने उनकी उत्कंठा से लाभ उठाने का प्रयत्न किया, और वह उसमें सफल भी हुए। वह उस अवसर की ताक में थे जब वह यशोधर को उसकी इच्छानुसार तिब्बत भेजने में कृतकार्य हों।

प्रधान पुजारी बासबा ने तुरन्त उत्तर दिया—"अवश्य मैं इस 'गीनयेन' को अपने साथ ले जाकर धर्म का ज्ञान कराऊँगा। इसी की कृपा से तो मेरे गुरुदेव मिल रहे हैं। यह स्वयं पुण्यात्मा है। संभव है कि यह भी हमारे देश के किसी मठ के लामा का अवतार हों, नहीं तो इस भूमि में उत्पन्न होकर कैसे हमारे लामाओं के देश में जाने की इच्छा इसमें जाग्रत होती ?"

क्या तिब्बत के सभी लामाओं का पुनर्जन्म होता है ?" नागार्जुन ने आश्चर्य के साथ पूछा—

"नागार्जुन, तिब्बत लामाओं का देश हैं। वहाँ लगभग ३००० गोम्पा अर्थात् मठ हैं। उनमें तीन गोम्पा सर्वश्रेष्ठ हैं; जिनके नाम हैं, ड्रेपुँग, सेरा तथा गन्देन। ये तीनों ल्हासा के समीप स्थित हैं। ल्हासा से पश्चिम ६ मील की दूरी पर ड्रेपुँग है, जो विश्व भर के विहार संघों में सबसे बड़ा है, जिसमें १० हजार से अधिक धर्मार्थी रहते हैं। दूसरा सेरा, ल्हासा से तीन मील उत्तर स्थित है जहाँ वज्रधारा या "दोरजे चाँग" का मन्दिर है, तीसरा गन्देन, ल्हासा से पूर्व दिशा में लगभग पच्चीस मील की दूरी पर बना है। यह मठ सबसे प्राचीन है और "त्साँगे पा" नामक प्रथम मठाधीश जो भगवान अवलोकितेश्वर के पार्षद थे द्वारा निर्मित हुआ था। इन्हीं तीनों मठों के शिष्यों से ही तिब्बत का राजतंत्र चलता है। दलाईलामा को शिक्षा इन्हीं तीनों मठों में दी जाती हैं। इनके अतिरिक्त अनेकों गोम्पा हैं और प्रत्येक में हजारों लामा रहते हैं।"

नागार्जुन ने आश्चर्य के साथ कहा—"तब तो धर्मकार्य से अवकाश ही न मिलता होगा, और राजतंत्र का संचालन फिर कैसे होता है ?"

बासबा ने मुस्कराते हुए कहा—"राजतन्त्र लामा ही चलाते हैं। दलाई लामा सर्वश्रेष्ठ हैं, और उनमें भगवान अवलोकितेश्वर की शक्ति सन्निहित

रहती है। दूसरी श्रेणी में पंचनलामा हैं, जिनमें भगवान अमिताभ की शक्ति जाग्रत है। दलाईलामा देश के राज्याधिकारी हैं, और उनका अधिकार समस्त तिब्बत पर है। पचनलामा का अधिकार क्षेत्र सीमित है। वह 'शीगत्सी' नगर के 'ताशील्हुम्पो' मठ के अधिष्ठाता हैं और उनका अधिकार क्षेत्र लगभग सवा सौ मील में है।"

नागार्जुन ने पूछा--"दलाईलामा जब मृत्यु के उपरान्त दूसरा शरीर धारण करते हैं, तब उनको किस प्रकार ढूँढ़ा जाता है, और कैसे विश्वास हो जाता है कि अमुक बालक के रूप में दलाईलामा ने जन्म लिया है।"

बासवा ने उत्तर दिया--"मृत्यु के पश्चात् दलाईलामा की आत्मा उन्चास दिनों तक दक्षिणी तिब्बत में 'चोर कोर गाई' नामक झील में निवास करती है। इसके पश्चात् वह किसी उपयुक्त गर्भस्थ बालक में प्रवेश करती है। मृत्यु तिथि के पश्चात् लगभग तीन-चार वर्षों तक प्रतीक्षा की जाती है, और फिर उस बालक को ढूँढ़ा जाता है।"

नागार्जुन-"समस्त देश में उस विशिष्ट बालक को ढूँढ़ निकालना अवश्य एक कठिन कार्य होता होगा।"

बासवा-"हां, कभी-कभी अनेक जटिलतायें उत्पन्न हो जाती हैं, किन्तु उन्हें हम किसी न किसी प्रकार हल कर लेते हैं। हमारे तिब्बत में कुछ मठों के अधिकारी सिद्ध पुरुष होते हैं। वे समाधिस्थ होकर दलाई लामा के पुनर्जन्म का स्थान खोजते है। वहाँ उन्हें जब योगनिद्रा में पता लग जाता है, और वह जिस स्थान का संकेत करते हैं, वहाँ खोज आरम्भ की जाती है। अनेक परीक्षाओं के पश्चात् यह निश्चित होता है कि अमुक शिशु में दलाई लामा की आत्मा निवास करती है।"

नागार्जुन-"वह किस प्रकार आप लोग निश्चय करते हैं?"

बासवा-"हमारे पूर्व पुरुषों ने, जो सिद्धता प्राप्त कर चुके हैं, कुछ लक्षण बताए हैं, जिनके द्वारा यह प्रकट होता है कि अमुक बालक के शरीर में दलाई लामा की आत्मा निवास करने लगी है। उनके अनुसार उस बालक के कान हाथी के कानों की भाँति चौड़े और बड़े होते हैं, उसका वृषभ कंध होता है,

पैरों में चीते के धब्बों की भाँति धब्बे होते हैं, उसकी एक हथेली में–और प्राय: दाहिनी हथेली में शंख का चिन्ह होता है, और उसकी भौहें धनुषाकार टेढ़ी होती हैं।"

नागार्जुन–"परन्तु ऐसे चिह्न तो कभी कदाचित् अन्य बालकों में भी प्राप्त हो सकते हैं।"

बासबा—"प्राय: सब चिह्न एक साथ एक ही बालक में नहीं मिलते, यदि मिल भी जाँय तो दूसरे प्रकार की भी परीक्षायें होती हैं, उनसे फिर कोई सन्देह नहीं रहता।"

नागार्जुन–"वे कौन परीक्षाएँ हैं, कृपा कर बताइए, यदि कोई धार्मिक रुकावट न हो।"

बासबा–"हम लोग विदेशियों से पर्दा अवश्य रखते हैं, किन्तु आप हमारे धर्मानुयायी हैं, इसलिए आपको बताने में कोई हर्ज नहीं है। जब किसी विशिष्ट बालक में हमें उपर्युक्त लक्षण मिल जाते हैं, तब हम उसके समक्ष उन वस्तुओं को, जो गत लामा के निजी व्यवहार में आती थी, जैसे जाप करने वाली माला, पूजा में काम आने वाली वस्तुयें, जैसे आरती पात्र तथा घंटिका, रुमाल तथा चाय के प्याले आदि उसी प्रकार की अन्य वस्तुओं के साथ मिला कर रख देते हैं। वह उनमें से वही वस्तुयें उठाता है या छूता है, जो गत लामा की होती हैं।"

नागार्जुन–"और यदि वह उन वस्तुओं को न उठावे या न छुए तब क्या होता है?"

बासबा–"प्रथम तो ऐसा होता ही नहीं, क्योंकि गत लामा की आत्मा को प्रकाशित होना अनिवार्य है। कारण, वह यदि गत लामा की वस्तुओं के अलावा अन्य की वस्तुयें ग्रहण करता है, तब ढूँढ़ाई पुन: होती है। इस प्रकार कभी-कभी तीन-चार वर्षों से अधिक समय बीत जाता है। एक न एक दिन पता लग ही जाता है। परम्परा तो यही सिद्ध करती आ रही है।"

नागार्जुन–"बालक प्राप्त होने के पश्चात् आप क्या करते हैं?"

बासबा–"उस बालक को हम दलाई लामा का अवतार घोषित कर उसे

स्वर्ण-सिंहासन पर आसीन करते हैं। जब उसकी उम्र अट्ठारह वर्ष की हो जाती है, तब वह पूर्ण राज्याधिकार प्राप्त कर लेता है। इसके पूर्व उसको उन्हीं तीन मठों-अर्थात् द्रेपुँग, सेरा और गन्देन में क्रमश: रहकर लामा धर्म की शिक्षा प्राप्त करना होता है।

नागार्जुन–"क्या दलाई लामा सदैव किसी उच्च कुल में जन्म लेते हैं ?"

बासबा–"लामाओं का ब्रह्मचारी होना अनिवार्य है, अतएव उनके यहाँ जन्म लेने का कोई प्रश्न नहीं उठता। मृत्यु के पश्चात् 'चोर कोर गाई' झील में बिहार करते हुए उन्हें भगवान अवलोकितेश्वर प्रेरणा प्रदान करते हैं, और उसी के अनुसार वह किसी किसान के घर में अथवा अन्य जाति में जन्म लेते हैं।"

नागार्जुन–"यह बड़ी विचित्र बात है। ऐसा अन्यत्र नहीं होता।"

बासबा सुन कर हँसने लगे, फिर बोले—"हमारा देश भी तो विचित्र है नागार्जुन ! भगवान अवलोकितेश्वर हमारे देश के अतिरिक्त और कहाँ प्रकट होते हैं। हमारा देश, हमारा धर्म, भगवान अवलोकितेश्वर का है।"

नागार्जुन–"आपके साथ मैं भी तिब्बत की यात्रा करना चाहता हूँ।"

बासबा—' किन्तु आप पहले वहाँ हो आये हैं, नहीं तो तिब्बती भाषा कैसे जानते ?"

नागार्जुन–"तिब्बत नहीं गया, किन्तु दार्जिलिंग के बौद्ध मन्दिर में लामाओं का सत्संग वर्षों किया है, इसी से तिब्बती भाषा जानता हूँ।"

बासबा–"तब फिर आप अवश्य चलिए। 'गीनयेन' जा रहा है, उसके साथ-साथ आप भी चलें। उसका मन नहीं ऊबेगा, और आपको अभ्यन्तर तिब्बत देखने का अवसर मिलेगा। हमारा तिब्बत देश संसार के सब देशों से ऊँचा है, वहाँ देवता निवास करते हैं। हिन्दू ग्रन्थों में वर्णित स्वर्ग वही है।"

नागार्जुन–"अवश्य चलूंगा। अच्छा अब आज्ञा दीजिए, मैं जाकर श्राविका गायत्री को आपके स्वागत के लिए तैयार करता हूँ।'''

बासबा–"शीघ्र ही इसका प्रबन्ध होना चाहिए। मैं अपने गुरु का दर्शन करने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ।"

यह कह कर नागार्जुन अपने साथ यशोधर को अनुसरण करने का संकेत देकर सभा मंडप से चले गये। बासवा पुनः धर्मचर्चा में लग गये।

१०

विनोद को अपने सामने देख कर चिनचुन कुछ अस्थिर-सी होगई। वह आज लीसुंग का परिचय कराने के लिए मणिमाला के घर आई थी और बरामदे में प्रवेश करते समय उसकी मुठभेड़ विनोद से हो गई, जो घर के बाहर शीघ्रता से जा रहा था। दोनों टकराते-टकराते बचे। दोनों की आँखें चार हुईं, और वे पुनः नत हो गईं।

विनोद ने पूछा—"आप किससे मिलना चाहती हैं।"

चिनचुन के कपोल युगल रक्ताभ हो रहे थे। उसका हृदय धड़क रहा था। वह विनोद के प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकी।

विनोद ने पुनः पूछा—"आप तो कोई बौद्ध भिक्षुणी मालूम देती हैं, क्या आप राहुल जी से मिलने आई हैं।"

"राहुल तो आप ही हैं, आपने यह वेष कैसे धारण किया ?"

"मैं राहुल नहीं हूँ। उसका बड़ा भाई हूँ। मैंने भिक्षु धर्म की दीक्षा नहीं ली है।"

"आप राहुल नहीं हैं, यह मैं कैसे मान लूं ! आपकी सूरत वही है, जो राहुल जी की है। शायद आपकी आस्था बौद्ध धर्म पर नहीं रही।"

"श्राविके, मैं सत्य ही राहुल अथवा यशोधर नहीं हूँ। मेरा नाम विनोद है।"

"आप क्यों धोखा देते हैं ?"

"किस प्रकार आपको विश्वास दिलाऊँ कि मैं यशोधर नहीं, विनोद हूँ।"

इसी समय मणिमाला किसी कार्यवश उधर से निकली। चिनचुन को देखते ही कहा—"आइए चिनचुन जी !"

चिनचुन ने कहा—' पहले आप हमारा विवाद तय कीजिए । यद्यपि कभी निकट से नहीं देखा, किन्तु राहुल जी को मैं भली भाँति पहचानती हूँ । देखती हूँ कि इन्होंने अपने वेष के साथ अपना नाम भी बदल दिया है ।"

मणिमाला समझ गई कि विनोद को देख कर उसे यशोधर का भ्रम हुआ है । हँसते हुए कहा —"यह मेरा बड़ा पुत्र विनोद है । मेरे छोटे पुत्र यशोधर ने दीक्षा ली है । दोनों जुड़वाँ भाई हैं । प्राय: सबको पहले-पहल भ्रम हो जाता है । दोनों की शक्ल-शूरत एक है, केवल इतना अन्तर है कि विनोद के दाहिने कपोल पर एक छोटा सा तिल है ।"

"अच्छा, यह मुझे मालूम नहीं था ।"

विनोद ने सहास्य कहा—"अब तो आपको विश्वास हो गया कि मैं राहुल नहीं विनोद हूँ । अच्छा, नमस्कार ।"

यह कह कर विनोद वायुवेग से चला गया ।

मणिमाला ने चिनचुन को अन्दर आने के लिए आमन्त्रित किया ।

अन्दर के एक कमरे में दोनों को बैठाने के पश्चात् मणिमाला ने कहा—"चिनचुन जी, क्या आप पुनर्जन्म में विश्वास करती है ?"

"क्यों नहीं, बौद्ध धर्म आत्मा के आवागमन सिद्धाँत को प्रतिपादित करता है । यह क्रिया उस समय तक बराबर जारी रहेगी, जब तक आत्मा निर्वाण पद को प्राप्त नहीं करती है । आपका क्या विचार है ?"

"हिन्दू होने के नाते मैं भी इस पर विश्वास करती हूँ । प्रत्येक मानव जीवन एक शृङ्खला की भाँति है जो जन्मों की कड़ियों से जुड़ कर बनी है ।"

"जी हाँ, यहीं पर हिन्दू तथा बौद्ध धर्म में साम्य है ।"

"किन्तु मेरा ऐसा विचार है कि हिन्दू धर्म की प्रतिक्रिया रूप में बौद्ध धर्म का जन्म हुआ है ।"

"यह कैसे ! शायद आप सोचती हैं कि बौद्ध धर्म का उद्गम स्थान भारत है, इसीलिये वह इसकी एक शाखा है ; परन्तु तथ्य यह नहीं है ।"

"इसके लिए ऐतिहासिक प्रमाण हैं, केवल कल्पना नहीं है । जब जनता ब्राह्मणों के वैदिक कृत्यों से ऊब उठी, जब नगरों तथा ग्रामों के चौराहे पशुओं

की बलि के रक्त से प्रतिदिन रंजित होने लगे, तब इनके विरुद्ध प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था, और वही बौद्ध धर्म के रूप में प्रकट हुई ।"

"संभव है कि ऐसा ही हो, मैं इस विषय में कुछ नहीं जानती । आपने सहसा पुनर्जन्म का प्रश्न कैसे किया ?"

"मेरे यहाँ तिब्बत के एक मठ के पुजारी का पुनर्जन्म हुआ है ।"

"आप क्या कहती हैं ?"

"हाँ, मैं जो कुछ कहती हूँ, वह नितान्त सत्य है । मेरी ननँद का लड़का आनन्द पहले जन्म में एक मठ का पुजारी लामा था । यह आज प्रमाणित हो गया है ।"

मणिमाला ने प्रातःकाल की घटना का साँगोपाँग वर्णन किया । फिर नागार्जुन के आने तथा आनन्द के पूर्व जीवन पर प्रकाश डालने की बात भी बताई ।

कथा सुनकर चिनचुन तथा ली सूंग दोनों चकित हो गईं ।

चिनचुन ने कहा—"आज तक ऐसी घटना सुनने में नहीं आई । मनुष्य पूर्व जन्म भूल जाता है, फिर कैसे इस बालक को यह याद आया ।"

मणिमाला ने उत्तर दिया— "यह एक असाधारण घटना अवश्य है; किन्तु असम्भव नहीं । मानव मस्तिष्क ब्राह्मांड का संक्षिप्तीकरण है, जिनमें अनन्त शिरायें अनन्त कोष्ठों में व्याप्त हैं । इन कोष्ठों की शक्ति का ज्ञान अभी तक मनुष्य नहीं पा सका है । संभव है कि इन्हीं कोष्ठों में कोई कोष्ठ ऐसा हो, जिनमें पूर्वजन्म की क्रियायें सन्निहित रहती हों । जब किसी आकस्मिक घटना से उस कोष्ठ की शिरा चैतन्य हो जाती है, तब मनुष्य को पूर्व जन्म का स्मरण हो आता है ।"

"किन्तु प्रत्येक मानव का मस्तिष्क प्रायः एक ही प्रकार का होता है, तब किसी व्यक्ति विशेष को क्यों पुनर्जन्म याद पड़ता है । सबको अपने-अपने पूर्वजन्मों का ज्ञान होना चाहिए !"

"जहाँ तक मस्तिष्क की बनावट का सवाल है, वहाँ एकरूपता है । शक्ति में अवश्य भेद होगा, क्योंकि जैसे सभी शरीर से बलवान उत्पन्न नहीं होते, वैसे ही मस्तिष्क की शक्ति भी एक समान नहीं होती ।"

"किन्तु कोष्ठ और शिरायें तो एक समान होती होंगी।"

"हाँ, वह तो मैं पहले स्वीकार कर चुकी हूँ कि उनकी प्राकृतिक बनावट समान होती है, अन्तर केवल शक्ति में होता है। यह भी विचारणीय है कि पूर्व-जन्मों का ज्ञान यदि कहीं प्रकट हुआ तो वह बालकों में ही हुआ है, अर्थात् जिनकी ज्ञानशक्ति वर्तमान समय के वातावरण से पुष्ट नहीं हुई है। वर्तमान जगत की छाया पुराने जीवन के ज्ञान को आच्छन्न कर लेती है, इसलिये बड़ी उम्र के बालक अथवा मनुष्य उसको नहीं जान पाते। प्रकृति ने यह नियम बनाकर मनुष्य को वर्तमान जीवन सुख से भोगने के लिए छूट दे दी है। पुराने जीवन की स्मृतियां सुखद भी हो सकती हैं, और दुखद भी। उनके पचड़े में फँसने से वर्तमान जीवन सदैव विकारग्रस्त ही होगा। इसीलिए प्रकृति ने पूर्व जन्म जानने की व्यवस्था साधारण रूप में नहीं की है।"

"क्या आप विश्वास करती हैं कि यह बालक अपने पहले जन्म में जोरवाँग मठ का पुजारी था ?"

"हाँ, यह तो सौभाग्य से प्रमाणित भी हो गया है। जोरवाँग मठ के वर्तमान पुजारी बासबा इत्तिफ़ाक़ से यहाँ आये हुए हैं। वह कल आनन्द को देखने आयेंगे। हमने, आनन्द के उन शब्दों को जो वह वर्तमान जगत के वातावरण से अलग होकर एक प्रकार की समाधि की अवस्था में, कह रहा था टेप-रिकार्डर में भर लिए हैं। जब उनको सुनाया गया, तब उन्होंने बखूबी पहिचान लिया कि वे शब्द उनके गुरू के हैं। उन्होंने यहाँ तक बताया कि यह उनके उस अंतिम व्याख्यान अथवा उपदेश का खंड है, जो उन्होंने शरीर त्यागने के पूर्व उनको सम्बोधित करते हुए कहा था।"

"आनन्द तिब्बती भाषा में बोलता होगा।"

"हाँ वह तिब्बती भाषा में बोल रहा था। बासबा उसको तुरन्त ही समझ गये थे। तुमको मालूम है कि मेरा एक लड़का बौद्ध भिक्षु हो गया है।"

"जी हाँ जानती हूँ। उनसे मिलाने के लिए मैं अपनी सखी ली-सुंग को लाई थी ! यह उनके दर्शन करना चाहती थी।"

"आपके आने के कुछ देर पहले वह भदंत नागार्जुन को लेकर आया था,

और आनन्द की माता को बहुत समझा-बुझाकर उन्होंने आनन्द को दिखाने के लिए राजी किया है। वह पहले किसी प्रकार उसको बासबा को नहीं दिखाना चाहती थीं, क्योंकि उन्हें भय है कि वह कहीं उसे उनसे छीन न लेवे।"

"भय उनका अनुचित नहीं है। तिब्बती लामा विश्वास योग्य नहीं होते।"

"आप ऐसा कहती हैं ?"

"हाँ मैं इसलिए कहती हूँ कि मैं आप लोगों को प्यार करती हूँ। हम लोग चीनी हैं, इन तिब्बती लामाओं की हम भली-भाँति समझती हैं इन लोगों ने तिब्बत की प्राकृतिक सम्पत्ति पर अधिकार जमाकर अन्य सभी निवासियों को वंचित कर दिया है। चूंकि लामा लोग सब प्रकार के अधिकार तथा सम्पत्ति अपने हाथ में रखे हैं, इसीलिए तिब्बत के निवासी अधिकतर लामा धर्म स्वीकार कर सुख से जीवन व्यतीत करने का लाइसेन्स प्राप्त करते हैं।"

"क्या तिब्बत में लामाओं के अतिरिक्त कोई अन्य जैसे व्यापारी, किसान आदि नहीं हैं ?"

"व्यापारी मात्र लामा हैं, क्योंकि उनके पास सम्पत्ति होती है। किसान और चरवाहे, हैं जो लामाओं के दास होते, हैं। लामा उनसे खेती करवा कर उपज स्वयं लेते है, भेड़ों को चरवाहे चराते हैं लेकिन वे होती हैं लामाओं की। इन लोगों ने जिस प्रकार उस देश के भोले निवासियों का शोषण किया है वह इतिहास में अद्वितीय है।"

"आप स्वयं बौद्ध होती हुई, लामाओं के विरुद्ध हैं ?"

"हाँ मनुष्य के नाते होना ही पड़ता है। हम बौद्ध हैं, किन्तु लामाओं की संस्कृति उनके अत्याचार का विरोध भी करती हैं, जो अहिंसा के सिद्धान्तों के विपरीत है।"

"यशोधर तिब्बत जाने का विचार कर रहा है, क्या उसको वहाँ न जानें दूँ ?"

"मैं तो यही राय दूँगी। तिब्बती लामाओं को यन्त्र, तन्त्र, मन्त्र का ज्ञान विशेष रूप से होता है। वह अपनी शक्ति से मनुष्य को अपना दास बना लेते हैं।"

"क्या यह सत्य है ?"

"सत्य या असत्य का निर्णय नहीं कर सकती, क्योंकि मुझे व्यक्तिगत अनुभव कभी नहीं हुआ। जो उनके विषय में सुना है, वह मैंने आप से बयान किया।"

"इसी समय गायत्री ने आनन्द के साथ प्रवेश किया। वह भिक्षुणियों को देखकर चौंकी, और उलटे पैर आनन्द को लेकर भागी। मणिमाला उसकी भीरुता देख कर हँस पड़ी।"

"चिनचुन ने पूछा—"आप हँस क्यों रही हैं ? क्या मेरी बात पर विश्वास नहीं होता ?"

"नहीं, यह बात नहीं है। जिस बालक आनन्द का जिक्र मैंने किया है, उसी को लेकर उसकी माँ यहाँ आ रही थी, किन्तु तुम लोगों को देख कर वह भयभीत होकर भाग गयी। उसकी भीरुता देखकर मुझे हँसी आ गई।"

"मुझसे उन्हें क्यों भय हुआ ?"

"आपसे नहीं, आपके भिक्षुणी वेष से भय हुआ है। उन्होंने समझा होगा कि आप लोग शायद उस बालक को लेने आई हैं।"

"चिनचुन और लीसूंग भी हँसने लगी।"

इसी समय विनोद ने आकर कहा—"बुआजी अपने घर चली गई हैं। वह आपसे विदा माँगने आ रही थीं किन्तु इन लोगों को देख कर वह एक क्षण नहीं रुकी, और आनन्द को लेकर चली गई।"

यह कहकर, विनोद हँसने लगा, चिनचुन आदि भी उसके साथ हँसने लगीं।"

११

बासबा के मन की इच्छा पूर्ण न हो सकी। गायत्री अपने पति तथा पुत्र के साथ किसी अनजानी जगह जाकर अज्ञातवास करने लगी। मणिमाला तथा

अविनाश बाबू भी उसकी छिपने की जगह को न जान सके। पूछ-ताछ से केवल इतना ज्ञात हुआ कि अविनाश बाबू के घर से आने के पश्चात वह अपने पति श्यामसुन्दर के साथ उसी समय किसी को बिना कुछ बताए चली गई। यकायक इस प्रकार चले जाने से सभी चिन्तित हुए, किन्तु मणिमाला और अविनाश बाबू ने अधिक खोज खबर नहीं ली।

एक दिन मणिमाला ने हँसते-हँसते कहा—"अभी तक उन लोगों का कोई पत्र नहीं आया, इससे मालूम होता है कि उनका विश्वास हमारे ऊपर से भी उठ गया है। शायद गायत्री दीदी हमको भी इन बौद्ध लामाओं के षडयन्त्र में शामिल समझती हैं।

अविनाश बाबू मुस्कराये लेकिन उत्तर कुछ नहीं दिया।

मणिमाला ने फिर कहा—"उस दिन चिनचुन लामाओं की बहुत बुराई कर रही थी। क्या उसके कथन में कुछ सत्यता हो सकती है?"

अविनाश बाबू ने उत्तर दिया—"हाँ, इसके कथन में बहुत कुछ सत्यता है। तिब्बत केवल मध्य-युगीन ही नहीं, वरन् प्राचीनतम रूढ़ि का पोषक है। संभव है कि इनकी धार्मिक चेतना में कुछ तत्व हो, परन्तु यह निर्विवाद है कि उस देश में मनुष्यों का शोषण बुरी तरह से होता है। शोषण कभी शाश्वत नहीं चल सकता, उसकी भी एक आयु होती है। संसार हमेशा करवट बदलता है। मेरा ऐसा अनुमान है कि शीघ्र ही तिब्बत में कोई क्रान्ति होने वाली है। जिसमें पुरातन शोषण का अन्त होकर रहेगा।"

"चीन के अतिरिक्त और कौन देश उस ओर देखेगा?"

"हाँ तुम्हारा अनुमान ठीक है। तिब्बत सदैव तीन राष्ट्रों के साथ पैंतरे बदलता रहा है—चीन, रूस, और भारत से। रूस और भारत तो बहुत पीछे तिब्बत के रंगमंच पर आए, किन्तु चीन से सदैव उनका समर होता रहा। कभी चीन उस पर अपना आधिपत्य जमा लेता और कभी वह उसके शिकंजे से निकल जाता। किन्तु चीन ने अपनी प्रभु-सत्ता का दावा हमेशा बनाये रखा।"

"अभी-अभी भारत ने भी चीन की प्रभु-सत्ता तिब्बत पर स्वीकार कर ली

है, यद्यपि उसकी भीतरी शासन स्वतन्त्रता को दोनों राष्ट्रों ने समान रूप से माना है।"

"परन्तु मेरी समझ में भारत ने यह बहुत बड़ी गलती की है। भारत की सुरक्षा की दृष्टि से यह आवश्यक था कि तिब्बत को पूर्ण स्वतन्त्र मान कर उसे राष्ट्रसंघ का सदस्य बनवा देता।"

"इससे चीन रुष्ट हो जाता और पंचशील के सिद्धांत न प्रतिपादित होते। चीन को प्रसन्न रखने के लिए यह आवश्यक था कि भारत तिब्बत पर चीन की प्रभुसत्ता स्वीकार करे। इसके अतिरिक्त यह भारत की घोषित नीति के विरुद्ध होता।"

"मुझें तो ऐसा प्रतीत होता है कि एक दिन इससे भारत की सुरक्षा ख़तरे में पड जायगी। चीन की जनसंख्या जो बराबर बढ़ रही है, संसार के लिये ख़तरा होकर एक दिन रहेगी। नवोदित राष्ट्र की उमंगें उसी भाँति बहती हैं जैसे पहाड़ों में बरसात के बाद नालों–नदियों का जल बहता है. उनका वह वेग कितना खतरनाक़ होता है!"

"इस दृष्टि से क्यों नहीं देखते कि चीन और भारत सम्बद्ध होकर शान्ति को स्थायित्व दे सकते हैं।"

"परन्तु क्या अहिंसा और हिंसा में गठबन्धन हो सकता है? जल और अग्नि में क्या मित्रता हो सकती है?"

"पंचशील का आधार क्या दोनों को मित्रता में नहीं बाँध सकता?"

"मुझे तो इसमें कोई तत्व नहीं दीखता। लोहे को लोहा ही काटता है, नवनीत नहीं"

"तुम्हारा रुख तो हमेशा उलटी दिशा में रहता है।"

इसी समय यशोधर ने आकर कहा—"बुआ जी का पता लग गया। महन्त बासबा ने दिव्य दृष्टि से पता लगा लिया कि वह कलकत्ता में है।"

मणिमाला और अविनाश बाबू ने एक साथ कहा—"क्या कहते हो?"

यशोधर ने गम्भीरता के साथ कहा —"मैं सत्य कह रहा हूँ। आज प्रातः-काल महन्त बासबा समाधिस्थ हुए, और जब उनकी समाधि भंग हुई तो उन्होंने

बताया कि श्राविका गायत्री अपने पति तथा पुत्र के साथ कलकत्ता के एक होटल में ठहरी है।"

"इसका निर्णय कैसे हो ?"

"भैया विनोद ने निर्णय भी कर लिया। उन्होंने उस होटल में ट्रंककाल कर बुआ जी से वार्त्तालाप भी कर लिया है।"

"यह तो बड़े आश्चर्य की बात है।" अविनाश बाबू ने कहा।

"अवश्य महन्त बासबा कोई सिद्ध पुरुष मालूम होता है। आज प्रात:काल जब भदंत जी ने कहा कि श्राविका गायत्री का कोई समाचार नहीं मिल रहा है, तब बासबा मुस्कराते हुए बोले –"मैं उसके रहने का पता बता सकता हूँ।" भदंत जी ने पूछा–"यदि आप बता सकते हैं तो बताइये, मैं उनको समझा-बुझा कर ले आऊँ।" बासबा ने स्वीकार किया, और वह तुरन्त समाधिस्थ हो गए। थोड़ी देर बाद समाधि भंग होने पर उन्होंने बता दिया।"

"उस समय विनोद कहाँ था ?"

"वह भी मेरे साथ वहीं बैठे थे। बासबा से उन्होंने पूछा था कि होटल का क्या नाम है। उसने वह भी बता दिया। विनोद भैया वहाँ से उठ कर अपने एक मित्र के यहाँ गये, तथा वहाँ से ट्रंककाल किया। बासबा का कथन सत्य निकला, वह वहीं ठहरी हुई हैं।"

"विनोद कहाँ है ?"

"रास्ते में उनकी भेंट एक चीनी से होगई, और वह उन्हें अपने साथ ले गया।"

"वह चीनी कौन था ?"

"हम लोग उसको जानते हैं, ज्ञानवापी पर उसकी जूतों की दूकान है। उसका नाम चाउचिन है। उसकी लड़की ली-सूंग ने अपनी सखी चिनचुन के साथ दीक्षा ली है।"

"हाँ वह उस दिन चिनचुन के साथ आई थी, जिस दिन गायत्री दीदी आनन्द को लेकर चली गईं थी। दीदी उनको देख कर इतनी भयभीत हो गईं थी, कि मुझसे बिना मिले चली गई।"

"चाउचिन क्यों विनोद को बुला कर ले गया ?" अविनाश बाबू ने पूछा।

"मैं नहीं बता सकता। मैंने केवल इतना सुना कि उसके घर पर कोई राजनीतिक संगठन की बैठक होने वाली है, उसमें भाग लेने के लिए वह उन्हें ले गया है।"

"विनोद कम्यूनिस्ट हो रहा है।" मणिमाला ने बीच में कहा।

"इसमें क्या दोष है। यह तो अपनी-अपनी विचारधारा है, और अपना-अपना विश्वास।"

"तुम तो उसका पक्ष लोगे ही, क्योंकि तुम्हारे विचार भी वैसे ही हैं।"

"जिस प्रकार तुम काँग्रेसी विचार की हो, उसी प्रकार मैं कम्युनिस्ट विचारों का हूँ। तुम हृदय परिवर्तन से सामाजिक बुराइयों का नाश करना विचारती हो, और मैं उनके विघटन से। हमारा मत है कि बुराई को जड़मूल से नाश करने के लिए आवश्यक है कि जिन-जिन में वह बुराई हो, उनका नाम निशान मिटा दिया जाय। जब वृक्ष का उन्मूलन हो जायगा, तब विषफल कहाँ लगेंगे ? तुम सोचती हो कि बुराई के वृक्ष को पनपने दिया जाय, तथा वाह्यिक उपचारों से विषफलों का लगना बन्द किया जाय।"

"वृक्ष की मिसाल जीवित मनुष्यों से देना असंगत है। वृक्ष की अपनी कोई क्रिया नहीं है। उसके विचार शक्ति नहीं होती, किन्तु मनुष्य में भलाई-बुराई जानने की शक्ति है, उसमें ज्ञान है, कर्त्तव्य की चेतना है; इसलिए जो विचार-धारा बुराई की ओर प्रवाहित हो रही है, वह समझाने-बुझाने से, दायित्व का भार डालने से भलाई की ओर मोड़ी जा सकती है। वृक्ष, अचेतन है, और मनुष्य चेतन !"

"परन्तु कर्त्तव्य का सम्यक ज्ञान बिना शिक्षा के नहीं होता, और दायित्व का ज्ञान बिना भय के नहीं होता। मानव को भय ही सन्मार्ग पर चलाता है। यदि मनुष्य के अपराधों की रोक थाम के लिये कठोर दण्डों की व्यवस्था न हो, तब अपराधों का उन्मूलन नहीं हो सकता। पुराने समय में चोरों के हाथ काट लिये जाते थे, इसलिए चोरियाँ नहीं होती थीं। आज दण्ड व्यवस्था में शिथि-लता है, इसलिए अपराध चारों ओर घास की भाँति पनप रहे हैं।"

"आपका विश्वास मानव की प्रकृत सद्भावनाओं पर नहीं है।"

"सद्भावनाओं का प्रस्फुटन परिस्थितियों से होता है। मानव में सत् तथा असत् भावनाएँ अनुकूल अवसर तथा योग पाकर पनपती, फूलती, फलती हैं। इसीलिए समाज ने नियम बनाये हैं, और उन नियमों के उल्लंघन पर दंड व्यवस्था नियत की है। नियमों तथा दंडों के अभाव में मनुष्य मनमाना करने लगता है— और वह मनमानापन उसकी स्वार्थ-वृत्ति से परिचालित होता है। प्रत्येक मनुष्य के स्वार्थ भिन्न-भिन्न हैं। जब तक मनुष्य अपने निजी स्वार्थ को समाज के स्वार्थ में समाविष्ट नहीं करेगा, तब तक एकरूपता नहीं आवेगी, और समाज विश्रृङ्खलित रहेगा। विश्रृङ्खलित समाज में किसी कार्य के पूर्ण होने की संभावना कम है– लगभग नहीं के बराबर है।"

"तुमसे बात करने के अर्थ है, बहस करना। विनोद कम्यूनिस्ट हो रहा है, और तुम उसको बढ़ावा देते हो, यह मुझे पसन्द नहीं है।"

"मैं तुम्हारे किसी काम में बाधा नहीं डालता; तुम क्यों नहीं विनोद में कांग्रेसी विचार भर कर उसको अपना अनुयायी बनाती हो।"

"तुम ही तो मेरे पुत्र यशोधर को तिब्बत भेज रहे हो। क्यों–? भारतीय ग्रन्थों को लाने के लिए! उस बालक को शेर की माँद में प्रवेश करा रहे हो।"

"मैंने तुम्हारी अनुमति पहले ले ली थी। मैं पुरानी संस्कृति का उतना प्रेमी नहीं हूँ, जितनी तुम हो। अब जब सब प्रबन्ध हो गया, तब तुम उसके भेजने का भार मेरे ऊपर डाल रही हो।"

"मैं क्या जानती थी कि तिब्बती लामाओं में असाधारण शक्ति होती है। वे काशी में बैठे-बैठे कलकत्ता का हाल जान लेते हैं। यशोधर जब यहाँ से उन पुस्तकों को लेकर भारत के लिए प्रस्थान करेगा, तब वह भेद उनसे छिपा नहीं रह सकता।"

"मैं चोरी करने को नहीं कहता। मैंने उसे बौद्ध भिक्षु की दीक्षा इसीलिए दिलाई है कि जिसमें यह उनका विश्वास प्राप्त कर उन पुस्तकों के भंडार तक पहुँच कर उनका अध्ययन कर सके। शिष्य हो कर जो वस्तु प्राप्त की जाती है, वह चोरी नहीं है।"

"किन्तु इसमें देश की और हमारी क्या भलाई होगी?"

"भारत ने अतीत में कितनी उन्नति की थी, इसका पता नहीं चलता, क्योंकि कई हज़ार वर्षों का साहित्य यहाँ नष्ट कर दिया गया है। तिब्बत में कुछ सुरक्षित है क्योंकि वहाँ पर परदेशियों के बहुत आक्रमण नहीं हुए और यदि कुछ हुए भी तो आक्रामकों ने धन लूटा, किन्तु साहित्य नष्ट नहीं किया। मुझे उस प्राचीन साहित्य के जानने की अभिलाषा अवश्य है; क्योंकि पुरातत्व मेरा प्रिय विषय है। एक समय तुमको भी उससे प्रेम था, तथा उसके जानने की जिज्ञासा थी, इसीलिये हमने यह रास्ता अख्त्यार किया था। अब यदि तुम्हारी इच्छा नहीं है तो उसे मत भेजो। अभी क्या बिगड़ा है!"

"अब यशोधर कब इसे स्वीकार करेगा। उसके मन में जब एक विचार भर गया है, तब उसको निकालना, अथवा तिब्बत जाने से विरत करना दुष्कर है।"

"तब क्यों व्यर्थ का प्रपंच करती हो?"

"एक गायत्री दीदी हैं, जो अपनी सन्तान को बचाने के लिए छिपती फिरती हैं, और एक मैं हूँ, जो इन मूर्खों की टोली में कष्ट सहने के लिए उसे भेज रही हूँ।"

"तुम्हारी क्रांतिकारी वृत्ति कुँटित हो गई है, जो स्वतंत्र भारत की महिला का प्रथम कर्त्तव्य होना चाहिए। तुम ईश्वर पर विश्वास करती हो, वह अवश्य उसकी सहायता करेगा।"

"बासबा अब कोई नया उत्पात न खड़ा करे!"

"वह क्या?"

"शायद मन्त्र बल से गायत्री दीदी को मुग्ध कर आनन्द को छीन ले।"

"यह कुछ नहीं होगा। राजशक्ति के सन्मुख मंत्र बल नहीं चलता यदि वह ऐसा करेगा तो वह जोरवाँग मठ वापस नहीं जा सकेगा--वह भारत की किसी जेल में दिखाई देगा। यौगिक शक्तियों से दूर की वस्तुयें देखी जा सकती हैं, उसी का भौतिक रूप टेलीविजन है, जो यन्त्रों द्वारा चालित होता है। यौगिक शक्तियाँ कुछ ही मनुष्यों पर और वह भी अल्प काल के लिए हावी हो सकती हैं, मनुष्यों के समूह पर उनका कोई असर नहीं होता। राजतंत्र सामूहिक शक्ति का रूप है, इसलिए वह उससे पराजित नहीं हो सकता।"

"विनोद आवे तो मैं भी गायत्री दीदी से ट्रंककाल कर के बातें करूँ।"

"यशोधर तो अभी यहीं था, उसको भी होटल का नाम पता मालूम होगा। उससे पूछ कर बातें कर लो।"

"हम लोगों की बहस से ऊबकर वह कहीं चला गया, देखूँ शायद बाहर हो।"

यह कह कर वह यशोधर को ढूँढ़ने के लिए चली गई। अविनाश बाबू ध्यानमग्न हो गए।

१२

चाउचिन की दूकान का ऊपर वाला कमरा कम्यूनिस्ट पार्टी की गुप्त बैठकों के लिए नियत था। उसमें वही सदस्य बुलाए जाते थे, जिन पर चाउ-चिन तथा हो-चीन का विश्वास होता था और चीन की कम्यूनिस्ट पार्टी का जो समर्थन करते थे। दिल्ली, कलिम्पोंग, बनारस, कलकत्ता उनके प्रमुख क्षेत्र थे, और वह अपना संगठन देशव्यापी बनाना चाहते थे।

चाउचिन ने जब विनोद के साथ उस कमरे में प्रवेश किया, उस समय वहाँ केवल चिनचुन और ली-सूँग थी। रास्ते में चाउचिन ने विनोद से कहा था कि कई प्रतिष्ठित चीनी कम्युनिस्ट आए हुए हैं, और वे विनोद से मिलना चाहते हैं, परन्तु जब विनोद ने देखा कि कमरे में चिनचुन तथा ली-सूँग के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है, उसने प्रश्न भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा। चाउचिन ने आशय समझ कर ली-सूँग से पूछा—"होचीन तथा दूसरे सदस्य कहाँ हैं?"

ली-सूँग और चिनचुन मुग्ध दृष्टि से विनोद को देख रही थीं। लीसूँग

ने कहा–"होचीन किसी अत्यन्त आवश्यक कार्य से काँगकुंग के साथ कहीं गए हैं। थोड़ी देर में आने को कह गए हैं।"

फिर वह बिना संकोच के विनोद का हाथ पकड़ते हुए बोली—"आइए, आप तो बैठिए, वे लोग आते ही होंगे।" इसी बीच चिनचुन उसके दूसरी ओर आ गई और सोफा पर बैठने का संकेत किया। चाउचिन ने मानों अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया हो, इसलिये उनकी तरफ देखता हुआ वह बोला—"विनोद बाबू आप बैठिए, मैं उन लोगों को ढूँढ़कर अपने साथ लाता हूँ।" फिर लीसूँग से कहा—"तब तक तुम दोनों इनका मनोरंजन करो।"

यह कह कर चाउचिन चला गया। उसके जाते ही लीसूँग भी विनोद के बगल में बैठ गई।

इस समय विनोद की वही दशा थी, 'जिमि दशनन महँ जीभ विचारी।' दो सुन्दरियों से घिरा हुआ वह संकुचित बैठा था।

चिनचुन ने उसके संकोच को दूर करने के प्रयत्न में कहा—"वाह विनोद बाबू, आप बिल्कुल कैदी की तरह धरे-बाँधे हुए बैठे हैं।"

विनोद ने अपनी झेंप मिटाते हुए कहा—"नहीं, नहीं, मैं ठीक हूँ।"

उसका उत्तर सुनकर चिनचुन हँस पड़ी, मानों उसकी बेबसी से उसे प्रसन्नता हुई हो।

लीसूँग ने मुस्कराते हुए कहा—"उस दिन आपके घर पर हम दोनों बड़ी हैरत में पड़ गई थीं। हमें नहीं मालूम था कि आप और राहुल जी यमज भाई हैं।"

चिनचुन ने आँखों के संकेत से लीसूँग को किसी बात की याद दिलाई, और उसके उठ जाने पर वह कुछ और विनोद के समीप सरक कर बैठ गई। लीसूँग के दूसरे कमरे में जाते ही, उसने विनोद को धक्का देकर सोफा की पीठ से सटा दिया, और सहास्य बोली—"आराम से बैठिए आप संकोच क्यों करते हैं! हम लोग कम्यूनिस्ट हैं। कम्यूनिस्टों के बीच आपस से कोई भेद-भाव नहीं होता, किसी तरह का परदा भी नहीं होता। स्त्री-पुरुष में कोई अन्तर नहीं माना जाता।"

"मैं कम्यूनिस्ट अवश्य हूँ, लेकिन आप तो बौद्ध भिक्षुणी हो गई हैं !"

"उससे क्या मेरे विचारों में कोई अन्तर आता है ! गृहस्थ की पोशाक न पहनी, भिक्षुणी की पोशाक पहनी ।"

"तब आपने क्या सचमुच दीक्षा नहीं ली ?"

"दीक्षा तो अवश्य ली है, किन्तु उससे क्या हुआ । हम धर्म में एक क्रान्ति उत्पन्न करना चाहती हैं । उसको कम्यूनिस्टी रूप देना चाहती हैं ।"

"यह कैसे संभव है । बौद्ध धर्म, कर्म की प्रणाली पर विश्वास करता है, जीव का आवागमन मानता है, परन्तु कम्यूनिस्ट किसी धर्म को नहीं मानते ।"

"बौद्ध धर्म भी महायान, हीनयान आदि शाखाओं में विभक्त है । लामा बौद्ध मतावलम्बी होते हुए उससे बिल्कुल भिन्न है, इसी प्रकार हम बौद्ध धर्म में कम्यूनिस्टी विचारों का प्रवेश कराना चाहती हैं । इसीलिए मैंने अपने केश नहीं मुड़ाये ।"

"भला यह कैसे संभव है ? संसार के कम्यूनिस्ट कब इसे स्वीकार करेंगे।"

"संसार के कम्यूनिस्टों से हमें मतलब नहीं है, हम तो चीनी कम्यूनिस्ट हैं।"

"इससे क्या मूल सिद्धान्तों में परिवर्तन हो सकता है ?"

"मूल सिद्धान्तों को अक्षुण्ण रखते हुए भी हम उसकी प्रणाली में अपने विचारों के अनुसार परिवर्तन कर सकते हैं ।"

"कम्यूनी सिद्धान्त अटल हैं, अपरिवर्तनीय है ।"

"वस्तुत: कम्यूनी सिद्धान्त पूँजीवादी सिद्धान्तों के विरोध में बने हैं । उनका वह रूप कायम रखते हुए हम उनकी कार्य प्रणाली में देश, काल, पात्र के अनुसार परिवर्तन कर सकते हैं । यदि किसी विचारधारा में लचक नहीं होगी, तो वह टूट जायगी । परिस्थितियों के अनुसार उसमें आवश्यक परिवर्तन करने पड़ते हैं, नहीं तो उनकी व्यापकता नष्ट होती है ।"

"मार्क्सवादी इस विचार को प्रश्रय नहीं देते ।"

"मार्क्स ने जो सिद्धान्त उन्नीसवीं शताब्दी में बनाए थे, वह उस समय के समाज के अनुसार थे और विशेष रूप से यूरोप में प्रचलित पूँजीवादी व्यवस्था को लक्ष्य कर बनाये गये थे, किन्तु संसार यूरोप से कहीं बड़ा है ।

जब उसको विश्वव्यापी बनाना है, तो उसमें परिवर्तन वाँछनीय है।"

"किन्तु जहाँ हमने एक बार परिवर्तन करने की बात मानी, वहाँ एक दिन ऐसा आवेगा जब उनका असली रूप नष्ट हो जायगा।"

"यह भय निराधार है। देखिए रूस को भी अपने सिद्धान्तों में विवश होकर परिवर्तन करना पड़ा।"

"कैसे ?"

"इस प्रकार कि कम्यूनी विचारधारा के अनुसार युद्ध अनिवार्य है; परन्तु रूस आज कह रहा है कि युद्धों की कोई आवश्यकता नहीं है साम्यवादी सिद्धाँतों के प्रसार के लिए।"

"किन्तु चीन ऐसा नहीं कह रहा है। यहीं पर तो रूसियों से उसका मतभेद है।"

"यह मतभेद इसलिए है कि चीन के सामने उसकी बेतरह बढ़ी हुई आबादी के बसाने का प्रश्न है जबकि रूस के सामने ऐसी परिस्थिति नहीं है। युद्ध के बिना चीन की समस्या हल नहीं हो सकती। उसको अपनी आबादी कहीं न कहीं इस भू-खण्ड पर बसाना है। पूँजीवादी राष्ट्रों का आधिपत्य तमाम दुनियाँ पर है। दक्षिणी अमेरिका, आस्ट्रेलिया, इन्डोनेशिया ऐसे भू-खण्ड हैं, जहाँ चीन की आबादी बस सकती है, परन्तु पूँजीवादी देश उन्हें वहाँ प्रवेश तक नहीं करने देते, बल्कि जो कुछ बस गये हैं—उनको भी निकालने के प्रयत्न होते रहते हैं। हम लोग पीतांग हैं, जैसे प्रकृति ने हमें उनकी दासता के लिए ही बनाया है। श्वेताँग हमसे घृणा करते हैं, यहाँ तक कि हमारी छाया से भागते हैं। इन्हीं कई-एक कारणों से चीन को युद्ध करना अपने अस्तित्व को कायम रखने के तुल्य है।"

"तुम्हारे इस कथन में कुछ सत्यता अवश्य है।"

विनोद की सहानुभूतिक वाणी सुनकर चिनचुन के नेत्र चमकने लगे। उसने विनोद का हाथ इस प्रकार पकड़ लिया, जैसे कोई डूबता हुआ व्यक्ति सहारा देने वाले के हाथ को पकड़ लेता है। विनोद उसके स्पर्श से रोमाञ्चित होने लगा।

चिनचुन उसके मुख के सामने अपना मुख ले जाकर छलछलाये हुए नेत्रों से उसकी आँखों के अन्दर झाँकती हुई बोली—"यह सत्य है पड़ोसी के दुख से पड़ोसी ही कातर होता है। चीन और भारत पड़ोसी हैं। दोनों यूरोप अथवा श्वेतांगों की दासता में बँधे हुए थे। समान स्थिति में रहने वाले एक दूसरों के दुख को यथार्थ रूप में समझते हैं। भारत के सामने भी आबादी का प्रश्न है। उसके निवासियों के लिए भी श्वेतांगों के देशों में प्रवेश निषिद्ध है। यहाँ तक कि उनको लंका से भी निकाला जा रहा है। मजदूरों के रूप में ले जाए गये भारतीय अफ्रीका आदि देशों से निकाले जा रहे हैं। दक्षिणी अफ्रीका यद्यपि वह "कालों का महादेश" कहलाता है, परन्तु वहाँ श्वेतांगों का एकाधिपत्य है। ये विषमतायें क्या बिना युद्ध के दूर हो सकती है ? क्या श्वेतांगों के पराभव के बिना पीतांग या कृष्णांग पनप सकते हैं ?" कहते कहते वह भाव विभोर होकर विनोद के ऊपर गिर-सी पड़ी। मोहक तैल से स्निग्ध उसकी वेणी उसकी ठोढ़ी छूने लगी। विनोद के शरीर में एक तड़ित्प्रवाह वेग से प्रवाहित होने लगा। उसकी दृष्टि सहसा उस कमरे के द्वार पर गई, जहाँ ली सूंग कुछ देर पहले गई थी। द्वार पर पड़ा हुआ परदा उस पार उसको देखने की अनुमति नहीं दे रहा था।

उसने उसका शिर उठाते हुए कहा—"यह क्या कर रही हैं आप ! कहीं कोई आ जाय तो न मालूम क्या अर्थ लगावे ?"

चिनचुन ने उठते हुए कहा—"क्या करूं विनोद बाबू। अपनी आँतरिक पीड़ा का आप में प्रतिबिम्ब देखकर मेरा हृदय छलकने लगा और...... ।"

इसके आगे वह बोल न सकी। उसकी बड़ी-बड़ी आंखें अश्रु-बिन्दुओं में उतराने लगीं।

उच्छ्वास का वेग कुछ धीमा पड़ने पर वह पुनः बोली—"चीनी का यदि कोई सच्चा साथी, उसके दुख में हाथ बटाने वाला, उसकी पीड़ा को अपनी पीड़ा समझने वाला है, तो वह भारतीय है। चीन और भारत की मैत्री कई हजार वर्ष पुरानी है, और यह इतनी उत्तरोत्तर दृढ़ होती गई कि कालचक्र के कितने बवंडरों के आघात सहने पर भी वह आज दिन तक अचल और अडिग

है। दोनों देशों की संस्कृतियाँ अपने-अपने रूप में प्रकटीं, पनपीं और फली हैं, और उनका आदान-प्रदान भी बराबर होता रहा, किन्तु दोनों निःस्वार्थ प्रेमी थे, इसीलिये कभी कोई संघर्ष नहीं हुआ। चीन का आज दिन संसार बैरी है यदि कहीं किसी से उसे सहायता की आशा है तो वह केवल भारत से है।"

कहते-कहते वह पुन: विभोर होकर उसके कन्धे पर लुढ़क गई। उसके अश्रु बुन्दों से विनोद का कंठ भीगने लगा।

विनोद ने उसको अलग करते हुए कहा—"चिनचुन जी, आप अपने को संभालें। सब्र से काम लें। यह आपकी वैयक्तिक वेदना नहीं है‥ ……।"

"व्यक्ति क्या राष्ट्र से भिन्न है विनोद बाबू ! राष्ट्र की शक्ति से ही व्यक्ति शक्त होता है। चीन यदि श्वेतांगों के राष्ट्रों की भाँति शक्त राष्ट्र होता तो क्या उसके निवासियों को अपमान, लाँछना के घूँट पीने पड़ते। क्या आप किसी श्वेतांग रमणी को मेरे समान कातर पा सकते हैं ? श्वेतांगिनी सत्ता के अहंकार से मदमत्त है। एक चीनी नारी के प्रति उनके व्यवहार देखकर आप विस्मित हो जायेंगे। कुत्तों के लिए उनमें प्यार है, सहानुभूति है किन्तु चीनी और भारतीय नारी के प्रति उनमें असीम घृणा है, अनन्त निरादर है; उसका शतांश भी आदर नहीं जितना उनके पालतू जानवरों के लिए होता है। एक श्वेतांग टामी, जो बर्बरता का प्रतीक है, अपने समक्ष कुलीन, सुसंस्कृत चीनी या भारतीय को कीट से भी अधम समझ कर उस पर पदप्रहार करता है क्यों, इसलिए कि उसका राष्ट्र शक्त है, जो उसके जघन्य तथा अमानुषिक कामों के लिये उसकी वकालत करेगा या उसकी रक्षा करेगा।"

चिनचुन के अश्रुओं, उसकी कातर वाणी ने विनोद को द्रवित कर दिया उसका हृदय उसके शब्दों की सत्यता परखने लगा। उसे उनमें कोई अतिशयोक्ति प्रतीत नहीं हुई। उसने उसको सान्त्वना देने के लिए उसका हाथ जो अब उसके स्कन्ध पर आ गया था, पकड़ते हुए कहा—"चिनचुन जी मैं आप की पीड़ा से उतना ही व्यथित हूँ, जितना आप हैं। वास्तव में चीन और भारत दोनों संसार के प्रताड़ित राष्ट्र हैं। श्वेतांगों ने इनका इतना खून चूसा है कि अब वे कंकाल मात्र रह गये हैं।"

चिनचुन ने उसका हाथ दबाते हुए कहा—"किन्तु मैं निराश नहीं होती हूँ। हमारे दोनों देशों की आबादी संसार की जनसंख्या के अर्धांश से अधिक है। इसी आबादी के कारण वे हमारा अस्तित्व मिटा नहीं सके, नहीं तो वे पृथ्वी पर हमारा नाम-निशान न रहने देते। देख लीजिए उनके देशों के आप्रवासिक कानूनों को। वे विशेषकर चीनियों तथा भारतीयों को अपने देश में आने नहीं देते। वे हमसे इतना डरते हैं जितना महामारियों से डरा जाता है। अनेकों बहाने बताकर हमारे उन प्रवासी भाइयों को जो कभी वहाँ मजदूर बना कर जबरिया भेजे गये थे, जब उनकी वहाँ जरूरत थी; आज वे बाहर खदेड़े जा रहे हैं। 'क्यू क्लक्स क्लैन' जैसे संगठन उनकी हस्ती मिटाने के लिए बनाये गये हैं। क्यों विनोद बाबू, जो कुछ मैं कह रही हूँ, क्या वह सत्य नहीं है?" कहते-कहते उसने एक गहरी साँस ली। तप्त श्वास उसके कपोलों पर थिरकने लगी।

विनोद को कहना पड़ा—"सत्य है, नितांत सत्य है।"

चिनचुन ने उसके कानों के समीप अपना मुख ले जाकर धीमे स्वर में कहा—"विनोद बाबू, अब भी हम दोनों राष्ट्र अपना अस्तित्व बनाए रख सकते हैं, यदि चीन और भारत दो शरीर एक प्राण हो जाँय। हमारी सम्मिलित शक्ति को न हाइड्रोजन बम परास्त कर सकते हैं, और न ऐटम बम! हमारी शक्ति अजेय होगी।"

"इसमें क्या सन्देह है!" विनोद को कहना ही पड़ा।

चिनचुन ने पुनः अपना शिर उसके स्कंध पर डाल दिया। उसकी आँखों की बरौनियाँ उसके कपोलों को गुदगुदाने लगीं। उसने तिरछी चितवन से उसे देखते हुए कहा—"यदि चीन और भारत एकता में बँध जाँय तो हमारी सम्मिलित शक्ति की कोई अवहेलना नहीं कर सकता। हमारे सैनिक जिस ओर प्रस्थान करेंगे उधर हमें विजय प्राप्त होगी।"

विनोद के ऊपर रमणी-मोह का मादक नशा छा रहा था। उसने उसके शिर को सहलाते हुए कहा—"ऐसा ही होगा, चिनचुन! मैं अपने सीमित साधनों से तुम्हारी सेवा करने को तैयार हूँ।"

चिनचुन ने हर्ष के साथ लखा कि वह "आपकी" के स्थान पर 'तुम्हारी' शब्द का प्रयोग कर रहा है। उसे आगे बढ़ने का साहस हुआ। वह उसके जानुओं पर अपना शिर रखती हुई बोली "मनुष्य के साधन कभी सीमित नहीं होते, बढ़ाये जाने से बढ़ते हैं। हम चीन के धन-जन से भारत के साधन बढ़ा सकते हैं। भारत की कम्यूनिस्ट पार्टी को चीन से सहानुभूति है। उनमें से छाँट-छाँट कर हम अपने सहायकों की संख्या बढ़ावें। जिन कम्यूनिस्टों को हमारी विचारधारा से सहानुभूति नहीं है, उन्हें हम अपने गुप्त दल में सम्मिलित न करें। तमाम भारत में हम लगभग कई हजार ऐसे कम्यूनिस्ट पा सकते हैं जो हमारे विचारों के अनुसार काम करने को तैयार हों।"

"ठीक है। मैत्री-संघ अपना कार्य कर रहा है, यदि उसकी प्रचार शक्ति बढ़ जाय तो निस्संदेह जनरुचि पर हम काबू पा लेंगे।"

"हम उसके समारोह देश के कोने-कोने में करेंगे। आजकल की युद्ध प्रणाली में प्रचार का विशेष महत्व है। प्राय: आधी विजय तो प्रचार से प्राप्त होजाती है। इसके आगे हमारा एक विशेष कार्यक्रम है। यदि वह पूरा हो जाता है तो फिर भारत तथा चीन में कोई भेद नहीं रह जावेगा।"

यह कहते हुए उसने अपनी विशाल भुजाओं में विनोद की गर्दन भर ली। विनोद पर नशा पूर्णरूप से छा गया था। उसकी विचार शक्ति लोप हो गई।

विनोद ने अस्फुट कंठ से कहा—"यदि ऐसा है तो हम अवश्य उसे पूरा करेंगे। बताओ अपना कार्यक्रम मैं जी-जान से उसमें सहायता दूंगा।"

चिनचुन ने अर्ध निमीलित नेत्रों से उसे देखते हुए कहा—"यदि हम प्रत्येक क्षेत्र से पार्ल्यामेंट की सदस्यता के लिये अपने विशिष्ट दल वालों को खड़ा करें, और मुक्त हस्त होकर धन व्यय करें तथा धुआँधार प्रचार करें तो हमें विश्वास है कि यदि पार्ल्यामेंट की समस्त सीटें नहीं तो अर्धांश से अधिक अवश्य प्राप्त करने में समर्थ होंगे। उस समय हम चीन के अनुकूल सरकार बनाने में सफल हो सकते हैं। इसी प्रकार प्राँतों के चुनावों में भी हम अपना बहुमत बना सकते है। सरकार जब हमारी होगी तब चीन और भारत एक हो जायगा। दोनों देशों की सरकारें सम्मिलित होकर कार्य करेंगी, फिर उनका

मुकाबला करने वाला धूल चाटेगा।"

विनोद ने नशे में झूमते हुए कहा—योजना तो बड़ी सुन्दर तथा सहज है केवल इसके लिए अटूट धन राशि चाहिए। अभी तक यहाँ के निवासी 'वोटाधिकार' का महत्व नहीं समझ सके हैं। वे उसको पाँच-दस रुपयों के मूल्य का एक नोट समझते हैं और वे उसका नक्द करने के लिये तैयार रहते हैं। यदि उनकी इस मूर्खता से लाभ उठाया जाय तो उद्देश्य प्राप्ति सुलभ है।"

"ठीक है। हमारे पास द्रव्य की कभी कमी नहीं होगी, यह मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ।"

इसी समय परदे के पीछे ली-सूँग ने खखारा, और इस प्रकार अपने आने की सूचना दी। चिनचुन क्रोध का नाट्य करती हुई उठ बैठी और विनोद से सरक कर अलग बैठ गई। विनोद का हृदय बड़े वेग से धड़क रहा था। रमणी-मोह के प्रथम प्रहार से वह व्यथित था, उसका मस्तिष्क घूमने लगा। ली-सूंग ने आकर उसके सामने एक गिलास पेश किया, जिससे भीनी सुगन्ध निकल कर वातावरण को सुगन्धित बना रही थी।

विनोद ने बिना सोचे-विचारे अपने मन की ऊष्मा को शान्त करने के लिये उसे पी लिया।

१३

विनोद लालसा के नशे में डूबता-उतराता चलने को उद्यत हुआ। चिनचुन उसे जीने तक पहुँचाने आई, उस समय ली-सूँग पुनः वहाँ से चली गई थी। दो तीन-सीढ़ियाँ नीचे उतरने के पश्चात् विनोद ठहर गया, और लालसा-भरी चितवन से उसे निरखने लगा। चिनचुन का वह हाथ पकड़े था। दोनों एक दूसरे के पंजे को दबा रहे थे। विनोद को आगे बढ़ने का साहस न होता

था। संकोच उसकी प्रवृत्तियों को लगाम लगाए था। चिनचुन भी उसे प्रोत्साहित नहीं कर रही थी, वह जीने की पहली सीढ़ी पर खड़ी थी। विनोद के जीवन में यह पहला अवसर था, जब किसी मायाविनी ने उसे इस प्रकार लुब्ध किया हो। वह अनेकानेक संशयों के भार से दबा जा रहा था। उसने साहस कर चिनचुन का हाथ पकड़ कर घसीटा। झटका लगने से वह डगमगाई, किन्तु जीने के जंगले को पकड़ लेने से वह वहीं खड़ी रही। विनोद असफल होकर कुछ खीझ उठा। चिनचुन उसके मन के भाव को ताड़ गई। उसने मुस्कराते हुए कहा—"अधीर न हो, विनोद बाबू, मैं तुमसे प्रेम करती हूँ। आज से नहीं, उस दिन से जब तुमसे तुम्हारे घर पर मुठभेड़ हुई थी। उसी क्षण अपना दिल तुम्हें दे बैठी थी। प्रथम दर्शन में प्रेम केवल कवियों की कल्पना तक सीमित नहीं है। इस सत्य के जगत में भी उसका अस्तित्व है। अभी समय नहीं है। उपयुक्त अवसर आने दीजिये।" यह कह कर उसका शिर सहलाने लगी।

विनोद ने उसकी हाथ की उँगलियों को अपने अधरों से लगा लिया। चिनचुन ने उसे गुदगुदा कर अपना हाथ खींच लिया, और झूठमूठ बोली—"हां ली-सूंग, मैं अभी आई, विनोद बाबू को बिदा कर अभी एक सेकन्ड में आती हूँ। तब तक तुम गिलास साफ कर डालो।"

जीने पर दो-तीन सीढ़ियाँ नीचे खड़ा हुआ विनोद कमरे को देख नहीं सकता था। उसे चिनचुन के कथन पर विश्वास कर अनुमान करना पड़ा कि ली-सूंग उसकी प्रतीक्षा कर रही हैं। अब अधिक देर तक खड़ा रहना असंभव हो गया। वह एक ही झपाटे में जीने के नीचे उतर आया, किन्तु वेग वहाँ पहुँचकर समाप्त हो गया, और वह खड़ा होकर चिनचुन को देखने लगा। वह आमन्त्रक दृष्टि से देखती हुई मन्द-मन्द मुस्करा रही थी। वह दो-तीन सीढ़ियाँ नीचे उतर कर वहाँ ठहर गई जहाँ पहले विनोद खड़ा था विनोद के मन में आया कि वह पुनः ऊपर चढ़ जावे, किन्तु प्रेम का प्रथम अध्याय आशंकाओं से सराबोर होता है।

चिनचुन ने कहा—"कल कब आओगे।"

विनोद कुछ उत्तर न दे सका। वह उसकी रूप—माधुरी पान करने में

व्यस्त था।

चिनचुन ने पूछा—"क्या नाराज हो गए, जो बोलते नहीं।"

विनोद ने अनुभव किया कि नाराजी शायद उसकी सहायता करे। उसने गम्भीर होकर कहा—"इतनी मेरी शक्ति कहाँ कि मैं नाराज हो सकूँ।" कहते-कहते उसने अपना मुंह फिरा लिया। विनोद को आशा थी कि वह नीचे उतर कर आएगी, और वह एक सीढ़ी नीचे उतरी भी, किन्तु चिनचुन ने पुनः माया का सहारा लिया।

उसने ली-सूँग की काल्पनिक बुलाहट का उत्तर देते हुए कहा—"अरे अभी आती हूँ। इतनी जल्दी क्या पड़ी है।" यह कहकर वह आगे न उतरी।

विनोद को कहना पड़ा—"अच्छा जाइये आपकी सखी घबड़ा रही है।"

"इसके मारे नाक में दम है। मैं तो तंग आ गई। दूसरा कोई बन्दोबस्त करना पड़ेगा, और वह भी बहुत शीघ्र।"

विनोद की म्लान आशा में कुछ ताजगी आई। उसने दूसरा प्रहार किया—"आपके बिना वह क्षण भर नहीं रह सकती। जाइए, जाइए।"

"बोलो कल आओगे ?" चिनचुन ने व्यग्रता दिखलाते हुए पूछा।

"मेरे आने की सम्भावना कम है, क्योंकि आपको अपनी सखियों से कब फुर्सत मिलती है, जो मेरे लिए समय दे सकें ?"

"तुम सचमुच नाराज हो गए। कल दोपहर को आना, मैं इस पुछल्ले से किसी न किसी उपाय से छुटकारा पा लूँगी। तुम्हें मेरे प्यार की सौगन्ध है, नाराज न होना। तुम नहीं जानते मेरे प्रेम की गहराई को। पुरुष ने पाई है कभी नारी के प्रेम की थाह !" कहते-कहते उसने भी मानलीला का प्रसार किया। उसकी आँखों के किनारे अश्रुओं से भर गए।

विनोद का मन कसक उठा। उसने हँसते हुए कहा—"मैं तो मजाक कर रहा था। मैं क्या अब तमसे दूर रह सकता हूँ ? मुझमें अब वह ताकत नहीं है।"

चिनचुन ने व्यग्रवाणी में पुनः पूछा—"तो कल तुम आओगे न ! दोपहर को मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी।"

"जरूर आऊँगा, मैं तो तुम्हारे पास से एक क्षण भर के लिये टलना नहीं चाहता। पहले ही दिन तुमने मुझे मोल ले लिया।"

"देखना, यह सौदा स्थायी है।" यह कहकर वह जितनी सीढ़ियाँ नीचे उतरी थी, उतनी चढ़ कर ऊपर पहुँच गई, किन्तु वह जंगला पकड़ कर नीचे झाँक कर विनोद को देखने लगी, फिर मुस्कराते हुए कहा—"देखो भूलना नहीं, कल दोपहर को जरूर आना, नहीं तो रो-रो कर मैं अपनी जान खो दूँगी।" यह कहते हुए उसने वायु-तरंगों द्वारा अपना प्रेम सन्देश भेजा और कटाक्ष करती हुई अदृश्य हो गई।

विनोद के हृदय में एक झटका-सा लगा, वह क्षण भर के लिये अस्थिर हुआ, और फिर वह भी सड़क पर आ गया। छज्जे पर खड़ी चिनचुन उसके सड़क पर आने की प्रतीक्षा कर रही थी। जाते-जाते विनोद की आँखें ऊपर उठ गईं। चिनचुन मुस्कराई, और रूमाल हिला कर पुन: आने का निमन्त्रण देने लगी। विनोद ने वहाँ अधिक देर ठहरना अनुचित समझा। वह पिछले दो घन्टों की मधुरिमा पर विचार करता हुआ जाने लगा। किन्तु जहां तक चिनचुन दिखाई पड़ती रही, वह जरा-जरा देर में ठहर कर उसे देख लेता था। जब जब विनोद देखता, तब तब वह रूमाल हिला कर पुन. आने का निमन्त्रण देती रही। जब सड़क दूसरी दिशा में मुड़ गई तब वह कमरे के अन्दर चली आई, और उसकी विजयोन्मत्त हँसी से कमरा गूँज उठा।

ली-सूँग ने आकर कहा—"बधाई, अब तो मुँह मीठा करो।"

चिनचुन बराबर हँसती रही। ली-सूंग ने अधीर होकर कहा—'अब तो हँसना बन्द करो।"

चिनचुन हँसी रोक कर बोली—"मैं तो समझती थी कि यह बादाम है, जिसको तोड़ना कुछ कठिन होगा, और प्रयास भी बार-बार करना पड़ेगा, किन्तु यह तो निरा हलुआ निकला। प्रथम प्रहार में ही चारों खाने चित्त हो गया।"

"अल्हड़ नवयुवक है। तुम्हारी जैसी जादूगरनी के सामने बड़े-बड़े सूरमाओं का ठहरना मुश्किल है, फिर यह तो नया रंगरूट है।"

"रंगरूट तो अब हुआ है। अब इसको चाहे जैसा नचाओ, बड़े शौक से नाचेगा।"

"हाँ, तुमने नाथ तो डाल दी है, अब करो 'उठ बे बन्दर, बैठ बे बन्दर;"

"तुम्हें भी तो कोई ऐसा ही बन्दर ढूंढना पड़ेगा। यदि मैं सफल न होती, तब तुम्हारी बारी होती।"

"मैं अपना बन्दर ढूंढ़ लूंगी, परन्तु तुम्हारी जैसी चातुरी मुझमें नहीं है।"

"इन मामलों में नारी हमेशा पुरुष से चतुर होती है। परिस्थितयाँ उसे चातुरी सिखा देती हैं। देखो आज जहाँ तुम हटीं, मैंने अपने बाण छोड़ने आरंभ किये और मजा तो यह है कि एक भी वार खाली नहीं गया।"

"मैं परदे के पीछे से सब देख रही थी। एक बार तो मुझे भय हुआ कि वह तुम्हें झिड़क कर उठ खड़ा होगा, किन्तु वह तो जैसे पत्थर का बुत बन गया था। एक बार भी न हिला न डुला।"

"जिस प्रकार मक्खी को मकड़ी अपने जालों से बाँधती है, उसी प्रकार मैं उसे बाँधती गई। वह बेचारा मेरे जाल मैं फँसता चला गया।"

"अब तो काँगकुंग तुम्हारी विजय से बड़े प्रभावित होंगे। हमारे हाथ में तुरुप का पत्ता आ गया है।"

"निस्संदेह यह तुरुप का साधारण पत्ता नहीं, बल्कि जोकर है।" यह कह कर चिनचुन पुनः हँसने लगी।

"विनोद शाब्दिक अर्थों में भी सचमुच जोकर निकला। इसके भेजे में तनिक भी बुद्धि नहीं है।"

"तुम मेरी तारीफ तो करोगी नहीं उसकी बेवकूफी की प्रशंसा करती हो।"

"उसको बेवकूफ बनाने में सारा कौशल तुम्हारा है। मैं क्या, सभी तुम्हारी प्रशंसा करेंगे।"

"इस बेवकूफ के माता-पिता राजनीतिक क्षेत्र के प्रधान व्यक्तियों में है। यद्यपि इसकी माँ कांग्रेसी है।, किन्तु पिता कम्युनिस्ट विचारों का है। दोनों क्रान्तिकारी रहे हैं और आज कल पिछले क्रान्तिकारियों की अधिक संख्या कम्युनिस्ट है। हम चुन चुन कर अपने दल में अल्हड़ नवयुवकों को भरती करेंगे

और उनके द्वारा अपने संगठन को शक्तिशाली बनायेंगे ।"

"हाँ क्षेत्र तो अब खुल ही गया है । किन्तु उस दिन जब तुम उनके घर गई थी, मैंने लक्ष्य किया था कि विनोद की माँ बड़ी कुशाग्र बुद्धि की हैं। उनसे सतर्क रहना पड़ेगा ।"

"मैं अब उधर जाऊँगी ही नहीं । नारी बड़ी जल्दी नारी को पहिचान लेती है दरअसल उनकी ओर से मुझे शंका होती है । विनोद यहीं आया करेगा मेरी क्रिया शक्ति का माध्यम वह बनेगा मैं उसके द्वारा ही सब काम करवाऊँगी ।"

"किन्तु उसके यहाँ बार-बार आने से हमारा भंडा-फोड़ हो सकता है ।"

"उसका प्रबंध मैंने सोच लिया है । कल मैं किसी दूसरे मकान में चली जाऊँगी । यह मकान मैं काशी की किसी सूनसान गली में लूँगी, और उसको अपना अड्डा बनाऊँगी ।"

"बेशक तुम्हारी सूझ भी अनोखी है ।"

"मैंने विनोद से कहा भी है कि हम लोग किसी एकान्त स्थान में मिला करेंगे ।"

"हाँ, तुमने कहा था कि "मैं इस पुछल्ले से किसी न किसी उपाय से छुटकारा पा लूंगी, वह पुछल्ला तो मैं ही हूँ ।"

चिनचुन.हँसने लगी । ली-सूंग बोली—"कहीं ऐसा न हो कि तुम सचमुच हम लोगों को छोड़कर इस विनोद से विवाह कर लो ।"

"क्या बकती हो ? चिनचुन ऐसी मूर्ख नहीं है, जो इस महामूर्ख की गुलामी का दस्तावेज लिखे ।"

"मूर्ख पति ही काम के होते हैं । उनको चाहे जैसे जोतो ।"

"पति न कहकर प्रेमी कहो, तो अधिक उपयुक्त होगा । जब बिना विवाह किए काम सधे, तब उसके चक्कर में फँस कर अपनी आजादी खोना महामूर्खता है । हाँ, यदि देखती कि बिना विवाह किये काम नहीं बनेगा, तब वह भी खतरा मोल लेती ।"

"हाँ अभी तो तुम दूर से शिकार करोगी, जगद्-भाभी की तेज निगाह से भी बची रहोगी ।"

"बेशक, दूसरे के घर में आग लगाकर तापने में ही मजा आता है। जब विनोद स्वयं घर छोड़कर पीछे-पीछे घूमे, तब मजा आयेगा।"

"किन्तु क्या यह हमारे उद्देश्य के अनुकूल रहेगा ?"

"ली सूँग तुम बड़ी मूर्ख हो। मेरा मतलब उसको गले में मढ़ने का नहीं है, उस पर केवल आधिपत्य करने का है। वह अपनी माँ के साथ रहे, और काम करे हमारी संस्था का। नौकर रखा जाता है, तो उसे काम के विनिमय में वेतन मिलता है उसी प्रकार उसके काम के बदले में मेरा प्यार मिलेगा।"

"यदि वह कहीं तुम्हारे प्रेम से ऊब गया, तब तो बड़ी कठिन समस्या होगी।"

"ऊबने देना या न देना नारी की कुशलता पर निर्भर है। मूर्ख नारियों की गलत चालों से पुरुष ऊबा करते हैं। चतुर खिलाड़ी नारियों की अन्तर्भेदी दृष्टि होती है। वह पुरुषों को कभी ऊबने नहीं देती। पुरुष नित्य नवीनता चाहता है, और चाहता है नित्य नव शृंगार।"

"इन बातों में तुम चतुर हो ही।"

"यह तो वाह्य उपचार हैं।"

"और आन्तरिक उपचार क्या है ?"

"आन्तरिक उपचार है, आत्म नियंत्रण। चतुर नारी कभी अपना आपा नहीं खोती। वह अभिनेत्रियों की भाँति प्रेम का अभिनय करती है, किन्तु प्रेम जाल में फँसती नहीं। प्रेम का अभिनय करती हुई भी वह अपनी इच्छाओं तथा इन्द्रियों पर नियंत्रण रखती है। आत्महारा होना हीं अपने अस्तित्व को खो देना है। आत्मसर्मपण उसकी मौत है।"

"तब तुम हाड़-माँस की नहीं पत्थर की बनी हो।"

"किसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए पत्थर का ही बना जाता है। हम किसी उद्देश्य से यहाँ आई हैं। येन केन प्रकारेण' हमें उसे पूरा करना है। हम तो अपना निजत्व अपनी संस्था के कामों के लिये उत्सर्ग कर चुकी हैं। हमारी इन्द्रियाँ हमारे उद्देश्य की प्राप्ति में साधन मात्र हैं। हमारा मन अब अपना नहीं है। जानती हो, हमने भिक्षु धर्म की दीक्षा ली है। संसार की दृष्टि में हम

बौद्ध भिक्षुणी बनी हैं, किन्तु दरअसल हम "चीनी अजदहे" की भिक्षुणी हैं, जिसका मूल मन्त्र अहिंसा नहीं हिंसा है, संसार त्याग नहीं, नया संसार बसाना है, चीन के लिए नये उपनिवेश खोजना है।"

"इसमें क्या संदेह है ? हमारा उद्देश्य तो यही है।"

"फिर हमारे लिए सच्चा प्रेम नहीं है। प्रेम का स्वाँग रचकर हमें मूर्खों को अनुयायी बनाना है। जो रुपये से जीते जा सकेंगे, उनको रुपयों से जीता जायगा, और जो प्रेम की मदिरा से आधीन, पंगु और निष्क्रिय बनाये जा सकते हैं, उनको उस मदिरा का पान कराना हमारा कर्तव्य है– उसी के लिए हमारी भरती इस संस्था में हुई है। यदि हम अपने कर्तव्य से विमुख हुयीं, तो चीनी अजदहा हमारा अस्तित्व मिटाने में न विलम्ब करेगा, और न रु-रियायत।"

ली-सूंग ने समर्थन में कहा— इसमें क्या संदेह, हमे पग-पग पर सावधान रहना है। अच्छा मैं जरा तिब्बती लामाओं का हाल चाल लेने सारनाथ जाती हूँ।"

यह कह कर वह चली गई, और चिनचुन भविष्य का कार्यक्रम बनाने लगी।

१४

तिब्बती लामाओं के अधिकाँश दल बौद्ध धर्म के तीर्थ स्थानों, कपिल वस्तु, राजगृह, गया, कुशीनगर आदि क्षेत्रों के भ्रमण के लिए चले गए थे, किन्तु बासबा का दल अभी सारनाथ में ठहरा था। अपने मृत गुरु की आत्मा का नव कलेवर देखने की लालसा बासबा को अस्थिर बनाए थी, किन्तु गायत्री के आकस्मिक तिरोधान से उसकी इच्छा पूर्ण न हो सकी, और उससे वह कुंठित

हो गया। उसकी कुंठा उसे उत्तरोत्तर क्रुद्ध करने लगी। वह अपना यौगिक चमत्कार दिखाने की सोचने लगा। उसका प्रथम आभास उसने कराया गायत्री का पता बता कर, जहाँ वह अपने पति और पुत्र के साथ छिपी थी। भदंत नागार्जुन साधारण स्थिति के बौद्ध-भिक्षु थे। उसकी अपनी कोई साधना नहीं थी, इसलिए वह उसके उस चमत्कारिक प्रदर्शन से बड़े प्रभावित हुए, तथा उसके अनन्य भक्त हो गये। वह उससे मन ही मन डरने भी लगे। उनको आशंका होने लगी कि कहीं बासवा क्रुद्ध होकर गायत्री का कोई अपकार न कर बैठे, इसलिए वह उसकी खुशामद में बराबर लगे रहते। गायत्री पर उसका सहज स्नेह था, जो वर्षों के संसर्ग तथा उसकी निष्ठा एवं भक्ति से पल्लवित हुआ था। बासबा से उसका कोई अहित हो, वह यह स्वप्न में भी नहीं चाहते थे। उसकी कल्पना तक से उनका मन सिहर उठता था।

एक दिन बासबा ने सहसा पूछा–"क्यों भदंत जी, आपकी वह श्राविका अभी तक नहीं आई ?"

"नहीं रिमपोचे* अभी तक वह नहीं आई हैं ?" नागार्जुन ने डरते-डरते उत्तर दिया।

"उसको तार द्वारा सूचना दे दी गई है ?"

"तार देने की आवश्यकता ही नहीं रही, उसके सम्बंधियों ने टेलीफोन से बात कर ली हैं।"

"क्या उतनी दूर से बात की जा सकती है ?"

"हाँ, रिमपोचे, आधुनिक विज्ञान से यह सम्भव हो गया है।"

बासबा कुछ देर मौन सोचता रहा, मानो विज्ञान-शक्ति से उसके अहंकार को धक्का लगा हो। वह शीघ्रता से अपनी माला फिराने लगा। नागार्जुन उसको कनखियों से देखते हुए मन ही मन काँप रहे थे।

सहसा उन्होंने माला एक ओर रख दी और कोरलो को पकड़ कर 'हुं' शब्द का उच्चारण किया। उसकी आकृति भयावनी हो गई। उसकी क्रुद्ध मुद्रा

---

*रिमपोचे का शाब्दिक अर्थ है–भास्वान अथवा दीप्तमान तिब्बत में यह महर्षियों के लिए प्रयोग किया जाता है।

देख कर नागार्जुन ऊपर से नीचे तक काँप उठे ।

बासबा ने नागार्जुन को तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—"उसको आना ही पड़ेगा । मेरी इच्छा है कि वह आवे । उसको बाध्य हो कर कलकत्ता छोड़ना पड़ेगा ।"

"रिमपोचे, वह अबोध है उस पर दया कीजिए । उसका कोई अनिष्ट न हो ।"

"बासबा किसी का अनिष्ट नहीं करता भदंत, तुम निश्चिन्त रहो । किन्तु उसको यहाँ लाने के लिए मैं अपनी इच्छा का प्रयोग करूँगा । शठं प्रति शाठ्यं समाचरेत् ।"

"रिमपोचे, इस नीति का प्रयोग बराबरी वालों के लिए है, निरीह, अनजान और अबोध के लिए नहीं । जिस प्रकार गुरुजन बालक को अबोध जानकर उसके अपराधों पर ध्यान नहीं देते, और क्षमा करते हैं, उसी प्रकार श्राविका गायत्री भी है । वह मोह ममता से सनी हुई है, उसकी बुद्धिमत से आच्छादित है । उसे भय है कि कहीं उसका बालक छिन न जावे, इससे वह भाग गई । उसका अपराध क्षमा कीजिए रिमपोचे ।"

यह कहते हुए उन्होंने उसके चरण पकड़ लिये ।

बासबा कुछ शान्त हुए । उसने माला पुन: उठा ली, और "ओ३म मणे पद्मे हूं" का जाप प्रारम्भ कर दिया । वातावरग पुन: शान्त हुआ । नागार्जुन शिरनत किये बैठे रहे ।"

"नागार्जुन को सम्बोधित करते हुए बासबा फिर थोड़ी देर बाद बोले—"श्राविका का कोई अनिष्ट नहीं होगा । किन्तु उसके बालक का हो सकता है ।"

नागार्जुन पुन: घबरा गये । कंपित कंठ से पूछा—"उस बालक का अनिष्ट होगा ? रिमपोचे; वह तो आपके गुरुदेव हैं !"

"बालक से मेरा मतलब है उस कलेवर से, जिसमें वह आजकल निवास कर रहे है । संसार को प्रयोजन होना है केवल पंच भौतिक शरीर से । उसके नाश होने की क्रिया को वह मृत्यु की संज्ञा देता है । आत्मा से उसका कोई प्रयोजन नहीं है ।"

नागार्जुन उनका आशय समझ कर आपाद-मस्तक काँपने लगे। उसकी घिग्घी बँध गई। वह बड़ी कातर दृष्टि से उसकी ओर निहारने लगे।

बासबा पुन: ध्यान मग्न हो गये। नागर्जुन पद-नखों से पृथ्वी खुरचने लगे।

माला का चक्र समाप्त होने पर सुमेरु पकड़े हुए बासबा बोले —"गुरू की आत्मा को इस बन्धन से मुक्त कराना ही होगा। यह मायावियों के जाल में फँस गई है।"

नागार्जुन को प्रतिवाद करने का साहस हुआ। वह बोले —रिमपोचे क्षमा कीजिएगा, आप का अनुमान शायद सही नहीं है कि आपके गुरुदेव की आत्मा मायावियों के जाल में फँस गई हैं। वह अब भी सचेत है, जाग्रत है। यदि ऐसा न होता तो वह अपने पूर्व जन्म के अभ्यास का परिचय अपने इस नवीन कलेवर में न देते। उनका अन्त:करण तथा उनकी अन्तर्चेतना में कोई मलीनता नहीं आई है। मेरा विश्वास है कि उपयुक्त अवसर पर उनको वैसी प्रेरणा प्राप्त होगी जैसी भगवान बुद्धदेव को प्राप्त हुई थी। साँसारिक मायाजाल क्या बहुत काल तक महर्षियों को पथ भ्रष्ट रख सकता है ?"

बासबा क्रुद्ध नहीं हुए, किन्तु उत्तर भी नहीं दिया। नागार्जुन ने आगे बात नहीं चलाई।

माला का दूसरा वृत्त समाप्त होने पर वह पुन: बोले —"किन्तु इस प्रकार की प्रतीक्षा में बहुत समय भी लग सकता है, नागार्जुन ! जब मुझे मालूम हो गया कि वह अमुक स्थान में अमुक कलेवर में निवास कर रहे हैं, तब कुछ दायित्व मेरे ऊपर भी आ जाता है। उनकी आत्मा को इस कलेवर से मुक्त करना ही परम गुरुदक्षिणा होगी।"

नागार्जुन का हृदय थरथराने लगा। उसने पुन: प्रतिवाद किया—"रिमपोचे क्या यह हिंसा नहीं होगी ?"

"हिंसा अहिंसा का तत्व तुम नहीं समझ सकते नागार्जुन। तुम्हारा ज्ञान इतना विराट नहीं हुआ। साँसारिक प्राणियों के लिए इनके भेद बताये गये हैं। जो मानवीय धरातल से ऊँचे उठ जाते हैं 'वे मृत्यु को प्रकृति का साधारण कृत्य

मान कर लक्ष्य की ओर ध्यान देते हैं, साधनों की ओर नहीं। किसी पथ भ्रष्ट पथिक को ठीक पथ पर लाने का प्रयास क्या असंगत कार्य है ?"

"रिमपोचे, जब वह पथ पर स्वयमेव न आवे, तब प्रयास करना चाहिए।" अभी उनको बाल क्रीड़ा का सुख भोगने दीजिए। प्रकृति अपने समय के अनुसार नव शरीर को पुष्ट करेगी, अतएव यदि उनकी आत्मा को इस वर्तमान शरीर से मुक्त किया गया तो न मालूम फिर कितना समय लग जाय। आप के कथनानुसार आपके गुरुदेव को शरीर त्यागे हुए लगभग दस वर्ष व्यतीत हो गये। गणना से चार वर्ष का समय उनके इस नव कलेवर में बीत जाता है, शेष वर्षों का समय अन्धकार में है। सम्भव है कि यह समय उनको उपयुक्त पात्र ढूंढने में व्यतीत हुआ हो। जब उनको गायत्री जैसा पुण्य शरीर प्राप्त हुआ तब उसकी कुक्षि में अवतार धारण किया। अब यदि उनको यह शरीर त्यागना पड़ा, तो पुन: उनकी आत्मा को अपने नव जन्म के लिए कोई दूसरा पात्र ढूंढ़ना पड़ेगा। निश्चित कार्यक्रम में बाधा अवश्य पड़ेगी।"

बासन्ना इस अकाट्य तर्क के सामने चुप हो गये। वह जल्दी-जल्दी माला फेरने लगे।

थोड़ी देर बाद फिर बोले— "किन्तु नागार्जुन मैं उनके दर्शनों के लिए लालायित हूँ। इसी लोभ से मैं अन्य लामाओं के साथ तीर्थाटन के लिए नहीं गया।"

"रिमपोचे, धैर्य धरिये। श्राविका गायत्री निश्चित रूप से आवेगी।"

"यदि यह सीधे-सीधे नहीं आती, तब फिर मैं मन्त्र प्रयोग करूँगा, जिसके बल से वह घसिटती हुई दौड़ी चली आवेगी। लामाओं की शक्ति का अभी उसे ज्ञान नहीं है।"

"ज्ञान न होता तो वह भागती क्यों ?"

"वह समझती है कि दूर भाग जाने से वह मेरी इच्छा का निरादर कर सकती है।"

"रिमपोचे, मैं पहले ही कह चुका हूँ कि वह अबोध है। बहुत तपस्या के पश्चात् उसने सन्तान का मुख देखा है। वह संसारी जीव है। मोह और ममता

से आवृत्त है ।"

"क्या मेरे गुरुदेव के जन्म के पहले उसके कोई सन्तान नहीं हुई थी ?"

"नहीं रिमपोचे ! मैंने उसके लिए अनेक तंत्र-मंत्र, जप तथा पुरश्चरण किए हैं। उसने भी कई वृत्त उपवास किए, तब उसके यह सन्तान उत्पन्न हुई है।"

"ठीक है, तभी गुरुदेव ने इस पुण्यात्मा को अपने नव-जन्म के लिए वरण किया है। तुम्हारे तर्क में सत्यता है। उनके निश्चित मार्ग में बाधा डालना उचित नहीं है। अब श्राविका गायत्री को शीघ्र बुलाने का प्रबन्ध करो। मैं गुरुदर्शन कर तीर्थाटन के लिए जाना चाहता हूँ।"

"मैं स्वयं उसको बुलाने के लिए कलकत्ता जाऊँगा, और उसको विश्वास दिलाकर अपने साथ ले आऊँगा।"

"तुम मेरी ओर से उसे निर्भय करना। उसका कोई अनिष्ट मेरे द्वारा नहीं होगा। वह मेरे गुरुदेव की माँ है। उसका कल्याण के अतिरिक्त अकल्याण नहीं होगा।"

नागार्जुन ने उन्हें साष्टाँग प्रणाम किया, और चरण-धूलि मस्तक पर लगा कर प्रहृष्ट मन से वह चले गये। बासबा अपने धर्म ध्यान में लग गये।

१५

कलकत्ता महानगरी का 'शिमला हाईट्स' उन होटलों में था, जहाँ केवल लक्ष्मीं पुत्रों के ठहरने की क्षमता थी, जो पैसे को पैसा नहीं समझते थे। उसका प्रबन्ध इंगलैण्ड की एक होटल कम्पनी करती थी, जिसकी शाखायें यूरोप तथा अमेरिका के बड़े-बड़े नगरों में थी। उसकी व्यवस्था बिल्कुल पश्चिमीय थी और उनके निवासियों को संसार की सब सुविधायें सुलभ थीं जो पैसा खर्च

करने में संकोच न करते थे। बाहर सशस्त्र संतरियों की गारद उसके निवासियों के जान-माल की रक्षा करती थी, और उसका ऐसा रौब–रुआब था, जहाँ साधारण व्यक्तियों को जाने का साहस नहीं होता था।

गायत्री जब अपने पति श्यामसुन्दर के साथ अपने पुत्र आनन्द की रक्षा के लिए, बनारस से कलकत्ता आई, तब उसको एक ऐसे स्थान की आवश्यकता प्रतीत हुई, जहां सब भाँति निरापद रह सके। श्यामसुन्दर 'शिमला हाइट्स' होटल से परिचित थे। उन्हें वही स्थान सबसे अधिक निरापद जान पड़ा, और स्टेशन से सीधे 'शिमला हाइट्स' होटल में सपरिवार चले गये। गायत्री ने जब उसका प्रबन्ध देखा, तब उसे भी विश्वास हो गया कि वहाँ उसका आनन्द बौद्ध लामाओं से सुरक्षित रहेगा, क्योंकि वहाँ उनका प्रवेश लगभग असंभव था। वह निश्चिन्त होकर रहने लगी।

कलकत्ता आने के दूसरे दिन दोपहर को जब होटल के कर्मचारियों ने उसे सूचित किया कि बनारस के किसी विनोद नामक व्यक्ति ने ट्रंककाल किया है और वह उससे बात करना चाहते हैं, तब वह विस्मय विमुग्ध हो अवाक् रह गई। वह अनुमान न कर सकी कि कैसे विनोद को उसके रहने का पता मालूम हुआ क्योंकि उसने अपनी गति-विधि बिल्कुल छिपाई थी, और अपने बनारस छोड़ने की सूचना किसी को नहीं दी थी। इसके पश्चात् बनारस के किसी व्यक्ति का इस होटल में ठहरने की बात जानना एक प्रकार से असंभव था। श्यामसुन्दर पास बैठे आनन्द को खेला रहे थे, वह भी होटल कर्मचारी की सूचना सुनकर कुछ कम चकित नहीं हुए। दोनों एक दूसरे को देखने लगे।

श्यामसुन्दर ने आनन्द को गायत्री की गोद में देते हुए कहा– "तुम ठहरो मैं बात करता हूँ।"

गायत्री भीत कंठ से बोली—"तुम ही क्यों बात करो।" फिर होटल कर्मचारी से कहा–"आप इनकार कर दीजिये कि आपके होटल में इस नाम का कोई व्यक्ति नहीं ठहरा है।"

कर्मचारी ने उत्तर दिया—"वह सूचना पहले ही उनको दे दी गई है, अब कैसे इनकार किया जा सकता है ?"

"आपने बिना हमसे पूछे किसी प्रकार का उत्तर क्यों दिया ?"

"यदि वह पूछ-ताछ करते तो हम कोई स्वीकारात्मक उत्तर देने के पहले अवश्य आपसे पूछते, किन्तु उन्होंने तो इस प्रकार आप को टेलीफोन पर बुलाने का आदेश दिया जैसे उनको पूरी जानकारी पहले से प्राप्त हो।"

"यह कैसे सम्भव है। अभी कल हम लोग बनारस से यहाँ पहुँचे हैं। घर के किसी व्यक्ति को हमारा आना मालूम नहीं, और न हमने यहाँ से उनको कोई सूचना दी है, तब भला उनको इस होटल में ठहरने का पता कैसे चला ?"

"मैं आपके इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता ! टेलीफोन करने वाले ने स्पष्ट बताया कि 'आपके होटल के कमरा नं० ५५७ में गायत्री देवी तथा श्री श्यामसुन्दर जी ठहरे हैं, उनको बता दीजिये कि उनका भतीजा विनोद बनारस से बात करना चाहता है। यदि टेलीफोन उनके कमरे तक न जा सकता हो तो उनको यहीं बुलाने की कृपा कीजिये।' अब बताइये हम लोग क्या कर सकते हैं।"

श्यामसुन्दर ने कहा– "कोई बात नहीं है। हमारे कमरे की टेलीफोन लाइन उससे जोड़ दीजिये। हम उनसे बात कर लेंगे।"

कर्मचारी उनका आदेश पालन करने के लिये चला गया।

उनके जाने के पश्चात् गायत्री ने सभीत कंठ से कहा– "बड़े ताज्जुब की बात है कि विनोद को हमारे कमरे का नम्बर तक मालूम है। इसमें अवश्य बड़ा रहस्य है।"

"जो भी रहस्य हो वह अभी प्रकट होने वाला है। घबड़ाओ नहीं, यहाँ हमारा कोई अनिष्ट नहीं कर सकता। मैं मैनेजर को सूचित कर दूँगा कि कोई तिब्बती लामा इस होटल में प्रवेश न करने पावे और हमारे सम्बन्ध में कोई सूचना किसी को न दे। यदि कोई दुबारा ट्रंककाल करे अथवा शहर से ही कोई हमारे सम्बन्ध में पूछे तो मेरी अनुपस्थिति बताई जावे।"

"अवश्य ऐसा प्रबन्ध किया जाय।"

इसी समय प्लग लगा कर कर्मचारी ने टेलीफोन सम्बंध स्थापित कर दिया। श्यामसुन्दर बात करने लगे—"कौन, विनोद ?"

गायत्री भी फोन के बिल्कुल समीप बैठ कर उनकी बातचीत सुनने लगी।

उत्तर मिला—"हाँ फूफा जी मैं विनोद बोल रहा हूँ। बुआ जी और आनन्द सकुशल हैं!"

"हाँ दोनों सकुशल हैं, और मेरे पास बैठे हैं। यह बताओ कि तुम्हें हमारा इतना सही-सही पता कैसे मालूम हुआ?"

"तिब्बती लामा बासबा ने अभी कुछ देर पहले बताया कि आप लोग कलकत्ता के 'शिमला हाइट्स' नामक होटल के ५५७ नम्बर के कमरे में ठहरे हुए हैं, उसी की सच्चाई जानने के लिए मैंने आपको ट्रंककाल किया है।"

गायत्री ने भी इस उत्तर को सुना। बासबा का नाम सुन कर वह काँपने लगी।

"क्या बासबा ने होटल तथा कमरे का नम्बर तक बता दिया?"

"हाँ।"

"किस प्रकार?"

"जब उसे मालूम हुआ कि आप लोग गायब हो गये हैं, तब वह बहुत क्रुद्ध हुआ। दूसरे दिन अर्थात् आज एक घंटा पहले उसने ध्यान लगा कर बताया कि आप लोग कलकत्ता में हैं, और अमुक होटल में ठहरे हुए हैं।"

"उसने कुछ और नहीं कहा?"

"नागार्जुन से वह तिब्बती भाषा में बकता-झकता था, जिसका मतलब मेरी समझ में नहीं आया।"

"वह कोई यौगिक शक्ति हमारे विरुद्ध इस्तेमाल तो नहीं करेगा?"

"मुझे क्या मालूम?"

"नागार्जन से पूछना।"

"पूछूंगा। किन्तु वह अपनी शक्ति भर प्रयत्न करेंगे कि बासबा कोई कुकृत्य न करने पावे।"

"भाई साहब से सलाह कर बासबा को पुलिस के हवाले क्यों न कर दो।"

"उसके विरुद्ध कोई जुर्म बनता नहीं। योग शक्ति में आपका पता बताने से किसी की हानि नहीं हुई, फिर अभियोग किस बात का लगाया जाय।"

"यही कि वह अवैज्ञानिक प्रयोगों से जनता में भय संचार करता है।"

"फूफा जी आप क्या कह रहे हैं, इसका भी ध्यान है आपको ? दंडसंग्रह की किसी धारा की परिभाषा में उसका कोई कार्य नहीं आ सकता। इसके अतिरिक्त ये लोग भारत सरकार के निमन्त्रण पर आये हुये हमारे अतिथि हैं। जब तक कोई स्पष्ट रूप से जघन्य अपराध उनके विरुद्ध प्रमाणित न हो, तब तक उन्हें कोई स्पर्श तक नहीं कर सकता।"

"क्या हम लोग यहाँ से चले जाँय ?"

'यदि मुझे मालूम हो जाता, तब आपको मैं जाने ही न देता। आप लोग न-मालूम क्यों भाग गये ! बासवा केवल आनन्द को देखना चाहता था। क्योंकि उसे विश्वास है कि उसके गुरू की आत्मा आनन्द में अवतरित हुई है।"

"तुम्हारी बुआ को यह भय हुआ कि किसी छल-छद्म से बासवा आनन्द को छीन न ले, अथवा उसको भी बौद्ध-भिक्षु न बना ले। लामाओं की योग–शक्ति का परिचय तुम्हें मिल ही गया, वह कोई मोहनी डाल कर आनन्द की सब चेष्टाओं को परिवर्तित भी कर सकता है।"

"योगशक्ति से किसी की हानि करना कठिन नहीं असम्भव है। दूर तथा अदृश्य बातों को जान लेना कोई अधिक आश्चर्य की बात नहीं है। किसी पर मोहनी आदि डालना अल्प काल के लिये भले ही संभव हो, किन्तु सब काल के लिये नहीं।"

"क्या तुमने हिपनाटिस्टों को नहीं देखा कि वे अपनी इच्छा शक्ति से मनुष्यों की विचार शक्ति को नष्ट कर देते हैं, तथा उनसे वही काम करवाते हैं, जो वे चाहते हैं।"

"परन्तु फूफा जी वह प्रदर्शन अस्थाई होता है।"

"किन्तु जिनकी इच्छा शक्ति साधना से बलवान हो जाती है, अस्थाई को स्थायी बना सकते है।"

"वे ईश्वर नहीं हैं, हमारी भाँति मनुष्य ही हैं।"

"साधना के द्वारा वे बलवान हो जाते है। यदि यह नहीं, तो वह कोई दूसरा अनिष्ट कर सकता है।"

"यदि वह कुछ ऐसा करेगा, तब कानून प्रयोग करने का कारण निकल

आयेगा।"

"यदि इच्छाशक्ति से वह तुम्हारी बुआ की, और मेरी मति नष्ट कर दे तथा आनन्द को अपने साथ ले जावे, तब कानून का प्रयोग कैसे होगा ?"

"हम सब को वह वशीभूत नहीं कर सकता। कमजोर व्यक्तियों पर ही उसका प्रभाव पड़ता है। बलवान इच्छाशक्ति वालों के सामने वह सफल नहीं होते। अ।प लोग बनिस्बत वहाँ के हमारे घर में अधिक निरापद हैं।"

"इसका यह मतलब है कि हम लोग पुन: बनारस चले आवें।"

"जी हाँ बुआ जी को जरा फोन दे दीजिए।"

श्याम सुन्दर ने गायत्री को फोन देते हुए कहा—"विनोद तुमसे बात करना चाहता है।"

"गायत्री ने फोन लेकर कहा—"हाँ विनोद, तुम क्या कहना चाहते हो ?"

"बुआ जी आप न-मालूम क्यों इतना डरती हैं। ? वासबा आपका कोई अनिष्ट नहीं कर सकता, और न आनन्द को ले जा सकता है। बाबू और अम्मा आपके जाने से बहुत दुखी हुए हैं। आप विश्वास कीजिए, हम लोगों के रहते आपको कोई कष्ट नहीं पहुँचा सकता।"

"यह मैं जानती हूँ, विनोद ! किन्तु आग से दूर रहना ही श्रेयस्कर है। इस होटल का इन्तजाम बहुत श्रेष्ठ है। बाहर का कोई पक्षी भी पर नहीं मार सकता।"

"नागार्जुन ने लामाओं की अद्भुत शक्ति की कहानियाँ सुनसुनाकर आपको कमजोर बना दिया है। आप विश्वास कीजिए कि जैसे हम लोग मनुष्य हैं वैसे ही वे भी हैं। हाँ योग की साधना अवश्य करते हैं, वैसे ही हमारे देश में सन्यासी योगी भी करते हैं। जैसी उनमें अलौकिक शक्ति होती है, वैसी हमारे योगियों को भी होती है।"

"लेकिन हमारे यहाँ तो कोई योगी नहीं है भैया, जो उसका मुकाबला करे। मानलो, यदि कोई दुर्घटना वहाँ हो जाय तो फिर सिवाय पछताने के कुछ लाभ न होगा, इसलिए मैं अभी वहाँ नहीं आऊँगी।"

इसी समय आपरेटर ने सूचना दी कि तीन मिनट बीत गये। विनोद ने

बातचीत आगे जारी रखने का संकेत दिया। फिर कहा—यदि आपको अधिक डर लगता हो, तो मैं वहां चला आऊँ।"

"तुम आ सकते हो, तुम्हारे आने से हमारा अकेलापन बहुत कुछ दूर हो जायगा। विनू, तू इस होटल का प्रबन्ध देखकर खुश हो जायगा। भाभी को लेकर तू चला आ।"

"अम्मा शायद कल परसों दिल्ली जा रही हैं। बाबू खाली हैं, कहो तो उनको लेकर आऊँ। यशोधर अथवा राहुल जी तो आ नहीं सकते, क्योंकि वह बासबा की शागिर्दी में तिब्बत प्रस्थान करेंगे।"

"यशोधर को मत जाने दो, मैं तो शुरू से इनका विरोध कर रही हूँ। हमारी सात पीढ़ियों में कोई बौद्ध-भिक्षु नहीं हुआ हमने कभी बौद्ध धर्म स्वीकार नहीं किया, फिर न-मालूम यह कहाँ की छूत घर में घुस आई?"

"बुआ जी, यह छूत नागार्जुन से आई है। आप तो उस पर बहुत विश्वास करती थीं।"

"मैंने जो विश्वास किया, उसका प्रत्यक्ष फल पा गई। अब यशोधर को इन धूर्तों के चक्कर में मत फँसने दो। भैया और भाभी कहते थे कि वह भारत के प्राचीन ग्रन्थों को लेने के लिए तिब्बत जा रहा है। यह सब प्रवञ्चना है। यशोधर उनके चक्कर में ऐसा फँस जायगा कि देश लौटने का नाम नहीं लेगा। तिब्बत दर असल यक्षों और किन्नरों का देश है, जो अनन्त काल से मायावी प्रसिद्ध रहे है।"

"बुआ जी, आपके सिवाय कोई दूसरा उसे रोक नहीं सकता। आपके आने से सब सुधर जायगा। अकेला मैं क्या कर सकता हूँ। अम्मा और बाबू जब उसे नहीं रोक रहे हैं, तब मेरे अकेले रोकने से क्या होगा? एक और एक ग्यारह होते है।"

"विनू, मैं तो अभी वहाँ नहीं आ सकती। कहीं आनन्द भी हाथ से निकल गया, तो फिर मैं कहीं की न रहूँगी।"

"तब आप चाहती हैं कि यशोधर बासबा के साथ तिब्बत चला जाय?"

"नहीं मैं यह हरगिज नहीं चाहती।"

"तब फिर उसको बचाइये। आप यदि जिद पकड़ लेंगी, तो फिर वह नहीं जा सकेगा। आपकी बात वह कभी टाल नहीं सकता।"

"मैं तो उसका वेश उतार कर फेंक रही थी, किन्तु भैया और भाभी की शह पाकर उसने मेरी बात नहीं मानी। अब भी वही होगा, जब तक वे दोनों रोंकेगे नहीं तब तक मेरे किए धरे कुछ नहीं होगा।"

"मतलब यह कि आप कलकत्ता से तब तक नहीं आएगी, जब तक बासवा का दल यहाँ सारनाथ में रहेगा।"

"हाँ अभी तो यही इरादा है।"

"क्या कहीं दूसरी जगह जाने का विचार कर रहीं हैं ?"

"जब बासबा को यहाँ का पता चल गया तब दूसरी जगह जाने में अधिक सुरक्षा रहेगी।"

"किन्तु बासबा योगबल से आपका स्थान पुन: जान लेगा। इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उसमें इतनी शक्ति है।"

"जान भले ही ले, किन्तु वह यहाँ घुस नहीं सकता।"

"मेरे बारे में क्या कहती हो, मैं क्या वहाँ जाऊँ ?"

"हाँ तुम अवश्य जाओ, तुम्हारे आने से मेरा आधा डर दूर हो जायगा।"

"अच्छा मैं आने का प्रयत्न करूँगा।"

"आपरेटर ने पुन: समय समाप्त होने की सूचना दी। विनोद ने विदा माँग कर बातचीत बन्द करदी।

'श्यामसुन्दर ने कहा—"अब क्या करना चाहिए। यहाँ रहें, कि कहीं किसी अन्य स्थान पर चलें ?"

"जहाँ हम चलेंगे, वहीं का पता बासबा अपने योग बल से लगा लेगा।

"इससे कहीं दूसरी जगह जाने से यहाँ रहना अधिक निरापद हैं। यहाँ वह घुस नही सकता।"

"मैं जाकर मैनेजर से कहता हूँ कि किसी को हमारे बारे में कोई खबर न दे। यदि दुबारा ट्रंक काल भी आवे तो हमारी अनुपस्थिति बता देवे यदि कोई हमसे मिलने की इच्छा से आवे तो उसको भी नकारात्मक उत्तर दिया जावे।"

गायत्री की सहमति पाकर श्यामसुन्दर वैसा प्रबन्ध करने के लिए चले गए।

१६

'शिमला हाइट्स' में रहते गायत्री को कई दिन बीत गये। इस बीच कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। सब भाँति निरापद होते हुए भी गायत्री के दिन शान्ति से नहीं बीत रहे थे। उसे नीद आती ही न थी। कभी-कभी निरन्तर जागते रहने के अवसाद से उषा काल में उसकी आँखें झपक जाती थी, किन्तु उस तन्द्रा में भी वह सुचित्त तथा सुखी नहीं रहती थी। भयंकर स्वप्न उसकी मानसिक शान्ति भंग किये रहते थे। आनन्द को वह किसी समय भी अपने से दूर नहीं करती थी। वह श्यामसुन्दर का भी विश्वास नहीं करती थी, और स्वयं सतर्कता से उस पर पहरा देती थी। उसका स्वास्थ्य निरन्तर मानसिक भय और स्वच्छ वायु के अभाव में गिरता जा रहा था, किन्तु वह उस ओर से उदासीन थी। चौबीसों घन्टों की कैद से आनन्द भी कुछ दुखित और म्लान रहने लगा था। उसका हँसमुख चेहरा अब कभी-कभी विषादाकुल रहता था गायत्री का शंकालुमन उसे सहज रूप से बोलने-हँसने नहीं देता था। यद्यपि आनन्द बालक था, तथापि वह वातावरण की शुष्कता से उदासीन न रह सका। श्यामसुन्दर अवश्य उसकी दशा-परिवर्तन लक्ष्य कर दुखी हो रहे थे, परन्तु गायत्री कहीं अन्यत्र जाने को तैयार नहीं होती थी। विनोद के आने की प्रतीक्षा नित्य की जाती थी, परन्तु न उसका कोई पत्र आता था और न वह !

एक दिन श्यामसुन्दर ने ऊब कर कहा— "तुम नहीं देखती कि आनन्द का स्वास्थ्य दिन पर दिन गिर रहा है। तुम भी पीली पड़ गई हो, भला बताओ इस प्रकार यहाँ कितने दिन रहा जा सकेगा। मुझे तो जितना बासबा से डर नहीं मालूम होता, उतना तुमसे मालूम होने लगा है। तुम अपने मन के भय को दूर करो।"

"तुम ठीक कहते हो। आनन्द इस कैद से सचमुच ऊब गया है, मैं भी कोई सुख नहीं भोग रही हूँ परन्तु क्या करूँ? रात-दिन यही चिन्ता रहती है कि बनारस वापस जाने से कहीं किसी कुचक्र में फंस हम आनन्द को खो न दें।"

"वहाँ तो शायद वह बच भी जाय—नहीं अवश्य बच जायगा, परन्तु यहाँ के कैदी जीवन से वह अवश्य बीमार हो जायगा।"

"तब फिर क्या हम लोग बनारस वापस चलें?"

"बनारस से यदि तुम्हें भय है तब दिल्ली चलो, बम्बई चलो, गर्ज कि कहीं चलो। प्राकृतिक स्वच्छ वायु तो सेवन करने को मिले।"

"विनोद आने को कहता था, परन्तु वह भी नहीं आया।"

"सम्भव है कि उसने दुबारा ट्रंककाल किया हो, किन्तु हमारे प्रबन्ध के अनुसार उसे हमारी अनुपस्थिति की सूचना दे दी गई हो, तब उसने समझा होगा कि हम लोग अन्यत्र चले गये हैं, इसलिये नहीं आया।"

"तुम भैया को ट्रंककाल करो।"

"मैं तो कई दिनों से सोच रहा था कि बनारस के हालचाल दरयाफ्त करूँ, किन्तु तुम्हारी वजह से ट्रंककाल नहीं करता था।"

"मैं क्या तुमको रोकती हूँ?"

"मुख से नहीं रोकती किन्तु तुम बनारस नाम से इतना घबराती हो कि उसका नाम लेने की हिम्मत नहीं पड़ती।"

"अच्छा आज बात करो। होटल के किसी कर्मचारी को बुला कर पूछो कि क्या कभी कोई ट्रंककाल आया था।"

"जाकर मैनेजर से बात करता हूँ, और बनारस के लिये काल बुक करवाता हूँ।"

"टेलीफोन तो यहाँ है, नीचे जाकर क्या करोगे?"

"मुझे भी तो एक कदम इधर-उधर हिलने नहीं देती।"

"क्या करूँ अकेले डर मालूम होता है।"

"धवल दिनमें भी डरती हो, कैसी तुम हो गई हो?"

गायत्री अपनी माननिक वेबसी से तंग आकर रोने लगी । श्यामसुन्दर ने अधीर होकर कहा "वाह तुम रोने लगीं ।"

मैंने इस बासबा का क्या बिगाड़ा है जो वह मेरे पीछे पड़ा है ।"

"बासबा नहीं, उसका भूत तुम्हारे मन में समा गया है ।"

"ठीक कहते हो, उसका भूत ही मुझे सता रहा है । यद्यपि मैंने उसे देखा नहीं हैं किन्तु मैं एक लामा को सदैव अपने आस-पास पाती हूँ । जब जरा भी एकान्त हुआ, मुझे मालूम होता है कि कोई मुझे मेरे पास खड़ा देख रहा है । जहाँ उसे देखने का यत्न करती हूँ, वह हवा में विलीन हो जाता है, और जहाँ शिर झुका कर, अथवा आँखें बन्द कर कुछ सोचने लगती हूँ, वहां उसकी छाया मुझे पुनः घेर लेती है । रात में इसी भय से सोती नहीं, और जब कभी आँख झिपी, वह छाया मेरे पास आकर मुझे जगा देती है । यह सांसत मुझे जीने देगी या नहीं, नहीं जानती ।"

यह कह वह पुनः रोने लगी । श्यामसुन्दर उसे सान्त्वना देने लगे ।

गायत्री पुनः बोली—"कल रात भर मैं सो नहीं सकी । आज सवेरे जरा आँख लग गई, न मालूम कब । एक भयंकर स्वप्न ने मुझे तुरन्त जगा दिया ।"

"वह कैसा स्वप्न था ?"

"मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि भयंकर आकृति का एक दानव मेरे आनन्द को पकड़े लिए जा रहा हैं । मैं रोती हुई उसका पीछा कर रही हूँ । थोड़ी दूर गई कि नागार्जुन अकस्मात प्रकट हो गए और मैंने उनसे आनन्द को छुड़ाने की प्रार्थना की । मेरी प्रार्थना सुन कर वह पहले हँसे और बोले—"तुमने मेरा कहना नहीं माना, इसीलिये वह दैत्य आनन्द को पकड़ कर लिये जा रहा है, अब भी यदि तुम मेरी बात मानो तो मैं उसे जाकर छुड़ा लाऊँ । मैंने स्वीकार किया, और वह तुरन्त उस दैत्य के पीछे दौड़ा । उसके पास पहुँचते ही दैत्य की शक्ल लामा में बदल गई, और दोनों में युद्ध होने लगा । मैं उनको लड़ते देखकर चिल्ला उठी । उसी समय मेरी आँख खुल गई । शरीर पसीने-पसीने था, जबान तालू ले चिपकी हुई थी । मेरी चिल्लाहट से आनन्द भी जाग पड़ा । उसे कसकर अपनी छाती से चिपटा लिया । तुम्हीं बताओ, इस कश-

मकश में मैं कितने दिन जिन्दा रह सकती हूँ ।"

"यही तो मेरा कहना है। जब तक हम लोग डर के पास नहीं जायेंगे, तब तक वह हमें डराता रहेगा। उसके समीप जाने से ही डर छूटेगा ।"

"तब चलो, वहाँ भैया हैं, भाभी हैं वे हमारी रक्षा करेंगे।"

"उन पर तुम्हारा विश्वास कहाँ है। उनकी कौन कहे, तुम्हारा विश्वास मेरे ऊपर भी नहीं है।"

"क्यों जली को जलाते हो !"

यह कहकर वह पुनः रोने लगी। श्यामसुन्दर चुपचाप उसका मुख निहारने लगे। मां को रोने देख कर आनन्द भी रोने लगा। गायत्री ने अश्रुपूर्ण नेत्रों को पोछते हुए कहा—"सब तेरे ही कारण हो रहा है। न-मालूम तू क्यों उस दिन क्या बड़बड़ाया ? टेपरिकार्डर में तेरी आवाज़ न भरी गई होती, तब यह बवंडर क्यों उठता ? लेकिन यह सब मेरी बेवकूफी से हुआ है। यदि मैं विनोद को बुलाकार न ले गई होती, तो कोई बात ही न उठती। किन्तु..... ।"

"पुरानी बातों को याद करने से क्या हासिल होगा ?' 'गतं न शोचामि' के अनुसार उनका त्याग करो, और आगे का कार्यक्रम बनाओ ।"

"मेरी बुद्धि काम नहीं देती, तुम जैसा चाहो करो ।"

"मेरी राय बनारस चलने की है ।"

"तब फिर बनारस ही चलो। जो होगा देखा जायगा ?"

"बेशक, हम लोग भी हलुआ नहीं हैं, जो बाबा खा जायेगा। उसकी क्या मजाल जो आनन्द को छल-छद्म या जबरदस्ती ले जा सके ।"

"इतना मैं भी जानती हूँ कि वह हमारे आनन्द को छीन कर नहीं ले जा सकता।"

"फिर क्यों इतना डर रही हो ?"

"मैं उसके मन्त्र बल से डरती हूँ। कहीं वह हमारी सबकी बुद्धि नष्ट कर आनन्द को अपना अनुगामी न बनावे। उसमें कुछ शक्ति तो है ही, इसका परिचय भी हमें मिल गया है। इन लामाओं में अद्भुत शक्तियाँ होती हैं, इनकी क्षमता की कई कहानियाँ नागार्जुन मुझे सुना चुके हैं।"

"अब भेद खुला। नागार्जुन पहले ही उन मिथ्या कहानियों से तुम्हें आतंकित कर चुका है, और वही आतंक तुम्हारे मन में समाया हुआ है। तुमने भीरुता की हद कर दी। जैसे बच्चे भूतों की कहानियाँ सुनकर भीरु हृदय हो जाते हैं, वैसे ही तुम हो गई हो। तुमने तिल का ताड़ बनाकर स्वयं अपने को, मुझको, और आनन्द को परेशान किया है। धन्य हो तुम !"

"मैंने माँ का हृदय पाया है !"

"एक तुम ही अनोखी माँ हो ?"

"मैंने वर्षों तपस्या की है, अनेक व्रत-पूजन किए। चन्द्रायण व्रत किया, तब कहीं आनन्द का मुख देखने को मिला है।"

"ठीक है, जो तुमने किया, उसका फल पाया। इन पुराने पचड़ों से क्या लाभ ? मैं जाकर ट्रंककाल से भाई साहब से बात कर बनारस का हाल-चाल दरयाफ्त करता हूँ।"

"यहां से बात करते तो मैं भी उनकी बातें सुनती, और अपनी ओर से कुछ कहती।"

"अभी काल बुक करा आऊँ, बातचीत यहीं से करेंगे।"

यह कहकर श्यामसुन्दर लिफ्ट से नीचे उतर गए। गायत्री विचारों के उधेड़-बुन में लग गई।

थोड़ी देर पश्चात् श्यामसुन्दर ने मणिमाला और अविनाश बाबू के साथ प्रवेश किया। उन्हें देख कर गायत्री क्षणभर के लिए स्तंभित रह गई, और फिर दूसरे क्षण दौड़ कर मणिमाला से लिपट कर रोने लगी।

मणिमाला ने उसकी पीठ सहलाते हुए कहा—"दीदी तुम इतनी डरपोक निकलीं ! अरे बनारस छोड़ने से पहले हम लोगों से सलाह तो लेली होती।"

"भाभी, अगर ऐसा किये होती, तो फिर क्यों इतने दिन परेशान होती।"

"विनोद ने कई बार ट्रंककाल से बात करना चाहा, किन्तु उत्तर मिलता कि आप लोग कहीं अन्यत्र चले गये हैं।"

श्यामसुन्दर ने बताया—"यह भी श्रीमती जी के आदेशानुसार हुआ था।"

"मैं कब कहती हूँ कि आप इसमें शामिल थे। जो कांड घटित हुआ है,

मेरे ही कारण हुआ है। भाभी, मैं ही अपराधिनी हूँ।"

"हम लोग अपराध का निरूपण करने नहीं आए हैं। तुमको बनारस ले चलने के लिए आये हैं। बासबा बड़ी आकुलता से तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा कर रहा है।"

बासबा का नाम सुनते ही गायत्री का चेहरा फक हो गया।

श्यामसुन्दर ने हँसते हुए कहा–"भाभी देखिये, बासबा का नाम सुनते ही यह कितना डर गई।"

अविनाश बाबू बोले–"गायत्री, क्या तुम पुराने जमाने की वह गायत्री नहीं रहीं, जो मेरे और अपनी भाभी के लिए अपनी जान हथेली पर लिए घूमती थी। तुममें तो अद्भुत साहस था, अद्भुत प्रत्युत्पन्न बुद्धि थी, और मृत्यु से भी टक्कर लेने की शक्ति थी। अपनी जान पर खेल कर तुमने मुझे कई बार बचाया, सब प्रकार के खतरों को मोल लेकर तुम वर्षों अपनी भाभी को छिपाये रहीं। जहाँ जरा भी आशंका होती वहाँ सबसे पहले तुम मना करते हुए भी दौड़ पड़ती थीं। वह साहस, शौर्य कहां गया? आज एक भिक्षुक के भय से अधमरी हुई जा रही हो, घर द्वार छोड़कर होटल में पड़ी हो, मानो यह तुम्हारे घर से अधिक सुरक्षित है। तुम बासबा के नाम से चौंक पड़ती हो, क्यों भय से तुम्हारा मुख विवर्ण हो जाता है! यह कैसा परिवर्तन है? तुम समझती हो कि बासबा, आनन्द को छीन लेगा? उसकी क्या मजाल जो वह आनन्द को हाथ भी लगा सके!"

गायत्री उत्तर न दे सकी। वह फूट-फूट कर रोने लगी। मणिमाला ने अविनाश बाबू को चुप रहने का संकेत किया और, कहा–"इस लानत-मलामत से क्या फायदा? दीदी में असीम स्नेह है, अनन्त प्यार है, और अगाध वात्सल्य है। स्नेह काना, प्यार अन्धा और वात्सल्य पागल होता है। दीदी अन्धी और पगली दोनों हो गई है।"

यह कह कर वह हँसने लगी, और उसको हृदय से चिपटाती हुई बोली—मेरी प्यारी अन्धी-पगली दीदी, मेरी प्यारी पगली दीदी!

वातावरण की गम्भीरता तिरोहित होकर हास्य में परिणत होने लगी।

फिर श्यामसुन्दर से कहा—"अंग्रेजी में एक शब्द 'हेन पेक्ड' है जिसका हिन्दी रूपान्तर 'स्त्रैण' है, किन्तु वह उसके समस्त भाव को प्रकट नहीं करता, इस-लिये मैं आज आपको उस पदवी से विभूषित करती हूँ। दीदी का पागलपन नारी होने के नाते क्षम्य है, परन्तु आपकी भीरुता पुरुष नाम को कलंकित करती है। बीवी की हाँ में हाँ मिलाना कबसे सीख लिया ?"

"अरे आप तो मुझ पर बरस पड़ीं। यदि आप मेरी जगह इनकी पति होतीं, तो आप भी वही करतीं जो मुझे करना पड़ा है।"

"ठीक है, सफाई देना बेकार है।"

"अब मालूम हुआ, पुरुष होना भी फजीहत है।"

अविनाश बाबू तुरन्त बोल उठे—"भाई श्यामसुन्दर जी, आप पुरुष जाति का प्रतिनिधित्व नहीं करते। आपका पुरुष होना अवश्य फजीहत का कारण हो सकता है, परन्तु समस्त पुरुषजाति पर आप यह लाँच्छन नहीं लगा सकते। आपकी यह अनधिकार चेष्टा है। श्रीमती जी आप मेरा विरोध नोट कर लीजिये।"

यह कह कर उनके साथ सब हँसने लगे।

इसी समय होटल के दो कर्मचारी सबके लिए चाय ले आए।

अविनाश बाबू ने चाय देख कर कहा—"छोड़ो यह बकवास, आओ चाय पी जाय।"

सब लोग यथा स्थान बैठ कर चाय पीने लगे।

चाय पीते हुए अविनाश बाबू बोले—"कहिये श्यामसुन्दर जी आपका इरादा बनारस लौटने का कब है ?"

"भाई साहब, जहां तक मेरा कलकत्ता छोड़ने का प्रश्न हैं, उसके लिए मैं अभी इसी क्षण तैयार हूँ।"

"बस ठीक है, तैयारी कीजिए।"

"किन्तु पहले अपनी बहिन जी से पूछिये, वह कब चलेंगी ?"

"गायत्री को लेने के लिये हम लोग तो आए ही हैं, वह हमारे साथ जायगी। हमें तो आपकी चिन्ता है।"

"मेरे लिए आप कोई चिन्ता न कीजिये। आप यदि साथ न ले जायेंगे तो मैं खुद-बखुद चला आऊँगा।"

"न ले जाने के क्या अर्थ है? आप अभी तक कैद भुगतते रहे हैं। कलकत्ता घूमने का अवसर नहीं मिला, इसलिए मैंने आपसे पूछा था।"

"कलकत्ता घूमने की अब ख्वाहिश नहीं है।"

"तब फिर हम लोग कल प्रातःकाल चल दें।"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

"गायत्री, तुम बनारस चलोगी, या अभी कुछ दिन और भटकने का इरादा है?"

"नहीं भैया, अब कहीं नहीं भटकूँगी। आपके साथ चल कर बासबा से मोर्चा लूंगी।"

"ठीक है। बासबा आनन्द को देखने के लिए अभी तक ठहरा है, नहीं तो वह अब तक चला जाता। उसके साथी चले गये हैं। आनन्द उसका गुरु है, इसलिए गुरुदेव के दर्शनों की प्रतीक्षा में बैठा है।'

मणिमाला बोली—"नागार्जुन हमारे पास आया था; और कहता था कि वह आनन्द का कोई अनिष्ट नहीं होने देगा।"

"सब उसी का जाल फैलाया हुआ है। उसने न मालूम किस अधिकार से आनन्द को दिखाने का भार उठा लिया।"

"तुम्हारा गुरु होने के नाते।" अविनाश बाबू बोल उठे।

"भैया, क्या यशोधर को अब भी तिब्बत भेजने की इच्छा है?"

"क्यों? अभी उस योजना में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।"

"तिब्बत लामाओं का देश है, वे मन्त्र-तन्त्र के ज्ञाता हैं। यदि यशोधर को कुछ हो गया तो मुश्किल होगी।"

"गायत्री, न मैं और न यशोधर उनके तन्त्र-मन्त्र पर विश्वास करते हैं। थोड़े ही दिनों में तिब्बत में ऐसी घटनाएँ घटेंगी, जिनसे लामाओं का माया-जाल छिन्न-भिन्न हो जायेगा। कम्यूनिस्ट विचार-धारा जहाँ तिब्बत में फैली, वहाँ लामाओं का परदा-फाश हुआ। मैं चाहता हूँ कि तिब्बत पर कम्यूनिस्टों

का अधिकार होने के पहले हमारे प्राचीन साहित्य का उद्धार हो जावे, नहीं तो जिस प्रकार यहां का साहित्य विदेशियों द्वारा नष्ट कर दिया गया है, उसी प्रकार वहाँ का भी नष्ट हो जायगा।"

गायत्री चुप होगई। थोड़ी देर बाद मणिमाला ने कहा—"आज रात बंगाली नाटक देखा जाय। आप लोगों की क्या राय है ?"

"तुम तो बंगालिन हो, सब समझोगी, लेकिन हम लोग बुद्धू बने बैठे रहेंगे। सिनेमा चलने की मेरी राय है।"

"शाम अच्छी तरह कट जायगी, और रात में सो भी सकोगे। सफर की थकावट मिटा लेना ठीक है।" अविनाश बाबू ने अपना विचार प्रकट किया।

सब लोग इस पर सहमत हो गये।

१७

ज्ञान-बापी की एक गली में एक गेरुए रंग का मकान वर्षों से खाली पड़ा था। वह मुहल्ले में 'भुतहा मकान' के नाम से विख्यात था। वह इस समय एक मारवाड़ी सेठ का था जिसने स्वल्प मूल्य में उसे खरीदा था। जब वह उसमें आकर रहने लगा, तब कुछ ऐसी आकस्मिक घटनाएँ घटीं, जिससे उसके "भुतहा" होने में किसी को सन्देह नहीं रह गया। जिस दिन मकान बिक्री की रजिस्ट्री हुई उसी दिन शाम को उसके भाई का लड़का जो अरसे से बीमार था, फौत हुआ। घर में जाने के दो महीने पश्चात् उस सेठ की भावज मरी, जो यक्ष्मा से पीड़ित थी। आठ महीने पश्चात् उसका एक नवजात शिशु मरा तथा उसकी स्त्री मरते-मरते बची, किन्तु उसकी कुक्षि ऐसी विकृत होगई कि फिर उसके दूसरी सन्तान उत्पन्न नहीं हुई, और सबसे अन्त में उसके पिता की भी मृत्यु वहीं हुई। सेठ ने मकान छोड़ दिया, और सिक-

रौल में जाकर वह रहने लगा। मकान कुछ ऐसा बदनाम हुआ कि उसमें न कोई किराएदार आकर बसा और न कोई उसे खरीदना चाहता। यदि कभी कदाचित् कोई परदेशी उसे किराये पर लेने को तैयार होता तो मुहल्ले वाले उसे सेठ पर बीती सुनाकर भड़का देते। सेठ जी उसे बहुत कम किराए पर देने को तैयार थे, किन्तु कोई उसमें रहकर अपनी तथा अपने परिवार की जान जोखिम में डालने को तैयार न होता था। मकान अन्धी गली के कोने में स्थित होने से बिल्कुल एकान्त पड़ता था। उधर लोग प्रायः दिन को भी न जाते थे, और शाम से तो वह गली बिल्कुल सुनसान हो जाती थी।

चाऊचिन ने इस मकान की शोहरत सुनी। उसने उसे जाकर देखा। वह एक भव्य भवन था, जिसमें पच्चीस-तीस आदमी बड़े आराम से रह सकते थे। उसके अन्दर दो चौक थे, और वह ऐसा बना था कि उसे जनाने और मरदाने भागों में विभक्त किया जा सकता था। शाही जमाने के किसी रईस ने बनवाया था, किन्तु उसके निर्वंश हो जाने से, उसके एक दूर के रिश्तेदार ने बेंच दिया था। कहते हैं कि उसका खरीदने वाला कभी सरसब्ज नहीं हुआ। सबसे अन्तिम खरीदार सेठ जी भी वहाँ न रह सके थे।

चाऊचिन मकान देखकर मुग्ध रह गया। अपने कार्य के लिये बहुत उपयुक्त समझकर उसने उसी दिन सिकरौल जाकर सेठ से मकान किराए पर ले लिया। सेठ जी ने बातों ही बातों में उसे बता दिया कि वह उसे नाम-मात्र के मूल्य वर बेंच भी सकते हैं। चाउचिन इस प्रस्ताव पर विचार करने का आश्वासन देकर चला आया।

महल्ले के कुछ लोगों ने चाउचिन को उसके 'भुतहा' होने की सूचना दी। उत्तर में वह उपेक्षा-पूर्ण हँसी हँसा और कहा—"हम चीनी भी किसी भूत से कम नहीं हैं। जिसके लग जाते हैं, उसकी जान लेकर छोड़ते हैं। तुम लोग मुरदा और जिन्दा भूतों को लड़ाई दूर से देखना, कभी नजदीक न आना, नहीं तो हारा खिसियाया भूत तुम्हारे चिपट जायगा, फिर जान के लाले पड़ जायेंगे।" यह चेतावनी देकर वह हँसता हुआ निशंक चला गया।

मकान की पोताई-सफाई होने के बाद चाउचिन ने उन सब चीनियों को

वहाँ बसा दिया, जो उसके दल की ओर से भारत में गुप्तचरी करते थे। यद्यपि चाउचिन के गुप्त दल का कोई सम्बन्ध सरकार से न था, तथापि वह उस संगटन से सम्बद्ध था जिसे "वृहत्तर चीन संघ" की संज्ञा दी गई थी और उसमें 'क्यू-क्लक्स क्लैन' अमरीकी निग्रो विरोधी संगठन की भाँति सरकारी तथा गैर सरकारी किन्तु प्रभावशाली व्यक्ति थे। उसका अपना कोष था, और उसके धनागम का द्वार क्या था, यह भेद केवल उस स'स्था के शीर्ष-स्थानीय व्यक्ति ही जानते थे। भयानक विस्फोटक शस्त्रास्त्र उनके पास थे, और वे मैत्री द्वारा जन-साधारण में अपना प्रभाव जमाते थे। पिस्तौल आदि चलाने में वे पटु तो थे ही, किन्तु छुरे का प्रयोग वे सर्वोत्तम समझते थे, क्योंकि, उससे कोई शोर-गुल नहीं होता था। मरने वाला व्यक्ति निर्वाक् होकर कुछ पल तड़पता भर था। वे प्राय: एक ही बार में बलवान से बलवान व्यक्ति को मौत के घाट उतार दिया करते थे। उनका ढीला, लम्बा, चोगा, उनके अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों को छिपाये रहता था। ह'सते-बोलते हुए कब उनका मरात्मक आघात होगा, चौकन्ना व्यक्ति भी लखने में असमर्थ था।

उस दिन 'वृहत्तर चीन संघ' की भारतीय शाखा की विशेष बैठक थी। चीन से उसका एक प्रमुख संचालक काँग-कुंग उसका निरीक्षण करने आया था। उस बैठक में चाउचिन, ली-सूंग, चिनचुन, और हो-चिन निमंत्रित थे। ये लोग भारतीय शाखा के प्रमुख गुप्तचर थे और समस्त कार्य-कलाप इनके द्वारा संचालित होता था। काँग-कुँग को इसी भुतहे मकान में ठहराया गया था।

रात्रि के नौ बज चुके थे। चिन-चुन के अतिरिक्त शेष सभी प्रमुख सदस्य आ गये थे, और वे उसकी राह बड़ी उत्कंठा से देख रहे थे। चावलों की चीनी शराब का दौर चल रहा था। जब दीबाल घड़ी ने घण्टा बजा कर साढ़े नौ बजने की सूचना दी, तब कांगकुँग ने ऊबकर कहा—"चिन अभी तक नहीं आई। क्या बात है?"

ली-सूंग ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"वह अपने प्रेमी विनोद के साथ गुलछर्रें उड़ा रही होगी। वह जोंक की भाति उससे चिपका रहता है, उससे

जब मुक्ति मिले, तब तो आवे।"

कांग-कुंग के माथे पर बल पड़ गये। वह बुदबुदाया—"हूं। क्या वह भी उससे प्रेम करने लगी है ?"

यह कह कर कठोर दृष्टि से उसने ली-सूंग की ओर देखा। ली-सूंग भयभीत हो गई। उसने सोचा कि चिनचुन का शायद उसने अनजाने में अहित कर दिया है। वह चुप रही।

कांगकुंग शराब के नशे से विभोर हो रहा था। उसने हुंकार के साथ पुनः पूछा—"चिन क्या अपना कर्त्तव्य भूल कर स्वयं प्रेम की रसधार में बहने लगी है ?"

चाउचिन को उसके बचाव में कहना पड़ा—"चिन उस बन्दर को खेलाती है, वह स्वयं प्रेम-बन्धन में नहीं फँस सकती।"

"फिर मेरे आदेश की अवहेलना क्यों हो रही है ?"

"बन्दर किसी बात पर उलझ गया होगा, उसको फुसला रही होगी।"

"किन्तु देर भी काफी हो गई है।" कहते हुए उसने मदिरा की चुस्की ली।

थोड़ी देर बाद उसने कहा—"ली-सूंग, तूने अभी तक कोई बन्दर नहीं पकड़ा ?"

"कोशिश में हूँ।" ली-सूंग ने छोटा-सा उत्तर देकर अपनी जान बचाई।

"इस विनोद के सम्बन्ध में आप की जानकारी क्या है ?" कांग-कुंग उसके विषय में सब सुन चुका था, किन्तु नशे के झोंक में वह पूछ बैठा।

चाउचिन ने उत्तर दिया—"उसके सम्बन्ध में पहले भी अपनी रिपोर्ट भेज चुका हूँ, और आज सुबह विस्तार से सब हाल बता दिया था। आज्ञा हो तो पुनः अर्ज करूँ ?"

कांग कुंग ने कहा—"क्या वही जो बनारस के प्रसिद्ध कम्यूनिस्ट नेता का पुत्र है, जिसकी माँ पार्ल्यामेन्ट की सदस्या है ?"

"जी हां, वही। विनोद भी कम्यूनिस्ट है, और वह उनमें है, जो चीन के हिमायती हैं। हालाँकि विनोद के पिता कम्यूनिस्ट विचारों के मानने वाले, और पोषक हैं, लेकिन वह रूस तथा चीन के समर्थक नहीं हैं। उनका अपना

मत है। वह कम्यूनिस्टी विचारधारा को भारतीय रंग देने की कल्पना करते हैं।"

"अजीब बेवकूफ हैं। कम्यूनिस्टों में वह विभाजन चाहते हैं। यदि पूंजीवाद, देशों की विभिन्नता से भिन्न-भिन्न रूप का हो सके, तो साम्यवाद में भी भिन्नता हो सकती है! पूंजीवाद सर्वत्र एक है। उससे लोहा लेने वाला कम्यूनिज्म भी एक रूप होगा। भारतीय हमेशा अनोखे होते हैं, तभी इनका कोई स्थान नहीं है।" यह कह कर वह हँसने लगा।

उसके हँसने में किसी ने योग नहीं दिया। इससे वह कुछ रुष्ट हुआ, और बोला—"भारत में मूर्खों की कमी नहीं है, इनमें कोई संगठन भी नहीं है, दूर तक देखने की शक्ति नहीं है, इनमें हर एक बात को ले उड़ने की आदत है। प्रदर्शन करने में बड़े पटु हैं। हमारा हिन्दी-चीनी मैत्री संघ कितनी सफलता से काम कर रहा है। किसी अन्य देश में हमें क्या ऐसा सुयोग मिला है? दूसरे देशों में चीनी संदिग्ध दृष्टि से देखे जाते हैं, यहाँ वे भाई-भाई हैं। हाँ, भाई-भाई हैं।" यह कहकर नशे की झोंक में वह पुनः हँसने लगा।

इस बार उसकी हँसी में सबने सहयोग दिया। सुनसान गली का एकान्त भुतहा मकान सत्य ही भूतों की हँसी से कम्पित होने लगा। सभी भारी गले से चिल्लाने लगे—"हिन्दी चीनी भाई, भाई!"

शराब की उष्ण मादकता से उनका मस्तिष्क घूम रहा था, विचारधारा असन्तुलित थी, और आवाज भर्राई तथा फटी-फटी थी। यदि कोई बाहर से इस शोर गुल को सुनता, तो उस मकान के भुतहा होने में कट्टर से कट्टर भूत विरोधी को भी सन्देह न रहता।

उनके कोलाहाल में सदर दरवाजे की कुन्डी खटकाने का क्षीण शब्द डूब गया।

हँसी का वेग जब कुछ कम हुआ, तब सबसे पहले ली-सूंग ने कुन्डी की खटखटाहट सुनी। उसने सबको चुप रहने का संकेत करते हुए कहा—"कोई कुंडी खटखटा रहा है, शायद चिन आ गई है।" यह कह कर वह दरवाजा खोलने के लिए नीचे दौड़ी।

कांगकुंग कमरे के द्वार की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देख रहा था। दरवाजा

खोलने के बाद ली-सूंग चिन को काँककुंग का रोष बता कर उसे सतर्क कर रही थी। चिनचुन ने बड़ी लापरवाही से उसे उत्तर दिया कि वह किसी से नहीं डरती है, यह कह कर वह ऊपर आई। उसको देख कर काँगकुंग ने कहा—"चिन, न मालूम हम लोग कबसे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। तुमको मालूम है कि संघ किसी की प्रतीक्षा नहीं करता।"

चिन ने बैठते हुए उत्तर दिया—"संघ का काम सर्वोपरि है। उसको करते हुए यदि कुछ देर हो जाय तो वह देर नहीं है।"

कांग की भ्रू कुञ्चित हुई—"प्रेमालाप संघ का काम नहीं है।"

"संघ के स्पष्ट आदेश से मुझे प्रेमालाप की छूट है। हमें इसी शस्त्र के प्रयोग करने का आदेश है।"

"किन्तु स्वयं प्रेम में फँस कर संघ के उद्देश्य को नष्ट करने का नहीं!"

"मैं स्वयं न किसी के प्रेम में फँसी हूं और न फँसूंगी।"

"क्या यह सत्य नहीं है कि तुम विनोद से प्रेम करने लगी हो?"

चिन हँस पड़ी! "मैं उस मूर्ख से प्रेम करूँगी?" जो मेरे तलुवे चाटता है, उससे चिन प्रेम करेगी?

"फिर तुम कैसे भूल गई कि गुप्त बैठक का समय नौ बजे नियत था।',

"यदि भूल जाती, तब आती ही नहीं।"

"फिर देर क्यों हुई?"

"इस सीधे प्रश्न को न पूछकर व्यर्थ घुमाव की बातें क्यों की जाती हैं।"

"अच्छा इस विलम्ब का कारण बताओ। क्या तुम विनोद के साथ सिनेमा देखने नहीं गई?"

"वहीं जाने से इतना विलम्ब हुआ है।"

"क्या तुमको मेरे आदेश के समक्ष वहाँ जाना उचित था?"

"काम साधने के लिए सिनेमा क्या, कहीं भी जाना पड़ेगा।"

"क्या काम साधा?"

"विनोद मन, बचन, कर्म से मेरा गुलाम है। उससे सब कुछ करवाया जा सकता है।"

"तुम्हें विश्वास है ?"

"बेशक !"

"वह क्या तुम्हारे कहने से अपने देश के साथ गद्दारी कर सकता है ? क्या वह हमारी ओर से जासूसी कर सकता है ।"

"निस्सन्देह ।"

'क्या तुमने उसकी परीक्षा ली है ?"

"अभी ऐसा सुयोग नहीं आया, किन्तु वह मोहान्ध है । उससे जो कहा जायगा, बिना उज्र करेगा ।"

"क्या तुम हमारी उस औषधि को बराबर खिलाती हो, जिससे मनुष्य बेबस हो जाता है ।"

"हाँ, उसका प्रयोग मैं बराबर करती हूं । आज उसी के खिलाने में कुछ देर हो गई ।"

"उसका प्रयोग तुम किस प्रकार करती हो ।"

"प्राय: मदिरा में और कभी २ किसी दूसरे पेय में ।"

"सन्तरे का प्रयोग करती हो ?"

'अभी उसका अवसर नहीं आया ।"

"इस समय वह क्या कर रहा है ?"

'उसे सुला कर आई हूं । नित्य उसे औषधि के प्रयोग से जबरन सुलाना पड़ता है ।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि मैं अपनी रक्षा कर सकूं ।"

"तब ठीक है । कल तुम्हारी डाक्टरी परीक्षा की जायगी ।"

"अवश्य होनी चाहिए, क्योंकि सत्य—असत्य का निर्णय उसी से हो सकता है ।"

"क्या तुमने कोई कार्यक्रम बनाया है ?"

"अभी नहीं । संघ के आदेश को सामने रखकर कार्य-क्रम बनेगा । हेड क्वार्टर को सूचना भेज दी है । जो आदेश वहां से प्राप्त होंगे उन्हें पालन किया

जायगा।"

"क्या कभी तुम विनोद के घर गई हो? क्या उसकी माँ से मिली हो?"

"अभी कई दिनों से अथवा यों कहिए कि जबसे विनोद मेरे मोहपाश में फँसा है, तबसे उसके यहाँ नहीं गई। उसके पहले दो-तीन बार जा चुकी हूँ।"

"उसके विषय में तुम्हारा क्या विचार है?"

'विनोद की माँ, बहुत चतुर महिला है। उनकी आँखों में धूल झोंकना कठिन है।"

"फिर विनोद पर तुम कैसे अपना प्रभाव जमा सकती हो। तुमने अभी कहा कि तुम विनोद से अपनी इच्छानुसार काम करवा सकती हो, शायद यह कथन वस्तुस्थिति से दूर है।"

"मैंने जो कहा है वही यथार्थ है। विनोद एक प्रकार से अपने घर में नहीं रहता।"

"फिर वह कहाँ रहता है?"

चिन ने चाऊ की ओर देखा। चाऊ ने उसका आशय समझ कर कहा—"मैं विस्तार से सब हाल निवेदन कर चुका हूँ। चिन हम लोगों के साथ नहीं रहती, वह बंगाली टोले में एक मकान लेकर पृथक रहती है। इस उद्देश्य से जिसमें विनोद के आवागमन तथा वहाँ रात्रि बिताने में कोई अड़चन न हो। चिन वहाँ बंगालिन बन कर रहती है। विनोद का परिचय उसने उसे अपना पति बताकर दिया है।"

"क्या यह चाल गलत नहीं हुई। विनोद काशी के संभ्रान्त परिवार का युवक है, उसे सहज ही पहचाना जा सकता है। परदाफाश होने में देर नहीं लगेगी।"

"इसका कोई भय नहीं है। काशी के कुछ रईसजादे अपनी रखैलें रखते हैं। यह प्रथा प्रचीन है और यहाँ के समाज में जायज है।"

"यह कहो कि चिन उसकी रखैल बनकर रहती है।"

"हाँ, यथार्थ यही है।"

"उसका व्यय भार कौन उठाता है?"

"संघ के आदेश के अनुसार हम आर्थिक सहायता देने के लिए बाध्य हैं, परन्तु एकमास के अग्रिम भाड़े के अतिरिक्त हमने कोई रकम नहीं दी। विनोद स्वयं सब भार उठाता है।"

"क्या उसकी अपनी कोई निजी सम्पत्ति है? अथवा वह व्यय के लिए अपने माता-पिता पर अवलम्बित है।"

चाउ ने चिन को उत्तर देने का संकेत किया।

"विनोद के पास निजी सम्पत्ति कुछ नहीं है। अभी तक उसने अपनी बचाई हुई रकम से खर्च किया है। यों वह एक श्रीमन्त का पुत्र है, वह अपने घर से इच्छानुसार द्रव्य प्राप्त कर सकता है।"

"क्या साधारण रूप से अधिक लेने में उसके माता-पिता को सन्देह नहीं उत्पन्न हो सकता?"

"अभी कोई सन्देह नहीं हुआ, सम्भव है कि भविष्य में हो जाय।"

"क्या संदेह उत्पन्न होने पर संघ का काम नहीं बिगड़ सकता?"

"इस प्रश्न पर विचार नहीं किया।"

"तब तुम कैसी संघ की सेविका हो? तुम कर्त्तव्यच्युत हो गई न?"

इतनी जिरह के पश्चात् काँग उसे निरुत्तर कर सका। उसने विजय भरी दृष्टि से अन्य सदस्यों की ओर देखा। वह अन्य चीनियों की भांति सत्ता-प्रेमी था। अपने आधीन कर्मचारियों को वह सदा दबाए रहने का आदी था। आरंभ से ही चिन बिना आतंकित हुए निर्भीकता से उत्तर प्रत्युत्तर दे रही थी, जो काँगकुंग को सहन नहीं हो रहा था। वह किसी समय शंघाई में वकालत करता था। "वृहत्तर चीन संघ" में वह कोमिटाँग के पतन के पश्चात् प्रविष्टि हुआ था। वह देश भक्ति के लिए प्रसिद्ध था, और अपनी अर्जित सम्पत्ति संघ को सौंप चुका था। इसका बहुत प्रभाव पड़ा, और वह शीघ्र ही उसके शीर्षस्थ संचालकों में हो गया। अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के कारण वह संघ के नीति-निर्धारकों में था, और वस्तुतः संघ उसके निर्देशन में सशक्त और प्रभावशाली बना था।

काँगकुंग ने मदिरा का एक पेय पुनः सन्तोष के साथ पिया। फिर कहा— "चिन, जितना अपने को चतुर समझती हो, वस्तुतः तुम उतनी हो नहीं। संघ

की सेविका प्रत्येक पहलू पर चाहे वह जितना दूर का हो अथवा नजदीक का, विचार करती है। उसकी योजना में कोई छिद्र नहीं होना चाहिए। अभी जो बिल्कुल मामूली अथवा नगण्य प्रतीत होता है, किसी समय वही सारी योजना को उलट-पलट करने वाला साबित होता है। सावधानी हमारी प्रथम आवश्यकता है।"

यह कहते हुए उसने पुनः अपने साथियों पर उड़ती दृष्टि डाल कर अपनी सत्ता, एवं बुद्धिमता प्रतिपादित की। चिन के अतिरिक्त कोई उससे दृष्टि मिला नहीं सका। सब को बारी-बारी से देखते हुए जब चिन पर उसकी दृष्टि आकर ठहरी, तब भी चिन के नेत्र नत नहीं हुए। वह भी एक टक उसकी ओर देखती रही। उसने पराजय नहीं स्वीकार की।

काँग की क्षुब्धता बढ़ गई। वह कुछ कहने ही जा रहा था कि सदर दरवाजे की कुंडी किसी ने फिर खटखटाई। सबका ध्यान उस ओर चला गया। गुप्त बैठक के सभी सदस्य उपस्थित थे, किसी अन्य के आने की सम्भावना नहीं थी। शंका करने का कोई कारण नहीं, परन्तु उनका अपराधी मन आशंकित हो गया। कांग का हाथ तुरन्त अपने चोगे के भीतर छिपाये हुए शस्त्रों पर चला गया। चिन उठी, और धीरे पदों से वह आगन्तुक का पता लगाने के लिए चली गई। शेष सब वहीं स्तब्ध बैठे रहे।

१८

आगन्तुक "वृहत्तर चीन संघ" के कलिम्पोंग तथा कलकत्ता शाखाओं के मुख्य संचालक थे, जो अपने-अपने क्षेत्रों के कार्य-कलाप की रिपोर्ट काँगकुंग को देने के लिए उसी की आदेशानुसार आये थे। वे पहले चाउ की दूकान पर गए, वहाँ उनको मालूम हुआ कि अत्यन्त गुप्त बैठक हो रही है, तब उसके एक

कर्मचारी के साथ भुतहे मकान में आये। चिन उनसे परिचित थी। वह उन्हें लेकर बैठक के कमरे में गई। कांग ने उन्हें देख कर पूछा— "तुम लोगों को कल यहाँ आ जाना था, फिर चौबीस घन्टों की देर कैसे हुई ?"

उनमें से एक, जिसका नाम था हेनचाउ और कलिम्पोंग की शाखा का अधिकारी था बोला—"मैं आपका आदेश पाकर कलिम्पोंग से कलकत्ता गया, और वहाँ से को-च्यांग को लेकर आ रहा हूँ।"

"मैं पूछता हूँ कि एक दिन की देर क्यों हुई ?"

"को-च्यांग की तबियत खराब होने से एक दिन रुक जाना पड़ा।"

"रेडियो से सूचना क्यों नहीं दी ?"

"संघ का आदेश है कि रेडियो ट्रान्समीटर का व्यवहार खास-खास जरूरतों पर ही किया जाय, क्योंकि उससे हमारी कार्यवाहियों के प्रकट होने का भय रहता है। जहाँ तक याद है, आप ही ने चुंगकिंग से इस सम्बन्ध में आदेश प्रसारित किए थे।"

"ठीक है, किन्तु तार से सूचना दे सकते थे।"

"हम लोग चलने को बिल्कुल तैयार थे, इसलिए सूचना नहीं दी। इसके अतिरिक्त इस सम्बन्ध में भी मनाही है। संघ के नियमों में से एक यह भी है कि सदस्य अपनी गतिविधि की सूचना उस समय तक न दें, जब तक उसकी अत्यन्त आवश्यकता न हो।"

काँग हँसने लगा। फिर मदिरा का एक पेग पीते हुए कहा— "ठीक है, आप नियमों का पालन करने हैं, यह जान कर प्रसन्नता हुई। कलिम्पोंग में क्या हो रहा है, विस्तार से बताइये।"

"हेनचाउ ने कागज का एक पुलिन्दा उसे देते हुए कहा— "इसमें मेरी विस्तृत रिपोर्ट है।"

"उसको पीछे पढ़ूंगा, अभी जबानी हाल बता जाइए।"

"नई बात कोई नहीं है। कुछ विदेशी जासूसों ने वहाँ डेरा डाल दिया है, और वे चीन की गतिविधि जानना चाहते हैं। उन विदेशियों के नाम मैंने अपनी रिपोर्ट में लिखे हैं। वे तिब्बत पर अपना प्रभुत्व जमाने की घात में हैं।

'डेपुंग', सेरा और गन्देन के लामाओं के साथ उनकी साजिश शुरू हो गई है। उन्हें शस्त्रास्त्रों तथा धन की सहायता का वचन दिया गया है। चीन पर आक्रमण करने के लिए वे तिब्बत को अपना सामरिक अड्डा बनाने के लिये प्रयत्नशील हैं।"

"ठीक, इन सब हलचलों की विस्तृत रिपोर्ट तुमने लिखी है ?"

"हाँ, और जो जो उपाय हम कर रहे हैं, उनका भी वर्णन सम्मिलित है।"

उसने को-च्यांग की ओर मुखातिब होकर पूछा—"मैं समझता हूँ कि अब तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक है। कलकत्ते में क्या हो रहा है ?"

को-च्यांग ने चीनी कायदे से उसे प्रणाम कर उत्तर दिया—"विदेशी एजेन्ट वहाँ भी हलचल मचाए हैं। हमारा 'हिन्द चीन मैत्री संघ' का कार्य योजना के अनुसार शनैः शनैः आगे बढ़ रहा है। उसके सदस्यों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई है। हम प्रत्येक सप्ताह उसके जलसे किया करते हैं। हमारे कलात्मक प्रदर्शनों से जनता आकृष्ट हो रही है, और कलकत्ता हमारी कार्यवाहियों का सुदृढ़ गढ़ बन गया है।"

"विदेशियों का उन जलसों में हस्तक्षेप नहीं होता ?"

"उनमें से कितने ही अड़चनें डालते हैं, किन्तु भारतीय जनता उनसे प्रभावित नहीं होती। वह चीन की मैत्री के लिये अत्यन्त उत्सुक हैं।"

"भारतीयों का क्या रुख है ?"

"उनमें से अधिकांश चीन रूस के पक्षपाती हैं, किन्तु कोई-कोई विरोध भी करते हैं। कुछ लोग कम्यूनिज्म को भारतीय रूप से गढ़ना चाहते हैं।"

कांग पुनः जोर से हँस पड़ा। फिर बोला—"वे मूर्ख हैं, उनका बलाबल कैसा है ?"

"ऐसे व्यक्तियों की संख्या अत्यन्त अल्प है, और उनका प्रभाव नहीं है। वे अपना राग अलापते हैं, किन्तु सुनता कोई नहीं।"

"ठीक है इसमें हमारा हित है, किन्तु क्या वे हिन्द-चीन की मैत्री का विरोध करते हैं ?"

"नहीं, वे हमारे साथ मैत्री-सम्बन्ध रखने के पक्ष में है।"

"चीनी कुमारियाँ क्या कर रहीं हैं ?"

"कलकत्ता में उनको बड़ी सुविधा है, और उसमें प्रत्येक किसी न किसी चीनी परिवार से सम्बद्ध कर दी गई है वे मैत्री संघ के सदस्यों से अपनी घनिष्टता बराबर बढ़ा रही हैं।"

"बुद्ध की ढाई सहस्रवीं जयन्ती पर हमने कुछ चीनी कुमारियों को भिक्षुणी बनाया है, क्या उनके काम के लिए वहाँ क्षेत्र मिलेगा।"

"जी हाँ, बौद्ध धर्म का प्रसार वहाँ हो रहा है। उनके सहयोग से उस धर्म का विस्तार अधिकाधिक होगा।"

"उसके द्वारा हम भारत में एक सुदृढ़ पचमाँग बनाने की योजना बना रहे हैं। क्या कलकत्ता का क्षेत्र इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सहायक होगा ?"

"हमें आशा करना चाहिए। जो धर्म कभी भारत में मृत हो गया था, वह अब पुनर्जीवित हो रहा है। आज का युग केवल प्रचार का युग है। जितना हम प्रचार करेंगे उतनी ही सफलता हमें मिलेगी।"

"यह मैं जानता हूं, तुम्हारे उपदेश की जरूरत नहीं है।" कांग का स्वर रुक्ष था।

को-च्यांग के उत्साह पर ठंडा पानी पड़ा। वह चुप हो कर नीचे देखने लगा।

काँग ने पूछा—"आज कल बंगाल में मैत्री संघ की कितनी शाखायें काम कर रही हैं ?"

"ठीक संख्या नहीं बता सकता, किन्तु उसके प्रत्येक नगर और कस्बों में शाखाएँ स्थापित हो गई हैं।"

,'देहाती क्षेत्रों में क्या कोई काम नहीं हो रहा है ?"

"अभी उसके लिए कार्यकर्त्ता नहीं मिले।"

"कार्यकर्त्ताओं को उत्पन्न करना तुम्हारा काम है। वे सीधे आसमान से नहीं उतर सकते।"

"उस दिशा में प्रयत्न हो रहा है। भारतीय देहाती क्षेत्रों में राजनीतिक हलचल प्रायः नहीं हुआ करती। विदेशी मामलों पर उनकी कोई दिलचस्पी

नहीं होती।"

"दिलचस्पी पैदा की जाती है, स्वत: उत्पन्न नहीं होती।"

"हम लोग जी-जान से कोशिश कर रहे हैं?"

"देहाती क्षेत्रों में तुमने मैत्री संघ के जलसे करवाए?"

"अभी तक एक भी नहीं।"

"फिर तुम लोग क्या कोशिश कर रहे हो?'

को-च्यांग निरुत्तर हो कर पृथ्वी की ओर देखने लगा।

किसी को निरुत्तर करने में कांग को हार्दिक आनन्द होता था। उसने बैठे हुए सदस्यों की ओर बड़े गर्व से देखा। कमरे में सन्नाटा छाया था। दीवाल पर टँगी हुई घड़ी ने ग्यारह घन्टे बजाये। कांग का नशा कम हो चला था, उसने उसको यथावत् बनाए रखने के लिए पुन: एक पेग पिया।

थोड़ी देर बाद जब मस्तिष्क उष्ण हुआ, तब बोला— "को-च्यांग तुम्हारे काम में शिथिलता प्रत्यक्ष है। तुम बंगाल का कार्यक्षेत्र संभाल नहीं सकते।"

"क्षेत्र भी तो बहुत बड़ा है। केवल कलकत्ते की हलचलों में मुझे व्यस्त-रहना पड़ता है। दो सहायकों के पाने के लिए मैं पहले ही प्रार्थना-पत्र भेज चुका हूँ, किन्तु उन पर कोई ध्यान नहीं दिया गया।"

"वह विचाराधीन है। तुमको किसी छोटे क्षेत्र में क्यों न भेजा जाए?"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मेरा स्वास्थ्य भी कलकत्ता में खराब रहता है। मलेरिया से सदैव पीड़ित रहता हूँ।"

"तब तुमको सदा के लिये क्यों न मुक्ति दे दी जाय।"

उसके शब्दो ने सब को चौंका दिया। कोच्यांग का मुख विवर्ण हो गया। और दूसरे सदस्यों के मुख पीले पड़ गये।

कांग ने गंभीर वाणी में कहा—"हमारे संघ में कमजोरों को जीवित रहने का अधिकार नहीं है। निर्बलों से राष्ट्र का निर्माण नहीं होता। इस समय चीन को बलवान, दृढ़ और शक्तिशाली व्यक्तियों की आवश्यकता है। निर्बल व्यक्ति राष्ट्र के लिए भारस्वरूप होते हैं। उस भार को नष्ट करने में ही राष्ट्र का कल्याण है।'

कमरे के सन्नाटे में उसके शब्द वज्रघोष के समान सब को प्रतीत हुए।

चिन चुन ने उठ कर कहा–"उपाध्यक्ष महोदय, को-च्यांग का अपराध गुरुतर नहीं है, कि उसे मृत्युदण्ड दिया जाय। आशा है कि आप अपने निर्णय पर पुनर्विचार करेंगे।"

चिन के प्रस्ताव का सब ने दबी जबान में अनुमोदन किया।

कांग सोचने लगा। कमरे में सन्नाटा छा गया।

थोड़ी देर बाद कांग बोला— "आप लोगों ने मेरे शब्दों का गलत अर्थ लगाया है। मैं को-च्यांग को मृत्युदण्ड नहीं दे रहा हूँ, बल्कि उसे निर्वासित कर रहा हूँ। संघ की सेवा से उसे मुक्त कर वापस चीन भेज रहा हूं।"

"यह मृत्युदण्ड से भी भयंकर है। हम लोगों को जितनी कठिनाइयां झेलनी पड़ती हैं, वे हम ही जानती हैं। को-च्यांग कलकत्ते में ठीक काम कर रहा है। प्रान्त को विभाजित कर अनेक केन्द्र बनाइए, और प्रत्येक का भार विश्वस्त कर्मचारी को दीजिए।"

"यही तो मेरी योजना है, जिसको कार्यान्वित करने के लिये मैं आया हूँ। को-च्यांग के स्थान पर मैं तुमको कलकत्ता भेजना चाहता हूँ।"

"मुझे कलकत्ता जाने में कोई आपत्ति नहीं है। किंतु यहाँ का कार्य जो मैंने आरम्भ किया है, अधूरा रह जायगा।"

"अधूरे को पूरा करने के लिए ही तुम्हें कलकत्ता भेज रहा हूँ। यहाँ से विनोद को ले जाने से हमारा कार्य आगे बढ़ेगा, क्योंकि हमें उसे उसकी माँ के प्रभाव से दूर रखना है।"

"किन्तु विनोद यदि इसे स्वीकार न करे ?"

"तब तुम्हारा दावा गलत। विनोद तुम्हारा गुलाम नहीं, बल्कि तुम उस की गुलाम बनी हो।"

"मेरा दावा गलत नहीं है। वह मेरी इच्छानुसार कार्य अवश्य करेगा, किंतु उसको कलकत्ता ले जाने में लाभ क्या है ?"

"पंचमाँगी होकर वहाँ काम करे।"

"बनारस उसका कार्य-क्षेत्र है यहाँ उसका अधिक प्रभाव है, और हम उस

के द्वारा पंचमागियों की संख्या में वृद्धि अधिक सुगमता से कर सकेंगे।"

चाउ और हो-चिन ने चिन का समर्थन किया।

थोड़ी देर विचारने के पश्चात् काँग कहने लगा–"अच्छा को-च्यांग अभी कलकत्ते में रहे। तुम भी यहीं रहो, चाउ यहाँ से जा नहीं सकता, ली-और होचिन बाहर भेजे जा सकते हैं।।"

ली ने चिन की ओर देखा। चिन मुस्कराई।

कांग अपनी आँखें बन्द कर कहने लगा—"हमें अपनी योजना को भारत-व्यापी बनाना है। प्रत्येक नगर, प्रत्येक कस्बे और प्रत्येक गांव में हिन्द-चीन-मैत्री संघ की शाखायें खोलना है। यहाँ के निवासियों में ऐसे भाव भरना है, जिनसे वे हमें विदेशी न समझें। हमें हर तरह से उनका विश्वास प्राप्त करना है। यह एक बहुत बिराट आयोजन है।"

चिन–"वह तो हम कर रहे हैं।"

कांग–"किंतु इतना पर्याप्त नहीं है। यह तो भविष्य के गर्भ में निहित एक बृहत्कार्य की भूमिका मात्र है। हमें भारतीय पार्ल्यामेंट पर अपना कब्जा करना है। भारत में प्रजातन्त्र है, और देश में कई पार्टियाँ होने से शक्ति छिन्न-भिन्न है। यदि हम अपनी एक पार्टी खड़ी करें और चुनाव लड़ें तों हमारे कई सदस्य चुनाव जीतकर संसत्सदस्य हो सकते हैं। प्रजातन्त्र में चुनाव लड़ने के लिए पैसे की जरूरत होती है। बिना पैसा खर्च किये, योग्य से योग्य व्यक्ति भी चुनाव नहीं जीत सकता।"

चिन के साथ प्राय: सबों ने सिर हिलाकर स्वीकारात्मक संकेत किया।

कांग कहने लगा—"आजकल के युद्धों में प्रत्येक दिन का युद्ध-व्यय लाखों रुपया होता है, जिनमें लाखों व्यक्तियों की जानें जाती हैं, और करोड़ों की सम्पत्ति स्वाहा होती है। आजकल संसार की विचार-धारा उष्ण-युद्धों के विरुद्ध है। सर्वत्र निरस्त्रीकरण की हवा बह रही है। विज्ञान ने ऐसे मरणात्मक अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण कर दिया है, जिनसे सामूहिक संहार कुछ ही क्षणों में हो सकता है और वस्तुत. इन्हीं भयानक अस्त्रों के कारण तीसरा महायुद्ध रुका हुआ है। चीन के पास अभी ऐसे मारात्मक अस्त्र नहीं हैं, इसीलिये हम उष्ण युद्ध

छेड़ने की स्थिति में नहीं है।"

चाउ ने उसके समर्थन में कहा—"सचमुच चीन के पास शस्त्रास्त्रों का बहुत अभाव है।"

कांग गंभीर वाणी में वोला—"तब इस अभाव को दूर करने के लिए हमें अपनी नीति में परिवर्तन करना उचित है।"

चाउ बीच में बोल उठा-"अर्थात् शीत-युद्ध हमें आरम्भ करना चाहिए।"

कांग ने क्रुद्ध होकर कहा—"मूर्खता मत करो चाउ। नीति-निर्धारण मेरा काम है। मेरी बात ध्यान से सुनो। हाँ, मैं कह रहा था कि जब संसार में निःशस्त्रीकरण की चर्चा हो रही है, तब उसी के अनुसार हमें अपनी नीति में परिवर्तन करना चाहिये। न हम उष्णयुद्ध लड़ेंगे और न शीत-युद्ध। हमें लड़ना है शान्ति-युद्ध !"

यह कह कर वह उनकी थाह लेने के लिए अन्य सदस्यों की ओर देखने लगा। वे लोग भी आश्चर्य के साथ उसके शब्दों का अर्थ लगाने लगे।

कांग चक्षुओं को सिकोड़े हुए बोला—"शान्त युद्ध आप नहीं समझेंगे ? देखिए, दोनो विरोधी शब्द हैं, किन्तु नई परिस्थितियों ने युद्ध को एक नया जामा पहनाया है। यह युद्ध हम शान्त वातावरण में बिना जन-हानि किए लड़ते हैं। हम प्रवेश करते हैं मित्र बन कर, उनके भाई बनकर, उनके सहायक बनकर और हम उनका विश्वास, प्रेम तथा मित्रता, छल, कौशल तथा युक्ति से प्राप्त करते हैं। इसके पश्चात् हमारा दूसरा प्रयत्न होता है, पंचमाँगी दल बनाना। उनमें ऐसे-ऐसे व्यक्ति छांटकर इकट्ठा करते हैं जिनको केवल अपने-स्वार्थ साधन की चिंता होती है; देश, जाति, और धर्म से जिन्हें प्रेम नहीं होता। अर्थात्, जिनमें कामिनी और कांचन के लिए इतना मोह होता है, कि वे देश जाति, और धर्म को कुर्बान करने में नहीं हिचकते। जब ऐसे व्यक्ति हमें मिल जाते हैं, तब हम शान्ति-युद्ध में प्रवृत्त होते हैं। वह शान्त-युद्ध है चुनाव-संघर्ष। चूँकि वे यहाँ के मूल निवासी होते हैं इसलिए वे सहज ही सीटों के प्रत्याशी बिना किसी शंका-शुबहा के बनाये जा सकते हैं। उनको चुनाव लड़ने के लिए हम आर्थिक सहायता देंगे और प्रचार से उन्हें सर्वोत्तम प्रत्याशी प्रमा-

णित करेंगे। उष्ण तथा शीत युद्धों में भी महा-धनराशि व्यय होती है, किन्तु उनका परिणाम सदा संदिग्ध रहता है। शान्त-युद्ध में खर्च होने वाले धन का व्यय उन दोनों प्रकार के युद्धों के व्यय से कहीं कम होता है, और परिणाम यदि शतप्रतिशत नहीं तो पचास से साठ प्रतिशत अवश्य निश्चित रहता है। अथवा दूसरे शब्दों में हमारे खड़े किये हुए उम्मीदवार चुनाव में पचास से साठ प्रतिशत तक अवश्य कामयाब होंगे, जो हमारा बहुमत बनाने के लिए पर्याप्त है। जब एकबार सन्सद में हमारा बहुमत बन गया, तब शासन-सूत्र हमारे अधिकार में आ गया और हम मनचाहा करवाने के योग्य हो जायेंगे।"

मदिरा का उत्ताप कुछ कम होने लगा था। उसको यथावत् बनाये रखने के लिए कांग ने पुन: एक पेग पिया।

मस्तिष्क गरम होने पर वह पुन: कहने लगा –"यह है नवीन पद्धति का शान्त-युद्ध ! अभी तक हम इस देश के साथ मैत्री स्थापित करने में सफल हो गए हैं। यहाँ की जनता हमें अपना मित्र मानने लगी है। हमारे मैत्री समारोहों में इस देश की जनता रुचि लेती है, और इस प्रकार हम उसके विश्वास-भाजन हो रहे हैं। आगे का कदम है पंचमांगियों का दल बनाना। चिन, ली आदि तथा हमारी बौद्ध भिक्षुणियाँ उस कार्य को करेंगी। जहाँ यह उद्योग सफल हुआ, वहाँ हमारा चौथा अभियान आरम्भ होगा। आगामी चुनाव में हमें ऐसे प्रत्याशी खड़े करना है, जो हमारी नीति के अनुसार काम करेंगे।"

चाउ बोल उठा—"यदि हमें उसमें सफलता मिल गई, तब··· ।"

कांग ने रुष्ट होकर कहा–' चाउ बीच में बोलने की तुम्हारी आदत बुरी है। यह काम इतना सहज नहीं है, जितना तुम समझ बैठे। इसमें अपार बुद्धि-युक्ति और धैर्य की आवश्यकता है। हमारा प्रतिपक्षी हलुआ नहीं है, जो हम बिना प्रयास के खा जायेंगे। कछुए की भाँति हम अपनी चालों को छिपाये रखना है, क्योंकि मित्र बनकर उसकी पीठ में छुरा घुसेड़ना है। ललकार कर लड़ना सरल है, किन्तु मित्रता की लिबास ओढ़े शत्रुता करना कठिन है। चिन, तुम्हारा क्या विचार है ?"

चिन ने उत्तर दिया–"मैं आप के विचारों से शत-प्रतिशत सहमत हूँ।"

कांग— "मुझे इस बात से संतोष है कि तुमने विनोद पर विजय प्राप्त कर ली है। मैं तुम्हारा तबादला नहीं करूँगा। तुम विनोद के साथियों पर भी अपनी मोहनी डालो। ली-सूँग से भी काम लो, और जो चीनी भिक्षुणियाँ हुई हैं, उनको उत्तरी भारत के प्रधान-प्रधान नगरों में जाल की भाँति फैला दो। चिन, इसका भार मैं तुम्हारे ऊपर डालता हूँ।"

चिन—"मैं यथाशक्ति अपना कर्त्तव्य पालन करूँगी।"

कांग—"ठीक, और चाउ तुम क्या करोगे ?"

चाऊ—"जो आदेश आप देंगे उसका पालन करूँगा।"

कांग—"तुम स्वयं कुछ सोच कर कोई कार्यक्रम नहीं बना सकते ?"

चाऊ—"आप ही निर्देश कीजिए।"

कांग—"तुम बड़े-बड़े जलसे कर जन सम्पर्क स्थापित करो, और उनमें ऐसे व्यक्तियों को ढूँढ़ निकालो, जो अर्थ पिशाच हो सकते हों, उन्हें आर्थिक सहायता देकर अपना अनुयायी बनाओ। उनके सत्कार में हमारी बनाई हुई औषधियों का प्रयोग कर उनकी बुद्धि भ्रष्ट करो। किसी चीनी भिक्षुणी से उसका सम्बन्ध करा दो, और फिर उसको अपने मत का अनुयायी बनाओ।"

चाऊ—"यही काम मैं कर रहा हूँ। विनोद को मैं ही अपने घर बुलाकर लाया था, और तब चिन को अवसर दिया, उसको फंसाने के लिए।"

कांग—"ठीक है, अब आगे भी अपनी हलचल बनाये रखो। को-च्यांग, तुम कलकत्ता जाकर इसी नीति के अनुसार काम करो। तुम अपने साथ दस अथवा बारह चीनी भिक्षुणियों को ले जाओ। बौद्ध धर्म का धुआँ-धार प्रचार करो, यह देश अहिंसा के सिद्धान्तों का अनुयायी है। बौद्ध धर्म अहिंसा का प्रचार करता है। तुम यहां के निवासियों को जितनी अधिक संख्या में बौद्ध बना सकोगे, उतनी ही हमारी योजना सफलता के समीप होती जायगी। बौद्ध-धर्म के प्रचार के बहाने तुम हमारी नीति का प्रचार करो।"

को-च्यांग ने शिरनत होकर स्वीकार किया।

कांग—"हेन चाउ, तुम कलिम्पोंग वापस जाओ। शत्रुओं की गति-विधि पर अधिक सूक्ष्मता से निरीक्षण करो। तिब्बत में हम शीघ्र कोई कार्यवाही

करने जा रहे हैं । विदेशी एजेन्टों के पीछे अपने गुप्तचर लगा दो । यदि उनसे कोई हानि की आशंका हो तो तुम उनको पार लगा दो, लेकिन हाथ-पैर बचाए हुए । यदि तुम्हारा कोई गुप्तचर पकड़ा जावे तो तुम उसको भी मौत के घाट उतार दो, यदि वह स्वयं आत्महत्या नहीं कर लेता ।"

हैनचाउ ने नतमस्तक हो आदेश पालन करने की स्वीकृति दी ।

कांग ने जम्हाई लेने के पश्चात् कहा—"अब रात्रि अधिक हो गई है । कल प्रातःकाल मैं दिल्ली जा रहा हूँ । वह भी हमारा प्रमुख केन्द्र है । वहाँ निरीक्षण कर मैं स्वदेश लौट जाऊँगा । तुम सब अत्यन्त सावधानी से काम करना । यदि हमारी योजना सफल होगई तो चीन का पुनरुद्धार बहुत शीघ्र होगा । तुम लोगों के परिश्रम लगन और क्षमता पर चीन का भविष्य निर्भर हैं । जय वृहत्तर चीन !"

उसके साथ वृहत्तर चीन का जयघोष सभी सदस्यों ने किया । अर्धरात्रि की निस्तब्धता मुखरित होकर सुप्त भारत को जगाने को व्यग्र हो उठी ।

१९

भुतहे मकान के एक सर्वोत्तम कमरे में कांगकुंग प्रातःकालीन कलेवा कर रहा था । इस समय वह अकेला था, और उसके दूसरे साथी अन्यत्र गए हुए थे । खुमार से, उसका मस्तिष्क असंतुलित हो रहा था । खुमार को दूर करने के लिए उसने अलमारी से मदिरा की बोतल निकाली, और एक गिलास में लगभग दो पेग डालकर वह बिना सोडा मिलाए पी गया । कुछ ही क्षणों में उसका मस्तिष्क गरम होने लगा और खुमार की बेचैनी दूर हो गई ।

वह कमरे में टहलने लगा । कमरे में अनेक चित्र टँगे हुए थे, और वे सब उन व्यक्तियों के थे, जिन्होंने कभी संसार को विजित बनाकर अपना साका

चलाया था। उनमें से दो व्यक्तियों के तैल चित्र आमने-सामने लगे थे। कांग टहलता हुआ एक तैल चित्र के सामने खड़ा होकर मुग्ध दृष्टि से उसको निहारने लगा। थोड़ी देर उसको अपलक देखने के पश्चात् स्वत: बोला–"यह चित्र उस पीतांग चंगेज खां का है जिसने अपने समय में संसार को पराजित कर विजय-वैजयन्ती पृथ्वीतल पर फहराई थी। बड़े-बड़े सूरमाओं ने हार मान कर इसको अपना नेता स्वीकार किया था। पीतांग सैनिकों ने अपनी शक्ति से एशिया के भारत, फारस, अरब और यूरोप के श्वेतांगों को पदाक्रान्त कर पीतांग जाति की श्रेष्ठता का सिक्का जमाया था।"

वह कुछ आगे कहने जा रहा था कि द्वार पर किसी की परछाई पड़ी, जिससे प्रकाश किरणों का प्रवेश रुद्ध हो गया। उसने घूमकर द्वार की ओर देखा, कि चिनचुन वहां खड़ीं हैं। चिन ने उसे चीनी संस्कृति के अनुसार प्रणाम किया, और पूछा–"क्या मैं आ सकती हूँ ?"

वह इस समय भिक्षुणी-वेश में नहीं थी। भारतीय रीति से वह गुलाबी रेशमी साड़ी पहने बड़ी मनोहर दिखाई पड़ती थी। उसकी रूप छटा चारो ओर प्रकाश पुञ्जों की भाँति फैली हुई थीं। उसके आयत लोचनों से सजीव मादकता और मधुरता प्रस्फुटित हो रही थी और उनकी सहज चञ्चलता आकर्षण सूत्रों का जाल गूँथ कर प्रेक्षकों को पुन: पुन: देखने के लिए आमंत्रित करती थी। सूक्ष्म पीताभा से अनुरंजित गुलाबी कपोलयुगल उसकी साड़ी के रंग के साथ होड़ लगा रहे थे। यत्र-तत्र विशाल भाल पर बिखरे घुँघराले बाल वायु तरंगों से उद्वेलित होकर कभी-कभी कानों के समीप कुछ सन्देश सुनाने आते, और कभी भ्रकुटियों की वंकिमता को चुनौती देते थे। अधरों की सहजारुणता के मध्य श्वेत दंत-पंक्ति मुक्तावलि की आभा से अनुरञ्जित थी। चिबुक के मध्य भाग में स्थित एक छोटा-वृत्ताकार गढ़ा उसके सौन्दर्य को द्विगुणित कर रहा था।

कांग उसके अनुपम रूप को देखकर चकित रह गया। वह एक टक सब कुछ भूलकर उसको निहारने लगा। वह चिन को कई बार देख और घण्टों वार्तालाप कर चुका था, किन्तु आज के समान वह इतनी आकर्षक कभी नहीं

दिखाई दी थी। मदिरा ने उसके व्यस्त जीवन के सुप्त नेत्रों को उसका रूप लखने के लिये खोल दिया था। प्रातःकाल का मन्द-मन्द पवन उसकी मदिर वासना को चैतन्य करने लगा। वह इतनी सुध-बुध खो चुका था कि चिन के प्रश्नवाचक वाक्य-अनुमति माँगने का उत्तर नहीं दे सका। महिलाएँ सहज लज्जालु होती हैं यद्यपि चिन गुप्तचर थी, तथापि उसका स्त्रीत्व अभी शेष था। वह कांग की चाह भरी चितवन से अपनी आँखें नहीं मिला सकी, और भूमि की ओर आदेश की प्रतीक्षा में देखने लगी।

नशे का वेग जब मस्तिष्क की धमनियों से नीचे उतरा; तब उसकी प्रज्ञा जाग्रत हुई। उसने उसको भीतर आने का संकेत किया। चिन कुछ लजाती और कुछ डरती हुई अन्दर आई।

काँग ने उसे बैठने को आमंत्रित कर, उसके समीप अपनी कुरसी खींचते हुए कहा—"चिन, वास्तव में तुम बड़ी सुन्दर हो, और इस भारतीय वेष में तो तुम एक अप्सरा प्रतीत होती हो।"

चिन सकुचा गई। उसने प्रसंग बदलने के प्रयत्न में कहा—"में आपसे कई प्रमुख बिषयों पर परामर्श लेने आई हूँ।"

"क्या वे विषय हमारे काम-काज से सम्बन्ध रखते हैं?"

"जी हाँ, और इसके अतिरिक्त हो ही क्या सकता है?"

"क्यों, क्या प्रेम की बातें नहीं हो सकतीं?"

चिन अवाक् होकर उसको देखने लगी।

काँग ने उसकी रूप-माधुरी पान करते हुए कहा—"अवाक् होकर क्या देख रही हो?"

चिन ने साहस बटोरते हुए कहा—"क्या यह अनुचित ही नहीं बल्कि संघ के नियमों के प्रतिकूल नहीं होगा? संघ के सदस्यों को प्रेमपाश में फँसने की मनाही है, यहां तक कि उसके लिये प्राण-दंड की व्यवस्था है।"

"संघ के उच्च पदस्थ संचालकों के लिये कोई बन्धन नहीं है?"

"किन्तु हमारे जैसे निम्न वर्ग के कर्मचारियों के लिये तो मनाही है।"

"मैं अपने विशेषाधिकार से तुमको उस बंधन से मुक्त कर दूंगा।"

'आपकी शक्ति का अनुमान मुझे है, क्योंकि नियमों के अनुसार उपाध्यक्ष ही समस्त शक्ति का केन्द्र है।"

"फिर भी तुम मेरी प्रेयसी होना स्वीकार नहीं करती।"

"प्रेम का अंकुर हृदय में उगता है, वह भी स्वयमेव।"

"किन्तु हमारी राजनीतिक व्यवस्था में न प्रेम और न हृदय का कोई स्थान है?"

"तो क्या प्रेम ही आदेश-अपेक्षित है?"

'निश्चय ही प्रेम का आश्रय वासना है। यदि ऐसा न होता तो वासना की तृप्ति के पश्चात् तथोक्त प्रेम का नाश क्यों होता है।"

"वासना पाशविक है और प्रेम दैविक।"

"न कुछ पाशविक है, और न कुछ दैविक है, सब प्राकृतिक है। अफसोस, अभी तक तुममें पुराने संस्कार भरे हुए हैं। उद्भ्रान्त कवियों तथा मस्तिष्क-विहीन धर्माचार्यों ने ऐसी विकृत भावनाएँ समाज में चलाई हैं। कम्यूनिज्म ने इन मिथ्या संस्कारों को नष्ट करने का बीड़ा उठाया है। जिस प्रकार भूख एक प्राकृतिक माँग है उसी प्रकार प्रेम भी है। भूख भोजन से शान्त होती है, प्रेम वासना की पूर्ति से शान्त होता है।"

"मन का संयोग न होने से क्या वासना की तृप्ति बलात्कार नहीं है?"

"कम्यूनों में जिस प्रकार सब काम सामूहिक रूप में होते हैं, तथा उनकी समस्त चेष्टाएँ पार्टी संचालकों के नियन्त्रण में चलती हैं, उसी प्रकार प्रेम अथवा वासना की भावना है। व्यक्तित्व को समाज में समाविष्ट करना ही सच्चा साम्यवाद है। समाजवाद का अन्यतम रूप कम्यूनिज्म है, जहां व्यक्ति की इच्छा लोप हो जाती है।"

"आपकी यह फिलासफी मेरी समझ में नहीं आती।"

"अभी नहीं धीरे-धीरे समझोगी। इस प्रकार सोचो कि जो कुछ तुम अपना कहती हो, वह दरअसल तुम्हारा नहीं है, वह सब का है। उस पर अधिकार तुम्हारा नहीं समाज का है। तुम्हारा रूप, तुम्हारा शरीर, तुम्हारी चेतना, तुम्हारी भावना, सब समाज की है।"

"इसका अर्थ यह कि मेरा शरीर कोई भी इस्तेमाल कर सकता है।"

"निस्सन्देह, जैसे समाज को जरूरत हो सैनिकों की, तब प्रत्येक व्यक्ति से सैनिक का काम लेने का अधिकार समाज को है। वह सैनिक बनने से इनकार नहीं कर सकता। इसी प्रकार से अन्य बातों के लिये भी ऐसी ही व्यवस्था समझना चाहिये।"

"समाज के अधिकार का निरूपण कौन करता है।"

"समाज की कर्णधार पार्टी है, अतएव पार्टी के व्यक्ति ही समाज की आवश्यकता के अनुसार उसके अधिकार का निरूपण करते हैं?"

'मैंने भी कम्यूनिज्म के सिद्धान्तों का अध्ययन किया है, परन्तु······।"

"तुम रूसी कम्यूनिज्म की बात सोचती होगी, जो अधूरा है। कम्यून व्यवस्था चलाने में वे असमर्थ रहे, और इसीलिये उनका कम्यूनिज्म खिचड़ी बन गया। चीनी कम्यूनिज्म वास्तविक अर्थों में कम्यूनिज्म है जो कम्यून व्यवस्था पर आधारित है। खाने-पीने-रहने की व्यवस्था सब सामाजिक है। किसी प्रकार के व्यक्तिवाद की उसमें गुँजायश नहीं है।"

"परन्तु······।"

"परन्तु वरन्तु कुछ नहीं। यदि तुम मेरी प्रेयसी बनना स्वीकार करोगी, तो तुम्हारे अधिकारों में वृद्धि होगी। तुम साधारण गुप्तचर से पार्टी की एक नेत्री हो सकती हो। नेत्री का मार्ग में तुम्हारे लिये प्रशस्त करूँगा।"

"और यदि मैं स्वीकार न करूँ तो।"

"तब मृत्यु-दंड निश्चित है। पार्टी के प्रमुख संचालक की आज्ञा न मानने की सजा प्राण-दंड है। इतना तो तुमको अवश्य मालूम होगा।"

चिन को कोई उत्तर न सूझा। वह अपने सामने टँगे हुए तैल चित्र को शून्य दृष्टि से देखने लगी।

काँग ने उसकी दृष्टि का अनुसरण कर कहा—"जो चित्र तुम अपने सामने देख रही हो, जानती हो वह किसका है?"

काँग कहने लगा—"यह चित्र उस महान विजेता का है जो एक महान पीतांग था। इस महान व्यक्ति का नाम लेते हुए आज भी लोग भय से पीले

पड़ जाते हैं। उसने समस्त ज्ञात संसार को अपने पैरों के तले रौंद डाला था। इसने चीन से लेकर यूरोप तक, तथा रूस से लेकर भारत तक फैले समस्त देशों पर अपना साम्राज्य स्थापित किया था। इसने श्वेतांगों का मान-मर्दन कर उन्हें बकरों की भांति मौत के घाट उतारा था। उनके बड़े-बड़े नगरों को अक्षरशः भूमिसात किया था। उनके समस्त निवासियों को, जिनमें बाल, वृद्ध, तथा नारियां सम्मिलित थीं, चने की तरह आग में भूंज डाला था। इसकी सेनायें श्वेतांगों के समृद्ध देशों के नगरों में प्रवेश करती थीं, उस समय वे हरे-भरे खाते पीते होते थे और जब वहां से वे कूच करतीं तब शहर राख के स्तूप बन जाते, और निवासियों को पृथ्वी खा जाती। इस महान पराक्रमी पुरुष के समक्ष नारी की "अपनी इच्छा" करके कोई वस्तु नहीं थी। इसकी आज्ञा को उल्लंघन करने का साहस किसी में नहीं था। सोचो, इस पृथ्वी पर ऐसा कौन व्यक्ति उत्पन्न हुआ है, जिसका सानी आज तक न पैदा हुआ है और भविष्य में होगा, यह भी सन्देहात्मक है।"

काँग चिन के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। वह भय से काँप रही थी।

उसने उसका हाथ पकड़ कर उठाया, और घसीटता हुआ उस चित्र के सन्मुख ले गया, जिसकी प्रशंसा के वह पुल बाँध रहा था। इस समय चिन की विचार-शक्ति लुप्त हो गई थी, और शरीर पीपल के पत्ते के समान काँप रहा था।

कांग उसका हाथ झझकोरता हुआ बोला—"इसने अपने जीवन में असंख्य नारियों का मान भंग किया था, और अनेकों रूपसियों ने स्वेच्छा से इसकी अंकशायिनी होने में गौरव समझा था। जो दिग्विजय करता है, वही सर्व-शक्तिमान होता है, और शक्तिमान अपनी इच्छानुसार सभी वस्तुओं को भोगता है। यह चित्र तैमूर का है। देखो इसका ललाट ठीक वैसा ही है, जैसा मेरा है। उसके नेत्रों से वही श्रेष्ठता, स्थिरता, और दृढ़ता प्रस्फुटित हो रही है, जो तुम मेरे नेत्रों में देख सकती हो। उसकी भ्रकुटियाँ उतनी ही कुटिल हैं, जितनी मेरी। उसके कानों पर जरा दृष्टि डालो, वे वैसे ही चौड़े, बड़े, तथा पंखे की तरह फैले हुए हैं, जैसे मेरे हैं। पीतांगों की मूछें कुछ छोटी, तथा

पतली, एवं बिखरे बालों की होती हैं, दाढ़ी के बाल केवल ठुड्डियों तक सीमित रहते हैं, वैसे ही इस महान व्यक्ति की मूछें और दाढ़ी हैं। इन दो बातों में मुझसे समानता इसलिए नहीं है क्योंकि मैं इनको मुड़वा देता हूँ। देखो मेरी भुजाएँ, मेरा चौड़ा सीना, मेरी माँस-पेशियाँ वे सब तैमूर के अनुरूप हैं।"

चिन सहसा बोल उठी— "किन्तु उसकी एक टाँग टूटी थी, इसीलिए वह तैमूर लंग कहलाता था।"

काँग बोला—"उसकी एक टाँग टूटी नहीं थी। अपने दुर्दिनों में उसे कुछ दिनों तक निरुद्देश्य घूमना पड़ा था, और उन्हीं दिनों उसके पैर में चोट लग गई। बिना इलाज की सुविधा के चोट बढ़ती गई, उसी के प्रभाव से उसे कुछ दिनों तक लँगड़ा कर चलना पड़ा था। चोट अच्छी हो जाने पर भी उसका लँगड़ाना दूर नहीं हुआ। उसके श्वेतांग शत्रुओं ने उसे 'लंग' की उपाधि से विभूषित किया, तथा इतिहास में भी वह इसी नाम से प्रसिद्ध किया गया, क्योंकि उस समय के इतिहासकार अधिकतर श्वेतांग थे।"

"लेकिन आप तो लँगड़ा कर नहीं चलते।"

"लँगड़ाना कोई उसका विशेष गुण नहीं था, जिससे उसके जीवन पर कोई प्रभाव पड़ता। मेरे मन में वह विचार सतत् उठता रहता है कि नवचीन में मुझे तैमूर की भूमिका अदा करना है, पीतांग जाति को उसी प्रकार सर्व-शक्तिमान बना कर श्वेतांगों के संसार को पदाक्रान्त करना है।"

"ठीक है, उसी के प्रयत्न में हम सब संलग्न हैं।"

"यही हमारी योजना है। पहले चीन की सीमा को हिमालय तक लाकर उसे दृढ़ करना है, फिर हमें आगे बढ़ना है। तैमूर तलवार की शक्ति इस्तेमाल करता था, और कूटनीति का भी वह सहारा लिया करता था। जिस देश को उसे जीतना होता, वहाँ वह पहले अपने गुप्तचरों को भेजता था, जो तैमूर की ख्याति तथा विरुद गाते थे, जिनसे वे हतोत्साहित हो जाते थे। आधी से ज्यादा विजय उसके गुप्तचर कर लिया करते थे, शेष को पूर्ण उसकी विशाल सेनाएँ करती थीं। संसार का वह प्रथम सेनापति था, जिसने अपने सैनिकों को एकसी वर्दी पहनाई थी। संसार का वह प्रथम वैज्ञानिक था, जिसने बन्दूक और बारूद

का आविष्कार लगभग पूरा कर लिया था, किन्तु उसी अवसर पर उसकी मृत्यु हो जाने से, वह आविष्कार संसार में प्रकट होने से कुछ वर्षों के लिए टल गया। उसको पूर्ण कर संसार में लाने का श्रेय हम चीनियों, अर्थात् पीतांगों को है। कागज भी हमने बनाया, और मुद्रणकला का आविष्कार भी पीताँगों का है। पीतांग जाति संसार की सर्वश्रेष्ठ जाति है।"

यह कहते-कहते उसने चिन को अपने अंक में भर लिया। आक्रमण इतना आकस्मिक हुआ था, कि चिन अवश हो गई, और वह उसका प्रतिकार नहीं कर सकी। स्थिति का भान होने पर वह अपने को छुड़ाने का प्रयत्न करने लगी, किन्तु कांग की बलिष्ट भुजाओं के पाश से वह अपने को मुक्त नहीं कर सकी। वह बिल्ली के मुंह में दबे हुए चूहे की भाँति छटपटाने लगी।

उसने अपना पाश दृढ़ करते हुये कहा—"चिन, अब तुम मेरे पाश से निकल नहीं सकती, और न कोई तुम्हें सहायता दे सकता है। यदि तुम मुझे स्वेच्छा से वरण नहीं करती, तब तुम्हारा मान भंग करने के पश्चात् तलवार की धार से तुम्हारा आलिंगन कराया जायगा। इसी नीति का पालन तैमूर मेरा राजनीतिक गुरू भी करता था। और यदि तुम मेरी प्रेयसी स्वेच्छा से बनोगी तो तुम एक दिन विश्व-विजेता की प्रेयसी बन कर चीनी साम्राज्य की सम्राज्ञी हो सकती हो। बोलो, तुम कौन मार्ग पसन्द करती हो।"

यह कहते हुए उसने उसे छोड़ दिया। वह हाँफती हुई एक कुर्सी के सहारे खड़ी हो गई। उसका मन और शरीर बेंत की तरह कांप रहा था।

कांग उसको इस भाँति देख रहा था, जैसे शिकारी उस हिरणी को देखता है, जिसे उसके कुत्तों ने हिला डाला हो।

अपनी छोटी आँखों को सिकोड़ते हुए वह बोला— "तुमको विचारने के लिए मैं एक दिन का अवसर देता हूँ। मेरे दोनों प्रस्तावों पर विचार कर लो। जो तुम्हें अधिक रुचिकर हो उसी के अनुसार मैं अपना कार्य-क्रम बनाऊँगा। तुम अब इसी कमरे में कैद रहोगी। मैं इसका प्रबन्ध किये देता हूँ।"

चिन का मन अस्थिर था। वह कोई उत्तर देने, अथवा स्थिति पर विचार करने में सर्वथा अशक्त थी।

कांग उसको देखता हुआ, कमरे से बाहर चला गया। जिस प्रकार शेर को सम्मुख देख कर उसके शिकार की घिग्घी बँध जाती है, वैसे ही दशा चिन की थी। उसे मालूम भी न हुआ कि कांग अब कमरे के बाहर चला गया है।

जब कांग की आज्ञानुसार उस कमरे के दरवाजे बन्द किये जाने लगे, तब उसको होश आया। वह कमरे के बाहर निकलने का उद्योग करने लगी, किन्तु कांग के परिचारकों ने' जो उसके साथ चीन से आये थे उसका मार्ग रोकते हुए कहा—"कमरे के बाहर निकलने का आदेश नहीं है।"

चिन चौंक पड़ी। उसने रुँधे स्वर से पूछा—"किसका ?"

एक परिचारक ने द्वार बन्द करते हुये कहा—"उपाध्यक्ष, कांग का।"

चिन जड़वत् वहीं खड़ी रह गई। द्वार बन्द होते ही कमरे में अन्धकार छा गया, केवल दो घुमावदार बनाये हुये मोखों से बयार और हल्का प्रकाश आ रहा था। मानसिक उत्तेजना से चिन एक कुर्सी पर बैठ कर रोने लगी।

२०

चिन कई घन्टों तक बैठी रोती रही। इस प्रकार का प्रश्न कभी उसके जीवन में नहीं आया था। उसने कभी नहीं सोचा था कि कम्यून प्रथा में प्रेम भी समाज के नियन्त्रण में है। उसका मन कह रहा था कि यह सब काँग का गढ़ा हुआ कम्यूनिज्म है, और उसकी युक्ति है, उस पर अधिकार करने के लिए। उसे गुप्तचरी की शिक्षा दी गई थी, उसी प्रसंग में उसे प्रेम का अभिनय करना भी सिखाया गया था, किन्तु इन्द्रियों के वशीभूत न होने के लिये उसे अनेकानेक दण्डों का भय भी दिखाया गया था। आज सहसा ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई कि स्वयं उपाध्यक्ष, जो संघ का सर्वोच्च अधिकारी है, उन्हीं नियमों को भंग करने के लिए उद्यत है। उसका मन उसके प्रस्ताव को मानने के लिये

किसी प्रकार तैयार न होता था ।

वह सर्वथा उसके चँगुल में फँसी हुई थी । उसके निकल कर भागने का कोई रास्ता न था । उसके साथी चाउ आदि उसकी रक्षा करने में असमर्थ थे । कांग का विरोध करने की क्षमता किसी में नहीं थी । नितान्त एकाकी जानकर उसको बार-बार रुलाई आने लगी, किन्तु रोया भी कहाँ तक जाय !

दिन उत्तरोत्तर चढ़ रहा था । प्रकाश के प्रवेश के मार्ग यद्यपि अवरुद्ध थे, किन्तु कमरे में हलका चाँदना था । उसकी वस्तुएँ धुंधली अवश्य दिखाई पड़ती थीं, किन्तु भली भाँति देखी जा सकती थीं । आज के पहले उस कमरे में उसे आने का अवसर नहीं मिला था, क्योंकि यह उस भुतहे मकान के दूसरे चौक में पड़ता था, जो किसी समय अन्त:पुर की भाँति इस्तेमाल होता रहा होगा । "वृहत्तर चीन संघ" के सदस्यों का आवागमन अधिकतर उसके आगे वाले हिस्से में होता था, और जो लोग स्थायी रूप से रहते थे, वे उसी अग्रभाग में रहते थे । अन्त:पुर प्राय: खाली पड़ा रहता था । कांग के आने से वह भाग आवाद हुआ था ।

चाउ-चिन बनारस शाखा का संचालक था । उसने कांग को प्रसन्न करने के लिए उस कमरे को आधुनिक सुविधाओं के अनुसार सजाया था । उसमें विद्युत शक्ति उत्पन्न करने के लिये उसने निजी डायनेमों लगाया था, जिससे प्रकाश होता और पंखे चलते थे । अभी तक चिन का ध्यान उस कमरे में लटके हुये बल्ब पर नहीं गया था । कमरे का निरीक्षण करते हुए देखा, और बटन दबाया, कमरा प्रकाश से जगमगा उठा । अन्धकार उसका गला घोट-सा रहा था, अब प्रकाश से उसे कुछ राहत मिली ।

चित्त कुछ स्वस्थ होने पर वह उस कमरे की प्रत्येक वस्तु का निरीक्षण करने के इरादे से उस अलमारी के पास गई, जहाँ से कांग ने मदिरा निकाल कर पी थी । अलमारी में उत्तमोत्तम मदिरा की बोतलें सजाई हुई थीं । उसने एक बोतल उठा कर देखा, जिस पर लिखा हुआ था, ' पच्चीस वर्षों तक यह भूमि में गर्भस्थ रही ।" चिन मदिरा नहीं पीती थी । गुप्तचरों के लिए उसका पीना वर्जित था । उसने उसे यथास्थान रख दिया । बारी-बारी से उसने प्रत्येक

बोतल को देखा, और उनको एक से एक बढ़िया पाया। मदिरा के अतिरिक्त उस अलमारी में कुछ नहीं था।

घूमती हुई वह दूसरी अलमारी के पास गई। उसके कपाट खोल कर देखने से मालूम हुआ कि वह बिल्कुल खाली है। उत्सुकता उसे तीसरी अलमारी के पास ले गई। वह भी दूसरी की भाँति खाली निकली। चौथी अलमारी की ओर वह जा रही थी कि उसे बाहर आहट मालूम हुई। उसने ताले में चाभी डालने का स्वर स्पष्ट रूप से सुना। वह तत्काल स्विच के पास गई, और विद्युत-दीप बुझा दिया। कमरे में पुनः अन्धकार ने प्रवेश किया, किन्तु उसी समय द्वार खुल गया, और उस बेचारे को भागना पड़ा।

चीनी रीति से बनाए हुए भोजन की ट्रे लिए कांग के परिचारक ने प्रवेश किया। चिन कुरसी के सहारे खड़ी थी। सेवक ने उसकी ओर दृष्टिपात तक नहीं किया, और चुपचाप ट्रे मेज पर रख कर चलने लगा। जब वह कमरे के बाहर जा रहा था कि कांग ने प्रवेश किया। चिन उसको देखकर सहम गई। काँग नौकर को जाने का संकेत कर मुस्कराता हुआ कुरसी पर बैठ गया। चिन खड़ी काँपती रही।

कांग ने उसको देखते हुए कहा—"चिन, वहाँ क्यों खड़ी हो ? आओ, यहाँ बैठो।"

चिन कोई उत्तर नहीं दे सकी, और न वह वहाँ से टली।

कांग उठ कर उसके समीप आया, और उसका कन्धा पकड़ते हुए कहा—"चिन, तुमको मैं वृहत्तर चीन की साम्राज्ञी बनाऊंगा।"

चिन न अपना कन्धा ही छुड़ा सकी, और न वह वहाँ से हटी।

कांग ने उसका कन्धा छोड़ कर उसका हाथ पकड़ा, और खींचते हुए कहा—"तुमको क्या मुझसे भय लगता है ? मैं कोई अजदहा नहीं हूं, जो खा जाऊंगा।"

उसने चिन की कलाई की एक नस दबाई, वह हाय कर जमीन पर बैठ गई। कांग हँसने लगा। उसकी हँसी में पैशाचिकता झाँक रही थी।

उसने फिर कहा—"तुम पर विजय पाना, मेरे लिए कितना आसान है,

इसका एक छोटा-सा प्रदर्शन मैंने किया है।"

चिन असहाय दृष्टि से उसे देखने लगी।

कांग ने उसे उठाते हुए कहा—"उठो, मेरे साथ भोजन करो। शायद तुमने प्रात:काल कलेवा भी नहीं किया था, क्योंकि तुम्हा ा मुख सूख गया है। मदिरा का एक पेग पियो, नई स्फूर्ति तुममें प्रवेश करेगी।"

यह कह कर कुरसी पर बैठ कर उसने मदिरा की बोतल निकाली और एक पेग ढाल तथा सोडा मिला कर उसको देते हुए कहा—"पी जाओ। तुम्हारे मन का अवसाद दूर हो जायगा।"

चिन ने गिलास लेकर मेज पर रख दिया और कहा—"मदिरा पीना मेरे लिए संघ के नियमों के अनुसार वर्जित है।"

"अब तुम संघ की गुप्तचर नहीं बल्कि उसकी अधीश्वरी हो। नियम निम्नवर्ग के कर्मचारियों के लिए बनाए जाते हैं, उनके अधीश्वरों के लिये नहीं। मेरी प्रेयसी होने के कारण तुम उन नियमों के बंधन से ऊपर उठ गई हो, और अब तुम्हें वह क्षमता प्राप्त हो गई है कि तुम दूसरों के लिए मनमाने नियम बना सकती हो।"

चिन ने न उत्तर दिया, और न मदिरा ही पी। वह नखों से मेज की पालिश खुरचने लगी। कांग उसको तीक्ष्ण दृष्टि से देख रहा था।

कांग ने कहा—"अच्छा, आओ हम तुम एक ही गिलास में पिएँ।"

उसने उस गिलास को उठा कर दो चुसकियाँ लीं, और शेष चिन को पीने के लिए दी।

चिन ने अपने जीवन में कभी मदिरापान नहीं किया था। उसे पीने का साहस न हुआ!

कांग ने साहस बंधाते हुए कहा—'घबराओ नहीं। एक घूंट पीने के बाद तुम स्वयं अधिक पीना चाहोगी। यह धरातल का अमृत है। इसे पीकर बुद्धि के कपाट खुल जाते हैं। मुरझाई जिन्दगी में नई जान आती है। एक घूट पीकर देखो तो।"

कांग ने गिलास उसके अधरों से लगा दिया। मदिरा की तीक्ष्णता अधरों

का चुम्बन लेने लगी, चिन ने घबरा कर अपना मुख खींच लिया। वह अधरों को चाट कर उसकी कड़ुवाहट मिटाने लगी।

कांग ने कहा—"यदि इस बदमजगी को दूर करना चाहती हो, तो एक घूँट आँख बन्द कर पी जाओ।"

उसने पुन: मदिरा का गिलास उसके अधरों से लगाया, और उसकी ग्रीवा कस कर पकड़ ली, तथा मदिरा जबरन उसके गले उतार दी। चिन को बड़े जोर की खांसी आइ, तथा आँखों-नथुनों से पानी बहने लगा। मदिरा के दो घूंट छोड़ शेष सब उसके पेट में चली गई।

कांग बड़े आदर तथा प्रेम के साथ अपनेरुमाल से उसके नथुनों और आँखों को पोंछने लगा।

मदिरा बड़ी तीव्र थी। उसके गले से लेकर पेट तक अग्नि की एक लीक बन गई, जो उसे जलाने लगी। वह अपना पेट पकड़ कर कुरसी पर वेहाल बैठ गई।

कांग ने भुने हुए मांस का एक टुकड़ा, उसको खिलाते हुए कहा -"चिन, इसके खाने से तुम्हारे पेट की जलन मिट जायगी।"

जलन की तड़फड़ाहट से वह अधीर हो रही थी, उसके नथुनों और आँख से जल बराबर निकल रहा था। उसने कांग के उपदेश पर कर्णपात नहीं किया साड़ी के एक छोर से वह उसे पोंछने में लगी थी।

कांग ने पुन: उसका मुख पकड़ा, और मांस उसमें घुसेड़ते हुए कहा— "मैं कहता हूँ इसे खा जाओ, तुम सीधी तरह नहीं मानोगी। लो खाओ, इसे निगल जाओ।"

यह कहते हुए उसने उसकी गरदन की एक नस पुन: दबाई। उसके प्रभाव से उसका मुख डिबिया की भांति खुल गया, और उसने मांस की बोटी उसमें डाल कर उसका मुंह दबा दिया। चिन उसे निगल जाने के लिए बाध्य हुई।

इस समय तक सुरूर चढ़ने लगा था। मांस की बोटी की चरफराहट उसकी जलन शान्त करने लगी। मदिरा की गर्मी से उसकी आँखें लाल होने और मस्तक घूमने लगा।

इसका एक छोटा-सा प्रदर्शन मैंने किया है।"

चिन असहाय दृष्टि से उसे देखने लगी।

कांग ने उसे उठाते हुए कहा—"उठो, मेरे साथ भोजन करो। शायद तुमने प्रातःकाल कलेवा भी नहीं किया था, क्योंकि तुम्हा ा मुख सूख गया है। मदिरा का एक पेग पियो, नई स्फूर्ति तुममें प्रवेश करेगी।"

यह कह कर कुरसी पर बैठ कर उसने मदिरा की बोतल निकाली और एक पेग ढाल तथा सोडा मिला कर उसको देते हुए कहा—"पी जाओ। तुम्हारे मन का अवसाद दूर हो जायगा।"

चिन ने गिलास लेकर मेज पर रख दिया और कहा—"मदिरा पीना मेरे लिए संघ के नियमों के अनुसार वर्जित है।"

"अब तुम संघ की गुप्तचर नहीं बल्कि उसकी अधीश्वरी हो। नियम निम्नवर्ग के कर्मचारियों के लिए बनाए जाते हैं, उनके अधीश्वरों के लिये नहीं। मेरी प्रेयसी होने के कारण तुम उन नियमों के बंधन से ऊपर उठ गई हो, और अब तुम्हें वह क्षमता प्राप्त हो गई है कि तुम दूसरों के लिए मनमाने नियम बना सकती हो।"

चिन ने न उत्तर दिया, और न मदिरा ही पी। वह नखों से मेज की पालिश खुरचने लगी। कांग उसको तीक्ष्ण दृष्टि से देख रहा था।

कांग ने कहा—"अच्छा, आओ हम तुम एक ही गिलास में पिएँ।"

उसने उस गिलास को उठा कर दो चुसकियाँ लीं, और शेष चिन को पीने के लिए दी।

चिन ने अपने जीवन में कभी मदिरापान नहीं किया था। उसे पीने का साहस न हुआ!

कांग ने साहस बंधाते हुए कहा—'घबराओ नहीं। एक घूंट पीने के बाद तुम स्वयं अधिक पीना चाहोगी। यह धरातल का अमृत है। इसे पीकर बुद्धि के कपाट खुल जाते हैं। मुरझाई जिन्दगी में नई जान आती है। एक घूट पीकर देखो तो।"

कांग ने गिलास उसके अधरों से लगा दिया। मदिरा की तीक्ष्णता अधरों

का चुम्बन लेने लगी, चिन ने घबरा कर अपना मुख खींच लिया। वह अधरों को चाट कर उसकी कड़ुवाहट मिटाने लगी।

कांग ने कहा—"यदि इस बदमजगी को दूर करना चाहती हो, तो एक घूंट आँख बन्द कर पी जाओ।"

उसने पुन: मदिरा का गिलास उसके अधरों से लगाया, और उसकी ग्रीवा कस कर पकड़ ली, तथा मदिरा जबरन उसके गले उतार दी। चिन को बड़े जोर की खांसी आइ, तथा आँखों-नथुनों से पानी बहने लगा। मदिरा के दो घूंट छोड़ शेष सब उसके पेट में चली गई।

कांग बड़े आदर तथा प्रेम के साथ अपनेरुमाल से उसके नथुनों और आँखों को पोंछने लगा।

मदिरा बड़ी तीव्र थी। उसके गले से लेकर पेट तक अग्नि की एक लीक बन गई, जो उसे जलाने लगी। वह अपना पेट पकड़ कर कुरसी पर बेहाल बैठ गई।

कांग ने भुने हुए मांस का एक टुकड़ा, उसको खिलाते हुए कहा -"चिन, इसके खाने से तुम्हारे पेट की जलन मिट जायगी।"

जलन की तड़फड़ाहट से वह अधीर हो रही थी, उसके नथुनों और आँख से जल बराबर निकल रहा था। उसने काँग के उपदेश पर कर्णपात नहीं किया साड़ी के एक छोर से बह उसे पोंछने में लगी थी।

काँग ने पुन: उसका मुख पकड़ा, और माँस उसमें धुसेड़ते हुए कहा— "मैं कहता हूँ इसे खा जाओ, तुम सीधी तरह नहीं मानोगी। लो खाओ, इसे निगल जाओ।"

यह कहते हुए उसने उसकी गरदन की एक नस पुन: दबाई। उसके प्रभाव से उसका मुख डिबिया की भांति खुल गया, और उसने माँस की बोटी उसमें डाल कर उसका मुंह दबा दिया। चिन उसे निगल जाने के लिए बाध्य हुई।

इस समय तक सुरूर चढ़ने लगा था। माँस की बोटी की चरफराहट उसकी जलन शान्त करने लगी। मदिरा की गर्मी से उसकी आँखें लाल होने और मस्तक घूमने लगा।

इसी समय कांग का विश्वासपात्र भृत्य कमरे के बाहर दिखाई दिया। उसको देख कर उसकी भ्रुकुटियां चढ़ गईं।

उसने डरते-डरते वहीं से कहा—"चाउ, हो-चिन तथा ली-सूँग आदि आपसे किसी आवश्यक कार्य के लिए मिलना चाहते हैं। मैंने उनको टालने की बहुत कोशिश की, और बताया कि उपाध्यक्ष भोजन कर रहे हैं, उसके बाद शयन करेंगे, और मुलाकात शाम को पाँच बजे होगी, किन्तु वे मानते नहीं और आपके भोजन हो जाने तक प्रतीक्षा करने को कहते हैं। उन सबके चेहरे घबड़ाए हुए हैं, और बड़े परेशान देख पड़ते हैं। उनकी बातचीत से मालूम होता है कि कोई आपत्ति या तो आई है, अथवा आने वाली है।"

काँग यह सुन कर सोच-विचार में पड़ गया, और चिन की ओर देखते हुए पूछा—"इसके यहाँ होने की सूचना तो नहीं दी।"

नौकर ने शिर हिला कर संकेत किया कि उसने चिन के सम्बन्ध में कोई बात नहीं बताई।

काँग ने कहा—"अच्छा उनको प्रतीक्षा करने को कहो। मैं भोजन करके आता हूँ। खबरदार, इधर किसी को मत आने देना।"

भृत्य के चले जाने के बाद काँग भोजन करने बैठ गया। चिन की घबराहट तथा ग्लानि दूर हो गई थी। अपनी इच्छा के विपरीत सुरूर उसे मुखर बनने की उत्तेजना दे रहा था। काँग ने लक्ष्य किया कि शिकार फँस गया है।

उसने उसे साथ खाने के लिए आमन्त्रित किया, और विविध व्यंजनों के लुकमें उसे देने लगा। चिन बिना कोई प्रतिरोध किये खाने लगी। भोजन के ग्रास ज्यों-ज्यों उसके पेट में जाते, त्यों-त्यों वह उत्फुल्ल होने लगी। उसकी आँखों में काँग एक सुन्दर बलिष्ठ व्यक्ति जँचने लगा।

कांग ने उसका परिवर्तन देख कर कहा— "चिन तुम विश्वास करो, मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।"

चिन लजा गई, और उसने आँखें नीची करली।

काँग ने अनुभव किया कि औषधि अपना काम कर रही है। उसने अपनी कुरसी उसकी कुरसी से सटाते हुए कहा—"मैं तुमको वृहत्तर चीन की साम्राज्ञी

बनाऊँगा। सम्राट बनने के ध्येय से ही मैं इस संघ में आता हूँ। मेरे सामने चंगेज और तैमूर के उदाहरण हैं जिन्होंने अपनी शक्ति से ससागरा पृथ्वी को अपने अधिकार में कर विश्व पर अपनी विजय वैजयन्ती फहराई थी। अस्सी करोड़ पीतांग जिधर अभियान करेंगे, उधर उनकी गति को कोई रोक नहीं सकेगा। यदि कोई देश या राष्ट्र रुकावट डालेगा, तो चंगेज और तैमूर की भाँति मैं उनके सभी निवासियों को पृथ्वी में गड़वा दूँगा, उनके श्री सम्पन्न विशाल नगरों को धूलिपुञ्ज में परिणत करूँगा, और श्वेतांगों का नाम-निशान मिटा कर पीतांगों का साम्राज्य पुनः स्थापित करूँगा। जिस प्रकार आज संसार उनके नामोच्चारण के साथ आतंकित होता है, उसी प्रकार मेरे नाम से भी होगा। इतिहास में उन्हीं को प्रधानता मिलती है, उनके ही गुणों का वह बखान करता है, जो संसार में खून की नदियां बहाते हैं, आबादियों को ध्वस्त करते हैं, और मनुष्य को कीट से अधिक नहीं समझते, तथा इन्हें मसल डालने में नहीं हिचकिचाते। भविष्य में वह दिन शीघ्र आने वाला है, जब श्वेतांग मेरे नाम से थर्रायेंगे, उनकी स्त्रियों के गर्भपात होंगे, और वे त्राहि-त्राहि करते बिललाते घूमेंगे। पीतांगों का उदयास्त साम्राज्य स्थापित होने पर मैं तुमको उसकी साम्राज्ञी बनाऊँगा। बोलो स्वीकार है?"

उसके शब्दों का कोई अर्थ चिन नहीं लगा पा रही थी। उसकी विचार तरंगें अस्थिरता के साथ, तूफान की गति से उद्वेलित हो रही थीं।

कांग ने उसके शिर को सूँघते हुए पुनः पूछा— "बोलो चिन, तुम मेरी प्रेयसी बनाकर संसार पर शासन करोगी।" और यह कह कर उसने उसकी पीठ सहलाना आरम्भ किया। चिन की नाड़ियों में वेग से संचालित रक्त फड़कने लगा।

उसने भर्राए हुए कण्ठ से कहा —"आप जो कहेंगे, वह सब मुझे स्वीकार है।"

काँग ने सन्तुष्ट हो कर कहा—"ठीक है, अब मैं बाहर जा रहा हूँ। चाउ आदि शायद तुम्हारे बारे में ही पूछने आये हैं। मैं उनका समाधान करने जाता हूँ। आज रात्रि भर तुमको बन्दी जीवन और व्यतीत करना पड़ेगा। कल

तुमको अपनी प्रेयसी घोषित करूँगा।

यह कह कर वह चला गया, और चिन भोजन करने लगी। काँग जाते हुए बाहर से द्वार बन्द करता गया।

२१

चिन की जब नींद टूटी, वह हकबका कर चारों ओर देखने लगी। भोजन करते-करते कब उसे नींद ने धर दबाया था, यह जानने में वह असमर्थ थी। सुरूर उतर जाने से उसका शरीर पीड़ित था, और उसे बार-बार जम्हाइयाँ आ रही थीं। वह अपनी स्थिति विचारने लगी। नशे की हालत में उसने जो कुछ काँग से कहा था, उसकी धुंधली याद उसे सताने लगी। वह स्वयं अपने से घृणा करने लगी। यदि काँग न चला गया होता आकस्मिक परिस्थितियों के कारण, तो उसका सर्वनाश अवश्य हो गया होता, और वह भी उसकी इच्छा के सहयोग से। वह अपनी असहाय दशा पर पुनः रोने लगी। रुदन ने उसके हृदय के वृश्चिक दंशन को कुछ कम किया।

दिवस का अपराह्न था। मकान पूर्वाभिमुखी था, इसलिए सूर्य की किरणें कमरे के पश्चिमीय भाग पर पड़ रही थी। पूर्वाह्न में जो कुछ प्रकाश का चाँदना कपाट की सांसों से छन कर आता था, अब बन्द हो गया था, इसलिये कमरे में अन्धकार छाया था। चिन को सहसा याद आया कि कमरे में बिजली के प्रकाश की व्यवस्था है। उसने उठ कर बत्ती जलाई। वह धीरे-धीरे कपाटों के पास आ, सांसों में कान लगा कर बाहर की आहट लेने लगी। सर्वत्र घोर निस्तब्धता छाई थी। वह टहलती-टहलती, उस अलमारी के पास आकर खड़ी हो गई, जिसे वह मध्याह्न में काँग के आने के पहले देख रही थी।

यह अलमारी भी अन्य दो की भाँति खाली थी। उसे शून्य दृष्टि से देख रही थी कि उसके भीतर कुतरने का शब्द सुनाई दिया। वह ध्यान पूर्वक उसके

भीतर देखने लगी । उसे कहीं कुछ दिखाई तो नहीं दिया, किन्तु स्पष्ट मालूम हो रहा था कि चूहा, या कोई अन्य विविर-निवासी जीव लोहे को कुतरने का प्रयत्न कर रहा है । उसने अलमारी के खानों में लगी लकड़ी थपथपाई । शब्द तुरन्त बन्द हो गया । कुछ क्षणों पश्चात् पुन: कुतरना आरम्भ हुआ । चिन ने पुन: तख्ते थपथपाये । शब्द पुन: बन्द हो गया । चिन को गुप्तचरी की शिक्षा देते समय तहखानों के विषय में भी बताया गया था । उसे अनेक प्रकार के तह-खानों के खोलने-बन्द करने के तरीके बताये गए थे, तथा उनको खोज निकालने के कुछ उपाय भी समझाये गए थे । उसे सन्देह हुआ कि इस अलमारी के पीछे अवश्य पोलापन है । वह नीचे के खाने से आरम्भ कर ऊपर तीन खानों तक की पुश्त तथा बगली दीवाल की परीक्षा करने लगी । वह सर्वत्र ठोस मालूम हुई । चौथा खाना उनके हाथों की पहुँच के बाहर था । इसी समय पुन: शब्द हुआ, और अब उसे स्पष्ट प्रतीत हुआ कि आवाज चौथे खाने से आ रही है । वहाँ तक पहुँचने के लिए वह एक कुरसी घसीट लाई, और उस पर खड़ी हो कर उसकी परीक्षा करने लगी ।

चौथे खाने का तख्ता साफ था, पुश्त की दीवाल भी साफ थी, किन्तु बगल की दीवाल में दोनों तरफ इतने बड़े छेद थे कि हाथ उनमें आसानी से जा सकता था । साधारण रूप से यही जाहिर होता था कि चुहों ने अपने आने जाने के लिए मार्ग बनाए है । चिन तख्ते पर शिर रख कर सुनने लगी, अब उसे स्पष्ट मालूम हुआ कि आवाज दाहिने हाथ की बगली से आ रही है । तख्ते को खटखटा कर उसने अपना हाथ उसमें डाला । कुहनी तक वह उसके अन्दर चला गया, और उँगलियाँ टटोलती हुई एक छोटे पहिए तक पहुँची । वह उसे दाहिनी ओर घुमाने का प्रयत्न करने लगी । वह जरा भी न हिला, किन्तु उसकी विपरीत दिशा में घुमाने से वह घूमने लगा । चिन बड़ी उत्सुकता से घुमाने लगी । कुछ फेरों के पश्चात् वह रुक गया । चिन ने उसको आगे घुमाने में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी । उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वर्षों तक इस्तेमाल न होने और जंग लग जाने से गति अवरुद्ध हो गई है । जोर लगाते ही एक धक्के के साथ सबसे नीचे का तख्ता पीछे की दीवाल में घुस जाने से

एक मनुष्य के प्रवेश करने योग्य गढ़ा निकल आया।

चिन कुरसी से नीचे उतर आई, और उस गढ़े को देखने लगी। शीतल वायु के मन्द-मन्द झोंके उसके बाहर आ रहे थे, जिससे उसने अनुमान किया कि नीचे की सुरंग में स्वच्छ वायु के आवागमन की सुविधा है। उसने उसके अन्दर हाथ डाल कर टटोला। आठ-नौ इन्च की दूरी पर उसकी उँगलियों ने एक तख्ते को स्पर्श किया। आगे जब उसने हाथ बढ़ाया, तो पूरा हाथ चला जाने पर उसे दूसरा तख्ता छुलाई दिया। उसने अनुमान लगाया कि नीचे उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। अब उसे सन्देह नहीं रह गया कि इस कमरे से कहीं अन्यत्र जाने का गुप्त मार्ग है। उसका मन-मयूर नाचने लगा। उसके मन ने कहा कि अब तू काँग की पकड़ के बाहर जा सकेगी। जीवन में प्रथम बार उसे महसूस हुआ कि मनुष्य की शक्ति के ऊपर भी कोई शक्ति है। मन ही मन वह उसे धन्यवाद देने लगी। अब उसके सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि वह इस दैवी सहायता का उपयोग किस प्रकार करे। वह अनुमान नहीं कर पाती थी कि यह सुरंग उसे कहाँ ले जायगी। यदि वह इस मार्ग को इसी प्रकार खुला छोड़ जाती है तो बड़ी आसानी से उसका अनुसरण किया जा सकता है। उसे यह विश्वास तो था कि इस गुप्त द्वार के दूसरी ओर अवश्य कोई प्रबन्ध इसके बन्द करने का होगा, परन्तु इसका भेद जानने के लिए उसे उसके भीतर प्रवेश करना जरूरी था। अन्धकार को दूर किए बिना वह नीचे की व्यवस्था नहीं जान सकती थी। बिजली का प्रकाश यहां तक पहुँचाने का कोई साधन नहीं था। लालटेन या टार्च आदि प्रकाशक वस्तुएँ भी वहाँ प्राप्त नहीं हो सकती थीं। अन्त में उसने अन्धकार में ही प्रवेश करने का निश्चय किया। काँग के वशीभूत होने की अपेक्षा मृत्यु-मुख में प्रवेश करना, श्रेयस्कर समझ कर वह उस गह्वर में प्रविष्ट हुई। वह सीढ़ी के डंडों से नीचे उतरती हुई दोनों बगलों की दीवाल टटोलती जाती थी। सबसे अन्तिम छठवाँ डंडा था, और उसके नीचे पत्थर की शीतल शिला थी। इधर-उधर टटोलते हुए उसका दाहिना हाथ एक ताक पर पड़ा। उसमें टटोलने पर मालूम हुआ कि वहाँ कुछ लम्बी गोल मोटी सलाइयाँ खड़ी रखी हैं, और उसके नीचे पत्थर और लोहे के टुकड़े

तथा सूत के गुच्छे रखे हैं। उसके मन ने तुरन्त कहा कि इसमें चकमक पत्थर और मोमबत्तियाँ रखी गई हैं, जिनसे प्रकाश उपत्न्न किया जा सकता है। उसकी एक दूसरी विकट समस्या हल हो गई। उसका मन पुनः किसी आज्ञत शक्ति की ओर आकर्षित हुआ तथा वह उसे धन्यावाद देने लगी।

उसे चकमक पत्थर से अग्नि बनाने की क्रिया मालूम थी, जो उसको शिक्षाकाल में सिखायी गयी थी। उसने लोहे से पत्थर को ठोंक ठोंक कर, अग्नि स्फुलिंग उत्पन्न किए और उनको सूत पुंज में ग्रहण कर लिया। छोटा सा स्फुलिंग सूत का आश्रय पाकर सुलगने लगा, और मुख से फूँक-फूँक कर उसने उसे लौ में परिवर्तित किया। उसके प्रकाश में उसने देखा कि लम्बी सलाइयां दरअसल पुराने जमाने की बनी हुई मोमबत्तियां हैं। उसने उनमें से एक को उठाकर जलाया, और सूत तथा चकमक पत्थर उसी भांति ताक में रख दिया। उजाला होने पर वह स्थिति तथा स्थान की परीक्षा करने लगी।

सबसे पहले उसकी दृष्टि दीवाल से चिपके हुए दो पहियों पर पड़ी। उनमें से उसने बाईं ओर का पहिया घुमाने का प्रयत्न किया। वह ज्यों-ज्यों घूमने लगा, त्यों-त्यों ऊपर की अलमारी का तख्ता अपने स्थान पर बैठने लगा। जब पहिये का घूमना बन्द हो गया, तब उसने शिर उठाकर देखा कि तख्ता अपनी जगह पर बैठ गया है। उसकी चिन्ता दूर हुई। उसे विश्वास होगया कि जब तक इस गुप्त मार्ग के द्वार का पता नहीं चलता, तब तक उसका कोई अनुसरण नहीं कर सकेगा।

उसने झिलमिलाते प्रकाश में देखा कि एक लम्बी सुरंग सामने चली गई है। उसमें सीलन की दुर्गन्ध अवश्य थी, किन्तु स्वच्छ वायु के आगमन की व्यवस्था से वातावरण शुद्ध था। फर्श पत्थर के टुकड़ों से बना अति शीतल था, और छत तथा दोनों तरफ की दीवालें भी पत्थरों से जड़ी थीं। उसे वायु के आवागमन के मार्ग जानने की उत्कंठा हुई। जब उसकी दृष्टि सुरंग की छत से लगे हुए पत्थर के टुकड़ों पर गई, तब उसे मालूम हुआ कि उन सबनें छलनी की भाँति असंख्य छिद्र हैं, जिनसे वायु छन-छन कर आ रही है।

वह धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी। बीस कदम के लगभग जाने पर उसे वैसी

ही व्यवस्था दिखाई दी जैसी इस सुरंग में प्रवेश करने पर देख चुकी थी। उसी प्रकार दो पहिए दीवाल में लगे हुए थे तथा ताक में मोमबत्तियाँ और चकमक था और उसके नीचे ४ का अंक बना हुआ था। इससे उसने अनुमान लगाया कि दूसरे आँगन के पूर्व दिशा में स्थित कमरे से उसका सम्बन्ध है,तथा वहा से भी इस सुरंग में आवागमन हो सकता है। वह पुन: आगे बढ़ी, कुछ दूर पर उसे ३ का अंक और इसी प्रकार का प्रबन्ध दिखाई दिया। इस प्रकार वह सबसे अन्त में १ अंक पर पहुँची। उसके आगे कुछ दूर जाकर सुरंग बन्द होगई थी। उसे अब स्पष्ट होगया कि मकान के कुछ खास कमरों में गुप्त रूप से आने जाने में यह सुरंग सहायक है, तथा इस मकान के बाहर निकलने में यह कोई सहायता नहीं कर सकती।

अब उसके सामने यह प्रश्न था कि वह किस कमरे से बाहर निकले उसे मालूम था कि बाहर वाले सब कमरों में कांग के सेवक तथा उसके दल के साथी रहते हैं, जिनसे बचकर बाहर निकल जाना असम्भव है। यदि किसी की दृष्टि उस पर पड़ गई तो फिर कांग के चंगुल से किसी भाँति निकल नहीं सकेगी, और जहां से वह किसी प्रकार निकल भागी है, वहीं पुन: कैद करदी जायगी। सोचते-सोचते वह पसीने-पसीने हो गई। जलती हुई मोमबत्ती उसके साथ सहानुभूति दिखाती हुई आँसू गिरा रही थी।

साहस संचित कर वह पहले अँक का पहिया घुमाने लगी। पहिले की भांति ज्यों-ज्यों पहिया घूमता गया, त्यों-त्यों ऊपर का तख्ता छत में प्रविष्ट होने लगा, और जब वह समा गया तो दो लम्बे छुरे उसके पैरों के पास गिर पड़े। पत्थर पर गिरने से झनझनाहट हुई, और उस शब्द से वह भयभीत हो गई। उसे आशंका हुई कि कमरे के निवासी ने कहीं उनकी खनखनाहट न सुनी हो। उसने दूसरी ओर के पहिये को जल्दी-जल्दी घुमाकर द्वार बन्द कर दिया। थर-थर काँपती हुई वह सीढ़ी पर चढ़कर ऊपर की आहट लेने लगी। कमरे में सन्नाटा था। वह आश्वस्त होकर नीचे उतरी, और छुरों को उठाकर उनका परीक्षण करने लगी। उनको देखकर वह पहचानने का प्रयत्न करने लगी कि वे उसके किस साथी के हो सकते हैं। उसे याद न पड़ा कि उसने उन्हें किसी

के पास देखा है। वे सर्वथा नये मालूम हुए। उसने अनुमान किया कि इस कमरे में कांग का कोई सेवक रहता है। वहाँ से बाहर निकलने का उसे साहस नहीं हुआ। उसने उन छूरों को अपनो कमर में खोंस लिया। उसे अब यह ढाढ़स हुआ कि आत्मरक्षा का उसे साधन प्राप्त हो गया है, और यदि वह आततायी का प्राण हरण नहीं कर सकती, तो अपने जीवन का अन्त तो कर ही सकती है।

वह सोचने लगी कि यदि ऊपर के कमरे में वह सूना जानकर चली भी जाये, तो मकान के सदर दरवाजे से कैसे बाहर निकलेगी। वहाँ पर पहरे का बन्दोवस्त रहता है। कांग तथा उसके दल के साथियों से छिपकर जाने में ही उसका कल्याण था, और सरेदस्त वह संभव नहीं दिखाई देता था। वह सीढ़ी के तख्ते पर बैठकर सोचने लगी।

उसके मन ने कहा कि सुरंग के अन्त तक पहुँच कर देखो, अवश्य बाहर निकलने का कोई मार्ग होगा। वह क्षीण आशा लिए हुए उठी और मोमबत्ती लेकर सुरंग की आखिरी दीवार के पास पहुँचकर उसका परीक्षण करने लगी। यहाँ पहिये न थे, और न वैसी सीढ़ी ही थी जैसी अन्य कमरों के नीचे थी। एक छोटा सा लगभग डेढ़ फुट ऊंचा चबूतरा अवश्य बना हुआ था, जिसपर चढ़ने से सुरंग की छत स्पर्श की जा सकती थी। उसने अनुमान लगाया कि वहाँ चबूतरा अवश्य किसी खास मकसद से बनाया गया है। कौतूहलवश वह ऊपर चढ़ कर छत टटोलने लगी। टटोलते-टटोलते उसे दो छिद्र दिखाई दिए, जिसमें तर्जनी और मध्यमा उँगली जा सकती थी। छिद्रों के ऊपर पीतल या किसी धातु का पत्थर था। उसने जोर लगाकर जहां उसके ऊपर ठेला दीवार मे एक पटिया सरक गई। उसने जल्दी से अपना हाथ हटा लिया। हटाते ही पटिया पुन: अपनी जगह पर चली गई। पटिया बिल्कुल चौकी के पास थी, और एक हाथ से ऊपर छत के पत्थर को दबाते हुए उस पटिया को दूसरे हाथ से आसानी से पकड़ा जा सकता था। उसने मोमबत्ती नीचे फर्श पर जमा दी, और चौकी पर खड़ी होकर पुन: उँगलियों से पत्थर दबाया। पटिया पुन: खिसकी। इसबार उसने उसे दाहिने हाथ से पकड़ लिया। छत से उसने अपना हाथ हटा लिया,

और पटिया को दोनों हाथों से पकड़ लिया। पटिया वैसी ही ठहरी रही। वह उसे दाहिने-बाएँ जोर देकर हटाने लगी। वह जरा भी टस से मस नहीं हुई। उसने जब उसे नीचे घसीटा तो वह कुछ हिलती हुई मालूम हुई। उसने दोनों हाथों से अपने शरीर का बल देकर नीचे हटाना आरम्भ किया। दीवाल के पत्थरों की जोड़ से पटिया नीचे जाने लगी, और छत का हिस्सा, जहाँ छिद्र थे नीचे उतरने लगा। वह प्रसन्नता से फूलने लगी। उसने अनुमान किया कि अब कोई रास्ता अवश्य निकलेगा। ऊपर की पटिया जो दो जजीरों से बंधी थी, नीचे के चबूतरे पर आकर ठहर गई। चिन जिस पटिया को कपड़े थी, वह एक शब्द के साथ, दीवाल के भीतर अटक गई, ठीक उस तरह जैसे कोई खटका यथा स्थान बैठ जाने से होता है। मोमबत्ती लेकर वह खुशी-खुशी उसके अन्दर झांककर देखने लगी। उसे केवल अन्धकार पूर्ण एक कोठरी दिखाई दी। ऊपर की पटिया जब नीचे आई थी, तो उसके साथ जंजीर से बनी एक सीढ़ी थी। उसके सहारे वह मोमबत्ती लेकर भीतर गई, और उस कोठरी का निरीक्षण करने लगी।

कोठरी के भीतर आकर उसने देखा कि जैसा प्रबन्ध नीचे था, लगभग वैसा ही ऊपर भी है, अन्तर केवल इतना है कि उसमें डेढ़ फुट ऊँची चौकी नहीं थी। पत्थर की वैसी ही पटिया नीचे तल पर सटी हुई थी, औंर जैसे ही उसने उसे बाहर की तरफ खींचा वह उसके हाथ से झटके के साथ छूट गई, तथा नीचे की पटिया सरसराती हुई ऊपर कोठरी की छत पर बैठ गई। वह प्रकाश में इस यन्त्र को देखने लगी। ध्यान देने पर उसे मालूम हुआ कि जब नीचे की पटिया खींची जाती है, तब ऊपर की पटिया से लगा हुआ झूला, जो जंजीरों के सहारे सधा है, नीचे उतरता है। उसी प्रकार की एक पटिया खिचती हुई छत के ऊर वाले फर्श पर अटक जाती है, और जब उसे आगे खींच लिया जाता है तो वह स्प्रिग के सहारे ऊपर बढ़कर आने जाने का रास्ता बन्द कर देती है। कोठरीं सुरंग में जाने के लिए दीवाल के दूसरी ओर प्रबंध था, और एक छत के समीप वाली पटिया में एक जंजीर लगी हुई थी, जिसके खींचने से पटिया नीचे आकर सुरंग में जाने का मार्ग खोल देती थी। उसने

खोल-बन्द कर दोनों परीक्षाएँ करलीं ।

कोठरी में पहुँच कर उसने देखा कि एक सुरंग दाहिनी ओर चली गई है । वह उस दिशा में काँपते हुए कलेजे के साथ आगे बढ़ी । लगभग बीस कदम जाने के पश्चात् वह बन्द हो गई । यहाँ उसे पहली सुरंग की भाँति दो पहिए दीवाल में लगे हुए दिखाई दिए । उसने अनुमान किया कि यहाँ से आगे जाने का मार्ग पहले की भाँति खुलेगा ।

उसके मन ने प्रश्न किया कि यदि यहाँ से वह बाहर न निकल सकी तो भूख और प्यास से तड़प-तड़प कर मरना पड़ेगा । महज इसी शंका से वह सिहर उठी । वह सीढ़ी के नीचे वाले तल्ले पर खड़ी होकर पहिया घुमाने लगी । इसी समय उसके मन में पुन: विचार आया कि यदि अलमारी का दरवाजा बाहर से बन्द होगा, तो वह किस प्रकार बाहर निकलेगी । उसका हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा । आशा का बुझता हुआ दीपक पुन: सजग हुआ, जब उसने देखा कि हटे हुए पल्ले से मन्द चाँदना आ रहा है । वह जल्दी-जल्दी पहिये को घुमाने लगी । पूरा तख्ता दीवाल में समा जाने से मटमैला प्रकाश दिखाई दिया । वह सीढ़ी के दो डंडे चढ़ कर गह्वर से सिर निकल कर बाहर देखने लगी । उसे ऊपर से ऐसा प्रकाश दिखाई पड़ा, जैसा संध्या समय होता है । वह एक डंडा और ऊपर चढ़ी । उसने देखा कि खुली अलमारी के सामने दीवाल है, और अलमारी तथा दीवाल के बीच लगभग चार फुट चौड़ा गलियारा है, जैसा मन्दिरों में परिक्रमा के लिये होता है । उसने अनुमान किया कि उस भुतहे मकान से बाहर निकलने का गुप्त मार्ग इसी मंदिर में है । वह सोचने लगी कि इसी समय निकलना उचित होगा, अथवा रात्रि के आगमन की प्रतीक्षा करे । उसका मन शीघ्र से शीघ्र वहाँ से निकल भागने के लिए उतावला हो रहा था, परन्तु पहचाने जाने के भय से उसने कुछ देर प्रतीक्षा करना उचित समझा । उसने विचार किया कि इस स्थान पर वह पूर्ण रूप से निरापद है । यदि काँग को सुरंग का मार्ग उसके कैद के कमरे से मालूम भी हो जाय, तो भी वह यहाँ तक नहीं पहुँच सकेगा । कोठरी में आने के मार्ग का पता लगाना यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है । ऐसे ही विचारों की

ऊहापोह में वह पुनः सुरंग में चली आई, और पहिया घुमाकर उसने रास्ता बंद कर दिया।

सीढ़ी के सबसे अन्तिम डंड़े पर बैठकर वह अनेक प्रकार के विचारों में, मग्न हो गई। अब उसे विनोद का ध्यान आया। कल रात्रि को वह उसे औषधि के प्रभाव से सुला कर कांग की बुलाई हुई बैठक में भाग लेने आई थी। वह जब रात्रि को घर गई थी, तब विनोद सो रहा था। वह उसे जगाना नहीं चाहती थी, तथा प्रातः काल उसके जागने से पूर्व ही वह ज्ञानवापी वाले मकान में चली आयी थीं, और वहाँ से कांग से परामर्श करने के लिए भुतहे मकान गई, जहाँ, ऐसी विपत्ति में फँस गई। उसको न देख कर विनोद न-मालूम क्या उपद्रव कर बैठे। चाऊ; होचिन और ली आदि उसे न देख कर न मालूम क्या अनुमान लगाएँगे, और न मालूम क्या कहकर कांग ने उन्हें समझाया हो। इन्हीं विचारों में मग्न उसे लगभग एक घण्टा बीत गया।

इसी समय मन्दिर में घड़ियाल बजने लगे। उसे मालूम हुआ कि साँध्य-आरती हो रही है। यहाँ से निकलने का उसने यही उपयुक्त अवसर समझा। उसने सोचा कि यदि कोई उसे देख भी लेगा, तो वह परिक्रमा करती हुई कोई सेविका मालूम होगी। उसने पहिया घुमाकर अलमारी का पल्ला खोला, और सुरंग के मुहाने से बाहर निकल आई। ऊपर के खाने में उसी प्रकार छेद बने हुए थे। उसने पंजों के ऊपर खड़ी होकर पहिया घुमाया, तथा द्वार बन्द कर वह परिक्रमा करती हुई मन्दिर के बाहर आ गई।

२२

"ॐ मणे पद्मेहुं" कहते हुए बासबा ने अपनी समाधि तोड़ी। शिष्य वृन्द तथा नागार्जुन ने उस बीज मन्त्र का उच्चारण किया, जिससे सभामण्डप गूंज

गया । इस समय यद्यपि बासबा के नेत्र लाल थे, तथापि चेहरा उत्फुल्ल था । उसने नागार्जुन की ओर गर्व भरे नेत्रों से देखते हुए कहा—"तुम्हारी श्राविका गायत्री कलकत्ता से वापास आ गई ।"

नागार्जुन ने इस कथन को प्रश्न समझ कर उत्तर दिया—"मैंने उसके भाई भौजाई को सब स्थिति बताकर बुलाने के लिए भेजा है । कल रात्रि तक वह नहीं आए, किन्तु मुझे विश्वास है कि वे अवश्य उसको शीघ्र ले आवेंगे ।"

बासबा मुस्कराने लगा । उसके उस मृदुहास्य से व्यंग्य झाक रहा था ।

नागार्जुन ने उसके हास्य को अविश्वास सूचक समझ कर कहा—"रिमपोचे विश्वास कीजिए, वे उसे समझा–बुझाकर अवश्य ले आवेंगे । मैंने जमानत दी है कि आनन्द का बाल बाँका नहीं होगा, और न कोई उसे ले जायगा ।"

बासबा ने हंसते हुए कहा—"मैं तुमको सूचित कर रहा हूँ कि गायत्री आज प्रात:काल बनारस आ गई है, और वह इस समय अपने भाई-भौजाई के साथ यहाँ आने के लिए परामर्श कर रही है ।"

"रिमपोचे क्या आपने अपने योगबल से जान लिया है ?"

बासबा संतोष के साथ मुस्कराने लगा ।

नागार्जुन ने उठते हुए कहा—"तब देव, आज्ञा दीजिए, मैं जाकर उसे लिवा लाऊँ ।"

"अधीर मत हो नागार्जुन ! तुम्हारे जाने की कोई आवश्यकता नहीं है । वह मेरे गुरुदेव को लेकर स्वयमेव आवेगी ।" आनन्द को बासबा गुरुदेव कह कर सम्बोधन करते थे ।

नागार्जुन बैठ गए, और साश्चर्य उसकी ओर देखने लगे । बासबा माला फेरने लगे । सभामंडप निस्तब्ध हो गया । कभी-कभी किसी शिष्य के बीजमंत्र के उच्चारण से वह भंग हो जाता था ।

माला का चक्र समाप्त होने पर बासबा बोले—"यदि तुमने गायत्री के भाई-भौजाई को बुलाने के लिए न भी भेजा होता, तब भी उसको आना पड़ता । वह चाहे जितनी दूर चली जाती, उसे मेरी इच्छानुसार आना ही पड़ता ।"

"तब देव, आप उसे अपने योगबल से बुलाते हैं ?"

"बुलाते क्या, मैंने बुला लिया है।" बासवा ने इस कथन को कुछ जोर देकर कहा।

नागार्जुन चुप हो गए। उन्हें कुछ कहने का साहस नहीं हुआ नागार्जुन एक सामान्य बौद्ध भिक्षु थे। बौद्ध-धर्म के ग्रन्थों का उन्हें ज्ञान था, किन्तु यौगिक क्रियाओं से बिल्कुल अनभिज्ञ थे। वह बासबा की यौगिक शक्ति को चमत्कार समझते थे, और मन ही मन उनसे डरने लगे थे। उन्हें पल-पल में डर लगता था कि वह कोई ऐसी गलती न कर बैठे, जिससे बासबा रुष्ट हो जांय, और उनको कोप भाजन बनना पड़े।

माला का जब दूसरा चक्र समाप्त हुआ, तब बासवा पुन: बोले—"नागार्जुन मैंने अपने योग बल से अपनी छाया उसके पीछे लगा दी थी, जो आठों पहर उसके साथ रहती थी। वह जिधर देखती, उधर मेरी छाया देखती।"

"देव, तब तो उसका जीवन बड़ा दूभर हो गया होगा।"

उसको यह बताने के लिए कि वह मुझसे दूर नहीं भाग सकती, वह सदैव मेरी दृष्टि में है, मैंने अपनी शक्ति का उपयोग किया था, जो वस्तुतः मुझे करना नहीं था, क्योंकि ऐसे चमत्कारिक कार्यों के लिए स्पष्ट मनाही है।"

"देव, तब आपको नहीं करना था। मैं साधारण सांसारिक रीति से उसको लाने का उपाय कर रहा था। मुझे विश्वास था कि उसको बुलाने में अवश्य सफल होता।"

तुम्हारे कार्य को सुगम करने के उद्देश्य से ही मैंने यह बर्जित कार्य किया था। तुम देखते हो कि मेरे सब साथी तीर्थयात्रा के लिए चले गए हैं, केवल गुरुदेव के दर्शनों की अभिलाषा से मैं यहाँ ठहरा हुआ हूँ।"

"आपकी वह कामना अब पूरी होने जा रही है।"

"हाँ गुरुदेव के दर्शन तो अब होंगे ही।"

"रिमपोचे, कृपाकर यह बताइए कि आपने योगबल का जो उपयोग किया

वह वर्जित क्यों है ?"

"मैंने उसका उपयोग अपने स्वार्थ-साधन के लिए किया है। स्वार्थ-पूर्ति की भावना अत्यन्त निकृष्ट है। योग की शक्ति से उसकी पूर्ति हो जाती है अवश्य किन्तु उतना ही शक्ति का ह्रास होता है।"

"तब आप तपस्या और साधना से उसकी पूर्ति करेंगे ?"

"अवश्य ! संतोष केवल इतना है कि मेरी इच्छा गुरु-दर्शनों की है जो कोई निन्द्य स्वार्थ नहीं है।"

"यदि कोई निन्द्य स्वार्थ होता, तब ?"

"प्रथम तो उसके पूर्ण होने में अनेक बाधाएँ उत्पन्न होती, क्योंकि दैविक नियमों के विरुद्ध योग शक्ति अपना बल खो देती है। यदि कदाचित् वह पूर्ण भी हो जाता तो है इतने दिनों तक प्रयोग निष्फल हो जाता है।"

"तब महाराज इस योग शक्ति से लाभ ?"

योगशक्ति निर्वाण प्राप्त कराने में अत्यन्त सहायक है। दैविक होने से उसकी गति सत्कर्मों की ओर रहती है। योगशक्ति ऊर्ध्वगामी है। इसीलिए योगी किसी का अहित नहीं करते, भले ही उनके विरुद्ध कोई दुष्कर्म करे। क्षमा-शील होना, योगी का प्रथम कर्त्तव्य है।"

"इसी समय राहुल अर्थात यशोधर ने सभा-मंडप में प्रवेश किया। वह बगल में मृगछाला दबाए था, और हाथ में माला लिए हुए था। नागार्जुन ने उसको ससीप आने का संकेत किया। बासबा का साष्टांग दण्डवत कर वह उसके समीप बैठ गया।"

नागार्जुन ने सस्नेह कहा—"वत्स तुम्हारा पाठ समाप्त हो गया ?"

यशोधर ने सविनय उत्तर दिया–"आचार्य मासपा मुझे तिब्बती भाषा की शिक्षा दे रहे हैं। मैंने उस भाषा में यथेष्ट गति कर ली है। यद्यपि अभी बोलने में कुछ कठिनाई होती है, तथापि समझने लगा हूँ।"

बासबा ने उसे सस्नेह दृष्टि से देखते हुये नागार्जुन से कहा—'शिक्षक मासपा ने बताया है कि यह गीनयेन बड़ी कुशाग्र बुद्धि का है। लामा धर्म

की शिक्षा दी जा रही है, और आशा है यह शीघ्र गेत-इसुल* हो जायगा ।"

"हाँ, रिमपोचे, यह बहुत तेजस्वी युवक है । लामा धर्म पर इसकी बहुत निष्ठा है ।"

"नागार्जुन" लामाओं का धर्म कई शाखाओं में विभक्त है । पुराने समय में अनेक त्रिकालदृष्ट महर्षियों ने अपनी-अपनी रीति से निर्वाण प्राप्त करने की विधियाँ बताई हैं । प्रथम 'कदमपा' शाखा है, जिसके अनुयायी लाल शिरस्त्राण धारण करते हैं, और लाल रंग उनका चिन्ह है । इस शाखा के जन्मदाता ऋषि 'अतीश' हैं, जो भारत के बंग प्रान्त से तिब्बत लगभग ग्यारहवीं शताब्दि में गये थे । चूंकि 'अतीश' बंगाल से गये थे, उनमें शाक्त भावना थी, अतएव मदिरा-सेवन एवं बिवाह करने की कोई मनाही इस शाखा में नहीं थी । परिणाम स्वरूप व्यभिचार तथा अनाचार की बृद्धि होने लगी । तब चौदहवीं शताब्दि के उत्तरार्ध के लगभग महान लामा "त्सोंगका-पा" ने पुराने धर्म को संस्कृति कर "गेलुगपा" शाखा की नींव डाली, जिसका चिन्ह पीला रंग था । इस शाखा के अनुयाइयों को ब्रह्मचर्यव्रत पालन करना पड़ता है तथा मादक द्रव्यों के व्यवहार की स्पष्ट मनाही है । महान त्सोंग का पा का भतीजा गेदून त्रुप्पा प्रथम दलाई लामा अभिषिक्त हुआ । महान त्सोंग-का पा ने 'गन्देन' तथा 'सेरा मठों की स्थापना की। गेदून त्रुप्पा ने "ताशी ल्हुनपो" नामक मठ पन्द्रहवीं शताब्दि में निर्माण किया, जो दो सौ वर्षों बाद पंछेन लामा का निवास बन गया । वस्तुत: हम सब गेलूप्पा शाखा के अनुयायी हैं और हम पीला परिधान पहनते हैं । इसके अतिरिक्त "साज्ञा" तथा कार्गयूपा" नामक दो शाखाएँ और निकली—किन्तु इनके अनुयायी बहुत अल्प संख्या में हैं ।

नागार्जुन तथा यशोधर बड़े ध्यान से सुन रहे थे । नागर्जुन ने कहा—

---

*लामा धर्म के अनूसार शिष्य को तीन दर्जे पास करना पड़ना है । रंग रूटी अवस्था में वह "गी नयेन" कहलाता है, विशारद होने पर "गेत ईसूल" और शिक्षा पूर्ण होने पर वह "गी-लांग" उपाधि से विभूषित होता है । पूर्ण रूप से लामा पद प्राप्ति के लिए उसे कम से कम २५० ब्रतों का पालन करना होता है । निर्वाण प्राप्त करने के लिए पन्द्रह विधियां हैं । जिसके द्वारा चौरासी सहस्त्र योनियों के दु:खों का विनाश होता है ।

रिमपोचे, तब एक प्रकार से गेलुगपा शाखा ही तिब्बत का राज्य-सूत्र संचालन करती है, क्योंकि दलाईलामा और पंछेनलामा दोनो ही पीले परिधान पहिनते हैं।"

तुम्हारा कथन सत्य है। तिब्बत का राजधर्म गेलुगपा शाखा द्वारा संचालित है। प्रथम दलाईलामा गेदून त्रुप्पा ने घोषणा की थी कि उनका पुनर्जन्म दो वर्ष पश्चात होगा, और उन्हें ढूढ़ कर राजसिंहासन पर आसीन किया जावे। उस समय से दलाईलामा की अवतार प्रथा का सूत्रपात हुआ, जो आज तक प्रचलित है।"

'गुरुदेव, दलाई लामा का अर्थ क्या है ?"

'तिब्बती भाषा जानते हुए भी तुम इसके अर्थ नहीं जानते ?"

"नहीं गुरुदेव, मैं इसका अर्थ नहीं जानता।"

'तिब्बत में दलाईलामा 'ग्यालपो रिमपोचे' कहे जाते हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ है—महामान्यों के महामणि। दलाईलामा, उनकी उपाधि है जिसका अर्थ है—बुद्धि के महासागर अथवा अनन्त प्रज्ञा के महासागर। यह उपाधि तीसरे अवतरित लामा 'सोनाम ग्यात्से' को मंगोल राजा अलतान खां ने बौद्धधर्म में दीक्षित होने के उपलक्ष में कृतज्ञता रूप में प्रदान की थी।

"इससे प्रकट होता है कि तिब्बत तथा मँगोल प्रदेश के सम्बन्ध घनिष्ट थे।"

"तिब्बत की मंगोल राजाओं ने सदा सहायता की है, यहां तक कि महान पाँचवे लामा "लोब सांग ग्यात्से" को उन्होंने समस्त तिब्बत की सर्वोच्च राजसत्ता प्रदान की। तथा ल्हासा के समीपस्थ उन जागीरदारों को अपनी सेनाओं से पराजित किया, जो उसके राज्याधिकार को स्वीकार नहीं करते थे। लोबसाँग ग्यात्से ने महाशक्तिमान होने पर अपने को बोधिसत्व "चेनरीसे" अथवा भगवान अवलोकितेश्वर का अवतार घोषित किया। इसी महान पाँचवे लामा ने अपने एक गुरू को 'पंछेन एद्रेनी' उपाधि प्रदान की। 'पंछेन एद्रेनी' के शाब्दिक अर्थ हैं 'महापूज्य महागुरू', किन्तु तिब्बती उनको पंछेन रिमपोचे अर्थात महापूज्य महर्षि कहने लगे। महान पाँचवे लामा लोबसांग ग्यात्से ने उनको शीगात्से प्रान्त के ताशी-ल्हुन्पो मठ का महाधिकारी नियुक्त किया और

उनको 'ओपमे' अर्थात् भगवान अमिताभ का अवतार घोषित किया, एवं उनकी राजसत्ता केवल शीगात्से प्रान्त में स्वीकार की, किन्तु उनकी आध्यात्मिक सत्ता--गुरु होने के नाते सर्वत्र प्रचारित हुई ।"

इसी समय विनोद बड़ी अधीर अवस्था में वहाँ आया। नागार्जुन ने उसकी विकलता लक्ष्य कर किसी दुर्घटना का अनुमान कर उसे अपने पास बुलाकर पूछा—"क्यों कुशल तो है। बड़े घबड़ाए हुए दिखाई पड़ते हो ?"

विनोद वस्तुत: चिनचुन को खोजता हुआ यहां आया था । जब प्रात: काल लगभग आठ बजे उसकी नींद टूटी, उसने चिन को नहीं देखा, और जब परिचारिका से मालूम हुआ कि वह सूर्योदय के साथ कहीं चली गयी है, तब उसने अनुमान किया कि वह ज्ञानव्यापी वाले मकान में अपने साथियों से मिलने गई होगी। वहां जाने पर उसे मालूम हुआ कि चिन वहां नहीं आई, तब वह उसे इधर उधर ढूढते हुए सारनाथ आया। उसने अनुमान लगाया कि संभव है बौद्ध भिक्षुणी होने के कारण वह संघ के किसी आवश्यक कार्य से वहां चली गई हो। वह नागार्जुन के आमंत्रण पर उसके समीप बैठ तो गया, किन्तु उसकी दृष्टि कुछ दूर बैठी हुई अनेकों भिक्षुणियों के मध्य चिन को ढूँढने में संलग्न थी ।

उसने नागार्जुन के प्रश्न के उत्तर में कहा—"नहीं, सब ठीक है।"

नागार्जुन ने पुन: पूछा—"तुम्हारे पिता, माता और बुआ सकुशल कलकत्ता से लौट आए हैं ?"

विनोद बड़ी उलझन में पड़ गया था। जब से अविनाश बाबू मणिमाला के साथ कलकत्ता गये थे, वह भी अपने घर नहीं गया था। दिन-रात वह चिन के साथ उसके नए आवास में रहने लगा था, क्योंकि घर में कोई जवाब तलब करने वाला न था। यशोधर स्थाई रूप से सारनाथ में रहता था, नौकरों में यह साहस न था कि वे कोई प्रश्न कर विराग भाजन बने। उसे नहीं मालूम था कि अविनास बाबू आदि कलकत्ता से वापस आ गये हैं। उसने गोल उत्तर दिया, "हाँ, सब ठीक है।"

बासबा ने उसकी रक्षा की। वह यशोधर तथा विनोद का मिलान कर

रहे थे। उन में अद्भुत सादृश्य देख कर पूछा—"क्या गी-नयेन और इस युवक में कोई सम्बन्ध है ?"

नागार्जुन ने मृदुमुस्कान सहित कहा—' दोनों यमज भाई हैं। जिसने दीक्षा ली है, वह इनसे केवल एक घंटा छोटा है। इनका नाम विनोद है।"

विनोद ने पुन: उन्हें प्रणाम किया। बासवा प्रहृष्ट मन से बोले—"तभी इतना सादृश्य है। नागार्जुन, यह दोनों बड़े होनहार मालूम होते हैं।"

"हाँ रिमपोचे, यशोधर अर्थात् राहुल तो आप के साथ जा रहे हैं, उसकी प्रतिभा का आप परिचय प्राप्त कर चुके हैं। आचार्य मासपा का वह प्रिय शिष्य है। यह विनोद भी मेधावी, विचारवान, और सत्यनिष्ठ है। इनके पितामह मेरे प्रिय शिष्य थे। उनकी बौद्ध-धर्म पर अपार श्रद्धा थी।"

'इसी उत्तम वातावरण के कारण ही मेरे गुरुदेव ने इस कुल को अपने पुनर्जन्म के लिए वरण किया था।"

विनोद सोच रहा था कि बासवा अपनी योग शक्ति से चिन का पता सहज ही लगा सकते हैं, किन्तु उसको पूछने का साहस नहीं हो रहा था। चिन्तित देखकर बासवा ने नागार्जुन से कहा—"आप इससे पूछिए कि यह चिन्तित क्यों हैं ?"

नागार्जुन ने दुभाषिए की भाँति विनोद से उस प्रश्न को दोहराया। विनोद उत्तर देने में हिचकिचाने लगा। उसे भय था कि कहीं उसका प्रेम सम्बन्ध प्रकट न हो जाय। बौद्ध-भिक्षुणी के साथ प्रेम सम्बन्ध को कोई बौद्ध धर्माव-लम्बी स्वीकार नहीं करेगा। वह पुन: सोच-विचार में पड़ गया।

नागार्जुन ने प्रश्न को दोहराया। विनोद को झूठ का सहारा लेना पड़ा। उसने कहा—"कल रात्रि से तबियत खराब है। शरीर तथा मस्तक में पीड़ा हो रही है।"

नागार्जुन से उसके उत्तर को सुनकर बासवा मुस्कराने लगे, किन्तु कहा कुछ नहीं। विनोद ने अनुमान किया कि यहाँ अधिक देर ठहरना असंगत होगा। वह तुरन्त उठ खड़ा हुआ, और नागार्जुन से कहा—"अब मैं जाऊँगा।"

नागार्जुन ने उठते हुए कहा—"मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा। श्राविका

गायत्री से भेंट करना है।"

विनोद ने पिंड छुड़ाने के उद्देश्य से कहा–"मैं यहाँ से डाक्टर के पास जाऊँगा मेरा अंग-अंग दु:ख रहा है, यदि कोई औषधि शीघ्र नही लूंगा, तो ज्यादा अस्वस्थ हो जाने का भय है।" यह कह कर वह किसी उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही चला गया।

वासवा ने नागार्जुन से कहा–"उसको जाने दो, वह किसी नारी के प्रेम से विह्वल है।"

नागार्जुन ने आपत्ति करते हुए कहा—"यह क्या कह रहे हैं, गुरुदेव।"

वासवा ने मुस्कराते हुए कहा—"मैं असत्य भाषण नहीं करता, नागार्जुन ! यह नवयुवक प्रेम विदग्ध है। आपने उसकी दृष्टि पर ध्यान नहीं दिया। वह भ्रमित-सा इधर-उधर ताक रहा था, मानों किसी को खोजता हो।"

"संभव, है ऐसा ही हो। आजकल के नवयुवकों का कुछ विश्वास नहीं है। कोई नहीं जानता कि कब वे क्या कर उठावें।"

"इन सांसारिक बातों की चर्चा में मैं फँसना नहीं चाहता। सांसारिक व्यक्तियों से मिलने पर सदैव धर्म-हानि होती है। इस समय तुम कहाँ जा रहे हो ?"

"मेरा विचार था कि श्राविका गायत्री से मिल आऊँ।"

"ठीक है। तुम उससे कह देना कि वह कल प्रातःकाल मेरे गुरुदेव को लेकर यहाँ आ जावे। वह बहुत क्लांत है, आज विश्राम करे।"

"जो आज्ञा, मैं आपका आदेश उसे बता दूंगा।"

"उसे भली भाँति विश्वास दिला देना कि मेरे से उसका कोई अहित नहीं होगा। अच्छा जाओ, आज बहुत सा समय व्यर्थ में नष्ट हुआ।"

यह कहकर वह भजन में लीन हो गए, और नागार्जुन उन्हें साष्टांग प्रणाम कर विदा हुए।

२३

संध्या की शीतल वायु से चिन में नवजीवन प्रस्फुटित हुआ। वह मन्दिर से निकल कर उसकी स्थिति का पता लगाने लगी। भुतहा मकान एक अन्धी गली के कोने में बना हुआ था। उसके आगे का मार्ग एक विशाल मोटी दीवाल रोके हुई थी, जो दरअसल इसी मन्दिर के परकोटे की एक दीवाल थी। मंदिर में पंचमुखी रुद्र की मूर्ति स्थापित थी। मन्दिर का प्रांगण बहुत विशाल था, जिसे देख कर आश्चर्य होता था कि ऐसी संकीर्ण तथा सुनसान बस्ती में इतनी खुली जगह कैसे मिली। चारों ओर फल-फूलों के पौधे लगे हुए थे। प्राँगण में अनेकों गुमटियाँ बनी हुई थीं, जिनमें विविध देवी-देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित थीं। दर्शनार्थी भक्तों का समूह जब आरती समाप्त होने पर चलने लगा, तो उनमें मिलकर चिन भी जाने लगी। समूह के साथ जाते-जाते जब वह गली के मुहाने पर पहुँची, तो उसने अपने को ऐसी जगह पाया, जिससे वह बिल्कुल अपरिचित थी। किसी से पूछ कर वह अपनी ओर किसी का ध्यान आकर्षित करना नहीं चाहती थी। परिस्थिति पर विचार करने के लिए वह पुनः मन्दिर लौट आई।

इस समय तक मन्दिर का प्रांगण, जो कुछ क्षणों पहले जनाकीर्ण था, लगभग खाली हो गया था। जो कुछ थोड़े लोग बचे थे, वे विविध देवी-देवताओं की अर्चना में लगे थे, अथवा हरे-भरे दूब के मैदान में बैठे, कोई स्तवन पढ़ रहे थे, या विचार-मग्न थे। वातावरण सर्वथा शान्त और एकान्त-सा था। चिन भी उस घास के मैदान के एक अंधेरे कोने में बैठ गई। वह यहाँ पर अपने को पूर्णतया सुरक्षित समझती थी, किन्तु आगे अपने को कैसे सुरक्षित किया जाय, यह प्रश्न उसको सता रहा था।

सबसे पहले उसके सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि वह यहाँ से कहाँ जाय ? अपने किसी चीनी मित्र के यहाँ जाने से वह किसी भाँति अपनी रक्षा नहीं कर सकती थी। प्रथम तो कोई अपने यहाँ आश्रय देने को तैयार न होता

और कदाचित् कोई तैयार भी हो जाय तो वह देर-सवेर अवश्य उसके रहने की सूचना देगा। चाउचिन, हो-चिन 'बृहत्तर चीन संघ' के मुख्य कार्यकर्त्ता होने के कारण काँग के हाथों की कठपुतली थे। वे कभी उसको छिपा कर नहीं रख सकते थे, क्योंकि संघ के नियमों में वे जकड़े हुये थे। यदि उसके साथ उनका कोई लगाव प्रमाणित हो जाय, तो उनके लिये भी मृत्यु-दण्ड निश्चित था। संघ का प्रहार इतने गुप्त रूप से होता था कि उससे किसी प्रकार नहीं बचा जा सकता था। वह व्यक्ति जो सदैव मित्रता का दम भरता है, और वस्तुतः उसका घनिष्ट मित्र भी कभी था, संघ के आदेश के समक्ष उसको जल्लाद बनना पड़ता है। बिना जल्लाद बने उसका निस्तार नहीं था। यदि वह रञ्चमात्र आदेश की अवहेलना करता, तो वही दण्ड उसके लिए भी निश्चित है। सहयोग मिलता था केवल कार्य सम्पादन में, किन्तु विरोधाचरण में कोई सहायक न था। यदि थोड़ा-बहुत विश्वास जमता था किसी पर, तो वह ली-सूंग थी, किन्तु वह भी नारी थी—सब प्रकार से असहाय तथा पराश्रिता। इसके अतिरिक्त वह रहती थी चाउ के साथ—उसकी लड़की बनकर। चाउ यद्यपि कोमल वृत्तियों का था, परन्तु कांग के समक्ष बिल्कुल निःशक्त था। काँग का मुकाबला करने में वह सर्वथा असमर्थ था। हो-चिन भी लगभग वैसा ही था। दोनों कभी उसको छिपा कर नहीं रख सकते थे। यदि थोड़ी देर के लिये मान भी लिया जाय कि ली-सूँग के दबाव से, अथवा उसके अनुनय-विनय से वे उसको आश्रय दे भी दें, तो कितने समय के लिए? काँग के चले जाने के बाद यह रहस्य प्रकट होगा ही, क्योंकि कांग के अनेकों गुप्तचर भारत में काम कर रहे हैं, और उन सबों से उसको हमेशा छिपाये रखना बिल्कुल असंभव था। कांग कभी किसी को क्षमा नहीं करता था। वह महान निर्दयी, घोर अत्याचारी, तथा निपट निरंकुश था। उसके अत्याचार की अनेकों कहानियाँ उसको याद आने लगीं। उसने अपने जीवन में लाखों मनुष्यों को तलवार के घाट उतरवाया था। एक-एक रात्रि में उसने सहस्रों का नाम-निशान मिटाया था, जिनमें बाल-वृद्ध नारियाँ सभी थे। उसने शत-शत मनुष्यों को एकत्र कर उनके चारों ओर अग्नि लगवा कर उन्हें गोलियों का शिकार बनवाया था। उनका अपराध केवल

इतना था कि वे उसके समर्थक नहीं थे, उसकी नीति के पोषक नहीं थे। मनुष्यों का रक्त देख कर उसे अपार हर्ष होता था। ऐसी कथायें भी प्रचलित थी कि वह मानव-रक्त पीने का आदी था। जब तक उसे एक गिलास ताजा मनुष्य-रक्त पीने को नहीं मिलता, उसकी प्यास नहीं बुझती थी। कहते हैं कि केवल अपनी प्यास बुझाने के लिये वह प्रत्येक दिन एक मनुष्य का बध करवाता था। लोग उसके असीम बल का कारण रक्त-पान बताते थे। प्रायः संघ के सभी सदस्य उसके नाम से डरते थे, उसके सामने आने का साहस तो कोई बिरला ही करता था। चिन उस घड़ी को कोसने लगी, जब वह कांग से मिलने आई थी। यों उससे मिलने की अथवा उसके साथ परामर्श करने की कोई आवश्यकता नहीं थी, फिर भी वह उससे मिलने आई। शेर की माँद में वह क्या लेने आई थी? इस प्रश्न का उत्तर उसका मन उसे नहीं देता था। चिन अपने दुर्भाग्य पर फूट-फूट कर रोने लगी।

थोड़ी देर रोने के पश्चात् उसका मन हलका हुआ अवश्य, किन्तु उसकी समस्याओं का कोई हल नहीं निकला। उसने सोचा कि उसके पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं है। जो वस्त्र पहने है, उसके अतिरिक्त एक चिथड़ा तक नहीं हैं। यह रेशमी साड़ी भी उसके लिये भार हो रही थी। भार ही नहीं बल्कि उसकी शत्रु भी हो रही थी। वह सर्व-साधारण का ध्यान आकर्षित करती थी। और, उसको पहने हुये वह किसी से भीख भी नहीं माँग सकती थी। जिस रूप का वह सदैव गर्व करती थी वही उससे शत्रुता कर रहा था। वह जानती थी कि उसके रूप के प्रशंसक बहुत मिल जायेंगे, किन्तु सब उसका सौदा करना चाहेंगे। निस्वार्थ होकर सहायता करने वाले प्रथम तो मिलेंगे ही नहीं, और यदि कोई माई का लाल मिल भी जाय, तो उसीकी भाँति स्वयं दुखी, और निर्धन होगा; जिसकी सहायता से लाभ के स्थान पर हानि की अधिक सम्भावना होगी। एक दीर्घ निश्वास से उसके अन्तर्मन का दुख बाहर आकर बिखर गया।

पूर्व दिशा से हलका चाँदना प्रकट होकर आकाश में फैलने लगा था। मन्दिर के परकोटे की दीवाल की आड़ में छिपा कृष्ण पक्ष की तीज का चंद्रमा उदय होकर धीरे-धीरे आकाश के प्राँगण में आने की तैयारी कर रहा था।

मन्दिर का धवल शिखर चन्द्रिका में स्नान करने लगा था। चिन ने उठने का प्रयत्न किया, परन्तु फिर वही प्रश्न सामने आया कि वह जाय कहाँ ?

उसके मन ने कहा कि विनोद के घर क्यों न चला जाय। मणिमाला उसे आश्रय भी दे सकती है, और उसकी रक्षा भी कर सकती है। वह संसत्सदस्य है। राजनीति में उसका विशिष्ट स्थान है। वह यदि चाहे तो उसके लिये सरकारी संरक्षण भी प्राप्त करवा सकती है। पर तुरन्त उसके सामने दूसरा प्रश्न उपस्थित हुआ कि वह ऐसा क्यों करेंगी ? उनका संरक्षण प्राप्त करने के लिये उसे संघ का गुप्त भेद बताना होगा। उसको यह स्वीकार करना पड़ेगा कि वह 'वृहत्तर चीन संघ' की गुप्तचर है। उसे यह भी बताना पड़ेगा कि उसने उनके पुत्र विनोद को अपने मायाजाल में फाँसा है। उनसे वे सब बातें कहनी पड़ेगी कि किस प्रकार वह औषधियों के प्रयोग से उनके पुत्र विनोद को निष्क्रिय और अफीम का गुलाम बना रही थी, जिससे उसका विवेक, विचार और क्रियाशीलता कालान्तर में नष्ट हो जावे। उसे संघ के कार्यों के भण्डाफोड़ के साथ अपना भी भंडाफोड़ करना पड़ेगा। तब भला उसके जैसे गुप्तचर का वह विश्वास करेगी ? क्या वह उसे सरकार से संरक्षण दिलाने के स्थान में दंड दिलाने की व्यवस्था नहीं करेगी ? और विनोद को वह कैसे मुंह दिखलायेगी। विनोद से भला वह कैसे स्वीकार करेगी कि वह उससे प्रेम नहीं; बल्कि प्रेम-नाटक कर रही थी। वह सदैव उसे अफीम के संयोग से बनाई हुई औषधियाँ खिलाती थी, और कमरे का वायु-मण्डल भी ऐसी धूप बत्तियों के धूम्र से सुवासित रहता था, जो पल मात्र में मनुष्य को निश्चेष्ट बना कर सुला देता था। विनोद प्राय: प्रतिदिन सवेरे जागने पर कहता कि वह जागते रहने का उद्योग सदैव करता है, परन्तु न मालूम कब उसे नींद दबा लेती है; तब वह हँसकर उत्तर देती कि वह स्वयं उसके असमय सो जाने से हैरान रहती है–जो बिल्कुल झूठ था। वह सोचने लगी कि कैसे वह इतने बड़े झूठ को स्वीकार करेगी। यह सब स्वीकार करने से तो कहीं अच्छा है कि वह आत्महत्या कर ले। उसके मन ने तुरन्त सकारा कि सब दुखों तथा दुश्चिन्ताओं से निष्कृत है आत्महत्या में। आत्महत्या उसकी सब भाँति रक्षा करेगी। आत्महत्या कर लेने से न उसे

किसी का आश्रय खोजने की आवश्यकता पड़ेगी, न उसे किसी का संरक्षण प्राप्त करने के लिए गोपनीय बातों को खोलना पड़ेगा, और न विनोद और उसकी मां की घृणा का पात्र बनना पड़ेगा। किन्तु आत्महत्या का नाम लेते ही उसकी आँखें अश्रुपूर्ण हो उठी, गला भर आया, और हृदय धड़कने लगा। ज्यों-ज्यों हृदय की गति तीव्र होती गई, त्यों-त्यों पसीना ललाट पर केंन्द्रित होने लगा, उसका मुख सूखने लगा। उसे याद आया कि उसने घंटों से पानी नहीं पिया है। वह पानी की तलाश करने लगी। उसे एक गुमटी के पास कुआँ दिखाई दिया। उसने वहाँ उठ कर जाने का निश्चय किया, किन्तु पैर न उठे। अब उसकी दृष्टि मंदिर के प्रांगण में गई। चारों ओर निस्तब्धता छाई थी। प्राय: सभी दर्शनार्थी और उपासक चले गये थे। अपने विचारों में वह इतनी मग्न थी कि उसने कुछ लक्ष्य नहीं किया था।

उस सन्नाटे को देख कर वह कुछ विचलित हुई। अभी तक अंधेरे कोने में बैठे होने के कारण उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया था। चन्द्रमा अब क्षितिज का अतिक्रमण कर आकाश के प्रांगण में आ गया था। वह अन्धकार में छिपी वस्तुओं को दिखाने लगा। चिन व्याकुल होकर उठ खड़ी हुई। वह पानी पीने के लिए कुएँ की ओर अग्रसर हुई। कुयें की जगत पर एक डोल और रस्सी पड़ी थी। डोल खाली था; उसमें एक बूंद जल न था। वह स्वयं जल खींच नहीं सकती थी। वह काशी की रीति-रिवाज से वाकिफ थी। उसे मंदिर के कुएँ से जल निकालने का अधिकार न था, क्योंकि उससे कोई पूछ ताछ अथवा गोलमाल हो सकता था। उसने सोचा कि जब आत्महत्या ही करना है, तब यहां पानी पीने की क्या आवश्यकता है। गंगा या वरुणा का जल पीकर ही तो उसे मरना है। वह बिना जल पिये हुये, वहां से चल दी।

जब मन्दिर से निकल कर वह गली के मोड़ पर पहुंची, तब फिर प्रश्न उपस्थित हुआ कि, वह किधर जाय। वहाँ से उसे न गंगा का रास्ता मालूम था, और न वरुणा का। पान की दूकान पर खड़े लोग उसे घूरने लगे। तब उसे ज्ञात हुआ कि वह मुख खोले हुए है, इसी से उसका अनुपम सौन्दर्य उन सबको उसकी ओर आकर्षित कर रहा है। वह द्रुत पदों से आगे बढ़ी। आज

के पहले वह देखने वालों की उपेक्षा करती थी, किन्तु आज उसे भय मालूम हुआ। कुछ दूर जाकर उसने भारतीय महिलाओं की भाँति घूंघट निकाल लिया। रसिक गुन्डे खाँसने—खखारने लगे, पर वह किसी की ओर ध्यान दिए बिना तेजी से आगे बढ़ने लगी।

थोड़ी दूर जाकर गली सड़क से मिल गई। अब उसने पहचाना कि वह चाऊ की दूकान के बहुत निकट है। उसकी गति तुरन्त स्तब्ध हो गई। वह रास्ता उसकी दूकान के सामने से जाता था। वह प्रतिकूल दिशा में मुड़ कर जाने लगी। भाग्यवश उसे एक खाली रिक्शा मिल गया। उसे ठहरा कर वह तुरन्त उसमें बैठ गई, और छतरी तानने का आदेश दिया। रिक्शा वाला उसे आश्चर्य से देखने लगा। अवगुन्ठिता सुन्दरी नारी को अकेले ले जाने में वह आगा पीछा करने लगा। चिन वहाँ से शीघ्र से शीघ्र टल जाना चाहती थी। उसे हड़बड़ी में यह भी ध्यान न रहा कि उसके पास रिक्शे का किराया देने को पैसे नहीं हैं। उसने अपनी घबड़ाहट को दबाते हुए वरुणा के पुल की ओर ले चलने का आदेश दिया। असमंजस में फँसा रिक्शा वाला उसे ले जाने लगा। छतरी की आड़ में उसका मुख यद्यपि दिखाई नहीं पड़ता था, फिर भी वह लम्बे घूँघट से अपने को छिपाए थी, हालांकि उसका नौसिखियापन साफ प्रकठ होता था।

जब वह जनाकीर्ण पथ से कुछ एकान्त स्थल पर आई, तब उसे ध्यान आया कि वह रिक्शे का किराया कैसे चुकाएगी। उसके पास न कोई आभूषण था, और न पैसे। उसे सहसा याद आया कि उसकी माँ की दी हुई एक तावीज उसकी बांई भुजा पर बँधी है, जो सोने के पत्र से आच्छादित है। उसकी स्मृति से उसके जीवन की पुरानी घटनाएँ एक के पश्चात एक याद आने लगीं। उसे अपना बाल्यकाल याद आया। पिता की धूमिल छाया भी उसके सामने नाचने लगी। उसे उन दिनों की याद आई जब सर्वत्र देश में अशान्ति छाई हुई थी। खूनी क्रान्ति हो रही थी। मनुष्यों के समूह कीड़ों की तरह मारे जा रहे थे। उसका पिता पुरानी सरकार का नौकर था। उस पर कई अपराध लगाये गए थे। एक दिन वह अकस्मात पकड़ लिया गया, और

दूसरे दिन चौराहे पर गोली से उड़ा दिया गया। उसकी माँ अपने पति को मरते देख कर चिल्लाई: तथा वह उसको बचाने के उद्देश्य से उसकी ओर दौड़ी, तो उसे भी गोली से भूँन दिया गया। उसका बड़ाभाई जब विरोध में कुछ बड़बड़ाया, तो वह भी लाल सैनिकों की संगीन का शिकार बनाया गया। वह अकेली रोती-चिल्लाती रही। सैनिकों के नायक ने उठाकर एक वृद्धा को सौंप दिया, जो उसको बात-बात पर मारती थी, और उससे बड़ा निर्दय व्यवहार करती थी। उसे कठोर नियन्त्रण में रख कर शिक्षित किया गया, और फिर गुप्तचरी की शिक्षा के लिए उसे 'वृहत्तर चीन संघ' की संरक्षता में रखा गया। चूंकि उसे भारत में काम करना था; इसलिए उसे हिन्दी तथा संस्कृत भाषाएँ पढ़ाई गई तथा उनको पूर्ण रूप से हृदयंगम करने के लिए उसे काशी भेजा गया। यहाँ के एक कालेज में उसे भरती कराया गया। इसके पश्चात् उसे बौद्ध भिक्षुणी बनाया गया, ताकि वह उसकी ओट में 'वृहत्तर चीन संघ' का नाम बिना सन्देह-भाजन हुए कर सके।

घटनाओं को याद करते-करते उसे चन्द्रकला की याद हो आई, जिसने उसे संस्कृत तथा हिन्दी भाषा की शिक्षा दी थी, और जिसके साथ वह मणिमाला के घर गई थी। एक बार उसके मन में आया कि वह उसके यहाँ आश्रय पा सकती है, और छिपकर कुछ दिन रह सकती है। फिर यह भी भय हुआ कि कहीं किसी तरह भेद प्रकट हो गया, तो वह भी कुत्ते की मौत मारी जायगी। उसने उसे मन ही मन प्रणाम किया। उससे निष्कपट स्नेह, और बहिन का प्यार पाया था। उसकी स्मृति से उसकी आँखें छलछला आई।

रिक्शा वरुणा के पुल पर पहुँच गया। रिक्शेवाले ने शुष्क स्वर में पूछा कि कहीं आगे चलना है ? चिन ने चौंक कर पूछा—"वरुणा का पुल, क्या आगया ?" रिक्शे वाले ने उत्तर दिया—"जी हाँ, अब आगे मैं नहीं जाऊँगा। आपको जहाँ जाना हो, पैदल जाइये।"

चिन के मुख से सहसा निकल गया—"क्या सारनाथ नहीं चल सकते ?"

"आपसे कह दिया कि मैं अब कहीं नहीं जाऊंगा। लाइये किराया दीजिए।"

"किराया तो मैं सारनाथ पहुंच कर दे सकती हूँ। यहाँ मेरे पास कुछ नही है।"

रिक्शे वाले ने बिगड़ कर कहा—"यह मैंने पहले ही भांप लिया था कि किराया नहीं मिलेगा। जनाना जब गाड़ी में बैठ गया, तो कैसे उतारूँ ? लोग मुझको ही बुरा कहने। अच्छा, किराया नहीं है, तो उतर जाइए। आपने जहाँ तक पहुँचाने को कहा था वहाँ तक पहुंचा दिया। अब तो पिंड छोड़िये महारानी जी !"

चिन अपने भुजदण्ड से अपनी मां का अन्तिम चिन्ह उतार रही थी। उसने उसे देते हुए कहा—मैं बड़ी मुसीबत में फँसी हूं, चोर नहीं हूं। यह सत्य है कि मैं तुम्हारा किराया अभी नहीं दे सकती। शायद अभी दे भी न सकूंगी। यह तावीज लो। यद्यपि इसका मूल्य मेरी दृष्टि में इसके ऊपर मढ़े हुए सोने से कहीं अधिक है, लगभग मेरे जीवन के तुल्य है, किन्तु सोना निकाल कर बेंच लेना, जिसका मूल्य तुम्हारे प्राप्य किराये से ज्यादा होगा।"

रिक्शेवाले ने अपना हाथ खीचते हुए कहा—"नहीं देवी जी, मैं इसे लेकर किसी नई मुसीबत में नहीं फसूंगा। सोना बेचने जाऊँगा, पकड़ा जाऊँगा। मैं हजार कहूंगा कि यह मुझे किराये के बदले में मिला है, लेकिन मेरी बात पर विश्वास कौन करेगा ? दरिद्री का विश्वास भगवान भी नहीं करता है ? आप जाइये, मैंने किराया भर पाया।"

रिक्शे वाले की बड़बड़ाहट एक पथिक खड़ा सुन रहा था। दैवयोग से वह नागार्जुन थे, जो गायत्री से मिल कर सारनाथ वापस जा रहे थे। रिक्शे वाले की पूरी बकवास सुनी थी और उस अवगुंठिता नारी को पहचानने का प्रयत्न कर रहे थे; क्योंकि उन्हें चिन का कंठ-स्वर परिचित सा प्रतीत हुआ था।

उन्होंने चिन ने पूछा—"भद्रे, सारनाथ क्यों जा रही हो ? रात्रि में इस यात्रा का क्या प्रयोजन है ?"

चिन उनको देखते ही पहचान गई। उसने कोई उत्तर नहीं दिया, और चुपचाप रिक्शे से उतर गई। चिन ने अपना घूंघट और खींच लिया। रिक्शा

वाला जाने लगा। उसको बुलाकर नागार्जुन ने कहा—"लो अपना किराया लेते जाओ। यह एक रुपया है। इस श्राविका को जहाँ कहीं से भी लाए होंगे, वहाँ से किराया एक रुपया से अधिक नहीं होगा। मैं बौद्ध सन्यासी हूं। श्राविका को सारनाथ ले जाऊँगा।"

रिक्शेवाला रुपया लेकर चला गया। नागार्जुन ने कहा—"श्राविका, मेरे साथ निर्भय चलो। तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं होगा। बुद्ध भगवान तुम्हारा कल्याण ही करेंगे।"

चिन अब अपने को न रोक सकी। वह अपना घूंघट उघाड़ती हुई बोली—"भदन्त जी, मैं भी बौद्ध भिक्षुणी हूं, मेरी रक्षा करो।"

नागर्जुन ने उसे पहचान कर कहा—"तुम चीनी भिक्षुणी हो श्राविके! अनेकों के साथ तुमने भी उस दिन दीक्षा ली थी।"

"हाँ गुरुदेव, मैं चीनी हूं, परन्तु अब चीनी ही मेरे रक्षक के स्थान पर भक्षक हो गये हैं। मेरी रक्षा करो।"

"देवि, आओ मेरे साथ आओ। भगवान बुद्ध, संघ, और श्रम की शरण में जाने से कोई तुम्हारा अहित नहीं कर सकता। यहाँ नहीं, सारनाथ चलकर तुम्हारी कथा सुनूंगा। आओ, सवारी का प्रबन्ध आगे कर लूंगा।"

चिन आश्वस्त होकर नागार्जुन के साथ सारनाथ चल दी।

२४

नागार्जुन और चिन यद्यपि दोनों चुपचाप जा रहे थे, तथापि उनके मन चुपचाप नहीं थे। दोनों नाना प्रकार के विचारों में निमग्न थे, और लम्बे रास्ते को वे पारस्परिक आलाप तथा विचारों के विनिमय में काटना चाहते थे। भदन्त ब्रह्मचारी होने के कारण रात्रि के द्वितीय प्रहर में एक सुन्दरी नारी

के साथ निर्जन रास्ते पर जाते हुए शरमा रहे थे, और चिन अपनी कहानी कहने के लिए उतावली हो रही थी। वह वृक्षों की छाया के नीचे चल रहीं थी, और जहाँ किसी पथिक को आते या जाते देखती, तुरन्त दुबक कर उनकी सघनता में ठहर जाती। नागार्जुन उसकी इन चेष्टाओं से अधिकाधिक परेशान हो रहे थे।

अन्त में चिढ़कर उन्होंने पूछा—"भद्रे, इस प्रकार तुम क्यों छिपती चलती हो। इससे लोगों को यदि सन्देह न भी हो तो हो जायेगा।"

चिन खिसकते हुए बोली—"इस समय मैं अपने को चारों ओर शत्रुओं से घिरी हुई पाती हूं। यद्यपि मैं जानती हूं कि मेरा भय मानसिक और निर्मूल है, तथापि मेरा शत्रु इतना शक्तिशाली है कि मुझे प्रत्येक पथिक उसका गुप्तचर मालूम होता है। यह रेशमी साड़ी मेरे लिए काल हो रही है। इससे पहचान लिए जाने का पूरा अन्देशा है।"

"तब इसको बदल क्यों नहीं डालती ?"

"दूसरा वस्त्र होने से ही तो बदल सकती हूं।"

"क्या मेरे उत्तरीय से काम चल जायगा ? मेरे पास इस समय दो उत्तरीय हैं, एक अभी मुझे मेरे भक्त से मिला है, और दूसरा मेरा निजी है।"

"हाँ, भदन्त जी, कृपा करके उनमें से जो पुराना हो वह दे दीजिए।"

नागार्जुन ने अपना उत्तरीय उसे दे दिया। उनको कुछ देर प्रतीक्षा करने को कह, वह दूर वृक्षों की ओट में जाकर अपना पट-परिवर्तन करने लगी। उसने उत्तरीय को पुरुषों की लुँगी की भाँति पहना, और साड़ी के दो टुकड़े कर, एक को उत्तरीय के स्थान पर ओढ़ लिया, तथा दूसरे टुकड़े को साफा की भाँति बांध कर उसके नीचे अपने शिर के बाल छिपा लिए। अब मुरेठा बाँधे वह एक सुन्दर नवयुवक की भाँति दिखाई पड़ने लगी।

अपने मर्दाने वेष में जब वह नागार्जुन के समीप आई, वह उसे पहिचान न सके, और एक पग भी आगे न बढ़े, मानों वह युवक कोई पथिक हो, जिससे उनका कोई प्रयोजन न हो।

चिन ने जब उनसे पथगामी होने के लिए कहा तब वह चकित होकर

उसको देखने लगे। चाँदनी के प्रकाश में भी वह उन्हें अपरिचित ही विदित हुई।

चिन गुप्तचर थी। वह वेष-परिवर्तन करने की कला में अत्यन्त पटु थी। यद्यपि उसके पास पूरे प्रसाधन वेष बदलने के नहीं थे, तथापि जो कुछ उपलब्ध हुआ, उसी से उसने इतना परिवर्तन कर लिया कि किसी का यकायक पहचान लेना यदि सम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया।

चिन ने पुन: कहा—"भदन्त जी चलिए, मैंने वेष बदल लिया है।"

"अरे तुम, तो इस कला में बड़ी कुशल मालूम देती हो!"

"गुप्तचर होने के लिए यह कला सीखना अनिवार्य है।"

"तब क्या तुम गुप्तचर हो?"

"हां, भदन्त जी, दरअसल मैं चीनी गुप्तचर हूँ।"

नागर्जुन मानों आकाश से गिर पड़े हो। वह अवाक होकर उसकी ओर देखने लगे।

"तुम क्या बौद्ध-भिक्षुणी नहीं हो?"

"गुप्तचरी के लिए बौद्ध-भिक्षुणी बनी हूँ, अथवा यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि गुप्तचरी के लिए बौद्ध-भिक्षुणी बनाई गई हूँ।"

"बौद्ध-संघ में ऐसी कोई छिपी बात या छिपा काम नहीं है, जिसके जानने के लिए किसी छल-छद्म का आश्रय लेना पड़े।"

"केवल किसी गुप्त बांत या काम का पता लगाने के लिए ही गुप्तचरी नहीं की जाती, वह अन्य अनेक उद्देश्यों से भी की जाती है।"

"क्या अपना उद्देश्य बता सकती हो?"

"आपसे कुछ छिपाऊँगी नहीं, किन्तु अभी इस प्रश्न का सीधा उत्तर नहीं दे सकूँगी। जब सारी कहानी सुना दूंगीं, तब आप स्वयं जान जायेगे।"

"फिर भी कुछ थोड़ा संकेत तो करो।"

"संक्षेप में यह कि इस देश को गाफिल बनाने के लिए।"

"क्या मतलब?"

मतलब यह है कि इस देश के निवासी चीनियों को अपना भाई, दोस्त

और मुरब्बी समझते रहें, और इसी भुलावे में रखकर वे भारत की भूमि पर अधिकार कर लें।"

"यह तो धोखेबाजी है।"

"भदन्त जी, राजनीतिक भाषा में इसको कूटनीति कहते हैं।"

"पीठ में छुरा भोंकने का ही नाम कूटनीति है।"

"साम, दाम, दण्ड, भेद राजनीति के ये चार अंग बताए गए हैं, किन्तु ये पुराने हो गये हैं। इनका चलन उस समय था, जब दुनियाँ में ईमानदारी थी, सत्य था और ललकार कर आमने-सामने लड़ने की प्रथा थी। युद्ध उस समय शौर्य, बाहुबल और बुद्धिबल से जीते जाते थे। किन्तु अब युद्ध की कला परिवर्तित हो गई है। बल-विक्रम का स्थान वैज्ञानिक शस्त्रास्त्रों ने लिया, और राजनीति के इन चारों अंगों का स्थान धोखेबाजी ने ले लिया है। वही राष्ट्र इस युग में जीवित रह सकता है, जो चाँगला हो, धूर्त हो, और किसी का विश्वास न करने वाला हो। राष्ट्रों में मित्रता केवल स्वार्थ-साधन के लिए होती हैं। उस मित्रताकाल में भी एक दूसरे से सशंकित रहना अनिवार्य है। जहाँ किसी से जरा भी दरार दिखाई दी, मित्र तुरन्त शत्रु हो जाता है। सन्धि-पत्र रद्दी की टोकरी में फेंक दिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त भदन्त जी, आज कल के युद्धों में अपरिमित, तथा असीम धन व्यय होता है, जो किसी गरीब राष्ट्र के लिए न उठाया जा सकने वाला भार बन जाता है, इसलिए पंचमांगियों की रचना सोची गई, जो बहुत ही अल्पव्यय से कार्य-साधन करवाते हैं। यह निःशस्त्रीकरण का युग है, अतएव बिना शस्त्रों का उपयोग किए दूसरों की भूमि पर कब्जा करने के लिए हमारे जैसे गुप्तचरों की स्थापना हुई है, जो अपने रूप-यौवन से देश के नवयुवकों को विषय-वासना में लीन कर उन्हें व्यभिचारी, लम्पट, बुद्धि-हीन, तथा नशों का व्यसनी बनाकर उनकी वास्तविक शक्ति क्षीण कर देते हैं। भदन्त जी, कूटनीति का यह एक रूप है।"

"भद्रे, तब क्या पंचशील के सिद्धान्तों पर सर्वप्रथम हस्ताक्षर करने वाले चीन ने कूटनीति का आश्रय लेकर उस ऐतिहासिक सन्धि-पत्र पर आपने

हस्ताक्षर किए थे ? क्या 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' का नारा केवल धोखे की टट्टी है ?"

"हाँ भदन्त जी, यही सत्य है, और कटु सत्य है। भारत को धोखे में रखने का यह प्रयत्न है, और इसमें वह बहुत दूर तक सफलता प्राप्त कर चुका है, तथा जो अवशेष है, वह आगामी वर्षों में पूर्ण कर लेगा। शिष्ट-मण्डलों के पारस्परिक आवागमन से इस देश की आँखों में धूल झोंकी जा रही है, और झोंकी जायगी। राष्ट्र को दो भागों में विभक्त करने का प्रयत्न किया जायगा। उनमें से एक चीन का पक्षपाती होगा, और उनके भूम्याधिकार की निन्दा तक नहीं करेगा, बल्कि उस कड़वी घूँट को पी जाने के लिए देश को उत्साहित करेगा।"

"यह तो बड़ी अकल्याणकारक घटना होगी !"

"भारत का अकल्याण हो सकता है, किन्तु चीन का तो कल्याण होगा।"

"क्या देश को चेतावनी देना, अथवा उसको सजग करना उचित न होगा ?"

"भदन्त जी, चीन का जादू शिर पर इतना चढ़ गया है कि इस समय जो भी प्रयत्न किया जायगा, वह चिकने घड़े पर पानी की धार डालने के समान होगा। बन्धुत्व और मैत्री का भूत उसी समय निकलेगा, जब चीन की कूटनीति के कुछ प्रत्यक्ष उदाहरण सामने आवेंगे।"

"इस देश का कुछ भाग उसके अधिकार में चला जावेगा।"

"उसे तो अब कोई बचा नहीं सकता। हमारा कथन हमारी चेतावनी अरण्य-रोदन सिद्ध होंगे। नकारखाने में भला कहीं तूती की आवाज सुनी जाती है ?"

भदन्त नागार्जुन गहरे सोच-विचार में पड़ गए। दोनों चुपचाप सारनाथ की ओर चलते रहे। भदन्त को चिन्तित देखकर चिन ने पूछा—"क्या सोच रहे हैं भदन्त जी !"

"सोच रहा हूँ भद्रे इस देश का भविष्य ! पूरे एक सहस्त्र वर्ष पश्चात् यह स्वाधीन हुआ है, और शिर मुड़ाते ही ओले पड़ने लगे।"

"ओले अभी पड़े नहीं हैं, अब पड़ेंगे कुछ कालान्तर में। अभी तो बादल

इकट्ठे हो रहे हैं।"

"इस कूटनीति के यज्ञ में तुम्हारी कितनी आहुति हुई है ?"

"बताने से आप चिन्तित होंगे और शायद आप मुझ पर क्रुद्ध हों तथा मेरा वहिष्कार भी करें।"

"शरण में आये हुए को मैं त्याग नहीं सकता, विश्वास रखो भद्रे !"

"जिसका मैं सर्वनाश कर रही थी, अथवा जिसको वशीभूत करने के लिए मुझे नियुक्त किया गया था, वह आपके स्नेह का एक पात्र है।"

"अर्थात् ?"

"अर्थात् वह विनोद है !"

"श्राविका गायत्री का भतीजा, और मणिमाला का पुत्र ?"

"हाँ भदन्त जी, वही!" स्वीकार करते हुए उसके नेत्र नत हो गए।

"तुमने उसका क्या अहित किया है, भद्रे !" उसके नेत्र अश्रुसिक्त थे।

"अधिक हानि नहीं हुई।मेरा अभियान अभी आरम्भ ही हुआ था।

"कबसे ?"

"जब अविनाश बाबू और मणिमाला गायत्री जी को लेने कलकत्ता गए थे।"

"यह बिल्कुल ताजी घटना है, चार पाँच दिन पहले की।"

"हां, यद्यपि शुरुआत कुछ दिन पहले हुई थी, तथापि पूरी कार्यवाही हुई, उनके कलकत्ता-प्रवास दिनों में।"

"भद्रे, क्या विस्तार से बताने की कृपा करोगी ?" उनका स्वर विनय-सिक्त था।

"आपके सामने अपने अपराध की व्याख्या करतें हुए लज्जा लगती है।"

"भद्रे, गुप्तचर तो लज्जा नहीं करते।"

"अभी उसकी अभ्यस्त नहीं हुई हूँ। मेरा यह प्रथम प्रयास है।"

"क्या तुम अपने किसी अधिकारी, अथवा संचालक के सामने कहते हुए भी लज्जा बोध करतीं ?

"नहीं, क्योंकि वे मेरे दल के होते हैं, तथा उनकी आज्ञा के अनुसार कार्य

कर रही थी, और अपनी कार्यवाही की विस्तृत रिपोर्ट देना मेरा कर्त्तव्य होता था।"

"माना कि वैसी उदारता नहीं दिखा सकती, किन्तु संकेत तो कर ही सकतीं हो ?" चिन को कुछ व्यंग का आभास मिला।

"भदन्त जी, यद्यपि आप संसार त्यागी सन्यासी हैं, तथापि नारी जिस शक्ति से पुरूष पर विजय प्राप्त करती है, उसके सम्बन्ध में कुछ तो जानते ही होंगे।"

"वह अपने रूप के आकर्षण और हाव-भाव-भरे प्रेम-दर्शन से पुरूष पर विजय प्राप्त करती है।"

"विनोद पर भी मैंने इन्हीं दोनों अस्त्रों का प्रयोग किया। क्या आप अनुमान कर सकते हैं कि नवयुवक का रक्त नारी के स्पर्शमात्र से कितना गरम हो सकता है ? पुरूष को नारी पर विजय पाने में समय अपेक्षित है किन्तु नारी को उसकी कोई आवश्यकता नहीं होती। फिर अल्हड़ नवयुवक तो प्रथम कटाक्ष में हीं धराशायी हो जाते हैं।"

"विनोद तब तुम पर आशक्त है।"

"क्या विनोद में आपने आसक्ति के कोई लक्षण देखे ?"

"हां, आज तीसरे पहर वह सारनाथ आचार्य बासबा के शिविर में बड़ी व्याकुल अवस्था में आया था। उसने मेरे प्रश्नों के उत्तर सही-सही नहीं दिए। बासबा ने उसके लक्षणों को देख कर तुरन्त बता दिया था कि वह किसी नारी के प्रेम में विदग्ध है।"

"भदन्त बासबा ने बता दिया ?"

"हाँ, वह त्रिकालज्ञ हैं, उनसे कुछ छिपा नहीं रहता। वह अपने गुरुदेव के दर्शनों के लिए ठहरे हुए हैं।"

"विनोद के फुफेरे भाई आनन्द को देखने के लिए, जिसके शरीर में उनके गुरुदेव की आत्मा ने पुर्जन्म लिया है ?"

"हाँ, श्राविका गायत्री कल अपने पुत्र को लेकर बासबा के आश्रम में आवेगी।"

"तब शायद मैं भी उनके दर्शन कर सकूँगी।"

"अवश्य, परन्तु तुम्हारे आवास का क्या प्रबन्ध करूँ ?"

"मेरा सुझाव यह है कि मुझे मर्दाने वेष में ही रहने दिया जाय तो बड़ी सुगमता से मेरी रक्षा हो सकेगी।"

"तुमने अभी तक बताया नहीं कि भय तुमको किस व्यक्ति से है ? वह विनोद तो नहीं है ?

"विनोद भी अब किसी अंश तक हो सकते हैं, किन्तु मुख्य भय है वृहत्तर चीन संघ के सदस्यों में से, जिसके गुप्तचरों का जाल समग्र भारत में बिछा हुआ है। उसी संघ का उपाध्यक्ष, जो सर्व शक्तिमान हैं, आज प्रात:काल मेरी प्रतिष्ठा भंग करने पर उतारू हो गया। तुच्छ से तुच्छ नारी की भी अपनी प्रतिष्ठा होती है, जिस पर वह अपने को बलिदान कर सकती है। गुप्तचर होने से मैं प्रेम का अभिनय करती हूँ, किन्तु अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करती हुई वैसा करती हूँ। मैं अभी तक उतनी ही पवित्र हूँ जितनी भारत में कन्याएँ समझी जाती हैं। कमलवत् जल में रहती हुई उससे प्रभावित नहीं हुई, क्योंकि मुझको ऐसी रहने की शिक्षा दी गई है। जो गुप्तचर स्वयं प्रेम में फँस जायगी, वह अपना कार्य ईमानदारी से पूरा नहीं कर सकती। प्रेम में फँसने की सजा मृत्यु है। यही भय इन्द्रियों को वश में रखने के लिए सहायक होता है।"

नागार्जुन ने ऊब कर कहा—"ठीक है, मैं समझ गया, अब आगे की कथा कहो।"

"वृहत्तर चीन संघ के उपाध्यक्ष का नाम है कांग-कुंग। वह निर्दयता, पशुता, नृशंसता, क्रूरता का अवतार है। मैंने सुना है कि वह मानव-रक्त पीने का अभ्यासी है। उसमें अपार बल, साहस और पराक्रम है। शरीर के समान उसका मस्तिष्क भी बलवान है। उसकी स्मरण शक्ति भी अद्भुत है। वह जिसको एक बार देख लेता है उसे फिर नहीं भूलता, चाहे वह कहीं तथा किसी भी परिस्थिति में मिले। उसे वह अवश्य पहचान लेगा। वृहत्तर चीन संघ की योजना उसी की बनाई हुई है, और उसी के इशारों से वह संचालित होती है।"

•

"उसके सम्बन्ध में कुछ उड़ती खबरें सुनी गई हैं। बहुत चीनियों को मैंने उसके नाम से पीला पड़ते देखा है।"

"जी हाँ, वह ऐसा ही व्यक्ति हैं। सारांश यह कि दुर्भाग्य से मैं आज प्रात:काल उससे मिलने गई। उस समय वह एकांत में कलेवा कर रहा था। मदिरा से वह चूर हो रहा था। मुझे देखते ही वह आसक्त हो गया, और मुझे अपनी प्रेयसी बनने का लोभ दिया। जब मैंने उसके प्रस्ताव का तिरस्कार किया तो क्रुद्ध होकर वह मुझे उसी कमरे में बन्द कर चला गया। मध्याह्न में उसने मेरे साथ भोजन किया, और जबरन मदिरा मुझे पिलाई। उसके नशे में मेरा सर्वनाश हो गया होता, किन्तु दैव ने पुन: रक्षा की और वह मुझे बन्द कर अपने कर्मचारियों के बुलाने पर चला गया। नशे से मैं बड़ी देर तक अचेत रही। होश आने पर बाहर निकलने के लिए छटपटाने लगी। दैव-संयोग से मुझे उस कमरे से निकल भागने के लिए गुप्त मार्ग मिल गया। उसके सहारे मैं वहाँ से बाल-बाल बचकर निकल आई। बाहर आकर मैंने सोचा कि मेरे कोई साथी मेरी रक्षा नहीं कर सकते। जहां आश्रय लूंगी, वह भी छल-छद्म से मारा जायगा, इसलिये वरुणा में डूबने जा रही थी। इसके बाद का हाल आप जानते ही हैं।"

"भद्रे, मैं तुम्हारी रक्षा यथाशक्ति करूँगा। जब बुद्ध भगवान की कृपा से तुम इतनी कठिन तथा विरोधी परिस्थितियों से बच कर निकल आई हो, तब वही करुणा के सागर बुद्ध भगवान तुम्हारी सहायता करेंगे।"

चिन ने उनको मार्ग में रोक कर उनके चरन-स्पर्श कर प्रणाम किया, उसने गद्गद् कंठ से कहा—"भदन्त! आपके अतिरिक्त कोई भी मेरी रक्षा नहीं कर सकता। बुद्ध भगवान की प्रेरणा से ही आप ठीक समय पर मेरी रक्षा के लिए पहुंच गए। मैं कृतज्ञता प्रकाश करने के लिए शब्द नहीं ढूंढ़े पा रही हूँ।"

"बुद्ध भगवान के प्रति कृतज्ञ हो भद्रे! सारनाथ आ गया है। तुम इसी पुरुष वेष में रहो, भूटानी या सिकिम निवासी बनकर। मैं तुम्हें 'डोरजी" कहकर पुकारूँगा किन्तु तुम यह बताना कि तुम्हारा जन्म काशी में हुआ है और माता-पिता के तुम्हारे बाल्यकाल में मर जाने से पालन पोषण बौद्ध परि-

में हुआ है। तुम्हारी रक्षा के लिए मैं मिथ्या भाषण भी करूँगा। शिविर में पहुँचकर तुम्हें अन्य मर्दाने कपड़े दूंगा, और तुम अपना वेश ठीक से परिवर्तित कर लेना।"

चिन ने नस्तक होकर स्वीकार किया।

जिस समय मन्दिर के बाहरी प्रांगण में उन दोनों ने प्रवेश किया, उस ग्यारह बजने की सूचना, घंटे दे रहे थे।

२५

जब गायत्री श्यामसुन्दर मणिमाला और अविनाश बाबू के साथ बासवा के शिविर में पहुँची, उस समय वह आराधना में लीन थे। नागार्जुन उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने आनन्द को अपनी गोद में उठा लिया। वह उनसे परिचित था। सहर्ष उनकी गोद में चला गया, और विस्मित दृष्टि से तिब्बतियों को देखने लगा। अविनाश बाबू इस पचड़े में नहीं पड़ना चाहते थे, किन्तु गायत्री के हठ के सामने उन्हें झुकना पड़ा। विनोद ने पिछली रात अपने घर में बिताई थी, परन्तु वह उनके साथ न आकर अन्यत्र चिन की तलाश में चला गया था। बासवा की योगशक्ति से वह कुछ डरने भी लगा था। बार-बार सामने पड़ने से रहस्योद्घाटन का भय था। सारनाथ में सर्वत्र ढूढ़ कर उसने पता लगा लिया था कि चिन वहाँ नहीं गई है। वह आज चाउ तथा ली-सूंग से मिलकर चिन का पता लगाने का विचार कर रहा था, और इसी उद्देश्य से वह उधर चला गया था।

अपने माता-पिता का आगमन सुनकर यशोधर अथवा राहुल भी अपने शिक्षक मासपा के साथ वहां आ गया। उनको प्रणाम करने के पश्चात् वह गायत्री के बोला—"आप गुरुदेव से किसी अनिष्ट की आशंका न करें। वह बड़े दयालु और कोमल-हृदय हैं। आपने व्यर्थ ही उनकी इच्छा का तिरस्कार किया।'

मणिमाला हँसती हुई बोली—"अच्छा भदन्तजी, आपके आश्वासन से दीदी को अवश्य सन्तोष होगा। कहिए, आपकी शिक्षा कैसी चल रही है ?"

यशोधर कुछ शरमा गया। धीमी वाणी में उत्तर दिया—"तिब्बती भाषा समझ लेता हूं, किन्तु बोलने में अभी असमर्थ हूं।"

"वह भी धीरे-धीरे सीख जाओगे। तुम्हें क्या हम लोगों की याद नहीं आती ?"

"आती क्यों नहीं। मैं तो आप लोगों का उद्देश्य साधने के लिए इस पथ में आया हूं।"

इसी समय शिविर का द्वार खुला और बासबा शिष्यों तथा उपासकों के सामने आए। "ॐ मणे पद्मे हूं" की ध्वनि से सभा मंडप गूँज गया। सबसे पहले नागार्जुन आनन्द को लिए हुए उनके समक्ष गए। आनन्द को एक क्षण मुग्द दृष्टि से देख, तुरन्त साष्टांग प्रणाम करने लगे। उसके नेत्रों से अजस्र अश्रुधारा बह रही थी, और शरीर रोमाञ्चित था। उन्होंने अपने एक शिष्य को एक चौकी लाने का आदेश दिया। उसके आने पर उन्होंने उस पर अपना शील चौपर्त कर बिछाया और फिर आनन्द को उस पर आसीन करने के लिए नागार्जुन को आदेश दिया। बालक आनन्द कौतूहलमयी दृष्टि से सब देख रहा था, किन्तु न घबड़ाता था, और न रोता था। वह भी बार-बार बासबा को देख रहा था। गायत्री की आशंका अभी दूर नहीं हुई थी, किन्तु मणिमाला आदि की दृष्टियों में केवल कौतूहल था।

आनन्द के चौकी पर आसीन हो जाने के पश्चात्, बासबा ने नागार्जुन से पूछा—"हमारे गुरुदेव की मां होने का सौभाग्य किस महादेवी को प्राप्त हुआ है ?"

नागार्जुन ने गायत्री की ओर संकेत किया।

बासबा ने नागार्जुन से कहा—"इस महाभाग से कहो कि जोरबांग मन्दिर का अकिंचन पुजारी बासबा तुम्हारे चरणों पर नतमस्तक हो प्रणाम करता है।"

नागार्जुन ने अक्षरशः अनुवाद सुनाया। गायत्री संकुचित हो गई, मणि-माला का संकेत पाकर वह उठी, और भू-नत होकर प्रमाण करने जा रही

थी कि बासबा ने उसे रोक कर नागार्जुन से कहा—"मेरे गुरुदेव की जननी होने के कारण मेरी प्रणम्य तथा पूजनीय हैं। यह नमित नहीं हो सकती, इससे मेरे गुरुदेव का अपमान होगा।"

नागर्जुन से उनके कथन का उल्था सुनकर गायत्री ठहर गई। बासबा ने फिर कहा—"मातेश्वरी से पूछो, मेरे किस अपराध से उन्होंने गुरुदेव के दर्शनों से मुझे वंचित रखा ?"

गायत्री ने उत्तर दिया—"अपनी अज्ञानता और अनुचित मोह के कारण।"

बासबा—"क्या इस भय के कारण नहीं कि बासबा छल-छद्म से अपने गुरुदेव का हरण कर ले जायगा ?"

गायत्री पहले संकुचित हुई, फिर साहस के साथ उत्तर दिया—"हाँ, कुछ अंशों तक यह भी भय था।"

बासबा—"अब क्या वह भय नहीं रहा ?"

गायत्री—"नहीं। मुझे आश्वासन भी मिला, और मेरे भय का समाधान भी हुआ।"

बासबा—"यदि बासबा अपने गुरुदेव को माँगे, तो क्या वह स्वेच्छा से दे सकोगी ?"

गायत्री कोई उत्तर नहीं दे सकी।

उसके मौन रहने पर बासबा सहास्य बोला—"विचलित न हो मातेश्वरी! माता के अधिकार से तुमको कोई वंचित नहीं कर सकता। गुरुदेव को अभी मातृ-सेवा लेना है। उनको तुम पाल-पोष कर बड़ा करो। यद्यपि तिब्बत में यह रीति प्रचलित है कि किसी महात्मा का पुनर्जन्म प्रमाणित हो जाने पर उसका पालन-पोषण तथा शिक्षा, अध्ययन आदि वहीं होता है। जहाँ पूर्वजन्म में थे, किन्तु यह दूसरा देश है। यहाँ उस नियम का पालन नहीं हो सकता। नागार्जुन विद्वान और बौद्ध-धर्म के निष्णात आचार्य हैं। उनके परामर्श के अनुसार गुरुदेव का पालन-पोषण करना। समय पर अन्तर्ज्योति से उनका अन्तर्मानस स्वयमेव स्फुरित होगा, क्योंकि जन्म-जन्मान्तर की तपस्या निर्धारित मार्ग अर्थात् निर्बाण-प्राप्ति के मार्ग पर उन्हें अग्रसर करेगी।"

गायत्री ने प्रश्न किया—"क्या मैं उस समय तक जीवित रहूंगी।"

बासबा—"जन्म और मरण, शरीर-धारण के दो नाम हैं, जिनका सम्बन्ध केवल शरीर से है। वस्तुतः उनका कोई अस्तित्व नहीं है। कर्म करने के लिये जीव को साधन की आवश्यकता होती है, उसी से पंच-महाभूतों के सम्मिश्रण से शरीर की उत्पत्ति होती है, उसको ही जन्म कहा जाता है। जब उसकी शक्ति कर्म करते-करते क्षीण हो जाती है, अर्थात् जब शरीर कर्म करने योग्य नहीं रहता, तब जीव उसको त्याग देता है। त्यागने की इस क्रिया को मृत्यु के नाम से पुकारा जाता है। दिन और रात जिस प्रकार समय के सापेक्ष हैं, उसी प्रकार जन्म और मरण जीव के कर्मरत रहने के सापेक्ष है। इनसे जीव तभी मुक्त होता है, जब वह निर्वाण प्राप्त करता है। इसलिए मातेश्वरी, यदि तुम्हारे शरीर में कर्मरत रहने की शक्ति रहेगी, तो तुम अवश्य जीवित रहोगी।"

गायत्री—"कृपा कर आप अपनी योग-शक्ति से बतावें कि मैं अभी कितने वर्ष और जीवित रहूँगी।"

बासबा—"योग-शक्ति का उपयोग ऐसी बातों के लिए नहीं होता।"

गायत्री—"किन्तु आपने वर्जित और निषिद्ध बातों के लिए अपनी योग-शक्ति का उपयोग किया है।"

बासबा लज्जित हो गये। फिर बोले—"मातेश्वरी, तुम्हारे हठ से बाध्य होकर मुझे उसका उपयोग करना पड़ा, किन्तु उससे इतना सन्तोष था कि मेरे गुरुदेव के दर्शन हो जाँयगे। उससे जो मेरी शक्ति क्षीण हुई है, उसे कालान्तर में तपश्चर्या से पूर्ण करनी होगी।"

गायत्री—"जहाँ उसके लिये आप तपस्या करेंगे, वहाँ थोड़े परिश्रम से इस क्षति को भी पूर्ण कर सकेंगे।"

बासबा को निरुत्तर हो जाना पड़ा। उसने विचार करने के पश्चात् कहा—"प्रयत्न करूँगा महादेवि! गुरुदेव के मुख से ही आपको प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने की चेष्टा करूँगा।"

गायत्री ने भीत स्वर में पूछा—"क्या आनन्द पर आप कोई यौगिक

क्रिया करेंगे ?"

वासवा ने गम्भीर वाणी में कहा—"हाँ, महाभागे, गुरुदेव को योग-निद्रा में सुलाने से ही मालूम हो सकेगा।"

"तब आप अपनी योग-शक्ति का व्यवहार, न कीजिए। मुझे अपनी मृत्यु का समय जानने की अभिलाषा नहीं है।"

"महाभागे, उससे न तुम्हारा और न मेरे गुरुदेव का कोई अहित होगा। मुझे गुरुदेव का मन्तव्य जानने के लिए उन्हें योग निद्रा में सुलाना ही होगा, तभी उनकी अन्तर्चेतना-शक्ति जाग्रत होगी।"

"क्या योग-निद्रा में सुलाए बिना आप अपनी योग-शक्ति से नहीं जान सकते ?"

"नहीं, योग-निद्रा में सुलाए बिना उनका विचार कैसे ज्ञात हो सकता है ?"

"सम्भव है कि योग निद्रा से वह फिर न जाग सकें।"

"जब मैं उन्हें सुलाऊँगा, तब मैं उन्हें जगाऊँगा भी। यह निद्रा मेरी योग-शक्ति से उत्पन्न तथा हरण होगी। इसका दायित्व मेरे ऊपर है।"

"यह योग-निद्रा क्या है ?'

"मैं अपनी योग-शक्ति से अपने मन का सम्बन्ध गुरुदेव के अन्तर्मन अथवा चेतन-जीव से स्थापित करूँगा। अभी उनकी चेतन-शक्ति इस शरीर के साथ सम्बन्धित है; और इस शरीर में अवस्थित मस्तिष्क अपरिपक्व है। शरीर की परिपक्वता के साथ वह भी कालान्तर में पुष्ट होकर स्वाभाविक गति पर आवेगा। उसके पूर्व यदि हमें कुछ जानना है तो मस्तिष्क की इस अपरिपक्व अवस्था से उनके चेतन जीव का सम्बन्ध-विच्छेद करना होगा। योग-निद्रा के बल से वह सम्बन्ध-विच्छेद हो जायगा। मस्तिष्क की वे नाड़ियाँ सञ्चालित होंगी, जो अपरिपक्व होने की अवस्था में स्वाभाविक रूप से संचालित होती है। यह मस्तिष्क ब्रह्मण्ड का सूक्ष्म रूप है, और इसके अगणित कोषों में वह शक्ति सन्निहित है, जिनसे ब्रह्मण्ड बना है। मस्तिष्क के कोष योग-शक्ति से जाग्रत होते हैं, और जब वे जाग्रत हो जाते हैं तब ब्रह्मण्ड रहस्यमय नहीं रह जाता। किन्तु वह अवस्था प्राप्त होती है जन्म-जन्मान्तरों के कर्म तथा तपस्यारत रहने

से भगवान अवलोकितेश्वर अर्थात् बुद्ध-देव ने अपने शत-शत जन्मों के कर्म तथा तपस्या से ब्राह्मण का रहस्य जान पाया। उनके मस्तिष्क के कोष परिपक्व न होने पर कर्म-शक्ति के प्रभाव से स्वयमेव स्फुरित हुए, तब गृहस्थ-धर्म को त्याग उन्हें निर्वाणमार्ग की ओर अग्रसर होना पड़ा।"

"आप की बातें मेरी समझ के बाहर हैं। आपसे मेरी इतनी प्रार्थना है कि मेरे पुत्र का कोई अनिष्ट न हो। वर्षों की तपस्या के पश्चात् पुत्र का मुख देख सकी हूँ। यही मेरे जीवन का आधार है।"

"महाभागे, आप पूर्व जन्म की कोई तपस्वनी हैं, तभी अवतार लेने के लिए मेरे गुरुदेव ने आपको वरण किया है। आप निश्चिन्त रहें, उनका अहित तो मैं करने में बिल्कुल असमर्थ हूँ और उन्हीं के सम्बन्ध से आप का भी अहित नहीं कर सकता। क्या आप आज्ञा देती हैं कि मैं अपने गुरुदेव से आलाप करूँ।"

मणिमाला ने गायत्री से कहा—"दीदी तुम ऊहा-पोह में न फँसो। तुम उन्हें निर्भय होकर आज्ञा दो। बिना तुम्हारी अनुमति प्राप्त किए वह कुछ न करेंगे।"

"भाभी, यही डर लगता है कि कहीं मेरा आनन्द फिर न जागे, और यदि जागे भी तो इनका अनुगामी न हो जाय।"

"इसका भय तुम न करो। संसार में यह भ्रम फैला हुआ है कि योग शक्ति केवल कपोल कल्पना है, इसका निवारण होने दो। पाश्चात्य जगत आत्मा की शक्ति पर विश्वास नहीं करता, उसकी शक्ति का प्रत्यक्ष दर्शन होने वाला है। मुझे बासबा की शक्ति पर विश्वास है। वह कभी अपने गुरुदेव का अहित नहीं कर सकते।"

गायत्री को नागार्जुन के माध्यम से कहना पड़ा—"मेरी अनुमति है।" कहते-कहते उसके नेत्र अश्रुपूरित हो गए।

बासबा उनकी अनुमति से प्रसन्न हुए, और आसन पर बैठ कर ऊँ मणे पद्मेहु का जप करने लगे।

सब के नेत्र उन पर टिक गए।

२६

बासबा जाप करते-करते समाधिस्थ हो गए। आनन्द अभी तक निश्चल बैठा था। उसके समीप गायत्री बैठी थी। दूसरी ओर नागार्जुन सहारा लिए बैठे थे। उससे कुछ हटकर श्यामसुन्दर मणिमाला और अविनाश बाबू बैठे बड़े ध्यान से उसे तथा बासबा को देख रहे थे। यशोधर अथवा राहुल भी बड़े कौतूहल से वह दृश्य देख रहा था। बहुत दूर हटकर बासबा की शिष्य-मण्डली बैठी थी; उन्हीं के मध्य चिन भी पुरुष वेष में बैठी थी। नागार्जुन ने उसे वेष बदलने के लिए तिब्बती वस्त्र दिए थे। वह भी रंग-बिरंगे पत्थरों की माला लिए फेर रही थी। उसके सामने कोरलो अर्थात प्रार्थना चक्र रखा हुआ था। अनेक रंगों की भस्मों के लेप से उसकी मुखाकृति तथा शरीर का वर्ण धूमित्र तथा भूरा हो गया था। कृत्रिम साधनों से उसने दो काले मसे अपने कपोलों के ऊपरी भाग में, आँखों के नीचे जमा दिए गए थे, जो असली मालूम होते थे। उसने रात्रि में ही अपना शिर मुड़वा लिया था, जिससे उसमें उतना परिवर्तन आ गया था कि यदि उसके साथी चाउ-चिन, ली-सूँग अथवा हो–चिन देखते तो भी पहिचान न पाते।

बासबा के समाधिस्थ होने के कुछ क्षण पश्चात् आनन्द के नेत्र बन्द होने लगे। बीच में एक दो बार उसने थोड़ी आँखें खोली, किन्तु वे कुछ भी देखने में असमर्थ थीं। धीरे धीरे उसके हाथ-पैर शिथिल होने लगे, जैसे निद्रा-मग्न बालक के हो जाते हैं। आनन की प्रभा पहले से अधिक देदीप्यमान होने लगी। उसके पश्चात् समग्र शरीर प्रभा-मण्डल हो गया। उसके अवयवों से ऐसी ज्योति अंशुएँ निकलने लगीं, जैसे अपारदर्शी शीशे के भीतर जलती हुई दीपशिखा से निकलती हैं। उसके श्वास की गति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। श्वास-नि:श्वास, उसी प्रकार चल रहा था, जैसे सुप्त व्यक्ति का चलता है। जब वह

गिरने लगा, तब गायत्री ने उसे सहारा देकर अपनी गोद में लिटा लिया। उसके शरीर के तापक्रम में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। एक परिवर्तन अवश्य लक्ष्य किया गया। उसकी कनपटी के ऊपर, मस्तक के दोनों सिरों की नाड़ियाँ कुछ उभर आई थीं। जिनको देखने से ऐसा प्रतीत होता था कि हृदय बहुत अधिक मात्रा में उनमें रक्त संचालित करने लगा है। उनका स्फुरण भी दृष्टिगोचर होने लगा। ग.यत्री का बाँया हाथ उसके शिर के नीचे तकिए की भाँति सहारा लगाए हुए था। उसे प्रतीत हुआ कि शिर धीरे-धीरे गरम हो रहा। उसने दाहिने हाथ से उसका कपाल स्पर्श किया। वह सत्य ही इस समय बड़ा उष्ण था। शरीर के ताप से उसका ताप कहीं अधिक था। वह कुछ चिन्तित होने लगी। उसने मणिमाला को उसका शिर–स्पर्श करने का संकेत किया। मणिमाला ने भी देखा कि आनन्द का कपाल सामान्य से अधिक उष्ण है। हाथ और हथेली देख कर वह उसकी नाड़ी की गति देखने लगी। नाड़ी की गति में कोई विशेषता नहीं थी, वह स्वस्थ बालक की नाड़ी की भाँति चल रही थी। उसने शंका-निवारण करने का संकेत किया। श्याम-सुन्दर का पितृ-हृदय उनको चिन्ताकुल देखकर व्यथित होने लगा। उन्होंने भी आनन्द के हाथ-पैर स्पर्श किए। उन्हें संदेह हुआ था कि वे शीतल हो रहे हैं, परन्तु जब वे गरम मिले, तब उन्हें संतोष हुआ। गायत्री ने उन्हें उसका कपाल छूने का संकेत किया। इस समय तक कपाल और अधिक उष्ण हो चुका था। उससे ऐसी गरमी निकल रही थी, जैसे १०५° डिग्री वाले ज्वर पीड़ित व्यक्ति की देह से निकलती है। उससे वह कुछ चिन्तित हुए। अभी तक अविनाश बाबू बिलकुल मौन दर्शी थे। वह बासबा को अधिक देख रहे थे, और आनन्द की ओर उनका ध्यान नहीं था। श्याम सुन्दर ने उनका ध्यान आकर्षित कर आनन्द का मस्तक निरीक्षण करने का संकेत किया। ध्यान हटा देने से वह कुछ क्षुब्ध हुए और चुपचाप बैठने का संकेत कर पुनः बासबा की ओर देखने लगे। केवल नागार्जुन उस सभा में अचल अडिग विश्वास धारण किए केवल आनन्द पर अपने नेत्र जमाए बैठे थे।

इसी समय ॐ मणे पद्मेहु कहते हुए बासबा ने समाधि तोड़ी, और

आनन्द की ओर देखकर पुनः साष्टांग प्रणाम किया। उनके नेत्र इस समय पलाश पुष्प की भाँति लाल थे, शरीर तथा मस्तक पसीने से तर तथा रोम-रोम पुलकित हो रहा था। उन्होंने तिब्बती भाषा में कहा—"गुरुदेव मैं बासबा जोरवांग मन्दिर में आपका नियुक्त किया हुआ पुजारी आपसे प्रार्थना करता हूँ, कि आप अपने वास्तविक रूप से जाग्रत हों।"

सबने आश्चर्य के साथ देखा कि आनन्द अपनी माता की गोद से उठकर पद्मासन लगा कर उस चौकी पर बैठ गया, जिस पर बासबा का उत्तरीय बिछा हुआ था।

बासबा ने पुनः साष्टांग प्रणाम किया। फिर हाथ जोड़कर—बोले "गुरुदेव आपको कोई कष्ठ तो नहीं हो रहा है ?"

आनन्द ने तिब्बती भाषा में उत्तर दिया–"बासबा, तुमने मेरा अह्वान कर मेरी निद्रा में व्याघात डालकर अच्छा नहीं किया।"

"गुरुदेव, आपने जोरवांग मन्दिर में शरीर त्याग करते समय आदेश दिया था कि अवसर आने पर मैं आपको सावधान करूँ, और इसी निमित्त आपने अपना उस जन्म का शरीर सुरक्षित कराया था, जो आज दिन भी वहाँ सुरक्षित है।"

"हाँ, मुझे स्मरण है, किन्तु अभी उसका समय नहीं आया था। ब्राह्माण्ड की सब वस्तुयें काल चक्र की गति से बँधी हुई है। अनुकूल ऋतु आने पर ही फूल-फल में परिणत होकर पकता है। अनुकूल समय पर मेरा कर्म स्वयमेव मुझे निर्धारित मार्ग पर प्रेरित करता।"

"किन्तु जब सहसा मुझे विदित हुआ कि आपने काशी में महाभागे गायत्री की कुक्षि से जन्म ले लिया है और आपने मुग्धावस्था में उस उपदेश को दोहराया, जिसे आपने अपना शरीर-त्याग करने के पहले मुझे दिया था, उससे मैंने अनुमान किया कि काशी में मेरी उपस्थिति आपको ज्ञात हो गई, और आप मुझे दर्शन देकर कृतार्थ करना चाहते हैं, इसलिए आपको दर्शनों तथा आपका उपदेश पुनः सुनने के लिए लालायित हो उठा।"

"उस दिन मेरा जीव कुछ उद्विग्न होकर मस्तिष्क के उस कोष में प्रविष्ट

हो गया था, जहां पूर्वजन्म का इतिहास सुरक्षित रहता है, इसलिए उसने गत घटनाओं से अपना सम्बन्ध जोड़ दिया, अतएव इस जन्म को कुछ काल के लिए भूल गया तथा उसने वहाँ से सूत्र पकड़ा, यहाँ से विच्छिन्न हुआ था। तुम्हारे लिए यह कोई आश्चर्य का विषय नहीं होना चाहिए, बासबा।"

"गुरुदेव, आपकी कृपा से वह ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ था, किन्तु मैंने अनुमान गलत लगाया, इसका मुझे खेद है, और मैं क्षमा-याचना करता हूँ। कहते हुये बासबा ने पुनः साष्टांग प्रणाम किया।"

"तुम मेरे पट्ट शिष्य हो, तुम्हारे लिये कुछ अदेय नहीं है। वह भी एक प्रकार से अच्छा हुआ कि तुमको मैंने देख लिया। जोरवांग में सब ठीक है ?"

"हाँ, गुरुदेव ! आपकी चलाई परिपाटी से सब कार्य, भजन, पूजन, पठन, पाठन उसी भाँति चल रहे हैं, जैसे आपके संचालन में चलते थे। वहाँ पर आपके पुनरागमन की कब तक प्रतीक्षा की जाय ?"

आनन्द ने तत्क्षण उनको उत्तर नहीं दिया। उसकी ऐसी मुद्रा हो गई, मानों वह कुछ सोच रहा हो।

थोड़ी देर पश्चात् वह बोला ,'बासबा, आगामी भविष्य मुझे बड़ा भया-वह देख पड़ रहा है।"

बासबा ने भयविह्वल कंठ से पूछा–"क्या अनिष्ट देख रहे हैं गुरुदेव ?"

आनन्द गंभीर वाणी में कहने लगा––"मैं देख रहा हूं रक्त की बहती हुई नदियाँ, जिनमें अगणित नर मुण्ड उतरा रहे हैं। मानव-लोथों के सर्वत्र ढेर लगे हुए हैं। गृद्ध, कुत्ते, श्रृगाल, और कौवे चारों ओर मँडरा रहे हैं। नर-संहार का व्यापार भीषण गति से चल रहा है। बाल-वृद्ध-वनितायें सभी संहार की चपेट में हैं। शताब्दियों पुराने मठ अग्नि की लपटों में फँसे जल रहे हैं। परम पवित्र बुद्धस्तान का चप्पा-चप्पा नष्ट हो रहा है। लामाओं का विनाश हो रहा है। प्राचीन धर्म का कोई चिह्न नहीं दिखाई पड़ता। बासबा, यह तो अत्यन्त भयाकुल दृश्य है।"

बासबा ही नहीं उनकी शिष्य-मंडली और नागार्जुन आदि सभी पीपल के पत्ते की भाँति काँपने लगे। किसी के मुख से कोई शब्द नहीं निकला।

आनन्द फिर कहने लगा––"तिब्बत, भगवान बुद्ध के उपदेशों की भूमि होने के कारण उसे बुद्धस्तान कहना अनुचित न होगा, क्योंकि इस देर के अतिरिक्त विश्व में और कहीं इतने सम्यक् रूप नें उनके उपदेशों को सक्रिय रूप नहीं दिया गया है। विनाश के इस तांडव को देखते हुए यह विदित होता है कि बुद्धस्तान की पवित्र भूमि उत्तर के आततायियों से रौंदी जायगी, उनकी तलवारों से उसके निवासी मारे जायेंगे, उनके अग्नि-विस्फोटकों से मठ और मन्दिर जलाये जायेंगे। देश की राजप्रणाली में उथल-पुथल होगा। आततायियों के प्रहारों से बचने के लिये राज्य के सभी बड़े-छोटे अधिकारियों को बुद्धस्तान छोड़कर भगवान बुद्ध की जन्मभूमि में शरण लेना पड़ेगा।"

वासवा व्याकुल कंठ से बीच ही में बोल उठे––"और गुरुदेव, जोरवांग मठ का क्या होगा ?"

आनन्द से दुखित स्वर में कहा––"बासबा जोरवांग मठ का भी निपात होगा। जो मेरे पूर्वजन्म में क्रीड़ा-भूमि थी, और इस समय तुम्हारी पूजा-तपस्या की भूमि है, आततायी आक्रमणों से पददलित होगी। बुद्धस्तान के सभी मठभूलुंठित होंगे, उनका कोई अस्तित्व शेष नहीं बचेगा। बासबा, संभव है तुमको भी मेरी वर्तमान जननी की शरण में आना पड़े।"

बासबा, नागार्जुन और उनका शिष्यवर्ग गायत्री को देखने लगा। वह सबको अपनी ओर देखने से संकुचित हो गई, हालाँकि उसने व मणिमाला आदि ने आनन्द तथा बासबा के कथोपकथन को समझा नहीं था। चूँकि वार्तालाप तिब्बत की प्राचीन भाषा में हो रहा था, इसलिए यशोधर भी पूर्णरूप से समझ नहीं सका था।

बासबा ने अश्रु-पूरित नेत्रों से पूछा––"क्या तिब्बत का यही भविष्य है गुरुदेव ?"

"हाँ बासबा। भविष्य का यही विधान प्रतीत होता है। अब तिब्बत में नई परम्पराएँ जन्म लेंगी। नवीन विधान बनेगा। प्राचीन विधान बहुत विकृत हो गया है। उसमें परिवर्तन की आवश्यकता आ गई है। समय की गति सदा परिवर्तनशील है।"

"गुरुदेव, आप ?"

आनन्द बोला–"अब मेरा जोरवांग जाना नहीं हो सकेगा। भगवान बुद्धदेव की जन्मभूमि को छोड़कर जाना अब मेरे लिए असम्भव है। मैं अब कष्ट-बोध कर रहा हूँ। मैं पुनः बाल रूप में जा रहा हूँ। जो कुछ तुम्हें बताया है, उससे लाभ उठाने का प्रयत्न करना। तुम मुझे अति प्रिय हो, इसी से भविष्य का उद्घाटन किया है। हाँ, एक बात याद रखना। तिब्बत छोड़ने के समय मेरा पुरातन शरीर नष्ट कर देना ताकि मेरा जीव पुनः उस दिशा में न भटके।"

यह कहकर आनन्द तन्द्रिल होकर गायत्री की गोद में पूर्ववत लेट गया। बासबा पुनः समाधिस्थ हुए, और अपने योगबल से उनके जीव को मस्तिष्क के उस कोष से मुक्ति दी, जहाँ उसे अवस्थित करवाया था। थोड़ी देर पश्चात् आनन्द स्वाभाविक रूप में आ गया। गायत्री ने उसको हृदय से चिपटा लिया।

बासबा ने समाधि भंग होने पर कहा—"महाभागे, अपने हठ का परिणाम मुझे अच्छा नहीं मिला। तिब्बत पर बड़ी भयानक विपत्ति आने की सूचना गुरुदेव ने दी है, जो कभी मिथ्या नहीं हो सकती। उन्होंने यह भी बताया है कि मुझे भी आपकी शरण में आना पड़ेगा। जब गुरुदेव आपकी शरण में आए, तब मेरा आना कोई आश्चर्य का विषय नहीं होगा। आप गुरुदेव को लेकर जाइए। मैं भी भविष्य देखने का प्रयत्न करूँगा।"

यह कहकर वह आराधना में लीन हो गये। मणिमाला आदि गुरु-शिष्य संवादों का खुलासा जानने के लिए व्याकुल थे, इसलिए बासबा की अनुमति पाकर नागार्जुन के साथ उन्होंने आश्रम से प्रस्थान किया।

२७

भुतहे मकान का वह कमरा जिसमें चिन कैद थी तीन ओर से गिरा पड़ा

था। उसे रातो-रात कांग के अनुचरों ने उसकी आज्ञा से गिरा दिया था। जब रात्रि के प्रथम प्रहर के अन्त में काँग नशे में बदमस्त, वासना के हवाई किले बनाता, कमरे का ताला खोलकर भीतर आया, तब अँधेरे में उसे कुछ दिखाई नहीं पड़ा, किन्तु उसने अनुमान किया कि चिन अन्धकार से त्रस्त किसी कुरसी पर दुबकी बैठी होगी। उसने प्रहृष्ट मन से कहा—"कमरे में बत्ती तो थी, जला क्यों नहीं लिया।" यह कहते हुये उसने विद्युत-द्वीप जलाया। उसने जब चिन का कोई चिह्न तक उसमें न पाया, तब वह विस्मय-विमुग्ध होकर क्षण भर के लिए स्तब्ध रह गया। उसका नशा हिरन हो गया, और हताश होकर कुरसी पर बैठ गया। उसने क्षीण स्वर में कहा—'चाबी मेरे पास थी, फिर चिन को किसने और कैसे मुक्ति दी।" इसी समय उसका सेवक अनेक प्रकार के व्यञ्जनों से सज्जित ट्रे लिए हुए प्रविष्ट हुआ। जब बिना किसी ओर दृष्टिपात किए वह ट्रे मेज पर रख तथा मध्याह्न में लाई हुई को लेकर जाने लगा, तब कांग ने उसे ठहरने का आदेश दिया।

कांग का वह अत्यन्त विश्वासी अनुचर था। उससे उसका कोई कार्य गुप्त नहीं था। चिन के इस कमरे में कैद होने का भेद केवल उसी को मालूम था। नारी भगवान की वह रचना है जो सगे सम्बन्धियों, अभिन्न मित्रों, और विश्वस्त सेवकों के प्रति भी अविश्वास की भावना को जन्म देती है, उनमें कलह उत्पन्न कराती है, और मरात्मक युद्ध के लिए सन्नद्ध करती है। कांग के मन में अपने इस सेवक के प्रति क्षणभर के लिए अविश्वास उत्पन्न हो गया। उसने उससे पूछा—"चिन को क्या तुमने मुक्ति दे दी ?" उसने अनुमान किया कि शायद उसके सुनने में भूल हुई है। वह अवाक् होकर उसकी ओर देखने लगा। कांग ने अनुमान किया कि वह ढोंग कर रहा है। उसके तप्त मस्तिष्क में यही गलत धारणा उत्पन्न हुई। उसने क्रुद्ध स्वर में कहा—'आँखें खोल कर देखो, चिन इस कमरे में नहीं है। दोपहर के भोजन के समय तुमने जब चाऊ आदि के आने की सूचना दी थी, तब वह मेरे साथ भोजन कर ही रही थी। उसके बाद मैं उसे भोजन करती छोड़, बाहर से ताला बन्द कर, अपने साथ चाबी लिए चला गया। मैं जब आकर ताला खोलता हूँ, तब उसको गायब पाता हूँ।

इसमें क्या रहस्य है, उसे मैंने निकाला या तुमने ? हम दोनों के अतिरिक्त यह भेद कोई नहीं जानता कि चिन यहाँ आई थी। उसके साथी चाउ और ली-सूँग आदि भी उसके यकायक अन्तर्धान हो जाने से हैरान हैं। मान लो, यदि उनमें से कोई उसको छुड़ाने के लिए आता भी तो वह तुम्हारी इच्छा या सहायता बिना नहीं जाता। इस लिए परोक्ष या अपरोक्ष रूप से उसके भागने-भगाने में तुम अवश्य सहायक हुए हो। बताओ, उसे कहाँ छिपाया ?'

वह कांग से पूर्णतः परिचित था। उसका हृदय बड़े वेग से धड़कने लगा। उसने विह्वल कंठ से कहा—'मालिक, मुझे इस विषय में कुछ नहीं मालूम ? मैंने आपके जाने के पश्चात्. इस भाग में आने का द्वार बन्द कर ताला लगा दिया था, जिसकी चाबी मेरे पास बराबर बनी रही। मैंने उसे आपके आने पर खोला। चिन इधर से हरगिज बाहर नहीं गई। सम्भव है कि इस कमरे से बाहर निकालने का कोई गुप्त मार्ग हो ?"

उसका स्वर विश्वासोत्पादक था। कांग के मस्तिष्क में भी यह विचार समा गया। उसने मेज पर हथेली मारते हुए कहा—"शायद, तुम्हारा अनुमान सत्य है। इस कमरे से बाहर निकलने का अवश्य कोई गुप्त मार्ग है, जिसे चिन खोजते-खोजते पा गई है। आओ, उस मार्ग को ढूंढ़ निकालें।"

वे दोनों उस गुप्त मार्ग को ढूँढ़ने लगे। चारों ओर की दीवाल देखी, उन्हें ठोस पाया। फर्श पर वजनी लौह दंड से आघात किए, किन्तु पोला होने का चिह्न नहीं मिला। तीन अलमारियों के तख्ते उखाड़ डाले गये किन्तु पीछे की दीवाल ठोस पाई गई। चौथी अलमारी वह बार-बार छोड़ देते थे। जब वे खोजते-खोजते हार गये, तब काँग ने कमरे को खोद डालने का निश्चय किया। कई अनुचरों की सहायता से उसकी छत गिराई गई ,दीवाले तोड़ी गईं, किंतु कोई मार्ग नहीं दिखाई दिया। अन्त में फर्श खोदने की बारी आई। खोदाई का काम कमरे के मध्य भाग से आरम्भ किया गया। वस्तुतः गुप्त मार्ग दीवाल के नीचे बनाया गया था, और जो पत्थर लगाए गये थे, वह नींव के पत्थर मालूम पड़ते थे। सब फर्श खोद डालने पर भी वह गुप्त मार्ग नहीं मिला। जब प्रातःकाल की सफेदी से आकाश मंडित हो गया, तब खोदाई बन्द कर दी

गई। कांग भी उस रात नहीं सोया, उसके विश्वस्त अनुचर भी नहीं सोए। सभी शिथिल हो रहे थे। कांग ने दूसरे कमरे में अड्डा जमाया। तीन ओर की दीवालें गिरादी गई थीं, किन्तु चौथी दीवाल उतनी अखण्ड थी, जितने में अलमारी के कल-पुर्जे लगे थे। यद्यपि कांग की बुद्धि कुछ काम नहीं कर रही थी, तथापि वह निराश नहीं हुआ।

दोपहर के लगभग उनकी नींद टूटी। उनके अंग उस समय भी दुख रहे थे। यद्यपि वे सब मेहनत करने के अभ्यस्त थे, तथापि इतना परिश्रम एक साथ रातभर करने का कोई मौका नहीं आया था। अपराह्न में जब वे सब एकत्रित हुये, तब कांग ने कहा—"सब कमरा खोद डाला, लेकिन गुप्त मार्ग नहीं मिला। यह मैं मान नहीं सकता कि गुप्त मार्ग नहीं है। चिन हवा होकर बाहर नहीं निकल सकती। अभी एक तरफ की दीवाल, अति मोटी होने के कारण छोड़ दी गई थी। अब उसे भी खोदना चाहिए।"

उसका एक अनुचर बोला—"एक बड़े आश्चर्य की बात यह हुई कि मैंने दोपहर को दो छुरे अपने कमरे की अलमारी के नीचे वाले तख्ते पर रख दिये थे। आज देखा कि वे गायब हैं। मैंने अपने साथियों से पूछा, किन्तु कोई उनको लेने वाला स्वीकार नहीं करता।"

कांग को वह प्रसंग पसन्द न आया। उसने विरक्तिपूर्ण स्वर में कहा—"तू बहुत शराब पीता है, और पीकर होश—हवास खो देता हैं। उन्हें कहीं दूसरी जगह रख कर भूल गया होगा। अलमारी तेरे छुरे क्या खा जायगी ?"

वह उसकी डाँट से डरा नहीं। हाथ जोड़कर बोला—"मेरा अनुमान है कि उस अलमारी के निचले तख्ते से गुप्त मार्ग का कोई सम्बन्ध अवश्य है। चिन ने वहाँ पहुँच कर उन्हें आत्मरक्षा के लिए चुरा लिया है।"

कांग के हास्य से कमरा गूंज गया। हँसी थमने पर बोला—"अरे वेवकूफ चिन गायब हुई मेरे कमरे से, और वह कैसे तेरे कमरे की अलमारी तक पहुँच गई। तू क्या अब भी नशे में है ?"

कुछ हैरानी के साथ उसने कहा—"मालिक, मैं नशे में नहीं हूँ। आपसे प्रार्थना है कि आप चलकर उस अलमारी का निरीक्षण करें। अवश्य कोई भेद

प्रकट होगा।"

दूसरे नौकर ने उसके समर्थन में कहा—"मालिक देखने में क्या हर्ज है।"

काँग ने उठते हुए कहा—"अच्छा चलो, किन्तु यह निरा बुद्धू है। सिर्फ छुरा मारने की बुद्धि है, अब डींग मारना भी सीख रहा है। देख, अगर तेरे छुरे और कहीं बरामद हुए तो समझ लेना हन्टरों से तेरी पीठ उधेड़ी जाएगी।"

उसने स्वीकार किया। काँग अपने दल-बल के साथ उस अनुचर के कमरे में गया। जाकर पहले कमरे की तलाशी ली। उन्हें छुरे कहीं न मिले। तब वे उसकी बताई हुई अलमारी की परीक्षा करने लगे। जिस तख्ते पर उसने छुरे रखना बताया था, उसको उखाड़ा, जब न उखड़ा तब उसे तोड़ने का प्रयत्न होने लगा। वह साखू का तख्ता दो इन्च से अधिक मोटा था। कुल्हाड़ी का फल केवल चार-पाँच सूत घुसता था। जब चारो ओर से आघात होने लगे, तब बीच से फट गया। सन्धि पाकर सरसराती हुई हवा ऊपर को दौड़ी। उस सेवक ने हर्षोत्फुल्ल कण्ठ से कहा—"नीचे पोल है। सुनिये हवा की सरसराहट।"

सबने बारी-बारी से वायु का स्पर्श अनुभव किया। काँग ने भी उनका समर्थन किया। बड़े उत्साह के साथ फिर कुल्हाड़ियाँ चलने लगीं। तख्ते को फटने में देर नहीं लगी। उसका अगला हिस्सा उखाड़ने पर सुरंग का द्वार खुल गया, किन्तु पिछला भाग जब किसी भाँति न उखड़ा तब उसको भी टुकड़े-टुकड़े काट कर अलग किया गया। नीचे उतरने के लिए सीढ़ियाँ दिखाई दीं। जिस सेवक का कमरा था, वह हर्षविह्वल हो गया। काँग ने खिसियाये कण्ठ से कहा—"बेशक तुम्हारा अनुमान सत्य निकला। मैं तुम्हें पुरस्कृत करूँगा।"

टार्च के प्रकाश में सबसे पहले वह नीचे उतरा, और उसके पीछे-पीछे सब उतरे। कांग सबसे पीछे था। उन्होंने देखा कि एक ओर सुरंग बन्द हो गई है, और उसकी विपरीत दिशा में वह चली गई है। सब लोग उधर रवाना हुए। उनको भी दो, तीन, चार के अंक दिखाई दिये जिससे उन्होंने वही अनुमान किया, जो चिन ने किया था। कांग के कमरे के नीचे पहुँच कर उन्होंने देखा कि यत्र-तत्र से प्रकाशित रेखायें आ रही हैं।

कांग ने प्रसन्न कण्ठ से कहा—"बस इसी मार्ग से चिन भाग गई है। अब पता लगाओ कि इस सुरंग का द्वार कैसे खुलता है।

सब अपनी-अपनी बुद्धि लगाने लगे। उनकी दृष्टि दीवाल में लगे हुए पहिये पर गई। उन्हें उलट-पलट कर वे घुमाने लगे। अन्त में वे घूम गए, और मुहाना खुल गया। उससे निकल कर वे कांग के ध्वस्त कमरे में आये।

कांग ने हाथ मलते हुए कहा—"तीन तरफ की अलमारियाँ उखाड़ी गयी, दीवालें तोड़ी गयीं, किंतु चौथी दिशा की न दीवाल ही पूरी गिराई गई, और न आलमारी ही तोड़ी गई। व्यर्थ में इतना परिश्रम करना पड़ा।"

एक अनुचर ने उत्तर दिया—"यह दीवाल भी तो डेढ़ दो गज से कम चौड़ी नहीं है।"

कांग ने सोचते हुए कहा—"दर असल, सुरंग इसी के नीचे बनाई गई है। इसी से कहीं पोलापन प्रकट नहीं होता था। इधर का भेद तो खुल गया, अब इसके बाहर निकलने का रास्ता ढूँढ़ना चाहिए।"

वे सब फिर सुरंग में घुसे, और अन्त तक चले गए। वहाँ न उन्होंने कोई पहिया देखा, और न कोई ऐसा चिह्न पाया, जिससे अनुमान हो सके कि वहाँ कोई गुप्त मार्ग है।

जब वे सब प्रकार से निराश हो गये, तब उस अनुचर ने जिसके छुरे गायब हुए थे कहा—"मेरा अनुमान है कि चिन मेरे कमरे से बाहर निकल कर गई है। हम लोग वह कमरा खोदने में जुटे थे, और इधर सब खुला पड़ा था। वह इस मार्ग से निकल कर सुनसान पा मेरे छुरे लिए हुए चली गई।"

कांग को भी सहमत होना पड़ा।

२८

दूसरे दिन प्रातःकाल कांग ने वृहत्तर चीन संघ के सदस्य चाउ, हो-चिन

ली-सूंग को बुला भेजा। उनके आने पर उसने पूछा—"चिन का पता चला ?"

चाउ ने दुखित कन्ठ से कहा—'नहीं, परसों प्रातःकाल वह केन्द्र में आई थी। हो-चिन बाहर गया था, सिर में दर्द होने से मैं लेटा था। ली चाय बना रही थी। उसने ली से कहा कि वह आपके पास विनोद के सम्बन्ध में कुछ परामर्श करने जा रही है। ली ने चाय पीने का अनुरोध भी किया, किन्तु देर होने का बहाना कर वह तुरन्त चली गई। दोपहर को एक आवश्यक काम से उसने मिलने के लिए उस मकान में गया, जहाँ वह चार-पाँच दिनों से बिनोद के पास रहने लगी थी। विनोद घर पर नहीं मिला, किन्तु अपने साथियों से, जो उनके नौकर बनकर रहते हैं, मालूम हुआ कि वह जब से गई, तब से लौट कर नहीं आई। विनोद भी उसकी अनुपस्थिति से क्रुद्ध होकर उसे ढूंढ़ने चला गया था। हम लोग फिर यहाँ आए। आपसे मालूम हुआ कि वह यहाँ भी नहीं आई थी। न-मालूम वह यकायक कहाँ चली गई? यह सोच कर कि शायद वह किसी दुर्घटना का शिकार हो गई हो, यहाँ के अस्पताल देख डाले, पुलिस थाने में जाकर भी दरयाफ्त किया, मगर उसका कोई सुराग नहीं मिलता।" वह हताश होकर कांग की ओर देखने लगा।

कांग धीरे-धीरे कहने लगा—"यह एक बड़ा रहस्यपूर्ण प्रसंग उपस्थित हो गया है। मेरा अनुमान है कि वह विनोद के प्रेम में फँस गई है और उसी की अभिसन्धि से अदृश्य हो गयी है।"

चाउ ने कहा—"इस पर सहसा विश्वास नहीं जमता।"

ली ने दृढ़ता से कहा—"विनोद से वह प्रेम नहीं करती, यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ। वह उसकी किसी अभिसन्धि में फँस भी नहीं सकती। विनोद उसे स्वयं ढूँढ़ता फिरता है। परसों से वह न-मालूम कितने चक्कर काट चुका है। कल चार-पाँच बार आया, और आज भी उसने दो चक्कर लगाए। उसकी शक्ल साफ पुकार रही थी कि वह चिन के अदृश्य हो जाने से कितना चिन्तित और दुखी है। विनोद की इसमें कोई अभिसन्धि नहीं है।

"तब क्या उसे पृथ्वी खा गई, या हवा में वह मिल गई ?" कांग ने बना-

बटी क्रोध के साथ कहा। ली बोली नहीं। चाउ और हो-चिन भी सोचने लगे।

कांग फिर बोला—"चाहे जो कुछ हुआ हो, इतना सत्य है कि चिन का पता नहीं है। या तो वह स्वयं भाग गई है, या किसी कुचक्र में फँसा कर भगा दी गई है। किन्तु संघ के नियमों के अनुसार वह भगोड़ी है, इसलिए संघ की अपराधिनी है। उसके साथ वही बरताव भविष्य में बरता जायगा, जो भगोड़ों के लिए नियत है, अर्थात् जहाँ जिस समय वह मिले उसे तुरन्त मृत्यु दण्ड दिया जाय। न उससे कोई प्रश्न पूछे जांय, और न कोई उसका उत्तर सुना जाय।"

उसके सब श्रोता कांप उठे।

ली ने साहस किया, "अपराध क्षमा हो, यदि वह काशी के गुण्डों के किसी कुचक्र में फँस गई हो, और वह किसी प्रकार उनके चंगुल से छूट कर आवे तब भी क्या उसे मृत्यु दण्ड दिया जाय ?"

"काशी में रहते लगभग उसको तीन वर्ष हो गये, वह अभी तक यहाँ के गुण्डों के कुचक्रों में नहीं फँसी, क्या परसों ही उसका कुचक्र सफल हुआ ?"

"दुर्घटना कभी भी हो सकती है, उसके लिए कोई समय नियत नहीं होता।"

कांग ने घुड़कते हुये कहा—"इस प्रश्न पर मैं कोई वाद-विवाद नहीं करता। जो मैंने आज्ञा दी है, उसका यथावत पालन किया जाय। मैंने जो कुछ निर्णय किया है, वह प्रश्न के सभी पहलुओं पर विचार करके किया है।"

अब किसी को प्रतिवाद करने का साहस नहीं हुआ। कमरे में सन्नाटा छा गया।

थोड़ी देर पश्चात् वह फिर कहने लगा—"मैं कल प्रातः काल दिल्ली के लिए प्रस्थान करूँगा। वहाँ से वापस चुंगकिंग चला जाऊँगा।"

कोई कुछ न बोला।

थोड़ी देर मौन रहने के बाद वह गंभीर स्वर में बोला—"यह मैंने लक्ष्य किया है कि संघ के काम में बहुत शिथिलता आ गई है। आप लोग उतनी

सरगर्मी, उत्साह तथा मुस्तैदी से काम नहीं कर रहे हैं, जितनी संघ आपसे आशा करता है। चिन के अदृश्य हो जाने से अनुसूचित काम में बाधा पड़ गई है। थोड़े दिनों में यह स्वयं प्रकट हो जायगा कि विनोद चिन के भगाने के कुचक्र में सम्मिलित है या नहीं। मेरा भी अनुमान है कि वह शायद उसकी प्रेरणा से नहीं भागी है। चिन स्वयं भाग गई है। सम्भव है कि वह किसी महत्वाकांक्षा से प्रेरित हो कर संघ के साथ विश्वासघात करने के उद्देश्य से भागी हो। उसकी जैसी महत्वाकांक्षिणी के लिए कुछ भी असंभव नहीं है। उसे अपने रूप का अभिमान है, अपनी कुशलता का गर्व है। वह संघ के उद्देश्य से परिचित है। उसके भेद बेंचकर वह अथाह धनराशि प्राप्त कर सकती है। उसके कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार कराकर वह मौज से भारत में रह सकती है। इसी कारण से अब उससे सावधान तथा सतर्क रहने की आवश्यकता है। उसका पता लगाइये, उस मुस्तैदी से जैसे परम शत्रु का पता लगाया जाता है। पता लगाने पर उसको तुरन्त कत्ल कर दिया जावे। इसी में संघ की भलाई और परम हित है। मैं चिन को संघ का घोर शत्रु घोषित करता हूँ।"

श्रोताओं को ऐसा प्रतीत हुआ कि वह थक गया है। गिलास में मदिरा ढाल कर वह पीने लगा। कुछ उत्तेजना आने पर उसने कहा—"विनोद को फँसाये रखना चाहिये। उसके जैसे अनेक को फँसाना चाहिए। मैं यहाँ संघ के काम के लिए इक्कीस सुन्दरियों को नियुक्त करता हूँ, जिसका संचालन मेरा विश्वासी भृत्य कोसिंग† करेगा। वे सुन्दरियाँ इसी मकान में रहेंगी। संभव है कि वह इसमें कुछ आवश्यक परिवर्तन करावे। यह मकान खरीद लिया जावे। यह हमारे बड़े काम का है।

आदेश का पिछला भाग सुन कर चाउ और हो-चिन ने दृष्टि विनिमय किया। उन्हें ज्ञात हो गया कि अब बनारस केन्द्र का संचालन कोसिंग करेगा।

चाउ ने सुझाव के तौर पर कहा—"अगर मुनासिब समझा जाय तो मुझे

---

† कोसिंग, कांग के उस भृत्य का नाम था, जिसने सुरंग के गुप्त मार्ग का पता लगाया था और जिसे उसने पुरस्कृत करने का वचन दिया था।

कहीं स्थानान्तरित कर दिया जावे ।"

कांग ने वक्र भ्रकुटियों के साथ कहा—"यदि मैं उचित समझता तो वैसा स्वयं करता । तुम्हारे परामर्श की राह न देखता ।"

हो-चिन ने चाउ को चुप रहने का संकेत उसके पैर के जूते को दबाकर किया ।

कांग ने पुनः मदिरा पान करने के पश्चात कहा—"ली सूंग तुमको अब चिन का कार्य सम्पादन करना होगा । विनोद नवयुवक अल्हड़ है और बुद्धू है । हमें ऐसे ही नवयुवकों की आवश्यकता है । उसे सुन्दर नारी से मोह है—चिन से नहीं । चूँकि चिन ने सबसे पहले प्रयास किया, और वह उससे उलझ गया । तुम प्रयास करोगी, तुम भी सफल हो जाओगी । चिन की चाल चलकर उसे अपने प्रेमपाश में उलझा सकती हो ।"

ली-सूंग ने मस्तक नत कर लिया । उसकी इच्छा या अनिच्छा का पता कांग को न लगा । उसको जानने के लिए वह उत्कंठित भी न था । उसको अपना आदेश पालन कराने से मतलब था । वह पुनः मदिरापान में प्रवृत्त हो गया ।

उसने पुनः कहना आरम्भ किया—"हमारी शतरंज में विनोद फरजीं का पैदल है, जिसके द्वारा उसके पिता फरजीं बन कर हमारी अभिसन्धियों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे । ली को चाहिए कि उसकी माँ से जो पार्लियामेंट की सदस्य हैं, अपना सम्बन्ध स्थापित करे, और चिन की भाँति विनोद के साथ अलग न रहें । चिन की चाल गलत थी, और इसीलिये उसका पतन हुआ । आशा है कि ली, इस घटना से सबक लेगी ।"

थोड़ा सोचने के बाद वह फिर बोला—"चीन राष्ट्र का एक बहुत बड़ा अभियान होने वाला है । उसके विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जब वह घटित हो जाय, तब आप लोग यहाँ की जनता में उसका औचित्य सिद्ध करें ।"

चाउ ने पूछने का साहस किया—"उस अभियान का कुछ संकेत तो दीजिए ।" कांग ने टेढ़ी दृष्टि से देखते हुए कहा—"उसका स्पष्ट निर्देश मैं पहले कर

चुका हूँ । तुम्हारे जैसे भुलक्कड़ों के लिए फिर कहता हूँ कि वह अभियान तिब्बत की ओर होगा । चीन अपने देश की दक्षिणी सीमा हिमालय तक निर्धारित करेगा । तिब्बत को स्वतन्त्र रखने से चीन की स्वतन्त्रता सदा खतरे में रहेगी । अब चीन आज इतना सबल है कि वह तिब्बत को अपना एक प्रान्त बनाकर उसके खनिज पदार्थों से लाभ उठावे । अभी तक श्वेतांगों के समक्ष वह निर्बल था इसलिए चुपचाप पड़ा रहा, किन्तु उस समय भी उस पर अपनी सार्वभौमिक सत्ता उसने बनाये रखी । पंचशील को मान लेने के बदले में भारत ने अपनी सेना हटा ली, और तार आदि उपकरण जो श्वेतांगों की अड़ंगा नीति से वहाँ स्थापित हुए थे, चीन को पुन: बिना लड़े हुये मिल गये हैं । अपनी सेनाओं के गमन के लिए हम बीहड़ स्थलों में जो अगम्य हो रहे थे, सड़कें बनाकर सुगम बना रहे हैं । जहाँ वे बन गईं, हम तुरन्त तिब्बत पर कब्जा कर लेंगे ।"

हो-चिन ने कहा—"आप निश्चिन्त रहिए, हमारें प्रचार से यहां की जनता गाफिल रहेगी । हम "हिन्दी-चीनी भाई-भाई" आन्दोलन को बड़ी मुस्तैदी से चलाएंगे ।"

"यह तो होना ही चाहिये, इसके साथ यहाँ पंचमांगी सेना बनाने का प्रयत्न बहुत जोर-शोर से होना चाहिए । जितने लोगों को हम अपना समर्थक बना सकें, उतना हमारा आगामी कार्य-क्रम सुगम बनेगा । 'वृहत्तर चीन संघ' की स्थापना का एक मात्र उद्देश्य यही है ।"

इसी समय को-सिंग वहाँ आया । उसको कांगने बैठने का संकेत किया, फिर अपने वक्तव्य का सूत्र पकड़ा—मैंने तुम्हारी कुछ विशिष्ट सेवाओं के लिए पुरस्कृत करने का वचन दिया है । तुमको मैं अपनी निजी सेवा से मुक्त कर काशी के केन्द्र के संचालन का भर सौपता हूँ । चाउ की सेवायें अन्य दिशा में रहेंगी, और तुम्हारी अन्य दिशा में । तुम गुप्तचरों का संचालन कर पंचमागी सेना बनाओगे, और चाउ प्रचार द्वारा तुम्हारी सहायता करेगा । चिन को पकड़ने का भार तुम्हारे ऊपर है, क्योंकि तुम गुप्तचरों के प्रधान होकर काम करोगे। तुम्हारा सम्बन्ध मुझसे रहेगा, और यहां की गति-विधि की सुचना मेरे पास सीधे भेजोगे। किन्तु इससे यह मत समझना कि तुम चाउ से भिन्न हो । दोनों

मित्र बन कर संघ का उद्देश्य पूरा करो। आर्थिक सहायता मुझसे प्राप्त करोगे, क्योंकि तुम्हारे निर्दिष्ट काम में व्यय अधिक हो गया। मेरे जाने के पश्चात् तुम इस घर में मेरी बताई योजना के अनुसार परिवर्तन करोगे, और यहीं तुम्हारा आवास रहेगा। बस इतना ही यथेष्ट है।"

यह कह कर उसने सबको जाने का संकेत किया। को-सिंग को छोड़ कर अन्य सभी चले गए। उनके जाने के पश्चात् वे दोनों परामर्श करने लगे।

२९

पिछली रात्रि को जब चिन अपने सिर का क्षौर कर्म करवा रही थी, तब उसका हृदय मसोस रहा था। नारी को अपने केशों के प्रति स्वाभाविक प्रेम होता है, और जब नवीन अवस्था में वे काटे जाँय तब उसके दुख की कल्पना करना बहुत कठिन है। भुक्तभोगी के अतिरिक्त उसे कोई नहीं अनुभव कर सकता। जब वे कट गये तब उन्हें एकत्रित कर एक वस्त्र में बांध कर उसने रख लिया। उसके मोह का यह अन्तिम रूप था। दर्पण में अपना मुख देखने की उसे इच्छा नहीं हुई, किन्तु फिर भी वह केश-विहीन आनन देखना चाहती थी। बड़ी ऊहा-पोह के बाद जब उसने दर्पण में अपनी प्रतिच्छाया देखी, वह स्वयं अपने को नहीं पहचान सकी। आनन के सब अवयव ज्यों के त्यों थे, वही आयत लोचन थे, वही कुछ चपटी नासिका थी, वही सुधाधर अधर थे, किन्तु सब निष्प्रभ थे। उसके नेत्र आंसू ढाल कर संवेदना प्रकट करने लगे। प्राणो का भय उसे नारी से नर की भूमिका अदा कराने जा रहा था। वह कांग को कोसने लगी, वृहत्तर चीन संघ को कोसने लगी और अन्त में अपने को कोसने लगी।

नागार्जुन ने उसके लिये एकान्त में पड़ने वाला कमरा खोल दिया था, क्योंकि इस समय यह प्रबन्ध उनके अधिकार में था। प्रत्यूष वेला में जब वह उसे बासबा की सभा में उपस्थित होने के लिए निमन्त्रण देने गये, तब उसका परिवर्तित वेष देखकर चकित रह गये। वह इस समय किसी रईस घराने का कोमल आकृति का नययुवक बौद्ध भिक्षु दीख पड़ती थी। भस्म आदि लपेटने से उसका वर्ण कुछ धूमिल तथा भूरा हो गया था, किन्तु सुकुमारता प्रत्येक अवयव से झलक मारती थी।

नागार्जुन ने उसे देखकर कहा—"तुमने अपने को बहुत कुछ अवश्य छिपा लिया है, अब लामाओं का चोगा पहन लेने से तुम्हारा वेश पूर्ण हो जायगा।"

यह कह कर वह उसका प्रबन्ध करने चले गए।

वह सीधे यशोधर के पास गए, और उसे एकान्त में बुला कर कहा—"तुमने लामाओं के पहनने वाले कितने चोगे बनवाये हैं।"

यशोधर उन्हें प्रश्न भरी दृष्टि से देखने लगा। फिर उत्तर दिया—"अभी तीन मेरे पास हैं।"

"उनमें से एक मुझे दे दो।"

"आप क्या कीजिएगा?"

"अपने एक नए शिष्य को देना है। वह भी बासबा के दल के साथ तिब्बत जाना चाहता।"

"तब तो बड़ा अच्छा रहेगा। अपने देश के एक साथी के मिल जाने से मैं अकेलापन अनुभव नहीं करूँगा। आप उनसे मेरा परिचय करवा दीजिए।"

"हाँ, करवा दूँगा, किन्तु वह एकान्त प्रेमी है, प्राय: सबसे अलग रहना चाहता है। अभी वह मौन व्रत लिए है।"

'कोई हर्ज नहीं, मैं उनसे तभी आलाप करूँगा, जब वह चाहेंगे। न बोलने पर भी साथ तो रहेंगे। अकेलापन तो मिटेगा।"

"हाँ किन्तु उससे सम्पर्क बढ़ाने से तुम्हारे काम में बाधा पड़ सकती है।"

"अपने काम का पूरा ध्यान रखूंगा।"

"अच्छा एक चोगा अभी दो, पीछे अवसर आने पर परिचय करा दूंगा।" यशोधर ने एक चोगा निकाल कर दे दिया।

नागार्जुन ने उसे ले जाकर चिन को दिया। उसने अपने भिक्षु वेश पर चोगे को पहन लिया, जिससे उसका समस्त शरीर, सिर से पैर तक ढक गया। अब वह एक नवयुवक लामा दिखने लगी।

उसके कपड़े पहनने के पश्चात् नागार्जुन ने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा— "डोरजी, क्योंकि अब तुम इसी नाम से विख्यात होगी, मैं तुमसे एक प्रतिज्ञा करवाना चाहता हूँ।"

चिन ने उत्तर दिया—'वह क्या ?'

'इस बात की कि तुम नारी होने का अपना गुप्त भेद किसी पर प्रकट नहीं करोगी ?'

'भदन्त जी' यह तो स्पष्टत: मेरे हित में है। अपना भेद प्रकट कर क्या मैं मृत्यु निमन्त्रित करूँगी ?'

'यह जानते हुये भी, मैं तुमसे प्रतिज्ञा करवाना चाहता हूँ ?"

चिन उनकी ओर विस्मित दृष्टि से देखती हुई बोली—'भदन्त जी आपकी तुष्टि के लिए प्रतिज्ञा भी करूँगी, परन्तु मुझे उसका कारण बता दीजिए, ताकि मैं और अधिक सतर्क रहूँ ?'

'पहले प्रतिज्ञा करो, फिर वह कारण भी बताऊँगा।'

चिन ने प्रतिज्ञा की कि वह किसी पर अपनी वास्तविकता प्रकट नहीं करेगी। नागार्जुन प्रतिज्ञा सुन कर सन्तुष्ट होते हुए बोले—'तुम जानती हो कि बसबा के दल में विनोद का भाई यशोधर भी जा रहा है। यात्रा में तुम्हारा और उसका साथ रहेगा। शायद तिब्बत में भी कुछ दिनों तुम दोनों साथ रहो। हालांकि तुम वहाँ से चीन जाना चाहती हो, किन्तु फिर भी शायद परिस्थितियों के कारण कोई व्याघात उत्पन्न हो जावे। अग्नि और तृण साथ रहने से प्रज्वलित हो जाते हैं। तुम्हें यशोधर की रक्षा करना होगा। उसको अपने मोहजाल में मत फँसाना, जैसे तुमने उसके भाई को फँसाया था।'

चिन का चेहरा लाल हो गया। उसने नत नेत्रों से कहा—'गुरुदेव, मैं इतनी

नीच नहीं हूँ । आप लोग नारी को केवल विलासिता का आगार मानते हैं । उसके स्त्रीत्व का कुछ अपनी दृष्टि में मूल्य है, नहीं जानते, अथवा जानते हुए भी मानते नहीं ।''

मैं तुम्हें अविश्वास की दृष्टि से नहीं देखता, परन्तु मानव-इन्द्रियों की प्रेरणा बड़ी शक्तिशालिनी है । यदि उन्हें प्रतिज्ञा के बन्धन में बाँध दिया जाए तो उनके निग्रह करने में मन को सहायता मिलती है । केवल इसी विचार से प्रतिज्ञा करवाई है, तुम इसका कोई दूसरा अर्थ मत लगाओ ।'

'आप विश्वास कीजिए, मैं उनसे दूर-दूर रहूंगी ।'

'मैंने उससे यही बताया है कि तुम एकान्त प्रेमी हो, और अभी मौन व्रत लिए हो । किन्तु यात्रा में इस व्रत का पालन नहीं हो सकता, तुम उससे उतना ही बोलोगी, जितना अत्यन्त आवश्यक हो । इसके अतिरिक्त वासबा के दल में स्त्री का प्रवेश निषिद्ध है । यदि उनके किसी शिष्य को तुम्हारा भेद मालूम हो गया तो भी तुम्हे अत्यन्त कठिनाई का सामना करना पड़ेगा, इसलिए उन लोगों से भी तुम्हें सतर्क रहना पड़ेगा । गुप्तचर विद्या जानने के कारण तुम अपनी पुरुष वेप की भूमिका अच्छी तरह अदा कर सकती हो ।'

'भदन्त जी, आप मेरे पिता तुल्य गुरु हैं । आप निश्चिन्त रहिए, मेरा भेद कोई नहीं जान पायेगा ।'

चिन की दृढ़ता से नागार्जुन सन्तुष्ट हुये ।

अपने वस्त्रों से एक थैली निकालते हुए बोले-''यह अपने व्यय के लिए ग्रहण करो । इसमें भारतीय मुद्रा में एक हजार रुपयों के नोट हैं ।''

''भदन्त जी, मैं इतने रुपये लेकर क्या करूँगी ? सौ-दो सौ यथेष्ठ हैं ।''

' यदि वैसा समझता तो मैं तुम्हें उतने ही देता । यह मन्दिर का धन है, जिसकी पूर्ति मैं अपने शिष्यों से माँग कर करूँगा । परदेश में पास के धन से बड़ा मनोबल रहता है । अभी कल तुम्हारे पास रिक्शे का किराया न होने से तुम्हें कितनी विपत्ति में फंसना पड़ा था । आज बासबा अपने पूर्वजन्म के गुरुदेव के दर्शन कर, आज ही संध्या समय अथवा कल प्रातःकाल तीर्थ यात्रा के लिए प्रस्थान कर देंगे । संभव है कि मुझे कहीं अन्यत्र व्यस्त रहना पड़े, और

तुमसे मिलने का अवसर न मिले, इसलिए मैंने अभी सब प्रबन्ध करने का विचार किया है।"

"बासबा से मेरा परिचय न कराइयेगा ?"

"बासबा से कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं यशोधर के शिक्षक मासपा से तुम्हारे सम्बन्ध में बातें कर उनको तुम्हें शिष्य रूप में ग्रहण करने की प्रार्थना करूँगा। बासबा से तुम सावधान रहना।"

"उनसे मुझे स्वयं डर मालूम होता है।"

"छद्म वेश से रहने से तुम्हें उनसे डरना ही चाहिए। उनकी अन्तर्भेदी दृष्टि से तुम्हारा भेद छिपा नहीं रह सकता, इसलिए उनसे दूर-दूर रहने में ही कल्याण है। उनकी सैकड़ों की मण्डली में तुम सहज ही अपने को उनसे छिपा सकती हो। यशोधर को भी मैं सावधान कर दूंगा।"

"किन्तु उनसे विलग रहने की आपकी आज्ञा है ?"

"विलग तुम अपने मन से रहोगी, इसीलिए प्रतिज्ञा करवाई है। यात्रा में तुम दोनों साथ रहोगे और मासपा के पास तुम दोनों तिब्बती भाषा सीखोगे बासबा का सब समय उपासना और ध्यान में बीतता है। संघ का सब प्रबन्ध मासपा करते हैं, इसलिए तुम्हें कोई असुविधा नहीं होगी।"

"मासपा का स्वभाव कैसा है ?"

"बड़ा घरेलू और प्रेम पूर्ण। उसकी प्रकृति बड़ी दयालु है। वृद्ध होने के कारण वह सबके आदर के पात्र हैं। बालक से भी अधिक सरल हैं। उनकी मेरे ऊपर बड़ी कृपा है। वह मेरे अनुरोध पर तुम्हें अपना शिष्य सहर्ष बना लेंगे।"

चिन ने कृतज्ञतावश नागार्जुन के चरण पकड़ लिए। दयालु नागार्जुन के नेत्र अश्रु पूर्ण हो गए। गद्‌गद् कंठ से उन्होंने उसे यात्रा सफल होने का आशीर्वाद दिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल आठ बजे बासबा की तीर्थयात्रा का मूहूर्त निश्चित हुआ। गायत्री ने नागार्जुन द्वारा प्रार्थना करवाई थी कि वह उसके घर को पवित्र करते हुए जायें। बासबा ने सहर्ष उसके निमन्त्रण को स्वीकार किया।

निमन्त्रण मिलने पर उन्होंने मुस्कराते हुए कहा–"यदि मातेश्वरी मुझे स्मरण न करती, तब भी मैं उनका आशीर्वाद लिए तथा गुरुदेव को प्रणाम किए बिना प्रस्थान न करता।"

नागार्जुन ने उनके उद्गारों को सुनकर परम संतोष प्राप्त किया। वह हर्षोत्फुल्ल दृष्टि से उनको देखने लगे।

वासवा ने उनके मन की स्थिति का अनुमान कर कहा—"नागार्जुन' मुझे आन्तरिक दुःख है कि मेरे बुद्धि-दोष से मातेश्वरी को मानसिक कष्ट पहुँचा है। मेरा मन मुझे बार-बार धिक्कारता है। मुझे उस समय तक शान्ति नहीं मिलेगी, जब तक वह अपनी अन्तरात्मा से क्षमा नहीं प्रदान करेंगी।"

"रिमपोचे, आप इस विचार को दूर कीजिए। गायत्री के मन में कोई दुर्भावना आपके प्रति नहीं है। मैं उसको बचपन से जानता हूँ। साधु-सन्यासियों पर उसकी बड़ी श्रद्धा है।"

"जिसको गुरुदेव की माता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उसके क्षमाशील होने में कोई सन्देह नहीं है, किन्तु इससे मेरे मन को सन्तोष नहीं हो सकता। अपराधी तो मेरा मन है। मैंने अहंकार के वशीभूत होकर अपनी योगशक्ति का प्रदर्शन उस निरीह, सरल तपस्विनी पर किया, जो सर्वथा अनुचित्त और गर्ह्य है। योग शक्ति के सिद्धान्तों के विपरीत मैंने आचरण किया है, अतएव उसका प्रायश्चित तो मैं करूँगा ही, परन्तु आन्तरिक शान्ति के लिए आवश्यक है कि मैं क्षमा प्राप्त करूँ।"

"आप विश्वास कीजिए, आपकी इच्छानुसार सब कार्य सम्पन्न होगा। इसी सम्बन्ध में मैं यह निवेदन करूँगा कि गायत्री को परम सन्तोष प्राप्त होगा, यदि आपकी कृपा गीनयेन राहुल, तथा उसके एक साथी पर बनी रहे।"

"क्या गीनयेन राहुल ने कोई साथी भी ढूँढ़ लिया है?"

"हाँ गुरुदेव, उसका एक मित्र भी उसके साथ यात्रा कर रहा है। उसे आचार्य मासपा ने अपने शिष्यत्व में लेना स्वीकार कर लिया है।"

"जब मासपा ने उसे स्वीकार कर लिया, तब मेरी भी अनुमति समझी जाय। आश्रम के कुलपति वही हैं। उनका किया हुआ मुझे सदैव मान्य है।"

नागार्जुन ने नतमस्तक हो प्रणाम किया। चिन के सम्बन्ध में वह निश्चिन्त हुए।

वासबा ने पूछा—"गीनयेन राहुल के साथी का नाम क्या है ?"

नागार्जुन ने सत्य की रक्षा करते हुए उत्तर दिया—"देव, उसका भिक्षु नाम डोरजी है।"

"मैं इसे स्मरण रखूंगा। इनकी शिक्षा पूर्ण होने पर, मैं इनको हठयोग की शिक्षा स्वयं दूंगा। बिना हठयोग के सन्यासी-धर्म अपूर्ण है।"

"गुरुदेव, आप उनके लिए जो उचित-समझियेगा-वह कीजिएगा।"

"नागार्जुन, आप मेरे शिष्यों को स्टेशन भेजने का प्रबन्ध करें। मातेश्वरी के यहां केवल गीनयेन राहुल और आप चलेंगे। भीड़-भड़क्के से मैं उनको कठिनाई में नहीं डालना चाहता।"

"जो आज्ञा" कह कर नागार्जुन प्रबन्ध करने चले गए।

३०

बासबा के स्वागत के लिए अविनाश बाबू कुछ मित्रों तथा मणिमाला, श्यामसुन्दर और गायत्री के साथ द्वार पर उपस्थित थे। मुहल्ले में यह प्रचारित हो गया था कि आनन्द अपने पूर्व जन्म में तिब्बती लामा बासबा का गुरु था, जिसका परिचय उसने स्वयं दिया है, और बासबा ने अनेक परीक्षाओं के बाद उसे स्वीकार भी कर लिया है। आनन्द और बासबा के दर्शनों के लिए सड़क के किनारे-किनारे भीड़ लगी हुई थी, और अनेक प्रकार की मनगढ़न्त कहानियाँ भी कही जा रही थीं। प्रत्येक व्यक्ति कोई न कोई पूर्व जन्म से सम्बन्धित कथा सप्रमाण सुना रहा था। उसके सम्बन्ध में ऐसे उद्‌गार प्रकट किए जा रहे थे, मानों वह दैनिक तथा साधारण घटना है और उसका कोई महत्व नहीं है। उनमें कुछ कहते थे कि अन्य घटनाओं की जानकारी अधिक लोगों को इस लिए नहीं हुई, क्योंकि वे गरीब घरों की घटनायें हैं, जिन पर सहसा कोई

विश्वास नहीं करता। बड़े आदमियों की तुच्छ से तुच्छ बात भी असाधारण बनकर प्रतिष्ठित पत्रों में आदर के साथ स्थान पाती है, परन्तु गरीबों के लिए वह द्वार भी बन्द है, हालांकि घटना चाहे जितनी अद्भुत और सत्य हो। प्रसंग बदलते-बदलते अन्त में गरीब और अमीर की असुविधाओं तथा सुविधाओं के निरूपण और आलोचना में ठहर गया।

जब अविनाश बाबू की मोटर गाड़ी से बासाब, नागार्जुन और यशोधर अपने भिक्षु-वेष में उतरे, तब भीड़ उमड़ पड़ी और उसने उनका मार्ग अवरुद्ध कर दिया। भारतीय जनता सभी जातियों तथा धर्मावलम्बियों के सन्यासियों का आदर करती है और जब उनकी शक्ति का प्रचार हो जाता है, तब वह सभी प्रकार का भेद-भाव मिटाकर उनके नमन के लिए उत्सुक हो उठती है। बासबा की अद्भुत योग–शक्ति का प्रचार अतिरंजित रूप में हुआ था। कथाओं ने अनेक रूप ले लिए थे, किन्तु सबका निष्कर्ष यही था कि बासबा में अद्भुत यौगिक-क्षमता है। उनके चरण छूने के लिए उसमें होड़ लग गई।

पुलिस का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया था, क्योंकि उसकी आवश्यकता ही नहीं समझी गई थी, और न इनकी भीड़ इकट्ठा होने की सम्भावना सोची गई थी। अविनाश बाबू का गला चिल्लाते-चिल्लाते बैठ गया, परन्तु कोई उनकी बात नहीं सुनता था। बासबा अपने स्वागत को देखकर चकित हो रहे थे। तिब्बत में इतना जन-समुदाय उनके स्वागत तथा चरण-स्पर्श के लिए कभी नहीं एकत्रित हुआ था। चरण छूने वालों के लिए आशीर्वाद प्राप्त करने की कोई चिन्ता नहीं थी, वे अनासक्त भाव से अपना कर्तव्य पालन करने के लिए लालायित थे। जयजयकार की ध्वनि के समक्ष किसी की बात सुनी नहीं जाती थी।

नागार्जुन और यशोधर के प्रयत्न से बासबा को तिल-तिल बढ़ने का सुयोग मिल रहा था। श्यामसुन्दर, विनोद और अविनाश बाबू दूसरी ओर से लोगों को हटा-हटा कर रास्ता बना रहे थे। लगभग आध घण्टे के कठिन परिश्रम के पश्चात् बासबा घर में प्रवेश कर सके। गायत्री ने घड़ियाल और शंख ध्वनि से उनके स्वागत का आयोजन किया था, किन्तु उनके बजाने वालों का कहीं

पता न था। वे उस जन-समुद्र में कहाँ डूब गए थे, इसका कोई पता नहीं मिलता था। जब घर का मुख्य फाटक बन्द कर लिया गया, तब बासबा आदि को स्वच्छन्दता से श्वास लेने का अवसर मिला। बासबा भी थक कर चकनाचूर हो रहे थे। अपने आसन पर बैठकर वह सुस्ताने लगे।

थकावट दूर होने पर उन्होंने नागार्जुन से कहा—"गुरुदेव के दर्शन नहीं हो रहे हैं।" गायत्री से पूछने पर मालूम हुआ कि वह सो रहा है। बासबा ने उसके शयनागार में जाने की इच्छा प्रकट की।

गायत्री, एक थाली में फल-फूल, सुगन्धित द्रव्यों से बनाया हुआ गोरोचन लिए उनका तिलक करने के लिए आगे बढ़ी, किन्तु बासबा ने हाथ के संकेत से उसे मना किया और नागार्जुन से कहा—"मातेश्वरी को समझाओ कि तिलक पहले गुरुदेव का होना चाहिए।"

इसी समय राहुल अथवा यशोधर आनन्द को गोद में उठाए वहाँ आ गया। बासबा ने उसे देखते ही साष्टांग प्रणाम किया, और बड़े आदर से उसको गोद में उठाकर उसके चरणों को अपने मस्तक पर स्पर्श कराया। घड़ियाल और शंख बजाने वाले अब घर में आ गये थे, इसे उपयुक्त अवसर समझ कर उन्हें बजाने लगे।

आनन्द को बासबा की गोद में देखकर गायत्री का हृदय भय से पुन: काँपने लगा। उसके मातृ-हृदय को सन्देह था कि कहीं चलते-चलाते बासबा उसे मन्त्र-मुग्ध न कर जावें। वह अर्चना की थाली लिए हुए आगे बढ़ी। उसको देखकर बासबा ने नागार्जुन से कहा—अब "मातेश्वरी को कहो कि वह पहले गुरुदेव का तिकल करें।"

गायत्री ने कांपते हाथों से वैसा ही किया, फिर जब बासबा का तिलक करने जा रही थी, बासबा ने नागार्जुन से कहा—" मातेश्वरी से कहो कि बासबा अपने दुष्कर्म के लिए क्षमा प्रार्थी है। हार्दिक क्षमा प्राप्त होने पर ही मैं तिलक करवाऊँगा।"

गायत्री उस कथन को सुनकर कुछ आश्वस्त हुई। उसे सन्तोष हुआ कि बासबा अब कोई अपकार नहीं करेंगे। उसने उत्तर दिया—"मैं अकिञ्चन

उनको कैसे अपराधी ठहरा सकती हूँ। अपराध मेरा था, जो मैं उनके गुरुदेव को लेकर चली गई थी।"

किन्तु इससे बासबा का समाधान नहीं हुआ। उसे स्पष्ट शब्दों में क्षमा प्रदान करना पड़ा। गायत्री ने इसके पश्चात् उनका तिलक किया, तत्पश्चात् भोजन के लिए आग्रह किया। बासबा और नागार्जुन भोजन करने बैठ गए। इस अवसर से लाभ उठा कर मणिमाला और अविनाश बाबू एकान्त में यशोधर को ले गये।

मणिमाला ने अश्रु सिक्त नयनों के साथ कहा—"मेरी इच्छा नहीं कि तू तिब्बत जा। भारत का प्राचीन साहित्य प्राप्त करने का हमने कोई ठेका नहीं लिया है। महादुर्गम मार्गों में तुझे पैदल यात्रा करनी पड़ेगी, विदेशियों में रहना पड़ेगा अनुकूल भोजन की व्यवस्था नहीं होगी। न-मालूम उस समय मैं कैसी मूर्ख हो गई थी, जो तुम्हारे पिता के प्रस्ताव पर सहमत हो गई!"

यशोधर चकित होकर उसका मुख निहारने लगा।

मणिमाला बोली—"गायत्री दीदी को देखो, वह अपनी सन्तान के लिए कितनी व्यग्र रहती हैं, और एक मैं हूँ जो अपने पुत्र को अनन्त कठिनाइयों को सहने के लिए भेज रही हूँ।"

यशोधर ने अपनी माँ का हाथ पकड़ कर कहा—"माँ अब पीछे लौटना नहीं हो सकता। हम बहुत दूर आ गए हैं। लोगों में हँसाई तो होगी ही, इसके अतिरिक्त मैं भी शान्ति से रह न सकूँगा। माँ, आपने मुझे अपने ही समान बनाने के उद्देश्य से इस मार्ग की ओर प्रवृत किया था। अब आप में यह कमजोरी कैसे आ गई?"

"वत्स, उस समय मैंने यह नहीं अनुमान किया था कि पुत्र-वियोग मुझे इतना कातर बना देगा।" कहते-कहते उसकी आँखें आंसू गिराने लगीं।

"माँ, भगवान रामचन्द्र तो चौदह वर्षों के लिए वन गये थे, और कौशल्या ने उन्हें आर्शीवाद के साथ सहर्ष विदा किया था। आप भी तो उन्हीं की संतान हैं, आधे जीवन तक आपने भारत की स्वतन्त्रता के लिए जगलों की खाक छानी, पग-पग पर ब्रिटिश पुलिस से मुठभेड़ें की, हमेंशा जान हथेली पर लिए

घूमी, फिर भी आप कातर हो रही हैं। गायत्री बुआ की बात दूसरी है। वह हमेशा ममता-मोह के वातावरण में पली, और रहीं, उनसे आपका मुकाबला नहीं हो सकता। मुझे सहर्ष जाने की अनुमति दीजिए।"

"तू नितान्त अकेला है, राम के साथ उनकी पत्नी और भाई थे।"

"माँ आप के आर्शीवाद से मुझे भी एक साथी मिल गया है। वह आयु में मुझसे भी छोटा मालूम होता है, और वह भी महन्त जी का कोई शिष्य है, जो मेरी भाँति तिब्बत के लामाओं का सत्संग करना चाहता है। वह बहुत सरल प्रकृति का मालूम होता है। वह अभी मौन व्रत लिए है, इसलिए विशेष रूप से बातें नहीं हुई हैं, किन्तु जितनी भी बातें लिखकर हुई हैं, उनसे मालूम होता है कि वह मेरा अनुगत रहेगा।"

"उसका नाम क्या है, और कहाँ का रहने वाला है ?"

"वह कोई भूटानी मालूम होता है, उसका नाम डोरजी है। भदन्तजी से ज्ञात हुआ है कि वह काशी में बौद्ध मन्दिर में शिक्षित हो रहा था। उसके माता-पिता उसके बाल्यकाल में मर गए थे।"

इसी समय अविनाश बाबू जो माता-पुत्र को छोड़ कर किसी कार्यवश अपने कमरे में चले गये थे, कुछ पत्र लिए हुए आये, और यशोधर से बोले—"'यशो, यह दो पत्र चीन के कम्युनिस्ट अधिकारियों के नाम हैं। तुम तिब्बत से चीन जाने का प्रयत्न करना। वे तुम को हर प्रकार की सहायता या स्वयं देंगे, अथवा दिलाने का प्रबन्ध करेंगे। ये चीनी अधिकारी मेरे परम मित्र हैं। जब मैं चीन गया था, तब इनके यहाँ ठहरा था, और हमारी पहचान हुई थी। ये संसार व्यापी कम्यूनिस्ट पार्टी के संचालकों में हैं।"

यशोधर ने देखा कि पत्रों का शिरोनामा चीनी भाषा में लिखा हुआ है। अभी तक वह नहीं जानता था कि उसके पिता चीनी भाषा जानते हैं। वह उन्हें गौर से देखता हुआ बोला—"बाबू क्या आपने चीनी भाषा में पत्र लिखे हैं ?"

"हाँ, चीन में रहते हुए मैंने उनकी भाषा सीखी थी।"

"कभी आपने बताया नहीं ?"

"प्रसंग न आने से नहीं कहा ! तुम भी वहाँ जाने के पहले, किसी चीनी विद्वान से उसकी भाषा सीख लेना। चीनी भाषा की अभिज्ञता तुम्हें सर्वत्र सुविधा प्रदान करायेगी। और यह तमगा अपनी कमर में बाँध लेना। यह अन्तर्राष्ट्रीय कम्यूनिस्ट पार्टी का चिह्न है, जो कम्यूनिस्ट प्रदेशों में तुम्हें सर्वाधिकार प्रदान करायेगा। तुम समय पड़ने पर मेरे नाम का व्यावहार कर सकते हो। प्राय: सभी देशों के कम्यूनिस्ट अधिकारी मेरे मित्र अथवा परिचित हैं, क्योंकि उनके गुप्त मंडल की भारतीय शाखा का मैं सर्वोच्च अधिकारी हूँ। यह तमगा सूचित करेगा कि तुम कम्यूनिस्ट पार्टी के एक प्रमुख सदस्य हो। तुम निस्संकोच अपना असली परिचय देना, यदि ऐसी कोई आवश्यकता उपस्थित हो जाय।"

यशोधर उस तमगे को देखने लगा। उसके एक ओर लेनिन की और दूसरी ओर चीन के मृत नायक सनयात सेन की छाप थी, तथा दोनों तरफ रूसी तथा चीनी भाषा में कुछ अक्षर खोदकर बनाये गए थे।

अविनाश बाबू ने जेब से दो सिगरेट केस निकाल कर देते हुए कहा—"यह भी अपने पास रख लो। यह प्रेषक तथा ग्राहक रेडियो यन्त्र हैं। तुम इनके द्वारा अपने समाचार विश्व भर में भेज सकते हो। सूर्य किरणों से यह अपने काम लायक विजली स्वयं उत्पन्न कर लेते हैं। यदि इन्हें केवल एक बार धूप में रख दोगे, तो वे एक सप्ताह के लिए यथेष्ट शक्ति संचय कर लेंगे। यह जिन रेडियो-तरंगों पर काम करता है, उनका साधारण रूप से पता लगाना कठिन है। तुम सदैव अर्ध रात्रि के पश्चात् अपने समाचार यहाँ भेजा करना। प्रतिदिन भेजना तो कठिन होगा, इसलिए साधारण रूप से प्रत्येक गुरुवार को अपनी कुशलता तथा अन्य आवश्यक समाचार भेज दिया करना। दूसरा ध्वनि ग्राहक यन्त्र है। उसके द्वारा हमारे समाचार तुमको मालूम होते रहेंगे।"

यह कह कर उन्होंने उन यन्त्रों को संचालित करने की क्रिया समझाई।

मणिमाला मुग्ध नयनों से उन यन्त्रों को देख रही थी। उसने कहा—"मुझे नहीं मालूम था कि तुम्हारे पास ऐसे-ऐसे यंत्र भी हैं!"

"तुम्हें बताने की कोई आवश्यकता भी नहीं थी, क्योंकि तुम्हारा मार्ग दूसरा हैं, और मेरा दूसरा।" अविनाश बाबू ने हँसते हुए कहा।"

"किन्तु सन्तान के मामलों में हममें कोई मतभेद नहीं है।"

"नहीं है, इसलिए तो मैंने यशो को वे सौंप दिए, जिनसे उसकी रक्षा हो सकती है, और तुम्हें प्रति सप्ताह उसका समाचार मिल सकेगा।"

"अब अगर कोई संक्षिप्त आकार का वायुयान दे सके तो बड़ा अच्छा हो। कहीं आने-जाने की सुविधा हो जाय।" मणिमाला ने व्यंग्य किया।

"अभी विज्ञान ने इतने छोटे वायुयान नहीं बनाये हैं, कि जेब में रखकर उन्हें ले जाने की सुविधा हो, परन्तु यदि यशोधर अपना सम्बन्ध उन चीनी अधिकारियों से जिनके नाम मैंने पत्र दिए हैं, कर लेगा, तो इस तमगे के दिखाने से उसे सर्वत्र आवागमन की सुविधायें बिना शुल्क के प्राप्त होंगी।"

"तुम्हें अपने पुत्र के प्रति इतना ध्यान है, धन्यवाद!"

अविनाश बाबू व्यंग्य को पुनः पी गए।

इसी समय नागार्जुन भोजन समाप्त कर यशोधर को ढूँढ़ते हुए वहां आ गए। उन्होंने पूछा—"राहुल, अपने माता-पिता से विदा ले ली?"
यशोधर ने माता-पिता की ओर देखा, तथा उनके चरण-स्पर्श करने के लिए वह झुका। इसी समय गायत्री भोजन का थाल लिए वहाँ आई और बोली—"तुम्हें ढूंढ़ते-ढूंढ़ते परेशान हो गई। आओ भोजन कर लो। वाह भाभी, तुमने यशो को भोजन भी नहीं कराया?"

मणिमाला ने सकुचा कर भोजन का थाल स्वयं ले लिया, और यशोधर को खिलाने के लिए वह दूसरे कमरे में ले गई।

—इति पूर्वार्ध—

उत्तरार्द्ध

१

समुद्र के धरातल से लगभग दसहजार से सोलह हजार फीट तक ऊँचे बसे हुये क्षेत्र का नाम तिब्बत अथवा "विश्व की छत" है। इस प्रदेश के निवासी भोटिया नाम से भारत में अभिहित हैं, जिनमें भूटान के निवासी भी सम्मिलित हो गये हैं, क्योंकि दोनों देशों के निवासियों के रूप-रंग तथा रहन-सहन की शैली में कोई विशेष अन्तर नहीं है। इस क्षेत्र का क्षेत्रफल लगभग पाँच लाख वर्गमील है। इसके पूर्व और उत्तर मैं चीन दक्षिण में नैपाल, भूटान और सिकिम और पश्चिम में लद्दाख है। इसके दक्षिणी अन्चल में कैलास शिखर और मान सरोवर झील स्थित है, जिसकी गौरव-गाथा भारतीय पुराणों में विस्तार सहित वर्णित है। इसी पुण्य भूमि में सिन्धु-सतलज और ब्रह्मपुत्र के उद्गम स्थान है, तथा अतीत पौराणिक काल में यहाँ के निवासी गंधर्व, किन्नर आदि नामों से विख्यात थे। महाभारत में वर्णित गंधर्वराज चित्ररथ शायद इसी क्षेत्र का राजा था। गंधमादन पर्वत इसी अन्चल की पर्वतश्रेणी का नाम था। उन दिनों और आज भी यहाँ के निवासी चित्र-विचित्र रंगों के परिधान पहनते हैं। पत्थर निर्मित मणियों की मालाओं से अपना शारीरिक विन्यास करते हैं, और अनेकानेक आकृतियों के स्वरूप धारण कर नाचते-गाते हैं।

पहाड़ी क्षेत्र में बसा होने के कारण यह यात्रियों के लिए सदैव दुर्गम बना रहा, अतएव केवल निकटवर्ती तटीय देशों के अतिरिक्त विश्व के अन्य देशों से इसका कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हुआ। इसका व्यापारिक सम्बन्ध अधिकांश भारत और लद्दाख से था, और दोनों देशों के व्यापारी वस्तुओं का विनिमय करते थे। भोटिये अपने देश से कस्तूरी, मृगछाले, कम्बल, चमर आदि लाते थे, और उनके विनिमय में नमक, गुड़, खाँड़ कपड़ा आदि ले जाते थे। इसी

प्रकार भारतीय व्यापारी उसके दूर-दर अन्चलों में जाकर वाणिज्य व्यापार करते थे। तिब्बत में अपनी कोई मुद्रा नही थी। भारतीय सिक्के का चलन वहाँ सदा रहा, और अभी चीनियों के आगमन से वह बन्द हुआ है।

अनेकानेक पहाड़ियों और घाटियों के मध्य बसे होने के कारण, यहाँ के निवासी दक्षिणी प्रान्त के एक विस्तृत पठार में गाँव व नगर बनाकर रहते हैं, किंतु उत्तर तथा पूर्व में जो क्षेत्र चीन की सीमा से मिला हुआ है, अधिकतर घूमने-फिरने वाली जातियों से आबाद है। ये लोग अपने ढोर तथा पशुओं के साथ ऋतु के अनुकूल यत्र तत्र कन्दराओं या तम्बुओं में रहते हैं। उत्तरी क्षेत्र को तिब्बती भाषा में चांग-तांग कहते हैं। दक्षिणी भाग में तिब्बती सभ्यता अपने रूप में पनपी, और समृद्धिवान हुई। दक्षिणी-भाग का सम्बन्ध कई घाटियों के दर्रों से भारत के साथ है। ये दर्रें उत्तर प्रदेश के कुमायूँ क्षेत्र से असम तक कई स्थानों में फैलै हुए हैं, जिनसे आवागमन की विशेष सुविधा न होते हुए भी इधर–उधर के लोग आ–जा सकते हैं।

वस्तुत: तिब्बत को बुद्धस्तान कहा जाय, तो अनुचित न होगा। यहाँ का राज तथा प्रजाधर्म बुद्ध धर्म है, और वह भी अपनी एक विशेष छटा लिए हुए, जैसा संसार में अन्यत्र कहीं नहीं है। इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता कि ईसा की किस शताब्दी में बुद्ध धर्म ने यहाँ प्रथम प्रवेश पाया। अनुमान यह होता है कि महान सम्राट अशोक के काल में कुछ बौद्ध–भिक्षुओं ने दुर्गम पथों से इस देश में प्रवेश कर बुद्ध धर्म का प्रचार किया होगा, यद्यपि इसके सम्बन्ध में कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता। अनेकों जंगली जातियों की भाँति पितृ तथा प्रेत पूजा का प्रचलन तिब्बत निवासियों में भी था, और बुद्ध धर्म ने उनके प्राचीन विश्वासों कें साथ मिलकर लामाई धर्म को जन्म दिया, जिससे अन्य किसी धर्म का मेल नहीं है। यद्यपि इस देश में बुद्ध-धर्म की महा–यान शाखा का चलन है, तथापि वह कुछ भिन्नता और अपनी विशेषता लिए हुए हैं।

ऐतिहासिक प्रमाण ईसा की सातवीं शताब्दी में मिलता है, जब तिब्बत–राज सोंगत्सान गोम्पो ने उत्तरीय बरमा तथा चीन पर अधिकार कर चीनी

राजकुमारी वेन-चेंग से विवाह किया। इस विवाह के पूर्व उसका विवाह नैपाल नरेश की राजकुमारी भ्रकुटी देवी से हुआ था। संयोग की बात है कि इसकी दोनों रानियां बौद्ध-धर्मावलम्बी थीं, जिनकी प्रेरणा से उसने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। सोंगत्सान गोम्पो अपने समय का अत्यन्त शक्तिशाली राजा था, और उसी ने विधि-विधान बना कर तिब्बत को शक्तिशाली राज्य में परिणत किया। हालांकि इस नरेश के पहले भी बौद्ध-धर्म तिब्बत में प्रचलित था, किन्तु उसका सम्यक सम्पादन इसी शताब्दी में हुआ।

भारत और तिब्बत का अविच्छिन्न सम्बन्ध सदैव रहा। जो कुछ प्रेरणा तिब्बत को प्राप्त हुई, वह सब भारत से मिली है। चीन के साथ उनका सदैव विरोध रहा, क्योंकि संसार की सर्वोत्तम घाटियों से युक्त पठार भूमि पर उनके दाँत बराबर गड़े रहे। समर के अखाड़े में वे दो समबली पहलवानों की भाँति सदैव कुश्ती लड़ते रहे। कभी तिब्बत चीन को दबा लेता और कभी चीन तिब्बत को, परन्तु तिब्बतियों ने अपनी स्वतन्त्रता सदैव बनाए रखी।

मंगोल देश से तिब्बत का घनिष्ट सम्बन्ध रहा। जब चीन से युद्ध छिड़ता, तब मंगोल नरेश तिब्बत की सहायता सैन्य बल से करते थे। इसका कारण यह था कि मंगोल नरेश तिब्बत के लामा को अपना धर्म गुरु मानते थे, तथा बौद्ध धर्म की दीक्षा उन्होंने उनसे ली थी। यहाँ तक कि 'दलाई लामा' की उपाधि भी मंगोल नरेश अलतान खाँ की प्रदान की हुई है। इसके पहले वे 'ग्यालपो रिमपोचे' के नाम से विख्यात होते थे। जिस प्रकार आज दिन तक इंगलैंड नरेश अपने नाम के साथ पोप प्रदत्त 'धर्म संरक्षक' (डिफेंडर आफ फेथ) की उपाधि धारण करते हैं, हालांकि पंद्रहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग से उन्होंने रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है; उसी प्रकार तिब्बत नरेश 'दलाई लामा' की उपाधि से अपने को विभूपित करते हैं, और अब तो उनका यही नाम प्रचलित हो गया है।

तिब्बत में नगरों की संख्या बहुत कम है। मुख्य नगर अथवा राजधानी ल्हासा है, जहाँ दलाई लामा का निवास रहता है दूसरा प्रमुख नगर है शीगात्से, जहाँ पंचेन लामा का निवास है। दलाई लामा भगवान अवलोकितेश्वर के

अवतार माने जाते हैं, जो शरीर के नि:शक्त हो जाने पर पुर्नजन्म लेकर नया शरीर धारण करते हैं। प्रत्येक दलाई लामा के मरने के तीन-चार वर्ष उपरांत उस बालक की खोज की जाती है, जिसमें उनका जीवात्मा प्रविष्ट हुआ हो। तिब्बत निवासियों का विश्वास है कि मृत्यु के पश्चात उन्चास दिनों तक दलाई लामा का जीवात्मा 'चो-कोर गायी' नामक झील में निवास करता है, तत्पश्चात् वह स्वेच्छा से किसी बालक में प्रवेश करता है। दलाई लामा की पहचान अनेक चिह्नों से मठाधीशों तत्वज्ञों तथा योगियों द्वारा की जाती है, और प्रमाण मिल जाने पर बालक को शिक्षा के लिए क्रमशः ड्रेपुङ्ग, सेरा, तथा गन्देन मठों में शास्त्र-निष्णात धर्माचार्यों के संरक्षण में रखा जाता है। अट्ठारह वर्ष की अवस्था में वह वयस्क होते हैं, और तब स्वर्ण-सिंहासन पर आसीन किये जाते हैं। धार्मिक एवं नागरिक सत्ता के वह सार्वभौम अधिकारी माने जाते हैं। उनके वचन भगवदाज्ञा के समान संपूज्य तथा अतर्क्य स्वीकृत होते हैं।

पंचेन लामा भगवान अमिताभ के अवतार माने जाते हैं। लोबसांग ग्यात्से नामक पंचम शक्त लामा ने अपने गुरु 'पंचेनएंड्रेनी' जिसको तिब्बती 'पंचेन रिमपोचे' कहते हैं, को भगवान अमिताभ का अवतार घोषित कर उनको शीगात्से के ताशी-ल्हुनपो' नामक मठ का अधीश नियुक्त किया, किन्तु उनकी राजशक्ति केवल उसी के सन्निकट क्षेत्र में स्वीकार की।

दलाई लामा तथा पंचेन लामा में अधिकारों की सत्ता के लिए सदैव वैमनस्य रहा, और चीनी उससे लाभ उठाने की कोशिश सदा करते रहे। वर्तमान परिस्थितियों में भी चीन ने पंचेनलामा को अपने दल में मिला लिया है, और दलाई लामा के विरुद्ध उन्हें तिब्बत का अधिकारी घोषित किया है।

तिब्बत का राजतन्त्र धार्मिक तथा लौकिक सिद्धान्तों का सम्मिश्रण है। दलाई लामा दोनों क्षेत्रों के सार्वभौम अधिकारी हैं। इनके पश्चात् पंचेनलामा का अधिकार माना जाता है। किन्तु फिर भी सीमित क्षेत्र में इन दोनों महान अधिकारियों के नीचे बड़े मठों के अधिकारी, अथवा महन्त हैं, जिनको तिब्बती भाषा में 'चुतुक्तू' कहते हैं। तीन बड़े मठों-ड्रेपुङ्ग, सेरा और गन्देन के महंत्तों की गणना इसी श्रेणी में आती है, इनके अतिरिक्त कुछ और छोटे मठाधीशों

को भी इसमें सम्मिलित कर लिया गया है। इनके स्वामी अपने-अपने प्रथम महन्त के अवतार माने जाते हैं। इनको 'रिमपोचे' उपाधि धारण करने की अनुज्ञा दलाई लामा की ओर से प्राप्त है, और उनके वचन आदर के साथ सुने जाते हैं। इनके नीचे छोटे-छोटे मठों के स्वामी हैं, जो तिब्बती भाषा में 'छुबील-कान' के नाम से पुकारे जाते हैं। निम्नतम श्रेणी के लामा सन्यासी 'दाब' और 'त्राप' कहलाते हैं, तथा बड़े महन्तों की सेवा-टहल में रहते हैं।

राजतन्त्र का संचालन 'त्सोन्गदू' नामक ग्यारह व्यक्तियों का राजसमिति द्वारा होता है, जिसमें तीनों मठाधीशों को प्रमुखता मिलती है। शासन की सुविधा के लिए तिब्बत कई जिलों ''दजोंग' में विभक्त है, और प्रत्येक जिला एक मठाधीश के आधीन होता है।

लामाओं को विवाह करने की अनुमति नहीं होती, किन्तु व्यापार और खेती करने की अनुज्ञा प्राप्त है। चूंकि लामा ही भूमि के अधिकारी होते हैं, इसलिए जो खेती करते हैं वे केवल दास माने जाते हैं, तथा उनको रोटी कपड़े के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता। यही रिवाज व्यापार में भी प्रचलित है। लामाओं के धन से जो व्यापार किया जाता है, उसका समस्त लाभ वही लेते हैं। लामाओं की आर्थिक स्थिति सदैव अच्छी रहती है, इसलिए अधिक से अधिक तिब्बती लामा सन्यासी होना चाहते हैं। कई मठों में उनके स्थायी निवासी लामाओं की संख्या दस हजार है, सैकड़ों की संख्या वाले तो अनेकानेक मठ हैं। तिब्बत की उपजाऊ भूमि का लगभग आधे से ज्यादा भाग लामाओं के अधीन है। वस्तुत: आर्थिकतन्त्र के केन्द्र महन्त और मठाधीश हैं, और वे वही व्यवहार अपनी प्रजा से करते हैं, जो प्राचीन काल में दासों के साथ किया जाता था। यह एक आश्चर्य की बात है कि दलाई लामा का अवतार कभी-कभी कृषकों के घर में होता है, जिनको भरण-पोषण की भी सुविधा नहीं होती।

संक्षेप में यह कि तिब्बत अथवा बुद्धस्तान आज के विश्व में एक बहुत पिछड़ा हुआ राष्ट्र है, और वहां मानव का शोषण आदि काल से चला आता है। धर्म तथा पुनर्जन्म की आड़ में उसकी व्यवस्थायें वही चली आती हैं जो मध्य युग के आदि काल में स्थापित हुई थीं, जब शक्ति केवल शक्ति का बोल

वाला था, जब सबल व्यक्ति निर्बल को अपना दास बना लेता था। समय ने अब पलटा खाया है। पुरानी रूढ़ियों की सार्थकता नष्ट हो चुकी है, इसलिए नवीन पद्धतियाँ जन्म ले रही हैं। इतिहास बताता है कि विजेताओं द्वारा पुरानी रूढ़ियां नष्ट होती हैं, और उनकी नवीन सभ्यता के मिश्रण में नई-नई परम्परायें स्थापित होती हैं। आजकल तिब्बत अथवा बुद्धस्तान में यही हो रहा है, और वर्तमान रक्त प्रवाह के पश्चात् वह एक दिन नया कलेवर धारण कर स्वतन्त्र राष्ट्रों की श्रेणी में अवश्य प्रविष्ट होगा।

२

तिब्बत की राजधानी ल्हासा संसार का एक अनुपम तथा विचित्र नगर है। इसके मध्य की एक पहाड़ी, पोटाला पर राजकीय आवास है। यह कई फरलांग के घेरे में बना हुआ है, तथा इसका शिखर स्वर्ण-खचित है। इसकी परिधि में तिब्बत का राजकीय तन्त्र स्थापित है, जिसमें सचिवालय, राज-महल, तथा अन्य सरकारी कार्यालय हैं। पोटाला के बीचो-बीच लाल राज-मन्दिर हैं, जहां विभिन्न समय के लामाओं द्वारा विशाल कक्ष, मूर्तियां तथा पूजा-गृह बनवाये गये हैं। यदि इसे तिब्बत का हृदय कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

इसी के एक छोर पर जोरवांग मन्दिर स्थित हैं, जिसके प्रधान पुजारी बासबा हैं। जोरवांग मन्दिर बहुत प्राचीन है, और इसके महन्त का सम्मान, तीनों महामठों के महन्तों के समान होता है, यद्यपि राजकीय तन्त्र में उन्हें कोई स्थान नहीं दिया गया है।

बासबा अपने पूर्वज महन्तों की भाँति सदाचारी और योगी माने जाते थे, और उनको वैसा ही सम्मान मिलता था। यहाँ का शिक्षालय मासपा के तत्वावधान में चलता था, तथा वही उसके मुख्य अधिष्ठाता थे। बासबा का सब समय पूजा-पाठ अथवा योग-साधना में व्यतीत होता था, इसलिए उनको प्रबन्ध आदि देखने करने का अवकाश नहीं मिलता था।

चिन और यशोधर अपनी यात्रा समाप्त कर सकुशल जोरवांग मन्दिर पहुँच गये थे। चिन अपने पुरुष वेष में थी, और वह इतनी सतर्कता से रहती थी कि कोई उसके छद्म वेश को अभी तक भेद नहीं सका था, यहाँ तक कि यशोधर को भी कोई शंका नहीं हुई, जिसका बहुत समय उसके साथ व्यतीत होता था। चिन ने अपने सहज कोमल कंठस्वर को भी औषधियों के प्रयोग से बहुत कुछ परिवर्तित कर लिया था। वह कुछ इस प्रकार बैठ गया था, जैसा श्लेष्मा की भयंकर पीड़ा से बैठ जाता है। इसके अतिरिक्त वह मौनव्रत का बहाना लेकर पढ़ने के समय के अतिरिक्त बोलती नहीं थी, और यह भी एक कारण था, जिससे उसके नारी कंठ का भेद नहीं खुलने पाया। उसे सब कोई सुन्दर नवयुवक समझते थे, और उसका डोरजी नाम प्रचलित था।

चिन का मन पढ़ते-लिखने में नहीं लगता था। वह सदैव नाना प्रकार के विचारों में लीन रहती थी। उसकी चिन्ताओं का कोई ओर-छोर नहीं था। वह कभी अपने बाल्य जीवन की घटनाओं को सोचती, कभी उन व्यक्तियों की याद करती, जिन्होंने उसे गुप्तचरी के लिए शिक्षित किया था, कभी विनोद के सम्बन्ध में सोचती-विचारती कि न मालूम उसने उसके अदृश्य हो जाने पर क्या अनुमान लगाया हो, और जब कांग की भयावनी आकृति उसके सामने आ जाती, तब वह काँपने लगती। इन दिनों चीनियों का आगमन ल्हासा में होने लगा था, और जब कभी वे उसको देख पड़ते वह भय से अपने को छिपा लेती। उसे कभी-कभी यह प्रतीत होता कि कांग ने अपना जाल सर्वत्र बिछा दिया है, और एक दिन वह अकस्मात पकड़ ली जायगी। कांग की शक्ति के सम्बन्ध में उसने अनेक उपाख्यान अपने साथियों से सुने थे, और उसकी कल्पना तथा अनुमान शक्ति उनको अतिरन्जित कर उसके समक्ष अत्यन्त भयावना चित्र उपस्थित करती थी। वह उस समय अपने को नितान्त बलहीन और अशक्त पाती थी। इसी भय से वह अपने साथ उन छुरों को सदैव कपड़ों में छिपाये रखती थी, जो कोसिंग के थे, तथा उसके कमरे की अलमारी से सुरंग में गिर पड़े थे, वह जब भुतहे मकान की सुरंग से उसके कमरे के गुप्त मार्ग को खोल कर भाग जाना चाहती थी। उसने निश्चय कर लिया

था कि यदि वह पकड़ी जायगी, तो वह आत्महत्या कर लेगी। एक दिन अकस्मात उसकी कोठरी में यशोधर ने उन छुरों को देख लिया, जब वह स्नानागार में स्नान कर रही थी। वह उन्हें देखकर बहुत चकराया। मन्दिर के निवासियों को अस्त्र रखने की अनुमति नहीं थी, और न कोई आवश्यकता ही थी उनके रखने की। वह जब उनको देख रहा था, चिन स्नान कर अपने कक्ष में आई, और उसको उस स्थान के पास खड़ा देखकर, अपनी भूल का अनुमान कर संकुचित हो गई। यशोधर ने उससे सहज भाव से पूछा कि वह इन छुरों को क्यों अपने पास रखता है, जिसके उत्तर में उसने कहा कि आत्मरक्षार्थ वह उन्हें बनारस से लेकर आया है। मार्ग में अनेक हिंस्र पशुओं के मिलने की संभावना से उसके अभिभावकों ने उन्हें पास में रखने के लिए परामर्श दिया था। यशोधर की शंका निवृत्त नहीं हुई, किन्तु उसने कुछ कहा नहीं। वह अपने साथी 'डोरजी के छद्म नाम तथा वेष से ही परिचित था, उसकी असलियत से नहीं।

उस घटना के पश्चात् चिन अधिक सतर्कता से रहने लगी। उसने यशोधर से मिलना और भी कम कर दिया। मौन व्रत उसका पुन: चलने लगा। यशोधर जब कभी उससे आलाप करने का प्रयत्न करता, तब वह अपनी अस्वस्थता का बहाना कर देती। नैसर्गिक शक्तियां उसको चिन की ओर बार-बार आकृष्ट करती थी। यद्यपि वह अपने मनोनिग्रह से उससे दूर रहने का प्रयत्न भी करता, क्योंकि चिन का व्यवहार कभी-कभी इतना बेरुखी लिए होता था, जिससे वह तड़प उठता था, किन्तु इन बातों के बावजूद वह उसकी ओर खिचता ही जाता था। चिन को देखे, तथा आलाप किए बिना उसे शान्ति नहीं मिलती थी।

यह बात नहीं कि जिन प्राकृतिक शक्तियों के कारण यशोधर बार-बार चिन से मिलना चाहता था, उन्होंने चिन के मन को डाँवाडोल न किया हो। विनोद का तद्रूप यशोधर उसके सामने था। यह भी ठीक है कि उसने विनोद से कभी प्रेम नहीं किया था और न उससे प्रेम करने के लिए उसके मन में कोई भावना या विचार ही उदय हुआ था, किन्तु वे परिस्थितियाँ दूसरी थीं।

सबसे पहले, वह स्वतन्त्र नहीं थी, एक महा भयानक संगठन की ओर से एक विशेष कार्य के लिये उसने प्रेम जाल की रचना की थी ; किन्तु अब परिस्थितियाँ नितान्त बदली हुई थीं। वह अपने चित्त की स्वयं स्वामिनी थी। यद्यपि 'वृहत्तर चीन संघ' का भय उसे अधमरा किए हुये था, तथापि वह स्वतन्त्र थी, और वह केवल एक बहुत दूर की वस्तु रह गया था। उसके पुरुष वेष के अन्तराल से उसका नारी-रूप कभी-कभी प्रकट होने के लिये विद्रोह करने लगता। कभी-कभी उसकी रातें इन्हीं विचारों की ऊहा-पोह में बीत जाती। यदि उसकी उस अवस्था में यशोधर कदाचित वहाँ पहुँच जाता, तो वह अपना छद्मवेश उतार कर फेंक देती, तथा मुक्त कंठ से स्वीकार करती कि वह एक नारी है, किन्तु यह विकलता केवल राति के अन्धकार तक रहती। प्रात: रश्मियों के आगमन के साथ उसमें दृढ़ता का संचार होता, नागार्जुन के सम्मुख की हुई प्रतिज्ञा का स्मरण होता, और तब वह किसी प्रकार शान्त हो जाती। कुछ दिनों से उसका यही दैनिक कार्यक्रम बन गया था। इसी से वह यशोधर से सदैव दूर रहने का प्रयत्न करती थी, कुछ अपनी की हुई प्रतिज्ञा के कारण और कुछ अपने ऊपर अपना विश्वास खो जाने के कारण। लामाओं के पहनने का चोगा-परिधान उसके शरीर के साथ उसके मन के विचित्र भावों को छिपाये रखने में बड़ा सहायक हो रहा था, इसी लिये वह उसको क्षण भर के लिए भी अपने से विलग नहीं करती थी। केवल रात्रि में जब वह अपने कक्ष के द्वार को भीतरी अरगल से बन्द कर लेती, तभी वह उसे उतार कर सोती थी।

तिब्बत में आकर वह एक प्रकार से बिल्कुल पिंजराबद्ध हो गई थी। प्राण अब उसके छटपटाने लगे थे। जब वह सुरंग से भागी थी तब कांग के भय से उसकी विचारशक्ति सर्वथा लुप्त हो गई थी, और पुरुष वेष में बासबा के दल के साथ तिब्बत में शरण लेने के अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग उसे नहीं सूझा था, किन्तु वही उसके लिये अब प्राण घातक बन रहा था। प्रकृति किसी भी कृत्रिमता को अधिक दिनों तक प्रश्रय नहीं देती। वह उस कृत्रिम आवरण को उतरवाने के लिये उसे बार-बार, बावजूद उसके कटु तथा घातक परिणामों

के आग्रह करती थी—प्रोत्साहन देती थी।

चिन ने पहले सोचा था कि वह तिब्बत से अपने देश चीन को चली जायगी, और वह इतने बड़े देश में कहीं अपने को छिपा लेगी उसे इस कहावत पर विश्वास था कि दीपक तले हमेशा अँधेरा रहता है। कांग उसे चीन में नहीं, किन्तु भारत में ढूँढेगा, इसलिए वह स्वदेश में उसकी दृष्टि से ओझल रहेगी। उसने जब तिब्बत पहुँचकर आचार्य मासपा से अपनी इच्छा प्रकट की, तब उन्होंने वहाँ पहुँचने की व्यवस्था की जांच करवाई। नागार्जुन ने काशी में रहते समय उनको बताया था कि 'डोरजी' चीन की यात्रा करना चाहता है, इसलिए जब चिन ने अपनी इच्छा चीन जाने की प्रकट की, तब उन्हें कोई आश्चर्य नहीं, हुआ, और उन्होंने उसको हर प्रकार से सहायता देने का आश्वासन भी दिया। परन्तु जांच करने से मालूम हुआ कि चीन की कम्यूनिस्ट सरकार ने सब दिशाओं में नाकेबन्दी कर रखी है, और कोई तिब्बती बिना चीनी अधिकारियों का अनुमति-पत्र प्राप्त किये, चीन में प्रवेश नहीं कर सकता। चिन किसी भी मूल्य पर चीनी अधिकारियों के समक्ष नहीं जाना चहती थी, इसलिए इधर जाने का मार्ग भी अवरुद्ध हो गया। तिब्बत में स्थायी रूप से रहने अथवा पुनः यशोधर के साथ भारत आने के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय न था।

यशोधर तिब्बती भाषा से भली भाँति परिचित हो गया था। वह आसानी से तिब्बती बोल और समझ लेता था। उसकी मेधा शक्ति से आचार्य मासपा और उनके शिष्य प्रभावित हुए थे। उसके स्नेहसिक्त व्यवहार से सभी प्रसन्न रहते थे। वह भारतीय प्राचीन साहित्य की खोज करने लगा। जोरवांग मन्दिर का पुस्तकालय बड़ा समृद्धिशाली था। ताड़पत्रों तथा भोजपत्रों पर उसे ऐसे अनेक ग्रन्थ मिले, जिनका भारत में नाम निशान मिट चुका था। वह उन्हें कंठस्थ करने लगा, और अपने अवकाश के समय उनकी प्रतिलिपियाँ भी गुप्त रूप से लिखने लगा। वह प्रत्येक वृहस्पतिवार को रेडियो द्वारा अपने पिता अविनाश बाबू से वार्तालाप करता, और अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध में उन्हें सूचित करता तथा उन ग्रन्थों के विषय में भी विवरण देता, जिनका वह पारायण

करता था । अविनाश बाबू तथा मणिमाला उसके कार्य से परम सन्तोष प्राप्त करते थे ।

एक दिन वार्तालाप के समय अविनाश बाबू ने उसे उन पत्रों की याद दिलाई, जो उन्होंने उसके प्रस्थान के समय लिख कर दिये थे । जब यशोधर ने बताया कि वे अभी तक उसी के पास हैं, तब उन्होंने उसे आदेश दिया कि वह उनको चीन के अधिकारियों द्वारा उन अधिकारियों को पहुँचा देवे, जिनके नाम वे लिखे गये हैं । उन्होंने यह भी बताया कि रेडियो द्वारा उन अधिकारियों को वह स्वयं सूचित कर चुके हैं । उन्होंने कहा था कि चीनी अधिकरियों के साथ सम्बन्ध स्थापित होने पर वह उस समय सुरक्षित रहेगा, जब तिब्बत पर चीन अपना अधिकार स्थापित करेगा । यशोधर के पूछने पर कि क्या चीन तिब्बत पर आक्रमण करेगा, अविनाश बाबू ने आक्रमण को केवल सम्भावना बताई, कोई निर्दिष्ट उत्तर नहीं दिया; परन्तु बार-बार सावधान अवश्य किया कि वह अविलम्ब उन पत्रों को पहुँचा देवे । यशोधर बड़ी द्विविधा में पड़ा । वह चीनी अधिकारियों से मिलना नहीं चाहता था, क्योंकि तिब्बत का वातावरण चीनियों के विरुद्ध बन रहा था । दोनों एक दूसरे को शंकित दृष्टि से देखने लगे थे, उधर चीनी सैनिकों के दल क्रमशः ल्हासा में आ रहे थे, और वे तिब्बती जनता को संत्रस्त करने लगे थे । चीनी सेना के अधिकारियों से मिलने के अर्थ थे तिब्बतियों का अविश्वास-भाजन बनना, जो यशोधर नहीं चाहता था ।

तिब्बत का राज तंत्र भी शंकित दृष्टि से चीनी सेना की हलचल लक्ष्य कर रहा था । वह भी तिब्बत की रक्षा के लिये उपाय सोचने लगा । तिब्बत की सैनिक व्यवस्था बड़ी कमजोर थी । खाम्पा आदि लड़ाकू जातियाँ उसके पूर्वीय-दक्षिणी भाग में रहतीं थीं, और ल्हासा में स्थित तिब्बती सैन्य दल बिल्कुल निःशक्त और आधुनिक शस्त्रास्त्रों के व्यवहार से अपरिचित था । उनके पास जंग खाई हुई तलवारें और पुराने जमाने की बन्दूकें थी । न उनकी बाक़ायदा परेड होती थी, और न शस्त्रास्त्रों का व्यवहार ही सिखाया जाता था । उनकी सैनिक साज-सज्जा बिल्कुल मध्य युगीन थी, और जो कुछ अस्त्र

उन्हें भारतीय सेना के प्रस्थान के समय मिल गये थे, उनके अतिरिक्त लड़ाई का कोई सामान भी उनके पास नहीं था । तिब्बती राजतन्त्र ने विदेशों से हथियार मँगाना चाहा, परन्तु वह केवल चीन के माध्यम से हो सकता था, क्योंकि वैदेशिक सत्ता चीन के आधीन थी । तिब्बत आगामी संकट को देख रहा था, किन्तु उससे मुकाबला करने के लिए उसके पास साधन नहीं थे । चीन भी तिब्बत की विकलता देख रहा था, परन्तु वह उसे इस प्रकार छूट दिए हुए था, जैसे बिल्ली चूहे को देती है ।

चीन इस समय, प्राकृतिक कारणों से तिब्बत के दुर्भेद्य मार्गों को सैन्य संचालन के लिए सुगम बना रहा था । यद्यपि पंचशील के आधार पर जो संधि भारत के साथ हुई, उसके द्वारा प्रभुसत्ता चीन को प्राप्त हो गई थी, तथापि तिब्बत की राजसत्ता को स्वाधिकार में लेने के साथ वह अन्य विदेशी हस्तक्षेप की आशंका भी करता था, इसलिए अपने पश्चिमी, उत्तरी और पूर्वीय अंचलों से टैंक, और बड़ी तोपों के ले जाने के लिए मार्ग बनाने में व्यस्त था । वह उस समग्र क्षेत्र पर कब्जा कर लेना चाहता था, जो लद्दाख से असम तक भारत की उत्तरी सीमा बनाता है । वह अपनी योजना को धीरे-धीरे भारत को हिन्दी चीनी मैत्री की घूँटी पिलाकर अग्रसर कर रहा था । मार्गों के बनने के पहले वह तिब्बत को हड़पने के लिये प्रस्तुत नहीं था, यद्यपि चीनी अजदहे ने उसको पूरी तरह से दबोच लिया था ।

चिन और यशोधर दोनों तिब्बत की इस स्थिति को संत्रस्त दृष्टि से देख रहे थे । चिन को इस अभियान का आभास पहले से था, किन्तु वह अनुमान करती थी कि उस योजना के परिपक्व होने में पर्याप्त विलम्ब है, और इस बीच वह किसी न किसी प्रकार चीन पहुँच जायगी । परन्तु परिस्थितियाँ बिल्कुल इसके विपरीत प्रमाणित हो रही थीं । बुद्ध की ढाई हजारवीं जयन्ती के पश्चात् तुरन्त ही चीन ने तिब्बत को चारों ओर से जकड़ना आरम्भ कर दिया संसार को भुलावे में रखने के लिये उसने अपना शिकंजा कुछ ढीला कर दिया जिसकी वजह से तिब्बत के व्यापारी और भारत के यात्री अभी तक आते जाते थे, परन्तु उन पर भी उसके गुप्तचरों की दृष्टि सदैव बनी रहती थी ।

चिन को इन सब बातों का ज्ञान नहीं था। भारत में गुप्तचरी के लिए उसकी नियुक्ति हुई थी, और भारत निवासियों को पंचमाँगी बनाने के लिये उसको आदेश प्राप्त थे। उसका और कोई सम्बन्ध चीन सरकार से नहीं था। यह भार 'बृहत्तर चीन संघ' नामक संस्था ने अपने ऊपर लिया था, जिसका संचा-लन काँग के आधीन था, और उसकी अभि सन्धियाँ सर्वथा राजसत्ता से स्वतंत्र थी। इन्हीं कारणों से चिन को सरकारी स्तर पर किए गए रक्षात्मक गुप्तचरी के कार्यों की कोई जानकारी नहीं थी। बासबा का दल शुद्ध धार्मिक दल था, इसलिए गुप्तचरों की हलचल उसे मुक्त रखा गया था, यही कारण था, कि चिन और यशोधर का उस दल के साथ तिब्बत में आगमन गुप्त रहा, तथा किसी चीनी को उसका सुराग न मिला। जयन्ती समारोह के पश्चात ही चीन ने तिब्बत के सभी नाकों को बन्द करना आरम्भ कर दिया और भारत के साथ भी उसका आवागमन क्रमश: रुद्ध हो गया।

३

पहाड़ी उपत्यका के पूर्वीय क्षितिज पर कृष्ण पक्ष की द्वितीया का चन्द्रमा तिब्बत की प्राकृतिक सुषमा को अपनी धवल चाँदनी से आलोकित करने का प्रयत्न कर रहा था। चिन अपने मन का अवसाद मिटाने के लिए अपने कक्ष से बाहर निकली, प्राकृतिक नीरवता के आकर्षण से वह राजमार्ग को छोड़कर पास की पगडंडी से जंगल की ओर जाने लगी। उसे उस दिन अनेक चिन्ताओं ने घेर रखा था। वह अपने एकान्त जीवन से ऊब उठी थी। जब से उसने होश सँभाला था, तब से वह इतने दिन इस प्रकार एकान्त में कभी नहीं रही थी। वह अपने मनका गुबार जो कई महीनों से उसके हृदय में जमा हो गया था, बाहर निकालने के लिये उतावली हो रही थी, परन्तु प्रश्न था कि वह किस पर अपना गुप्त भेद प्रकट करे। ब्रह्मचारियों के बीच में रहने के कारण वह किसी तिब्बती पर अपना भेद प्रकट नहीं कर सकती थी, यशोधर के अतिरिक्त अन्य कोई उसका साथी नहीं था, और उसके प्रति वह प्रतिज्ञा-बद्ध थी। नागार्जुन

के उपकार को वह भुलाना नहीं चाहती थी, और न उस प्रतिज्ञा को जो उसने उनके समक्ष की थी। और, इधर अकेला जीवन भी उसके लिये परम असह्य, भार स्वरूप हो रहा था। इन्हीं द्विविधाओं से त्राण पाने का वह मार्ग ढूँढ़ती थी, और उसे केवल आत्महत्या के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय दिखाई नहीं पड़ता था।

चीनी सेनायें दल-बादल के समान तिब्बत में आ रही थी, जिससे प्रतीत होता था कि उनकी ओर से कोई सैनिक कार्यवाही शीघ्र होने वाली है। बाहरी अञ्चलों के मठों पर उनके अधिकार की कहानियां बराबर आ रही थीं, और जिन पर उनका अधिकार नहीं हुआ था, अथवा जिन्होंने उनके कथनानुसार अपनी सत्ता नहीं सौंपी थी, उनके ध्वस्त होने के समाचार भी ल्हासा के निवासियों को मिल रहे थे। ल्हासा इस समय पूर्णतया संत्रस्त था। यहाँ भी चीनी सैनिकों के उपद्रव आरम्भ हो गये थे। ल्हासा के चारों ओर चीनी सेनाओं का जाल इस प्रकार बिछ गया कि उसको तोड़ कर बाहर निकलना किसी ल्हासा निवासी के लिए असम्भव हो गया था। चिन सब देख समझ रही थी। वह चीनी सैनिकों का अत्याचार अपनी आँखों से स्वयं देख चुकी थी, जब उसके पिता-माता को गोली से उड़ाया और भाई को संगीन का शिकार बनाया गया था। वह जानती थी कि ल्हासा क्षेत्र के मठ तथा उनके निवासी बकरों की भाँति काटे जांयगे, तथा लाल रक्त की नदियाँ बहाकर चीन की लाल सेना अपने 'लाल' नाम को सार्थक करेगी। चीनियों द्वारा पकड़े और मारे जाने के पूर्व वह उनकी यन्त्रणाओं से बचने के लिए स्वयं आत्मघात करना चाहती थी। जोरवांग मन्दिर की परिधि में आत्महत्या करना उसे अनुचित प्रतीत होता था। मृत्यु के पश्चात उसकी वास्तविकता प्रकट होकर नमालूम किन-किन महापुरुषों को लाञ्छित करने का साधन बने, यह भय उसे वहां आत्मघात करने का परामर्श नहीं दे रहा था। इसलिये वह वहाँ मरना चाहती थी, जहां उसका शव न मिल सके, और न उसको कोई पहचान सके। वह ऐसे स्थान की तलाश में निकल पड़ी।

वह जोरवांग मन्दिर से कुछ थोड़ी दूर गई होगी कि पगडन्डी की दूसरी

ओर से आता हुआ कोई व्यक्ति दिखाई दिया। वह दुबक कर एक झाड़ी के पीछे छिप गई। किन्तु आने वाले व्यक्ति ने उसे छिपते देख लिया था। वह भी चौकन्ना होकर उसी स्थान पर ठहर चारों ओर उसको अपनी दृष्टि से खोजने लगा। चन्द्रमा इस समय तक क्षितिज का अतिक्रमण कर गगन के पूर्वीय पार्श्व में आ गया था। उसका प्रकाश शनैः शनैः तीव्र हो रहा था। चिन ने धवल चांदनी के प्रकाश में पहचान लिया कि आगन्तुक यशोधर है, जो सांध्य भ्रमण के पश्चात् मन्दिर लौट रहा था। चीनी सेना की हल-चल से उसको मासपा ने मन्दिर से दूर जाने को मना किया था, परन्तु अभ्यासवश वह घूमते-घूमते कुछ दूर निकल गया था। चन्द्रमा उदय होने पर वह मन्दिर लौट रहा, था, और मार्ग में चिन को छिपते देख कर वह कुछ शंकित हो गया। उस व्यक्ति को ढूँढ़ निकलने के लिये उसकी उत्कंठा जाग्रत हुई। उसने भी चिन को देख लिया, किन्तु पहचान नहीं सका, क्योंकि झाडी की छाया उसके मुख पर अन्धकार का परदा डाले हुए थी।

उसने तिब्बती भाषा में पूछा—"कौन है ?"

चिन का जिसको सबसे अधिक भय था, उसको सामने देख कर वह हक्की बक्की रह गई। उसके मुख से बोल न फूटा। उसका नारी–सुलभ भय उसके पुरुष के आवरण से प्रकट होने के लिए उद्योग करने लगा। उसके मन में वह कोमल मीठी भावना जो महीनों से घर किये उसका जीवन दूभर बना रही थी, अपने अन्तिम समय में अपने प्रिय को देखकर मचलने लगी। उसके शब्द की तरंगें उसको निर्दिष्ट पथ से विचलित करने के लिए आतुर होने लगी। मन जिसको प्यार करता है, उसे अपने सम्मुख उस समय देख कर जब वह मृत्यु मुख पर स्थित हो, अपने मन के गुप्त भाव को बताने के लिये उसका कुछ विकल और चंचल होना स्वाभाविक होता है। किन्तु उसकी प्रतिज्ञा का पिशाच उसे पुनः डराने लगा। वह अपने मन के उद्दाम वेग को रोकने का प्रयत्न करने लगी।

यशोधर को जब कोई उत्तर नहीं मिला, तब उसे किसी चीनी गुप्तचर होने की शंका हुई। किन्तु वह निरस्त्र था। आत्मरक्षा के लिये उसके पास

कोई साधन नहीं था। वह आगे बढ़ने में आगा पीछा करने लगा। किन्तु साहस कर उसने अपने प्रश्न को पुन: दोहराया, और एक ही छलांग में उसके समीप पहुँच कर पीछे से उसको बाहुपाश में दबा लिया। आज उसके स्पर्श से चिन का रोम-रोम पुलकित होने लगा। अभी तक उसने अपनी गुप्तचरी के दाँव घात में पुरुष-विशेष-विनोद को रोमांचित किया था, जब कि वह स्वयं उसके प्रभाव से अछूती बनी रहती थी, किंतु आज पांसा पलट गया। वह स्वयं उस भावना से अभिभूत हो गई, और यशोधर उससे मुक्त रहा। वह ज्यों-ज्यों उसको भागने से विफल बनाने के लिये उसे कसता जाता त्यों-त्यों वह शिथिल पड़ती जाती थी। उसकी प्रतिज्ञा चरमरा कर टूटने-टूटने हो गई, और अधिक से अधिक अपनी ग्रींवा और मुड़ा हुआ शिर उसके विशाल स्कन्ध से सटा दिया। मुस्कराते हुए चन्द्रमा की किरणें उसके मुख पर पड़ी। उसके सुहाग-विभोर नेत्र उसकी शीतल मयूखों के स्पर्श से लजा कर मुंद गये, किन्तु उन्होंने उसको चीनी गुप्तचर होने के सन्देह से भी मुक्त कर दिया। यशोधर ने पहचान लिया कि वह अपने साथी डोर जी को पकड़े हुये है। लज्जित होकर उसने उसे तुरन्त छोड़ दिया। परन्तु चिन अपना सब भार उस पर डाल चुकी थी। उसके पैरों ने उसका भार उठाने से इनकार कर दिया, वह पथरीली भूमि पर गिरने लगी। यशोधर ने अनुमान किया कि उसके अचानक आक्रमण से डोर जी भयाकुल हो गया है। उसने इस बार उसे मित्र की भाँति सहारा देकर उसकी पीठ अपने उर से लगा लिया। चिन अपूर्व शान्ति का अनुभव करती हुई, उसे तृषित अधखुले नेत्रों से देखने लगी। उसकी मानसिक उथल-पुथल में आत्म हत्या का विचार न-मालूम कहाँ खो गया।

यशोधर अपने कृत्य से मन ही मन कुछ लज्जित हुआ। उसने चिन को साहस बँधाते हुए कहा—"अरे डोरजी, मैं हूँ राहुल। सँभलों, होश में आओ। डरो नहीं।"

चिन ने सुना, और समझा भी, किन्तु उस क्षणिक स्पर्श से उसकी महीनों से दबाई हुई प्यास बुझी नहीं, बल्कि ओर बढ़ गई थी। भय के मिस से लाभ उठाने के लिए वह व्यग्र हो उठी। उसने अपनी देह ढीली कर दी और

बिल्कुल उसके हाथों तथा सीने के सहारे हो गई। अपने अधमुँदे नेत्र उसने पूरी तरह मूँद लिए।

यशोधर ने अनुमान किया कि डोरजी सत्य ही मूर्छित हो गया है। मार्च मास की शीतल वायु घाटियों की सन्धि से सरसराती हुई बह रही थी। सर्वत्र निर्जन वातावरण उसे अकेलापन महसूस कराने लगा। उसका अनुभव-हीन मस्तिस्क विकार रहित बना रहा। चिन को अपने विशाल उर पर स्थापित किये वह धीरे-धीरे पृथ्वी पर बैठ गया। चिन असीम तृप्ति का अनुभव करती हुई अपने नेत्र बन्द किये लुढ़की रही।

यशोधर बड़ी विपत्ति महसूस करने लगा। उसने चिन के मस्तक पर हाथ फेरते हुआ कहा—

—"डोरजी, डोरजी, होश में आओ! अपने को सँभालो! मैं चीनी सैनिक नहीं, तुम्हारा सखा राहुल हूँ।"

चिन उसके हाथों के स्पर्श से पुलकित हो रही थी। अधिक से अधिक देर तक वह इसी भाँति रहना चाहती थी यशोधर के बचनों को सुनते हुए भी उसने नहीं सुना। उसका मन आज अपना भेद खोल देने के लिये मचलने लगा। उसका हृदय प्रणय–भिक्षा मांगने के लिए व्यग्रता से उसकी प्रतीक्षा को मचलने लगा।

किन्तु इसी समय मन्दिर की ओर से आता हुआ कोलाहल सुनाई दिया। यशोधर विकलता के साथ उसे सुनने तथा उसका अर्थ समझने का प्रयत्न करने लगा। कुछ देर उपरान्त उसने अपना नाम पुकारे जाते हुए सुना। कंठस्वर आचार्य मासपा का था। यशोधर ने अनुमान किया कि संध्या समय की हाजिरी के समय उसकी अनुपस्थिति से आचार्य कुछ शंकित और व्याकुल हुए हैं, इसलिये अन्य शिष्यों के साथ ढूँढ़ने के लिये बाहर निकले हैं। उनको उसने शंका निवृत्त करने के लिये उत्तर दिया—"आचार्य, मैं यहाँ हूँ।"

चिन ने भी उस कोलाहल को सुना था। उसका उस समय वहां अचानक आ जाना बड़ा कटु मालूम हुआ, किन्तु वेहोशी का बहाना अब चल नहीं सकता था। मन की समस्त आकाँक्षाओं को कुचलते हुए उसने अपने नेत्र खोल दिए।

उसको होश में आते देखकर यशोधर को राहत मिली।

उसने सन्तुष्ट होकर कहा—'डोर जी, डोर जी, तुम बड़े डरपोक हो। इतनी जल्दी सुध-बुध खो देते हो। मौका पड़ने पर तुम शत्रु से कैसे लड़ोगे?"

चिन के पास अधिक वार्तालाप के लिये समय नहीं था। उसने बिल्कुल बेमन अपना शिर उसके उर से हटाया, और खड़े होने के प्रयत्न में उसके स्कन्ध का सहारा लिया। चिन अपने मन की विक्षुब्धता से युद्धरत थी। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

यशोधर ने अनुमान किया कि अभी तक उसका भय दूर नहीं हुआ है, इसलिए उसको शान्त करने के उद्देश्य से कहा—"डोर जी, तुमको झाड़ी के पीछे छिपते देखकर मैंने अनुमान किया कि कोई चीनी सैनिक या उसका कोई गुप्तचर है। मैं शास्त्र विहीन था, इसलिए उसको अवश करने के लिये उछल कर पीछे से भरपूर पकड़ लिया। मैं क्या जानता था कि तुम हो, और तुम बस इतने ही में अचेत हो गये। तुम्हारा शरीर इतना शिथिल पड़ गया कि मुझे कुछ अन्य अनिष्ट की आशंका होने लगी थी। कहो, अब कैसी तबियत है?"

चिन ने लघुमात्र उत्तर किया—'ठीक है।'

यशोधर ने उसकी अन्यमनस्कता की ओर ध्यान न देते हुए कहा—सांध्य हाजिरी में हम लोगों की अनुपस्थिति से आचार्य स्वयं हम लोगों को ढूंढते हुए आ रहे हैं।"

चिन को अब बोलने के लिये बाध्य होना पड़ा। उसने आगन्तुकों को देखते हुए कहा—"आचार्य को मेरी बेहोशीं न बताइयेगा।"

"फिर क्या कहूँगा?"

'जो मन में आवे। अच्छा, यह कह दीजियेगा कि हम लोग शत्रुओं का पता लगाने गये थे, अथवा ऐसी ही कोई बात बना दीजिएगा।"

यशोधर ने हंसते हुये स्वीकार किया। आचार्य मासपा ने उसे पुनः पुकारा। यशोधर और चिन ने आगे बढ़ते हुए उत्तर दिया—"आचार्य, हम लोग आ रहें हैं।"

आचार्य मासपा ने उनके समीप पहुँच कर कहा—"शत्रुओं का जाल चारों

ओर बिछा हुआ है, और तुम लोग मेरी स्पष्ट मनाही होते हुए भी बिना आज्ञा लिये चल देते हो ! तुम दोनों की सुरक्षा का भार मेरे ऊपर है।"

यशोधर ने क्षमा मांगते हुए एक मनगढ़न्त कहानी सुना दी। आचार्य ने सब सुनकर कहा—"अब भविष्य में कभी किसी व्यक्ति का पीछा न करना। ये चीनी बड़े निर्दयी होते हैं।"

चिन तथा यशोधर बिना तर्क किये, उनका आदेश स्वीकार कर उनके साथ मन्दिर चले गए।

४

जोरवाँग मन्दिर के सभी निवासी गहरी नींद में सोये हुये थे। रात्रि की नीरवता उलूकों के चीत्कार से और भी भयानक प्रतीत हो रही थी। चिन करवटें बदलती हुई बार-बार सोने का यत्न करती, किन्तु नींद उसके पास फटकती नहीं थी। संध्या की घटना उसे विशेष रूप से दग्ध कर रही थी। उसकी दशा उस व्यक्ति की भांति करुणा-जनक हो रही थी, जो हाथ पैरों से बँधा पानी के समीप पड़ा हो, किन्तु प्यास बुझाने में असमर्थ हो। यशोधर उसके समीप दूसरी कोठरी में पड़ा था। उन दोनों के बीच केवल एक दीवाल का व्यधधान था, किन्तु फिर भी वह कितनी दूर था ! वह स्वयं उस पर आसक्त थी, किन्तु उसको उसके अथाह प्रेम का आभास तक न था। उसके शरीर के स्पर्श का प्रभाव अभी तक वह अनुभव कर रही थी, किन्तु वह साकार न होकर अब काल्पनिक हो रहा था। वह उठकर बैठ गई। विकलता ने उसे चैन से न बैठने न दिया। वह उठकर कोठरी में टहलने लगी। टहलते-टहलते वह पुनः सोचने लगी विगत घटनाओं को, अपनी प्रतिज्ञा को और अपनी परावशता को। ज्यों-ज्यों वह उसके स्निग्ध स्पर्श से प्राप्त सुख को सोचती, त्यों-त्यों उसकी प्रतिज्ञा की दृढ़ता शिथिल होती जाती। उसने एक बार निश्चय

कर लिया कि वह यशोधर पर अपने को प्रकट कर देगी, और स्वयं प्रणय-भिक्ष मांगेगी। इस विचर से उसका उद्विग्न मन कुछ शान्त हुआ।

किन्तु दूसरे ही क्षण उसे स्मरण हुआ कि उसका सिर ब्रह्मचारी की भाँति मुँड़ा हुआ है। उसके पास वह कुन्तल राशि अब नहीं है, जो उसके रूप-लावण्य को चमत्कृत बनाती, जो नारी का नैसर्गिक आभूषण है, जो सुवासित तैल से सिक्त होकर सुगन्ध का आगार बन यशोधर को मधुकर की भाँति आर्कषित करती। उसके अभाव की टीस उसे व्यथित करने लगी। उस आन्तरिक वेदना को शान्त करने के लिए वह जल्दी-जल्दी टहलने लगी।

फिर उसे ध्यान आया कि वह पुरुष वेष में है, जो रमणी की कमनीयता का संहारक है। उसके पास जितने परिधान थे, वे सब ब्रह्मचारियों के थे, जो वैसे ही रसहीन थे, जैसे वे स्वयं होते हैं। वे रस संचार के स्थान पर उनका गला घोटते हैं। उसे स्मरण हुआ उस गुलाबी रेशमी साड़ी का, जिसमें उसकी छवि निरख कर कांग जैसा पुरुष व्यक्ति मोहित हो गया था। काश, यदि वह उसके पास होती और उससे अपने को अलंकृत कर इस अर्द्धरात्रि में उसके समक्ष उपस्थित होती, तब शायद उसे प्रणय भिक्षा न माँगनी पड़ती। वह मदमत्त पतंग की भाँति स्वयं उसकी रूपाग्नि का शिकार बन जाता! वह उसे उस दिन की हड़बड़ी में सारनाथ में ही छोड़ आयी थी, तब वह उसे निरर्थक भार ही न समझती थी, वल्कि संदेह किए जाने का एक आधार भी मानती थी। उसके मुख से एक विदग्ध आह निकल कर कोठरी के वातावरण को पीड़ित करने लगी।

दीपक का आलोक शनैः शनै क्षीण हो रहा था। उसने कुप्पी से उसमें तेल डाला। प्रकाश कुछ सजग हुआ, किन्तु उसके मनका अन्धकार दूर न हुआ। वह अपनी आकृति देखने के लिए उत्कंठित हुई, किन्तु उसके पास दर्पण नहीं था। ब्रह्मचारियों को दर्पण रखने की अनुमति नहीं थी, क्योंकि अपने रूप से उसका कोई सरोकार नहीं था। वह अपने में उस परिवर्तन को देखना चाहती थी, जो तिब्बत के जलवायु से घटित हुआ हो। वह यह भी जानने के लिए लालायित थी कि उसके नेत्रों में, वह आकर्षण अब भी विद्यमान है या नहीं

जो पुरुष-हृदय में रसोद्रेक करने में समर्थ था। वह निरखना चाहती थी कि उसके मंडलीकृत कपोलों में वह लालिमा अभी अवशेष है या नहीं जो पुरुष अधरों को कभी ललचाती थी। उसके अधरों में क्या अब भी वह रक्ताभ लालिमा की छटा मौजूद है, जो मृदु हास्य के समय रक्तोत्पल कलिका की पंखुड़ियों को लजाती थी। उसकी दन्तपंक्ति में वह विद्युल्लेखा क्या अब भी वर्तमान है, जो मौक्तिक माल को श्री हीन करती थी! वह यह भी जानना चाहती थी कि उसके चिबुक का अंश-वृत द्वितीया के चन्द्र के अंशवृत से किसी प्रकार न्यून अथवा खण्डित तो नहीं हुआ है! शंख को लजाने वाली उसकी ग्रीवा की भाँति लचक कहीं विलुप्त तो नहीं हो गई है! किन्तु, दर्पण न होने से उसके मन की अभिलाषा मन में ही रह गई।

उसकी विचार-श्रृंखला सहसा खट-खट की आवाज से टूट गई। अर्द्ध-रात्रि की नीरवता में वह साधारण-खटखटाहट बड़े जोर की जान पड़ी। वह चौंक कर कोठरी में चारों ओर देखने लगी, किन्तु यह न जान सकी कि शब्द कहाँ से आया है। खटके की आवाज पुनः हुई, और सामने दीवाल का एक पत्थर अपनी जगह से उखड़ कर कुछ आगे बढ़ा, और फिर एक दिशा में सरक गया चिन विस्फारित नेत्रों से उस बड़े छिद्र की ओर देखने लगी, जिसमें एक मनुष्य बड़ी सरलता से प्रवेश कर सकता था। वह किसी नई विपत्ति की आशंका से काँप उठी। उसे तनिक भी सन्देह नहीं रह गया कि वह किसी गुप्त मार्ग अथवा सुरंग का मुहाना है। उसकी घिग्घी बँध गई, और स्थिर नेत्रों से उसके द्वार से किसी शत्रु अथवा मित्र के आगमन की प्रतीक्षा धुकधुकाते हृदय से करने लगी।

दूसरे क्षण सुरंग के मुहाने से एक सिर निकला, और वह कोठरी के भीतर की अवस्था देखने लगा। उस तेजोमय किन्तु सौम्य चेहरे को देखते ही चिन ने पहचान लिया कि वह आचार्य मासपा का है। चिन के हृदय की धड़कन कम होने लगी, और उसने तुरन्त झपट कर अपना चोगा परिधान, जिसे उसने उतार दिया था, जिसके न होने से उसका स्त्री-रूप जाना जा सकता था, हड़-बड़ा कर पहन लिया। उस क्षीण प्रकाश में मासपा उसका नारी रूप न देख

सके। उन्होंने मुँह पर उँगली रखकर उसे चुप रहने का संकेत किया। चिन चुप तो रही, किन्तु अनेक शंकायें उसके मस्तिष्क में उठने लगीं।

मासपा से सुरंग के मुहाने से बाहर निकलकर भयहारी मृदुल वाणी में कहा—"वत्स, भयभीत न हो। अत्यन्त आवश्यक प्रयोजन से अर्ध-रात्रि में इस गुप्त मार्ग से तेरे कक्ष में आया हूँ, जिनके व्यवहार करने का आदेश केवल आसन्न महासंकट काल में ही है।"

चिन ने परम्परा के अनुसार मासपा को साष्टांग प्रणाम किया, और उनका कथन सुनने के लिए वह उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगी।

मासपा बड़ी करुण वाणी में बोले—"वत्स, तुम और यशोधर हमारे भगवान बुद्धदेव की जन्मभूमि के निवासी हो। नागार्जुन ने तुम दोनों की शिक्षा तथा सुरक्षा का भार मुझे सौंपा था। जितना मुझे ज्ञान था, उतना मैंने इन वर्षों में तुम दोनों को देकर शिक्षित किया। तुम्हारा अनुशासनपूर्ण-आचरण सदैव संतोषप्रद, और आदर्शरूप रहा है। तुम दोनों मुझे अति प्रिय हो। रिम-पोचे बासबा भी तुम दोनों से प्रसन्न हैं, और उनकी इच्छा थी कि वह तुमको हठयोग की शिक्षा स्वयं दें, किन्तु अब परिस्थितियाँ बिल्कुल प्रतिकूल हो गई हैं। चीन हमारे देश पर अपना अधिकार जमाना चाहता है। उसकी सेनाओं ने ल्हासा को घेर लिया है। नगर के बाहर निकलने के सब मार्गों पर उनका कड़ा पहरा है।"

चिन ने नत नेत्रों से कहा—"गुरुदेव, हमें मालूम है। चीनी सेनाओं का आक्रमण किसी भी क्षण हो सकता है।"

"हम भी यही आशंका कर रहे हैं। धर्म की रक्षा तभी हो सकती है, जब जन की रक्षा हो। तिब्बत पर ऐसे संकट आते रहे हैं, और उनका परिहार भी सदा होता आया है। अतएव ऐसी वपित्ति की अवस्थाओं में सुरक्षा के लिए हमारे पूर्वजों ने सर्वत्र गुप्त मार्गों की रचना की है, जिनसे शत्रु की आँखों में धूल झोंक कर निकला जा सके। आज मैं उसी गुप्त मार्ग से तुम्हारी कोठरी में आया हूँ, और रिमपोचे बासबा की अनुज्ञा से उनका रहस्य तुमको बताने के लिए गुप्त रूप से उपस्थित हुआ हूं, ताकि तुम दोनों बिना हम लोगों की

सहायता के उनका स्वयं व्यवहार करने योग्य हो जाओ, तथा संकट से अपनी रक्षा करते हुए स्वदेश जा सको। आजकल की परिस्थितियों के विषय में कोई कुछ नहीं कह सकता। बस इतना ही अलम् है कि सब कोई विकट से विकट संकट का सामना करने के शिए तैयार रहे। आओ वत्स, मैं उन गुप्त मार्गों के खोलने-बन्द करने की शिक्षा देता हूँ। ध्यान से देखो और समझो, क्योंकि थोड़ी भी भूल से प्राण संकट में पड़ सकते हैं।"

चिन उत्कंठित होकर मासपा को देखने और गुप्त मार्ग का रहस्य जानने के लिए आतुरता से प्रतीक्षा करने लगी। मासपा ने उस दीवाल की ओर, जहाँ सुरंग का मुहाना था, इंगित करते हुए कहा--"ध्यान से देखो गुप्त मार्ग के मुहाने की दीवाल में उसके सामान्तर दो खूंटियाँ कपड़े टांगने के लिए लगी हुई हैं, और वे इतनी ऊँचाई पर बनाई गई हैं, जो हाँथ से पकड़ी जा सकती हैं। वस्तुत: यही दोनो खूटियाँ सुरंग के मुहाने को खोलने तथा बन्द करने की चाबियाँ हैं। भुलावा देने के लिए इसी ऊँचांइ पर चारों दीवालों में इसी प्रकार की खूंटियाँ जड़ी हुई हैं, किन्तु हमको केवल इन्हीं दोनों से मतलब है। जब सुरंग की ओर से मुहाना खोला जायगा, तब कोठरी से बन्द करने के लिए बाई तरफ की खूंटी का व्यवहार होगा। इन लकड़ी की खूंटियों के अन्दर मजबूत इस्पात के चिपटे पत्तर हैं, जो चौकोर जड़े हुए पत्थर की पटिया की सन्धि में प्रविष्ट हो जाते हैं, तथा उसके दाहिनी तरफ के जोड़ तक खींच कर पहुँचाए जा सकते हैं। जब यह बाईं खूंटी खींच कर वहाँ तक लाई जायगी, तब मुहाना बन्द हो जायगा। अन्तर केवल इतना होगा खूंटी इस जोड़ के बजाय उस जोड़ पर चिपक जायगी, जिसका भेद साधारण रूप से लक्षित नहीं होगा। जब भीतर से द्वार खुलता है, तब यह खूंटी बाईं ओर सरकती हुई इस स्थान पर जाती है, जहां वह इस समय है। समझ गए ? अच्छा सुरंग का मुहाना बन्द करो।"

चिन ने वैसा ही किया। थोड़े ही परिश्रम से खूंटी सरक कर बाईं ओर आने लगी' और उसके हटने के साथ ही मुहाने की पटिया अपनी जगह पर आकर खटके के साथ स्वयमेव बैठ गई। मासपा ने प्रसन्न होकर कहा—"शाबाश!"

चिन भी उत्फुल्ल नेत्रों से उन्हें देखने लगी ।

मासपा फिर बोले—"यदि तुम को इसको इस कोठरी से सुरंग का मुहाना खोलना है तब तुमको दाहिनी ओर की खूंटी इस्तेमाल करना होगा । बाईं ओर की खूँटी तब तक अपनी जगह से नहीं हिलेगी, जब तक सुरंग के भीतर से मुहाना नहीं खोला जायगा । इस खूंटी के नीचे भी उसी भाँमि फौलाद का पत्र है, जिसे कुछ जोर देकर आगे खींचना होगा , इसको आगे खींचने से मुहाने की पटिया उतना आगे सरक आयगी, जितनी उसकी मोटाई है, ताकि वह दीवाल से सटी हुई सरक सके । इसके पश्चात खूँटी को बाईं दिशा में वैसे ही संधि से खींचते हुए दूसरी चौकोर पटिया तक ले जाओ । सुरंग का मुह खुल जायगा । अब तुम इसको मेरी बताई हुई विध के अनुसार खोलो ।"

चिन को समझने में कोई कठिनाई नहीं हुई । काशी के भुतहे मकान में वह इसी प्रकार की रचना देख चुकी थी । उसने खूँटी को आगे खींचा, और म्हाने की पटिया आगे सरक आई । जब उसने बाईं ओर उसे सरकाया तो उसने सरक कर मुहाना खोल दिया । मासपा उसकी हस्तलाघवता देख कर पुनः प्रसन्न हुए ।

उन्होंने उसकी पीठ ठोंकते हुए कहा—"शाबाश, देखो सुरंग का दरवाजा खुल गया, अब तुम इसमें प्रवेश कर सकते हो । सुरंग के भीतर भी इसी प्रकार की खूटियाँ लगी हुई है, और यही व्यवस्था है । केवल इतना ध्यान रखना कि जब तुम कोठरी से सुरंग में जाओगे, तब मुहाना उधर से बंद करने के लिये इसी खूटी के पीछे जो खूटी हैं, उसका इस्तेमाल करोगे, और सुरंग के भीतर से इस कोठरी में आने के लिए उसके दूसरे ओर की खूटीं को कुछ पीछे धक्का देकर इस पटिया को आगे सरकाओगे, और खूँटी को खींच कर दूसरे सन्धि-स्थल तक ले जाओगे । अब सुरंग के भीतर प्रवेश कर इस मुहाने को बंद करो ।"

मासपा सुरंग में जाने के लिये आगे बढ़े । चिन ने उन्हें याद दिलाने के अभिप्राय से कहा—"गुरुदेव सुरंग में अन्धकार होगा, क्या दीपक ले लूँ ?"

मासपा ने सुरंग के मुख में प्रवेश करते हुए कहा—"नहीं दीपक लेने की कोई आवश्यकता नहीं है, भीतर प्रकाश का प्रबन्ध है।"

आचार्य मासपा के पीछे-पीछे चिन ने भी उस सुरंग में प्रवेश किया। वह मन ही मन सोच रही थी कि क्या सभी पुराने मकानों में गुप्त मार्गों का प्रबन्ध होता है ?

सुरंग के भीतर पहुँच कर चिन ने शीतल वायु का संस्पर्श अनुभव किया। मासपा ने टटोल कर एक आले से सूत की लच्छी और चकमक पत्थर तथा लौहखंड निकाला और उनसे अग्नि प्रकट कर लच्छी में फूँक कर लौ पैदा की, फिर एक मोमबत्ती उसी आले से निकाल कर उसे प्रज्वलित किया।

मासपा बोले—"वत्स इसी भाँति यहाँ हर एक द्वार के समीप वाले आले पर प्रकाश करने का सामान सुरक्षित रहता है। निःशेष हो जाने पर पुनः नया सामान रखने की व्यवस्था रहती है। कदाचित किसी एक द्वार के समीपस्थ आले का सामान समाप्त हो जाय, और दुबारा रखा न जाय तो दूसरे आलों के सामान से काम निकाला जा सकता है। इस सुरंग में कई ताखे हैं, और उनमें सर्वत्र सामान रखा हुआ है।"

मासपा ने आगे-पीछे हटकर कई आलों का निरीक्षण कराया। इसके पश्चात जब चिन ने उनकी बताई हुई विधि से सुरंग का अपनी कोठरी में खुलने वाला द्वार बन्द कर दिया, तब वस्तुस्थिति जानने के लिये सुरंग के दोनों सिरों को वह देखने लगी।

मासपा ने चिन का ध्यान आकर्षित करते हुये कहा—"देखो प्रत्येक मुहाने पर अंक लिखे हुये हैं, जो कोठरी की संख्या बताते हैं। यह सुरंग कई मील लम्बी है। इसका एक सिरा मुख्य मन्दिर के तल भाग से आरम्भ होता है, और दूसरा सिरा काई-चू नदी के किनारे सुदूर एक गुफा में बनी हुई बुद्ध-मूर्ति के नीचे निकलता है। इस सुरंग का पूरा भेद तुम दोनों को आज बताऊँगा। अब तुम राहुल की कोठरी का गुप्त मार्ग खोलो। विधि वही है, जो तुम्हारी कोठरी का द्वार खोलने के लिये है।"

चिन ने यशोधर के कक्ष का द्वार खोलकर देखा। कक्ष में अन्धकार था,

और शय्या पर वह निर्भय सोया हुआ था। मोमबत्ती को एक ओर स्थापित कर चिन ने मासपा के संकेत से उसे जगाया। यशोधर हड़बड़ा कर उठ बैठा। कुछ क्षणों के लिए वह तहबुद्धि-सा होकर उन दोनों को पहचानने का प्रयत्न करने लगा।

मासपा ने उसके कन्धे पर हाथ रख कर कहा—"वत्स राहुल, मैं मासपा हूँ, और यह तुम्हारा साथी डोरजी है।"

यशोधर अभी तक समझे था कि वह कोई स्वप्न देख रहा है। मासपा के शब्दों को सुनकर उठा खड़ा हुआ और भूमिष्ट होकर प्रमाण किया, फिर प्रश्न भरी दृष्टि से उनको देखने लगा।

मासपा ने धीरता के साथ कहा—"वत्स राहुल, तुम स्वयं उस संकट को देख रहे हो, जो पवित्र बुद्धस्तान पर आ गया है। चीनी अजदहे के दाँत हमारे देश पर गड़ गये हैं। शीघ्र ही चीन और तिब्बत में युद्ध छिड़ने वाला है। मैं चाहता हूँ कि तुम अपने साथी के साथ भारत वापस चले जाओ।"

"देव, यह कैसे सम्भव है कि हम आपको इस संकट के समय छोड़ कर चले जांय।"

"प्रथम, तुम दोनों इस देश के निवासी नहीं। दूसरे, भारत तक तुम्हें सुरक्षित पहुँचाने का हमारे ऊपर दायित्व है। तीसरे, तुम्हारी शिक्षा लगभग समाप्त हो गई; अतएव तुम दोनों को यह देश छोड़ देना चाहिए।"

"परन्तु गुरुदेव, मित्र के संकट काल में भारतीय पीठ दिखाना नहीं जानते। कन्धे से कन्धा भिड़ाकर लड़ने और मरने की परम्परा हमारे देश की है।"

"तुम्हारे देश की परम्परा से में परिचित हूँ। परन्तु परिस्थितियों से लाभ उठाना चाहिए। तिब्बत में चीन से भिड़ने की शक्ति नहीं है। हम सबको देश छोड़ कर तुम्हारे देश में शरण लेना पड़ेगा। एक साथ हम लोग चल भी नहीं सकते। छोटी-छोटी टुकड़ियों में बँटकर हम लोग पलायन करेंगे। इसी उद्देश्य से मैं इस गुप्त मार्ग का भेद तुमको बताने आया हूँ, ताकि किसी भी समय तुम दोनों यहाँ से निकलकर जा सको। परिस्थितियाँ इतनी गम्भीर हो रही

हैं कि न-मालूम कब क्या हो जाय !"

"गुरुदेव, हम लोग आपके साथ ही क्यों न चलें ?"

"चलने में कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु हमारे साथ कोष भी होगा, और हमारी गति बहुत मन्थर रहेगी। इसके अतिरिक्त कोष के साथ केवल चुने हुए व्यक्ति ही चल सकते हैं। तुम भारतीय हो चीनी तुमसे बोलेंगे नहीं। इसके अतिरिक्त तुम भारतीय कान्सल जेनरल से अपना सम्बन्ध स्थापित कर सकते हो, और वह तुम्हारी सुरक्षा के लिए प्रत्येक उपाय करेंगे।"

"फिर आप यह गुप्त मार्ग का भेद क्यों बता रहे हैं ?"

"इसलिए कि कल सूर्योदय होने पर कैसी घटनायें घटने लगें, कुछ कहा नहीं जा सकता। काशाग* तथा त्साँगदू † की बैठकें बराबर हो रही हैं। उनका मत है कि तिब्बत यथासंभव शीघ्र छोड़ दिया जाय। चीनी हमारी गति विधि निरख रहे हैं, और कई तिब्बती अधिकारी उनसे मिल गये हैं। पंचेन-लामा इस संकट में, शायद चीन का साथ देंगे ऐसी आशंका की जा रही है।"

"क्या तिब्बत दो दलों में विभक्त हो गया है ?"

"मालूम तो ऐसा ही होता है। अपनी सेना पर भी हमारा विश्वास नहीं रह गया। कौन हमारी तरफ है, और कौन चीनियों का मित्र है, यह परखना मुश्किल हो रहा है। जाने-माने व्यक्तियों तक ही हमारा परामर्श सीमित रहता है।"

"तब आप लोग क्यों देर कर रहे हैं ? ज्यों २ आप देर करेंगे, त्यों २ चीनियों का जाल दृढ़ होता जायगा, और नाकेबन्दी हो जाने से निकल भागना भी मुश्किल होगा।"

"नव वर्ष का त्यौहार शीघ्र ही मनाया जाने वाला है। उसमें खूब धूम-धाम रहेगी। हमारे यहाँ यह पर्व उसी भाँति मनाया जाता है, जैसा तुम्हारे देश में होली का त्योहार मनाया जाता है। उसी अवसर का लाभ उठाकर

---

* काशग-तिब्बती मंत्रिमंडल

† त्साँगदू-राष्ट्रीय परिषद

हम यहाँ से प्रयाण करेंगे। संभव है कि मुझे भी कोष के साथ जाना पड़े, इस लिए समय रहते तुम दोनों को सावधान कर इस गुप्त मार्ग का भेद बता देना उचित प्रतीत हुआ। ऐसी ही रिमपोचे बासबा की आज्ञा प्राप्त हुई है।"

"आज्ञा पालन करना हमारा धर्म है, अतएव.........।"

"तुम दोनों की अनुशासन-दृढ़ता से हम सब बहुत प्रसन्न हैं। अब अधिक समय नहीं है। पौ फटने के पहले-पहले मुझे रिमपोचे बासबा की सेवा में उपस्थित होना है।"

"चलिए, मैं सेवा में प्रस्तुत हूँ।"

चिन उनका वर्तालाप सुन रही थी या नहीं, ठीक से नहीं कहा जा सकता। वह बार-बार कनखियों से यशोधर को देखकर अपने मानसिक विचारों को सुलझाने में व्यस्त थी।

मासपा ने सुरंग में प्रवेश करते हुए कहा—"इन गुप्त द्वारों को खोलने बन्द करने की विधि मैंने डोरजी को समझा दिया है। तुम उससे जान लेना मैं अब तुमको इस गुप्त मार्ग से निकलने की विधि बताऊँगा।" फिर चिन से कहा—"डोरजी, तुम इस द्वार को बन्द कर हमारे पीछे २ आओ। ठहरने से देर होने का भय है। रास्ता सीधा है, मैं राहुल को लेकर आगे चलता हूँ।"

चिन द्वार बन्द कर थोड़ी देर में उनके पास पहुँच गई। सुरंग सीधी चली गई थी। उसकी जमीन कहीं समतल और कहीं ऊबड़-खाबड़ थी। छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े सर्वत्र थे, परन्तु वे मनुष्य के आगमन के साथ ही इधर-उधर हट जाते थे।

लगभग ढाई मील तक वे चुपचाप चले गये। सुरंग में ही कहीं-कहीं उन्हें जमीन नम मिली, और कहीं-कहीं झरता हुआ पानी किसी पहाड़ी स्रोत की सूचना दे रहा था। पानी बहने के लिए नालियां बनी हुई थीं, जिनसे बहकर वह किसी गह्वर में गिर रहा था। आगे सुरंग बन्द दिखाई दी। वहां पहुचने पर मासपा ने कहा—"अब हम सुरंग के दूसरे मुहाने पर आ गये हैं। इसी स्थान के ऊपर एक अन्धी गुफा है, जिसके एक कोने में बुद्ध भगवान की मूर्ति स्थापित है। यह पानी नदी में जा रहा है। झरने के समीप तुम बाहर को निक-

लते हुए जिन शिला खण्डों को देखते हो, वस्तुतः ऊपर पहुँचने के लिये यह सोपान है। मैं यहां ठहरा हूँ, डोरजी तुम ऊपर जाकर द्वार खोलो। रीति वही है जिससे इस सुरंग के सब द्वार खुलते हैं। उसी भांति खूटियों को घुमाना होता है, और बुद्ध भगवान की मूर्ति अपने स्थान से हटकर बाहर निकलने का मार्ग दे देती है। सबसे ऊपर पहुँच जाने पर तुम्हें दोनों खूंटियाँ मिलेगी। भीतर से खोलने के लिये दाहिनी खूंटी का उपयोग करो, और बन्द करने के लिये बाँई खूंटी का। जाओ निर्भय होकर इस सोपान पर चढ़ जाओ।"

चिन आदेश पाकर दीवाल का सहारा लिये ऊपर चढ़ गई। उसने दाहिनी खूंठी को हटाने का प्रयत्न किया, किन्तु वह तनिक भी अपने स्थान से नहीं हिली। उसने अपनी सारी शक्ति लगा दी, फिर भी वह टस से मस नहीं हुई। वह निराश होकर मासपा से बोली—"गुरुदेव यह खूंठी अपनी जगह से नहीं हिलती?" मासपा ने पूछा—"क्या उसको तुमने खींचकर ऊंचे उठाया है?" चिन को अपनी भूल मालूम पड़ी। उसने लज्जित कंठ से उत्तर दिया—"गुरुदेव भूल हुई, क्षमा कीजिएगा।"

यह कहकर उसने उसे खींचकर ऊँचा किया। वह ऊपर बड़ी सरलता से चढ़ गई। अब उसने पूर्वोक्त विधि से दाहिनी ओर घुमाया। बुद्ध की प्रतिमा एक ओर सरक गई, और ठंडी वायु का प्रबल क्षोंका उस सुरंग में प्रविष्ठ हुआ। मासपा उसके लिए पहले से तैयार थे। वह मोमबत्ती को एक कोने में वायु के मार्ग से दूर ले जाकर हाथ की आड़ किये हुए थे।

मासपा ने पूछा—"द्वार खुल गया डोर जी?"

चिन ने प्रसन्न कंठ से उत्तर दिया—"हां, गुरुदेव, मैं अब ऊपर जाता हूँ। गुफा के द्वार पर चाँदनी मालूम होती है।"

"चलो, हम लोग भी वहां आते हैं।"

मासपा ने यशोधर को ऊपर चढ़ने का आदेश दिया, उसके पीछे-पीछे वे स्वयं चढ़े।,यशोधर ने देखा कि बुद्ध की प्रतिमा एक ओर हटी हुई है। वहाँ की दीवाल में भी वैसी ही दो खूँटियाँ लगी हुई हैं।

मासपा ने इस बार यशोधर से सुरंग का द्वार बन्द कराया। चिन गुफा के

द्वार पर उनके आगमन की प्रतीक्षा में खड़ी चाँदनी की छटा निरख रही थी जहाँ वह खड़ी थी, वहाँ से एक पगडन्डी नीचे काई-चू नदी तक गई हुई थी नदी में बहुत दूर तक रेत पड़ी हुई थी। लगभग आधे मील के आगे सर्प की भाँति बल खाती हुई नदी की धारा बह रही थी। पवन सनसनाता हुआ शरीर को शीत से रोमांचित कर रहा था।

मासपा ने उंगली से संकेत करते हुए कहा--"इस पगडडी से नदी पार करो। यह अति निर्जन स्थान है। इसके आगे दक्षिण दिशा में उन पहाड़ों के पीछे ची घाटी है, जिसको पार कर तुम खांपाओं के देश में पहुँच जाओगे जो सब भाँति सुरक्षित है। वहाँ अभी चीनियों का प्रवेश नहीं हुआ है।"

यशोधर ने प्रकृति निरीक्षण करते हुए कहा--यहाँ से यह प्रान्त कितना सुन्दर मालूम होता है !"

मासपा ने सगर्व कहा--"प्राकृतिक छटा के लिये हमारा देश सर्वोत्तम है। यह देवताओं की निवास-भूमि है। पार्वती के पिता हिमवान इसी प्रदेश के स्वामी थे, और कैलास शिखर भी इसी पूण्य भूमि में है। इस देश का विस्तार दक्षिण में समुद्र तक चला गया है, जहाँ कपिल वस्तु, राजगृही, गया तथा सारनाथ है, जो भगवान बुद्ध की क्रीड़ा भूमि रही है।"

यशोधर ने सविनय प्रतिवाद किया--"देव, अपराध क्षमा हो, जिन स्थानों का आपने नाम लिया है, वे सब भारत के नगर हैं तथा उसके विहार राज्य में स्थित हैं। सारनाथ उत्तर प्रदेश में है।"

मासपा ने गम्भीर वाणी में कहा--"वत्स यह विभाजन, राजनैतिक है, धार्मिक नहीं। धर्म के अनुसार यदि देशों का विभाजन हो, तो ये क्षेत्र इस देश-धर्म से सम्बन्धित होने के कारण-बुद्धिस्तान के क्षेत्र में ही आयेंगे। पृथ्वी का विभाजन दरअसल सागर करता है, पहाड़ तो पृथ्वी तल को सुरम्य बनाकर गौरव प्रदान करते हैं। वस्तुतः उनसे देश का विभाजन नहीं होता।"

"परन्तु पहाड़ सीमाये तो निर्धारित करते हैं।"

"हाँ, वे राजनीतिक सीमा अवश्य बनाते हैं। मैंने तो धार्मिक सीमा की

विवेचना की है। प्राचीन काल में बिहार-बंगाल का घनिष्ट सम्बन्ध तिब्बत से रहा था। शक्ति अथवा तान्त्रिक धर्म हमें इसी देश से प्राप्त हुआ है। हठयोग का ज्ञान भी इन्हीं देशों के धर्माचार्यों से मिला है। हम लोग अब पुनः संकटापन्न होने पर इसी देश में शरण लेंगे।"

"भारत की परम्परा है संकटापन्नों को शरण देने की। न मालूम आजतक कितने देशों के लोगों ने अपनी विपत्ति के समय यहाँ व्यतीत किये हैं, और वे सब हमारे देश में इस प्रकार घुल-मिल गये हैं, कि अब उनके स्वतन्त्र व्यक्तित्व का पता ही नहीं चलता। भारत ने इधर मनुष्यों को बराबरी का दर्जा देकर स्वदेशी बनाया है। अपनी रोटी में दूसरों को बराबरी का हिस्सा दिया है। कभी किसी देश पर आक्रमण कर किसी की स्वाधीनता अपहृत नहीं की। उसने उनके साथ ऐसा म तथा स्नेह पूर्ण व्यवहार किया है कि वे अपने देश को भूल गये हैं।"

"वत्स, मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ, तभी तो हम लोग भारत जाने का विचार कर रहे हैं। आओ, अब चलें। पौ फट रही है। अभी हमें अपने स्थान पर पहुँचने में लगभग आधा घन्टा लग जायगा, तब तक प्रातःकाल हो जायगा।

यह कह कर मासपा ने गुफा में प्रवेश किया। इस बार उन्होंने यशोधर से नीचे सुरंग में जाने का मार्ग खुलवाया। सुरग में पहुँच कर उन्होंने उसी से उसका मुहाना भी बन्द करवाया।

जब वे सब अपने-अपने कक्ष में पहुँचे, तब पक्षी चारण की भाँति बोलने लगे थे, और पूर्व दिशा से प्रातःकाल चारण की भाँति सूर्य भगवान के आगमन की सूचना देता हुआ शनैः शनैः पश्चिम की दिशा की ओर अग्रसर हो रहा था।

चिन की समग्र रात्रि जागते हुए कटी थी। वह क्लान्त होकर अपनी शैय्या पर गिर पड़ी, और क्षण मात्र में गहरी निद्रा में निमग्न हो गई। यशोधर स्वभावानुसार प्रातकृत्य में सलग्न हो गया।

५

विनोद जब कई महीनों के अनवरत परिश्रम और खोज के पश्चात् चिन का पता लगाने में असमर्थ रहा, तब वह उसकी ओर से निराश हो गया। अकस्मात् एक दिन वह ढूंढ़ते-ढूंढ़ते महिला विद्यालय की ओर जा पहुँचा, जहाँ चिन की सखी, तथा अध्यापिका चन्द्रकला शिक्षिका थी। चिन से वह चन्द्रकला की प्रशंसा बहुत बार सुन चुका था। उसके मन में उससे मिलकर चिन की अन्य सखियों के सम्बन्ध में जानने की उत्कन्ठा सहसा जाग्रत हुई। किन्तु उसका मन उस विद्यालय के अन्दर प्रवेश करने में आगा-पीछा करने लगा। चन्द्रकला से उसका कोई विशेष परिचय नहीं था। कई महीने पहले बुद्ध जयन्ती के अवसर पर उसने उसे अपनी माँ के पास चिन के साथ देखा-भर था, हलाँकि चिन सदैव प्रसंग उपस्थित होने पर उसके गुणों तथा मृदुल स्वभाव की प्रशंसा करते अघाती न थी। उसके मन ने कहा कि शायद चिन ने अपने गुप्त छिपने के स्थान से उसके साथ पत्र व्ययहार किया हो, और उससे कोई सुराग मिले। फाटक पर पहुँच कर, वह खड़ा हो गया, और भीतर जाने का कोई बहाना सोचने लगा। उसे वर्तमान स्थिति का कोई ज्ञान नहीं था। उसे नहीं मालूम था कि चन्द्रकला अभी तक इस विद्यालय में अध्यापिका है, या कही अन्यत्र चली गई है। वह चन्द्रकला को इस समय पहचान भी नहीं सकता था। उसकी आकृति की केवल धुँधली छाया उसके मस्तिष्क में थी। वह यह भी न सोच पा रहा था कि कैसे वह अपना परिचय उसको देगा। वह इसी प्रकार के विचारों की उधेड़बुन में था कि एक महिला रिक्शे से उतर कर विद्यालय के फाटक पर आई और विनोद को भीतर झांकते-ताकते देखकर पूछ बैठी—"महाशय जी, आप यहाँ क्यों खड़े हैं, और क्या ताक झाँक-कर रहे हैं ?"

विनोद की विचार-तन्द्रा टूटी। चश्मा धारिणी, प्रौढ़ तथा अप-टू-डेट साज-सज्जा से मण्डित महिला के इस आकस्मिक प्रश्न से वह कुछ घबड़ा गया, और शून्य दृष्टि से उसको देखने लगा।

महिला ने तुरन्त उत्तर न पाकर वक्र दृष्टि से पूछा--आप कौन हैं, कृपया अपना परिचय देने का कष्ट करें। यहाँ क्यों ताक-झाँक लगाये हैं?"

विनोद को स्पष्ट आभास मिला कि महिला उसे शंकित दृष्टि से देख रही है। वह कुछ और संकुचित हो गया। वह कोई उपयुक्त उत्तर सोचने लगा।

महिला ने इस बार अधीर होकर पूछा--"आप की शंकित दृष्टि बता रही है कि आप किसी सदुद्देश्य से यहां नहीं खड़े हैं। मैं इस विद्यालय की प्रधान अध्यापिका हूँ। आप की गतिविधि से मुझे सन्देह होता है। कृपया अपना परिचय दीजिए।"

प्रत्यक्ष आरोप सुनकर विनोद ने घबराहट के साथ कहा—"आप इस विद्यालय की प्रधान अध्यापिका हैं, जानकर प्रसन्नता हुई। मेरा नाम विनोद है। मैं यहाँ की कम्यूनिस्ट ार्टी का मंत्री हूँ, और अपने व्यक्तिगत कार्य से इस विद्यालय की अध्यापिका सुश्री चन्द्रकला जी से मिलना चाहता हूँ।"

महिला का वक्र दृष्टि से देखना अभी बन्द नहीं हुआ था। उसने पूछा--"आप एक जिम्मेदार संस्था के मंत्री हैं, आप विद्यालय में प्रवेश कर चन्द्रकला जी से मिल सकते थे। इस तरह ताक-झाँक करना संस्था के लिए घातक सिद्ध हो सकता है।"

"वस्तु स्थिति यह है कि मुझे यह ठीक नहीं मालूम कि चन्द्रकला जी इसी विद्यालय में पढ़ाती हैं, अथवा वह अब भी यहाँ हैं या नहीं?"

"तब आप चन्द्रकला जी से परिचित नहीं हैं। क्या चन्द्रकला जी आपको जानती हैं?"

"कोई डेढ़ वर्ष पहले, एक बार उनको देखा था, जब वह अपनी एक चीनी शिष्या के साथ मेरे घर गई थीं।"

"आप की कहानी में अनेक अन्तर्कथायें निकलती आती हैं। आइये अन्दर चलिए।"

यह कह कर महिला विद्यालय के परकोटे में प्रविष्ट हुई। विनोद उसके पीछे-पीछे अपराधी की भाँति चलने लगा।

अपने कमरे में पहुँच कर उसने विनोद को बैठने के लिए संकेत किया, और स्वयं अपने स्थान पर बैठकर उस दिन की डाक देखने लगी।

इसके पश्चात उसने टेलीफोन उठाकर एक्सचेन्ज को पुलिस हेड क्वार्टर से तार का सम्बन्ध जोड़ने का अदेश दिया। जब दूसरा सिरा जुड़ा गया, और प्रश्न हुआ कि वह किससे बात करना चासती है, तब प्रधान अध्यापिका ने कहा—मैं महिला विद्यालय की प्रधान अध्यापिका डाक्टर स्नेहलता बोल रही हूँ। कृपा कर गुप्त जी डिप्टी सुपरिन्टेण्डेण्ट पुलिस को फोन दे दीजिये।"

उनके पूछने पर उसने कहा—"यदि आप मेरे विद्यालय में आने का कष्ट करें, तो बड़ा अच्छा हो।"

गुप्त जी ने पूछा—"कहिए, क्या काम है ?"

स्नेहलता ने कनखियों से विनोद को देखते हुये उत्तर दिया—"एक सज्जन यहां संदिग्ध अवस्था में पकड़े गए हैं। इधर कई दिनों से इस विद्यालय की लड़कियों को कुछ नवयुवक छेड़ा करते हैं, उनकी शिकायतें आप के पास भेज चुकी हूँ। आप कृपया आकर इन सज्जन से पूछ-ताँछ करने का कष्ट करें।"

"अभी दस मिनट के अन्दर आता हूँ। आप उनको रोके रहिए।"

स्नेहलता ने धन्यवाद देकर टेलीफोन रख दिया।

वार्तालाप सुनते हुये विनोद का चेहरा लाल हो रहा था। उसके मानसिक भावों को जानने के उद्देश्य से स्नेहलता ने कहा—"आप यहां बैठिये। मिस्टर गुप्त को मैंने बुलवाया है, उनको सन्तुष्ट करने के बाद आप जाइयेगा।"

फिर एक कागज के टुकड़े पर चन्द्रकला को आफिस बुलाने का आदेश लिखकर चपरासी को बुलाकर दिया।

विनोद सब देखता रहा, किन्तु बोला कुछ नहीं। स्नेहलता ने अन्य कामों की ओर ध्यान दिया। थोड़ी देर में चन्द्रकला ने चिक उठाकर भीतर आने की

अनुमति माँगी। स्नेहलता की अनुमति पाकर जब वह भीतर प्रविष्ट हुई, तब विनोद नें उसे पहचान लिया, और कुछ बोलना चाहा; किन्तु स्नेहलता ने उसे चुप रहने का संकेत करते हुए चन्द्रकला से पूछा—"क्या आप इन महाशय को जानती हैं ?"

चन्द्रकला ने कई महीने पहले विनोद को सरसरी दृष्टि से देखा था, इसलिए वह उसे पहचानने में असमर्थ रही।

उसने सिर हिलाते हुए कहा—"यह सौभाग्य मुझको प्राप्त नही है।"

स्नेहलता मुस्कराई, और मन ही मन सन्तुष्ट हुई। उसे अब विश्वास हो गया कि विनोद एक आवारा नवयुवक है, जो किसी दुरभिसंधि से यहां आया था।

वह विजय दर्प से विनोद को देखती हुई बोली—"यह आप के सामने चन्द्रकला जी उपस्थित हैं। आप के सम्मुख कह रहीं हैं कि वह आपको नहीं पहचानती। फिर कैसे आप इनसे मिलने आये थे ?"

विनोद ने धीरता के साथ कहा—"यह तो मैं पहले ही बता चुका था कि कई महीने पहले बुद्ध-जयन्ती के अवसर पर यह अपनी एक चीनी शिष्या सुश्री चिनचुन के साथ मेरी मां से मिलने मेरे घर गई थी, मैंने तब इनको सरसरी दृष्टि से देखा था। इसके बाद मैं न इनसे मिला, और न इनको देखा ही ; इसीलिये मैं इनसे मिलने में विद्यालय के द्वार पर खड़ा आगा-पीछा कर रहा था, कि आप आ गईं।"

चिनचुन के साथ जाने की घटना का उल्लेख करने से चन्द्रकला को वह पुरानी घटना स्मरण हो आई जब उसने बुद्ध-जयन्ती के अवसर पर चीनी कुमारियों की भिक्षुणी-दीक्षा के समारोह पर मणिमाला को बातचीत करने के लिए मना किया था, और जब उसे ज्ञात हुआ कि वह संसत्सदस्या तथा प्रसिद्ध क्रान्तिकारिणी है, तो क्षमा याचना के लिए उनके घर पर चिनचुन के साथ गई थी।

उसने विनोद को गौर से देखते हुए कहा—"मैं तो संसत्सदस्यता श्रीमती मणिमाला जी के घर चिन के साथ गई थी, किन्तु अविनाश बाबू के अतिरिक्त

मैंने किसी अन्य पुरुष को नहीं देखा था ।"

विनोद ने रक्ताभ कपोलों से कहा—"मैं उनका बड़ा पुत्र हूँ मेरा छोटा भाई यशोधर भिक्षु की दीक्षा लेकर आजकल तिब्बत में है ।"

"हाँ याद आया, चिन ने अपने एक पत्र में आपका जिक्र किया था । क्या आप का नाम विनोद बाबू है ?"

"हाँ मेरा नाम विनोद है । चिन आज लगभग डेढ़ वर्ष से लापता है । उसी के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए आप से मिलना चाहता था ।"

इसी समय डिप्टी सुपरिन्टेण्डेण्ट श्री गुप्त ने चिक उठाकर कमरे में प्रवेश किया । स्नेहलता ने उठकर सम्मान प्रदर्शित किया, और कहा–"आइये, अपने अपने शब्दों का यथावत् पालन किया । दस मिनट के अन्दर आप आ गये ।"

श्री गुप्त ने उड़ती हुई नजर सब पर डाली । विनोद को पहचान कर पूछा–"कहिए, विनोद बाबू, आप यहाँ कैसे ? कम्युनिस्टों ने क्या बालिकाओं को भी अपने दल में भर्ती करने की कोई योजना बनाई है ?" यह कह कर वह हँसने लगे ।

फिर स्नेहलता से पूछा–"कहिये, आपका वह आसामी कहाँ है, जिससे पूछ-ताछ करने के लिए आपने मुझे बुलाया है ।"

डाक्टर स्नेहलता अब बड़ी द्विविधा में पड़ी । विनोद के सम्बन्ध में उसकी धारणा गलत साबित हुई । अविनाश बाबू तथा मणिमाला के नाम से वह भलीभाँति परिचित थी, हाँलांकि उनको देखने या उनसे मिलने का कोई सुयोग नहीं आया था ।

उसने विनोद की ओर संकेत करते हुये कहा—"आप शायद इन सज्जन को पहचानते हैं ?"

श्री गुप्त ने उत्तर दिया—"हाँ, बखूबी । भला काशी का कौन आदमी इनको तथा इनके माता-पिता, अविनाश बाबू तथा मणिमाला जी को न जानता होगा ! आप यह सब क्यों मुझसे पूछती हैं ? क्या आप इनको नहीं जानतीं ? क्या आप ने इन्हीं से पूछ-ताँछ के लिये मुझे बुलाया था ।"

विनोद ने हँस कर कहा—"जो हाँ, मेरी ही शिनाख्त के लिये प्रधान अध्यापिका जी ने आप को कष्ट दिया है। बात यह है कि एक चीनी भिक्षुणी जो हमारी कम्युनिष्ट पार्टी की सदस्या थी, अकस्मात काशी से लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व अन्तर्धान हो गई। नहीं जानता कि वह स्वेच्छा से चली गई हैं, या किसी ने उसको हत्या कर दी है। हत्या की जाती तो, लाश मिलना जरूरी था।"

श्री गुप्त ने बीच में टोक कर कहा—"हमारे पुलिस दफ्तर में कोई रिपोर्ट किसी चीनी भिक्षुणी के गुम होने की नहीं है। सम्भव है कि कोई गुप्त प्रेम का मामला हो, और उसने गंगा में डूब कर आत्महत्या कर ली हो।"

"अब तो ऐसा ही कुछ निष्कर्ष निकालना होगा। चिन इसी विद्यालय की छात्रा थी, और चन्द्रकला जी के साथ उसकी मित्रता थी। मैं आज अकस्मात् इधर से जा रहा था कि विद्यालय की नाम-पट्टिका दिखाई दी। तब याद आया कि शायद चन्द्रकला जी को उसका कुछ हाल मालूम हो, और शायद उसने कोई पत्र-व्यवहार इनसे किया हो। किन्तु चद्रकला जी से मैं विशेष रूप से परिचित न था। केवल एक बार इनको देखा था, किंतु चिन से इनकी तारीफ सुनता था। मिलूं या न मिलूँ, इसी विचार में था कि प्रधान अध्यापिका जी आ गईं, और मुझे उचक्का समझ कर प्रश्नोत्तर के लिए ले आईं।"

श्री गुप्त ठठाकर हँस पड़े। स्नेहलता मन ही मन लज्जित होकर नीचे देखने लगी।

श्री गुप्त ने हँसते हुये कहा—"वाह स्नेहलता जी, खोदा पहाड़ और निकली चुहिया!"

स्नेहलता ने अपनी झेंप मिटाने के उद्देश्य से कहा—-गलती इन्सान से ही होती है। विनोद बाबू को संदिग्ध अवस्था में देखकर मुझसे गलती हो गई, आशा है कि वह इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे।"

विनोद ने उठते हुए कहा—"आप का सन्देह निवृत्त हो गया, अब तो जाने की अनुमति है न?" फिर चन्द्रकला से कहा—"यदि कभी चिन का

समाचार मिले, तो कृपा कर सूचित करने का कष्ट करें।"

स्नेहलता ने उठते हुए कहा—"जब तक आप क्षमा नहीं करेंगे, तब तक जाने की अनुमति नहीं मिलेगी।"

"इस औपचारिकता की आवश्यकता नहीं है। मुझे परम सन्तोष है कि आप अपनी अभिरक्षितों की प्रतिष्ठा के प्रति जागरूक हैं।"

चन्द्रकला ने विनोद से कहा—"चिन के सम्बन्ध में बातें करने के लिए आपके घर आऊँगी, आप किस समय घर पर मिलते हैं ?"

"घर में मिलने का समय कुछ निश्चित नहीं है, मेरा अधिकांश समय पार्टी के कार्यालय में बीतता है। वहां आप अपनी सुविधानुसार मिलसकती हैं।"

"घर पर जाने से आप की माता जी से भी साक्षातकार हो जाता। बहुत दिनों से उनसे मिली नहीं हूं।"

स्नेहलता बीच में बोल उठी—"चन्द्रकला जी, जब आप विनोद बाबू के घर जाएँ, तम मुझे भी अपने साथ ले चलिएगा। मणिमाला जी के दर्शनों की बड़ी अभिलाषा है।"

श्री गुप्त ने हँसते हुए कहा—"आप शायद विनोद बाबू की माता जी का विख्यात नाम नहीं जानतीं ! वह काशी में 'भाभी' के नाम से परिचित है, और अविनाश बाबू, 'भैया' के नाम से।"

स्नेहलता—'अरे ! क्या भाभी और विनोद बाबू की माता एक ही व्यक्ति हैं ?"

श्री गुप्त—"जी हाँ।"

स्नेहलता—"उनका नाम मैंने बहुत सुना है। जब मैं पढ़ती थी, तब उनके साहस की कहानियाँ सुना करती थीं। विनोद बाबू, मैंने आपके प्रति बड़ा अन्याय किया है !"

श्री गुप्त—"कहावत है कि जिसका परिणाम सुखद है, वह सब ठीक है। आप अपने मन में कोई मैल न लाइए, विनोद बाबू बड़े सहृदय व्यक्ति हैं, अन्य कम्यूनिस्टों से सर्वथा भिन्न हैं।"

स्नेहलता—"बेशक, यदि विनोद बाबू की जगह कोई दूसरा अति साधारण

कोटि का कम्यूनिस्ट होता, वह तो नीचे की धरती ऊपर उठा लेता।"

श्री गुप्त ने विदा माँगते हुए कहा—"अच्छा अब विदा दीजिए स्नेहलता जी ! आइए विनोद बाबू, मेरे पास पुलिस की गाड़ी है। जहाँ कहियेगा, वहां पहुँचा दूँगा।"

"चलिए, जब आप पुलिस दल-बल के साथ आये हैं, तब खाली कैसे जांयगे ? औपचारिक गिरफ्तारी न सही, स्नेह की गिरफ्तारी हुई। बाहर बैठा चपरासी तो यही समझेगा कि पुलिस किसी लोफर—उचक्के को गिरफ्तार करके ले गई !" विनोद के साथ सब हँसने लगे।

चन्द्रकला ने कहा—"और यदि कहीं आस-पास में कोई प्रेस रिपोर्टर हो, अथवा आ जाय, तो स्थानीय पत्रों के सांध्य संस्करण की सुर्खियां होंगी—"कम्युनिस्ट पार्टी के प्रधान मन्त्री की गुन्ड़ागर्दी में गिरफ्तारी।"

पुनः सब हँसने लगे।

श्री गुप्त ने विनोद का हाथ पकड़ कर खींचते हुए कहा—"चलिए विनोद बाबू, आज आपने अच्छा मजाक किया !"

स्नेहलता और चन्द्रकला ने उन्हें नमस्कार कर विदा दी। उनके जाने के बाद स्नेहलता ने कहा—कभी-कभी कैसी भोंड़ी भूल हो जाती है!"

चन्द्रकला ने उसका परिताप दूर करने के उद्देश्य से कहा—"भूल से भलाई भी तो पैदा होती है। इसी बहाने आप का परिचय विनोद बाबू से हो गया, और भाभी जी से भविष्य में होने की संभावना उत्पन्न हुई।"

स्नेहलता ने शिर हिलाकर अनुमोदन किया।

६

चिन के गुम हो जाने से 'बृहत्तर चीन संघ' के कार्यकर्ताओं को महान

आश्चर्य हुआ था। काँग द्वारा नियुक्त गुप्तचर विभाग के संचालक को-सिंग की सारी युक्तियाँ विफल हुई और चिन का कोई सुराग न मिला। आत्महत्या के अतिरिक्त कोई अन्य उचित निष्कर्ष नहीं निकलता था। को-सिंग ने कांग की चिन के प्रति अनुरक्ति, तथा उसको गिरफ्तार कर कमरे में बन्द करना, तथा उसकी मकान के गुप्त मार्ग से भाग निकलने की कथा बिल्कुल गुप्त रखी थी, यहाँ तक कि कमरे का गिराया जाना भी किसी को विदित नहीं होने पाया। उसने उस बड़े कमरे को दो छोटे कमरों में विभक्त कराया, तथा इसी प्रकार के छोटे-छोटे अन्य कई परिवर्तन कराए। कांग का विश्वासपात्र होने से कोई उसके कार्यों का प्रतिवाद करने का साहस नहीं करता था। उसके उद्धत, तथा उच्छृंखल होने के कारण उससे कोई आलाप भी नहीं करता था। उसका मदिरा-सेवन परिधि के बाहर निकल गया था। अब वह चौबीसों घन्टे नशे में धुत रहता, साथ ही उसकी अन्य पाशविक वृत्तियाँ भी उभर कर ऊपरी सतह पर आ रही थीं। वह सदैव जा-बेजा बोला करता, इसलिए प्रायः सभी उससे दूर-दूर रहते थे।

प्रायः विश्वस्त नौकर अपने स्वामी का अनुकरण करने गौरव-बोध करते हैं। को-सिंग भी काँग के पदांकों पर चलने का विचार करने लगा। कांग ने गुप्तचरों की प्रधान चिन को वरण किया था, इसलिए को-सिंग को यह सर्वथा उचित जान पड़ा कि वह उसकी उत्तराधिकारिणी ली-सूंग को अपनी प्रेयसी बनावे।

ली-सूंग पर वह डोरे डालने लगा। किन्तु उसकी दुरभिसन्धि को समझते ली को देर न लगी। वह अत्यन्त सावधानी से रहने लगी। वह जब कभी भुतहे मकान में उसे बुलाता, वह हो-चीन या चाउचिन अथवा दोनों को साथ लेकर उससे मिलने जाती। को-सिंग इससे बहुत कुढ़ता था, परन्तु स्पष्ट रूप से कुछ कह भी नहीं सकता था। जब वह एकान्त में बात करने की इच्छा प्रकट करता, तब उसको किसी कमरे में बैठाकर स्वयं उससे बात करने के लिए एकान्त कमरे में चली जाती। विशेष कुछ कहने को होता न था, इसलिए इधर-उधर की अनर्गल बातें जब वह करने लगता, तब लीसूंग विनय पूर्ण शब्दों में

किसी काम का बहाना बनाकर वहाँ से चली आती थी। इससे उसे और भी कुढ़न होती थी।

को-सिंग के व्यवहार से हो-चीन तथा चाउचिन भी बहुत असन्तुष्ट रहते थे। ली-सूंग ने उसको को-सिंग की दुरभिसन्धि का आभास दे दिया था, इससे वे दोनों सतर्कता से उसकी रक्षा करते थे। ली-सूंग भी आत्मरक्षा के लिए रिवाल्वर और छुरा अपने साथ रखती थी। हो-चीन तथा चाउ-चिन की शिष्यता में उन दोनों अस्त्रों के प्रयोग में उसने पटुता भी प्राप्त कर ली थी। वह चीनी और जापानी व्यायामों द्वारा अपने शरीर को दृढ़ तथा लचीला बना रही थी। उसे आशंका थी कि एक न एक दिन उसकी भिड़न्त को-सिंग के साथ होगी, और वह उसके लिए अपने को पूर्णतया तैयार कर रही थी।

यद्यपि कोई स्पष्ट सूत्र नहीं मिला था, तथापि ली-सूंग शंका करने लगी थी कि उसकी सखी चिन के गुप्त होने में काँग का प्रत्यक्ष, अथवा अप्रत्यक्ष हाथ अवश्य है। काँग से मिलने के लिए चिन उससे मिलकर आई थी, और यदि वह बीच में गायब नहीं हो गई, या किसी षड़यन्त्र से गुम नहीं कर दी गई, तब वह अवश्य कांग की जानकारी में गायब की गई है, अथवा उसकी इच्छा के विरोध में वह या तो मारी गई, अथवा किसी दुर्घटना में फँसकर मर गई। को-सिंग द्वारा बार-बार उसकी आत्महत्या पर जोर देने का अर्थ वह यही लगाती थी। उसने अपना सन्देह चाउ तथा हो-चीन पर भी प्रकट कर दिया था। परिस्थितियों के अध्ययन से वे दोनों भी इसी परिणाम पर पहुँचते थे। इसीलिए जब ली-सूंग को को-सिंग की नियत बिगड़ने का आभास मिला, उसने चाउ को, जिसे वह पिता के सदृश मानती थी, अपनी आशंका बताई। उसने हो-चीन के साथ परामर्श कर उसकी रक्षा करने का बचन दिया और एकबार काँग से भी टक्कर लेने का इरादा कर लिया।

विनोद ने चिन के गुम होने के बाद, अपना बंगाली टोला वाला मकान छोड़ दिया था, और चीनी नौकरों को, जो वृहत्तर चीन संघ के सदस्य थे, इनाम देकर बरखास्त कर दिया। वे सब ली-सूँग के साथ चाउ के घर में रहने और उसकी दूकान में काम करने लगे थे। विनोद अपना सब सम्बन्ध

उन लोगों से तोड़ कर कम्युनिस्ट पार्टी के संचालन में जुट गया। चाउ और हो-चिन से उसकी भेंट प्रायः पार्टी के कार्यालय में होती थी। कांग की योजना के अनुसार चिन का स्थान ली-सूँग को ग्रहण करना था, परन्तु विनोद के साथ विश्वासघात करने को उसका मन गवाही न देता था। वह उस ओर से उदासीन हो गई। जब कांग ने अपने एक पत्र में विनोद का हाल पूछा, तब वहाँ से जो रिपोर्ट गई उससे वह बहुत असन्तुष्ट हुआ, तथा अपने दूसरे पत्र में ली-सूँग को उससे सम्बन्ध स्थापित करने की ताकीद की। चाउ ने विनोद को अपने घर ले चलने का बहुत प्रयत्न किया, वह सदैव कोई न कोई बहाना बनाकर टालता रहा। जब विनोद किसी प्रकार चाउ के घर नहीं गया, तब ली-सूँग को स्वयं पार्टी के कार्यालय में आना पड़ा। विनोद उसकी ओर आकर्षित नहीं हुआ। वहाँ पर इतने व्यक्तियों का आवागमन हुआ करता था, जिससे कोई अवसर ली को अपनी माया फैलाने का नहीं मिलता था। एक दिन ली ने विनोद को चाय पीने का निमन्त्रण दिया, जिसे उसने स्वीकार नहीं किया। एक दिन वह उससे मिलने के लिए उसके घर गई, परन्तु घर में वह नहीं मिला। मणिमाला अब अधिकतर दिल्ली रहती थी, और अविनाश बाबू भी प्रायः उसके साथ रहते थे। गायत्री से अवश्य उसकी भेंट हुई, किंतु उनके साथ उसकी पटरी नहीं बैठी। गायत्री इन दिनों परदेशियों से बहुत घबड़ाती थी, तथा उनको अधिक मुंह न लगाती थी। उसने दो तीन मिनट बैठाकर तथा साधारणरूप से सत्कार कर उसे विदा कर दिया। ली अब स्वतः विनोद की ओर आकर्षित होने लगी। उसका मन स्वयं गुप्तचरी करने के विरुद्ध हो गया। वह चिन के प्रति विनोद के प्रेम की गहराई जानती थी, इसलिए वह उसकी अधिक कद्र करती थी। एक दिन उसने अपनी कठिनाइयां चाउ से वर्णन की जिन्हें सुन कर उसने कहा कि विनोद स्वयं स्वेच्छा से अपनी योजना के अनुसार काम कर रहा है, इसलिए उसे छेड़ना ठीक नहीं है। ली ने आश्वस्त होकर सांस ली।

विनोद में कुछ ऐसा आकर्षण था, जो बार-बार ली को उसकी ओर घसीटता था। वह धीरे-धीरे उसे स्वयं प्यार करने लगी। अपनी हार से वह कभी

कभी खीझ उठती थी । चिन के प्रति सखीत्व तथा स्नेह के भाव ईर्ष्या में परिणित होने लगे । वह चिन से किसी भाँति उन्नीस नहीं थी । यदि उसमें कोई कमी थी तो यह कि वह चंचल नहीं थी । वह कुछ सौम्य और शान्त प्रवृत्ति की थी। उसको कृत्रिमता से आन्तरिक घृणा थी, इसीलिए उसमें उन हावभावों का अभाव था, जो चिन में प्रचुरता के साथ थे ।

जब से उसे को-सिंग की बदनीयती का आभास मिला, तबसे वह विनोद की ओर अधिक आकर्षित होने लगी । इसका कारण यह था कि विनोद को-सिंग की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली था, तथा उसके माता-पिता का मान-सम्मान कहीं अधिक था । मणिमाला इन दिनों डिप्टी मिनिस्टर हो गई थी, और गृह विभाग उसके अधिकार में था । कभी-कभी वह यह भी सोचती थी कि यदि को-सिंग ने उस पर अधिक जोर-जब्र किया, तो वह वृहत्तर चीनसंघ का भंडाफोड़ कर मणिमाला के संरक्षण में चली जायगी । इसीलिए वह चिन की भाँति विनोद को झूठे प्रेम-प्रपंच में बाँधना नहीं चाहती थी । जिस व्यक्ति का बहुत ध्यान किया जाता है, जिसकी चर्चा मन अपने आप करने लगता है, उसीके प्रति प्रेम का अंकुर जन्म लेता है तथा उत्तरोत्तर मनन और ध्यान से वह पुष्ट होकर पल्लवित होने लगता हैं । प्रायः नित्य ही विनोद का प्रसंग उसके घर में उठता था, और रात्रि के एकान्त में वह उसके सम्बन्ध में विचार भी करती थी । इस सतत विचार व मनन से उसमें अनुरक्ति उत्पन्न होती गई थी । इसके अतिरिक्त विनोद का कुछ ऐसा पौरुषेय व्यक्तित्व था, जो नारी मात्र को आकर्षित करता था । ली-सूँग जितना उसके सम्बन्ध में सोचती थी उतना ही उसका मनाम्बर भीग कर भारी होता था । अपने प्रति विनोद की अन्यमनस्कता भी उसके आकर्षण का निवारण नहीं कर सकी । निषिद्ध वस्तुओं की ओर आकर्षित होना मानवस्वभाव की चंचलता है । अतएव विनोद जितना उससे दूर भागता, उतना ही उसके समीप जाने के लिए उनका मन-तुरंग अधीर होता रहता था । कभी-कभी मानव स्वयं अपने मन को समझ नहीं पाता । विवेक कुछ और कहता है, तथा मन कुछ और । उस समय व्यक्ति की स्थिति बड़ी कठिन हो जाती है । कुछ ऐसी ही दशा ली-सूँग की हो

रही थी।

मनुष्य अपने मन की बात और विशेषकर अपनी व्यथा कहने के लिए कोई अन्तरंग साथी ढूँढ़ता है। वह साथी भी अपनी जाति का होना चाहिए, नारी अपने मन के कपाट किसी पुरुष के सामने, चाहे वह उसका कितना ही घनिष्ट क्यों न हो, नहीं खोल सकती। पुत्री अपनी माता से ही अपनी मानसिक पीड़ा कहती है, पिता से नहीं। ली-सूँग भी अपनी जाति की किसी सहेली को ढूँढ़ती थी, चिन के गुम हो जाने से वह स्थान रिक्त था। किसी अन्य गुप्तचर के साथ उसकी घनिष्टता नहीं थी, और न परिस्थितियों तथा को-सिंग के स्पष्ट निषेध से कोई उसके पास फटकता था। वह सर्वथा अपने को अकेली पाती थी। उसका मन घूम फिरकर पुनः अपने विचारों की कुण्डलिका में समा जाता; जहाँ केवल विनोद से सम्बन्धित मृदुल भावनाओं की असीम राशि एकत्रित रहती थी।

ऐसे ही ऊहा-पोह में उसके दिन बीतने लगे, किन्तु विनोद का प्रतिबिम्ब जो उसके मानस पटल पर खिंच चुका था, उसके मिटाये न मिटा, बल्कि वह उत्तरोत्तर उज्ज्वल तथा प्रखर होने लगा।

एक दिन वह अपने मकान के छज्जे पर बैठी पथारोहियों को अन्यमनस्क भाव से देखती हुई, विनोद के सम्बन्ध में सोच रही थी। उसकी दृष्टि सहसा राजपथ पर जाती हुई चन्द्रकला पर पड़ी। ली-सूँग उससे भलीभाँति परिचित थी, क्योंकि वह भी चिन के साथ उसके विद्यालय की छात्रा थी। उसने उसे पुकार कर उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। ली-सूँग के बुलाने पर वह ऊपर गई।

ली-सूँग ने जीने पर उसका स्वागत करते हुए कहा—"वाह, बहिन जी आप तो हम लोगों को बिल्कुल भूल गई!"

चन्द्रकला ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"यही उपालम्भ मैं आप को भी दे सकती हूँ। जब तक चिन थी, तब तक आपके भी दर्शन होते थे, और उसके अन्तर्धान होने से आपके दर्शनों का भी सौभाग्य जाता रहा।"

उसका हाथ पकड़ कर वह बैठके में ले आई, और सोफा पर उसे बैठाकर

स्वयं उसकी बगल में बैठती हुई बोली—"चिन के गुम हो जाने से हम लोग बड़ी विपत्ति में पड़ गए हैं। मेरी तो शामत ही आ गई है।"

"कुशल तो है! क्या बात है?"

"एक दुख हो तो बताऊँ, मैं अपने चारों ओर विपत्ति ही विपत्ति देखती हूँ।"

"जब इतनी विपत्तियाँ हैं, तब उनमें से एक तो बता ही सकती हो।"

"चिन के न होने से मैं बहुत अकेलापन महसूस करती हूँ।"

"क्यों, तुम्हारी साथिनें बहुत सी भिक्षुणियाँ हैं, अकेली क्यों हो?"

"उनसे मेरी पटरी नहीं बैठती। इसके अतिरिक्त हमें एक-दूसरे से मेल-मिलाप बढ़ाने की मनाही है।"

'ऐसे कठोर नियम तो किसी संस्था में नहीं होते। सामाजिक प्राणी होने से मनुष्य नितान्त एकाकी जीवन नहीं व्यतीत कर सकता।"

"किन्तु समाज का त्याग करने के बाद हीं भिक्षुणी की दीक्षा मिलती है।"

"जन साधारण का समाज त्याग कर वह संघ के समाज में प्रवेश करती है, जिसके ध्येयों में अन्तर है अवश्य, परन्तु है वह भी समाज ही।"

"उस समाज में मेरी कोई आस्था नहीं है।"

"फिर दीक्षा क्यों ली थी?"

"इसका उत्तर मेरे पास नहीं है।"

"स्वेच्छा से नहीं, क्या किसी के दबाव से ली थी?"

"सत्य तो यही है, किन्तु आप किसी से यह व्यक्त न कीजिएगा। मैं आपको चिन की भाँति प्यार करती हूँ।"

"मैं कभी विश्वासघात नहीं करूँगी। आप निश्चिन्त रहिए। किसके दबाव से आपने दीक्षा ली थी?"

"आज नहीं, किसी अन्य दिन बताऊँगी।"

"जब मेरी परीक्षा ले लोगी?"

"ऐसी बात नहीं, किन्तु यह स्थान उपयुक्त नहीं है।"

"तब किसी दिन मेरे घर पर चाय पीने के लिए आइये।"

"अवश्य आऊँगी। मेरा मन यहाँ बहुत ऊबता है।"

"जब आपका मन ऊबे, तब आ सकती हैं। विद्यालय के घंटों के अतिरिक्त मैं बिल्कुल स्वतन्त्र हूँ। हां कभी-कभी घूमने चली जाती हूँ। आप के आने-जाने से साथ-साथ चला करूँगी।"

"आपका प्रस्ताव स्वीकार करती हूँ।"

"तब फिर आप कल संध्या समय आवेंगी ?"

"अवश्य।"

"यह कह कर चन्द्रकला ने विदा ली। ली-सूंग पुन: अपने विचारों में लीन हो गई।

७

चन्द्रकला के मिल जाने से डूबती हुई ली को सहारा मिला। उसे एक ऐसा व्यक्ति तो मिला, जिससे वह अपनी कठिनाइयों को कहकर उनके निरांकरण के लिए दिल खोल कर परामर्श कर सकती थी। उसकी सहृदयता से वह भली-भांति परिचित थी, किन्तु उसके विषय में वह केवल इतना ही जानती थी कि वह संसार में अकेली है, और उसका कोई सगा—सम्बन्धी नहीं है, तथा विद्यालय के छात्रावास की अधीक्षिका हैं। उसके निर्मल व्यवहार से सभी सन्तुष्ट रहते हैं, और अपने तन, मन तथा धन से अनेक सम्बलहीन छात्राओं की सहायता में वह तत्पर रहती हैं। वह विद्यालय की छात्राओं की कई संस्थाओं की संचालिका है तथा उनमें देश, समाज तथा साहित्य की सेवा के प्रति रुचि उत्पन्न करने में सहयोग देती है।

एक दिन यही सब सोचते-सोचते यकायक उसकी दृष्टि विनोद पर पड़ी जो शिर झुकाये रास्ते-रास्ते जा रहा था। उसको देखते ही उसका मन अधीर हो गया। मार्ग पर अनेक नर-नारी जा रहे थे। नारी होने के कारण उसे किसी पुरुष को बुलाकर अपनी ओर आकर्षित करने का साहस नहीं हुआ, किंतु ऐसा स्वर्ण अवसर वह हाथ से जाने देना नहीं चाहती थी। उस समय कोई अन्य व्यक्ति घर में नहीं था, जिसको भेजकर वह उसे बुलवाती। विनोद अपने विचारों में इतना तल्लीन था कि किसी ओर देखता तक न था। यंत्रवत् वह चला जा रहा था। एक बार ली के मन में आया कि नीचे जाकर स्वयं उसे लिवा लावे, और इसी विचार से वह उठी भी, किन्तु उसके मन ने तुरन्त शंका की कि यदि वह उसको झिड़क दे अथवा आने में इन्कार करे, तो उसको मर्माहत पीड़ा तो होगी ही, साथ में पथरोहियों के सामने लाञ्छित भी होना पड़ेगा। उसका उत्साह कुण्ठित हो गया। अपनी विवशता से उसकी आँखों में आंसू छलछला आये। उसकी मानसिक पीड़ा ने सूक्ष्म रूप लेकर विनोद के हृदय को झंकरित किया। उसे सहसा विस्मृता चिन की याद आई। उसने अनुभव किया कि यह मार्ग उसका चिर परिचित है। चाउ की दूकान के सामने पहुँचते ही, उसका शिर स्वतः ऊपर उठ गया, और उसकी दृष्टि ली के अश्रु-पूरित लोचनों पर जाकर टिक गई। उसको दृष्टि-भ्रम हुआ कि मानों छज्जे पर चिन खड़ी है। क्षण भर के लिए पैरों ने आगे चलने से इनकार कर दिया, और वह रूमाल से आँखें मल कर अपने भ्रम को परिष्कृत करने का उद्योग करने लगा। ली को स्वर्ण अवसर मिला, और उसने उसे ऊपर आने का संकेत किया। यद्यपि विनोद का भ्रम मिट गया था, और उसने ली को पहचान भी लिया, तथापि उसके मन ने उसको ऊपर जाने की प्रेरणा नहीं दी। ठीक उसी समय ली ने अपने आसुओं को पोछने का प्रयत्न किया, जिसे विनोद ने स्पष्ट रूप से देखा। रमणी के आंसुओं की शक्ति अपरिसीम है, उसने सदैव धीर व परुष पुरुषों को भी बरवस अपनी धारा में बहा दिया है। विनोद के पैर स्वतः चाऊ की दूकान की ओर अग्रसर हो गये, किन्तु उसके प्रच्छन्न विवेक ने अपना अन्तिम प्रयत्न किया, और वह बजाय ऊपर चढ़ने के, उसकी दूकान में प्रविष्ट

"तब किसी दिन मेरे घर पर चाय पीने के लिए आइये।"

"अवश्य आऊँगी। मेरा मन यहाँ बहुत ऊबता है।"

"जब आपका मन ऊबे, तब आ सकती हैं। विद्यालय के घंटों के अतिरिक्त मैं बिल्कुल स्वतन्त्र हूँ। हाँ कभी-कभी घूमने चली जाती हूँ। आप के आने-जाने से साथ-साथ चला करूँगी।"

"आपका प्रस्ताव स्वीकार करती हूँ।"

"तब फिर आप कल संध्या समय आवेंगी ?"

"अवश्य।"

"यह कह कर चन्द्रकला ने विदा ली। ली-सूंग पुनः अपने विचारों में लीन हो गई।

७

चन्द्रकला के मिल जाने से डूबती हुई ली को सहारा मिला। उसे एक ऐसा व्यक्ति तो मिला, जिससे वह अपनी कठिनाइयों को कहकर उनके निरांकरण के लिए दिल खोल कर परामर्श कर सकती थी। उसकी सहृदयता से वह भली-भांति परिचित थी, किन्तु उसके विषय में वह केवल इतना ही जानती थी कि वह संसार में अकेली है, और उसका कोई सगा—सम्बन्धी नहीं है, तथा विद्यालय के छात्रावास की अधीक्षिका हैं। उसके निर्मल व्यवहार से सभी सन्तुष्ट रहते हैं, और अपने तन, मन तथा धन से अनेक सम्बलहीन छात्राओं की सहायता में वह तत्पर रहती हैं। वह विद्यालय की छात्राओं की कई संस्थाओं की संचालिका है तथा उनमें देश, समाज तथा साहित्य की सेवा के प्रति रुचि उत्पन्न करने में सहयोग देती है।

एक दिन यही सब सोचते-सोचते यकायक उसकी दृष्टि विनोद पर पड़ी जो शिर झुकाये रास्ते-रास्ते जा रहा था। उसको देखते ही उसका मन अधीर हो गया। मार्ग पर अनेक नर-नारी जा रहे थे। नारी होने के कारण उसे किसी पुरुष को बुलाकर अपनी ओर आकर्षित करने का साहस नहीं हुआ, किंतु ऐसा स्वर्ण अवसर वह हाथ से जाने देना नहीं चाहती थी। उस समय कोई अन्य व्यक्ति घर में नहीं था, जिसको भेजकर वह उसे बुलवाती। विनोद अपने विचारों में इतना तल्लीन था कि किसी ओर देखता तक न था। यंत्रवत् वह चला जा रहा था। एक बार ली के मन में आया कि नीचे जाकर स्वयं उसे लिवा लावे, और इसी विचार से वह उठी भी, किन्तु उसके मन ने तुरन्त शंका-की कि यदि वह उसको झिड़क दे अथवा आने में इन्कार करे, तो उसको मर्माहत पीड़ा तो होगी ही, साथ में पथरोहियों के सामने लाञ्छित भी होना पड़ेगा। उसका उत्साह कुण्ठित हो गया। अपनी विवशता से उसकी आँखों में आंसू छलछला आये। उसकी मानसिक पीड़ा ने सूक्ष्म रूप लेकर विनोद के हृदय को झंकरित किया। उसे सहसा विस्मृता चिन की याद आई। उसने अनुभव किया कि यह मार्ग उसका चिर परिचित है। चाउ की दूकान के सामने पहुँचते ही, उसका शिर स्वत: ऊपर उठ गया, और उसकी दृष्टि ली के अश्रु-पूरित लोचनों पर जाकर टिक गई। उसको दृष्टि-भ्रम हुआ कि मानों छज्जे पर चिन खड़ी है। क्षण भर के लिए पैरों ने आगे चलने से इनकार कर दिया, और वह रूमाल से आँखें मल कर अपने भ्रम को परिष्कृत करने का उद्योग करने लगा। ली को स्वर्ण अवसर मिला, और उसने उसे ऊपर आने का संकेत किया। यद्यपि विनोद का भ्रम मिट गया था, और उसने ली को पहचान भी लिया, तथापि उसके मन ने उसको ऊपर जाने की प्रेरणा नहीं दी। ठीक उसी समय ली ने अपने आसुओं को पोछने का प्रयत्न किया, जिसे विनोद ने स्पष्ट रूप से देखा। रमणी के आंसुओं की शक्ति अपरिसीम है, उसने सदैव धीर व परुष पुरुषों को भी बरवस अपनी धारा में बहा दिया है। विनोद के पैर स्वत: चाऊ की दूकान की ओर अग्रसर हो गये, किन्तु उसके प्रच्छन्न विवेक ने अपना अन्तिम प्रयत्न किया, और वह बजाय ऊपर चढ़ने के, उसकी दूकान में प्रविष्ट

हो गया। ली ने ऊपर से झांक कर देख लिया कि वह दूकान के अन्दर चला गया है। अपना आपा खोकर वह उसको पकड़ने के लिए नीचे व्यस्तता के साथ दौड़ी।

दूकान के अन्दर प्रवेश करने पर विनोद अप्रतिभ होकर इधर-उधर देखने लगा। चाउ तथा हो-चिन उस समय वहाँ मौजूद नहीं थे। विक्रेता सेवक सब विनोद से अपरिचित थे। उसके समय के सब व्यक्ति को-सिंग के उलट-फेर से बदल गये थे। प्रायः सभी उसके गुप्तचर थे, जो अपनी रिपोर्ट उसको दिया करते थे। उसे साधारण ग्राहक समझ कर उनमें से एक उसकी अभ्यर्थना करता हुआ दौड़ा और टूटी-फूटी हिन्दी में पूछा—"आपको क्या चाहिए ?" विनोद कुछ उत्तर देने जा रहा था कि ली वहाँ आ गई, और उसने उसको अपनी तरफ मुखातिब करने के लिये उसके स्कन्ध को पीछे से स्पर्श किया। विनोद ने पलट कर देखा, और ली की छलछलाती हुई आंखों से उसके नयन मिल गये। उसका मन अस्थिर हो उठा। ली कुछ भी बोलने में असमर्थ थी। उसने उसका गरेबान खींचते हुए अपने साथ ऊपर चलने का संकेत किया। इसी समय उसके अश्रु-विन्दु बिवशता से उसके अरुणाभा मण्डित कपोलों पर ढुलकने लगे। विनोद बिना कोई प्रतिवाद किए उसके पीछे-पीछे जाने लगा। को-सिंग के गुप्तचर अवाक् होकर उन दोनों की ओर देखने लगे। उनके जाने के पश्चात् वे सब एकत्रित हो गए, और उनमें जो प्रधान था। उसने अपने अधीन कर्मचारियों से पूछा—"यह कौन है ?"

उनमें से एक बोला—"इतना जानता हूँ कि यह पार्टी के एक अधिकारी हैं, शायद मंत्री हैं अथवा किसी अन्य जिम्मेंदारी के पद पर प्रतिष्ठित हैं।"

प्रधान ने सोचते हुए कहा—"पार्टी की बैठकों में मैंने इसे देखा अवश्य है। किन्तु ली से भी इसका परिचय है, यह नहीं जानता था।"

दूसरे ने कहा—"परिचय ही नहीं घनिष्टता भी है। देखा नहीं कि उसकी आंखें डबडबाई हुई थीं, और मुख से बोल नहीं फूटता था !"

प्रधान—"तब इसका अर्थ है कि ली इस युवक से प्रेम करती है।"

तीसरे ने कहा—"इसमें भी कोई सन्देह है। शायद दोनों में कुछ मतभेद

या लड़ाई-झगड़ा हो गया है । इसी लिए उसको मनाने के लिए वह नीचे आई थी और त्रियाचरित्र कर उसे ऊपर बुला ले गई ।"

प्रधान—"इसकी सूचना को-सिग को तुरन्त देना चहिए । इस विषय में उनका आदेश स्पष्ट है कि जो कोई ली से मिलने आवे अथवा जहाँ वह जाय उसकी सूचना तुरन्त दी जाय । अभी वह युवक अवश्य कुछ देर तक बैठेगा । अभी मान लीला आरम्भ होने जा रही है । तुममें से कोई जाकर को-सिग को सूचित कर आवे ।"

आदेश पाकर उनमें से एक सेवक को-सिंग को सूचना देने के लिए चल दिया ।

जब विनोद ली के साथ अपने चिर परिचित कमरे में पहुँचा, वह उदासी के साथ उसकी प्रत्येक वस्तु को देखने लगा । सब सजावट वैसी ही थी, जैसी चिन के सामने थी । देखते-देखते उसकी पुरानी स्मृतियाँ सजग हो कर उभरने लगी । वह आंखें बन्द कर उसी सोफा पर बैठ गया, जिस पर उसका प्रथम प्रेमालाप चिन के साथ हुआ था ।

ली चुपचाप उसकी मानसिक स्थिति का निरीक्षण कर रही थी । उसने उसमें व्याघात पहुँचाना उचित न समझा । वह उसको पुरानी स्मृतियों में विभोर देखकर बोली—"विनोद बाबू क्या सोच रहे हो ?"

उसकी कोमल वाणी ने विनोद को आंखें खोलने के लिए विवश किया । उसने शून्य दृष्टि से उसे देखा, और फिर उन्हें बन्द कर लिया ।

ली उसके पास सोफा पर बैठ गई और उसकी अँगुलियाँ पकड़ती हुई बोली—"चिन को अभी तक आप नहीं भूल सके ?"

विनोद ने कोई उत्तर नहीं दिया ।

वह फिर बोली—"मैं भी उसे नहीं भूल सकी । चिन इन सबको दुख देकर न-मालूम कहाँ अदृश्य हो गई ।"

"यह क्या तुम सच कह रही हो ?" विनोद ने सक्रोध पूछा ।

"तब क्या आप सोचते हैं कि हम लोगों ने उसे कहीं छिपा दिया है "

"मेरा तो यही अनुमान है ।"

"आपका अनुमान गलत है। उसके गुम होने से हम सब उसी प्रकार चिन्तित तथा दुखी हैं, जितने आप हैं। हम लोग अपनी तमाम शक्ति के बावजूद उसका पता लगाने में असमर्थ रहे। न-मालूम उसे पृथ्वी निगल गई, या भाप होकर वह वायु में उड़ गई।"

"साफ-साफ क्यों नहीं कहतीं कि तुम लोगों ने उसे चीन भेज दिया है। उसने एक भारतीय से प्रेम किया, इसलिए उसको तुम लोगों ने दंड दिया है। संभव है कि तुम लोगों ने उसकी हत्या कर दी हो।"

"यह क्या कहते हैं आप ! मैं अपनी प्राण प्रिय सखी की हत्या में क्या शामिल हो सकती हूँ ?"

"चीनी बड़े निर्मम होते हैं, वे सब कुछ करने में समर्थ हैं।"

"विनोद जी, यह आप न कहिए, चीनियों की भावनाएँ वैसी ही हैं, जैसी भारतीयों की होती हैं। सृष्टि के सभी व्यक्ति समान होते हैं।"

"नहीं, चीनी अन्य मनुष्यों से भिन्न हैं। उनकी संस्कृति अलग है, उनके विचार पृथक हैं, उनकी भावनायें विलग हैं, उनका संसार ही विचित्र है।"

"चिन के इतने समीप होते हुए भी आप ऐसा सोचते हैं ? मैं पूछती हूँ, चिन एक चीनी होते हुए भी क्या आपसे प्रेम नहीं करती थी ?"

"कभी-कभी सोचता हूँ कि उसका प्रेम केवल एक दिखावा मात्र था, वह आन्तरिक मन से नहीं, बल्कि किसी अभिसन्धि से प्रेम का स्वांग रचती थी।"

ली का हृदय दहल गया। उसे संदेह होने लगा कि विनोद को चीनी षड़यन्त्र का कुछ आभास मिल गया है। उसका मुख विवर्ण हो गया। इसी समय विनोद की बन्द आँखें सहसा खुल गईं, और वे ली का अन्तस् देखने का प्रयत्न करने लगीं। ली उसकी दृष्टि के आँखें न मिला सकी, और उसका चेहरा उतर गया। उसके हृदय की गति तीव्र हो गई। विनोद यकायक हँसने लगा। उससे ली और भयभीत होकर पृथ्वी की ओर देखने लगी।

विनोद ने कहा—"ली, मेरे अनुमान को तुम्हारी यह भीत दृष्टि सत्य प्रमाणित कर रही है।"

'नहीं' नहीं विनोद बाबू आप ऐसा न सोचिए !" और फिर सहसा उसके

मुँह से निकल गया—"मैं सत्य ही आप से प्रेम करती हूँ ?"

"क्या कहा, तुम मुझ से प्रेम करती हो ?" कहकर वह पुनः हँसने लगा।

उसके तिरस्कार से ली ने सुध-बुध खोकर अपने हृदय के कपाट खोल दिए थे। विनोद के प्रश्न से उसको अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ। वह लाज से लहू-लुहान हो गई। इस प्रकार अपना प्रेम प्रकट करने का विचार उसके मन में कभी उदय नहीं हुआ था। वह न जानती थी कि विनोद के विषय में सोचते-सोचते उसका मानसिक प्रतिबन्ध अत्यन्त शिथिल और क्षीण हो गया है, जो जरा से प्रतिघात से छिन्न-भिन्न हो सकता है बिना जाने, बिना किसी पूर्व सूचना के। वह अपराधी की भाँति उसकी ओर देखकर उसकी उपहास पूर्ण हँसी के रुकने की प्रतीक्षा करने लगी।

विनोद ने व्यंग किया—"एक चिन थी, जो प्रेम करते-करते स्वयं अदृश्य हो गई, अब तुम प्रेम की माया फैलाने जा रही हो। धन्य हो तुम चीनी नारियो ! भगवान ही तुमसे बचावे !"

ली अप्रतिभ होकर उसे देख रही थी। उसके मुख से केवल इतना निकला 'काश, मैं अपना हृदय आपको दिखा सकती।'

विनोद ने पुनः अट्टहास किया और कहा—"अच्छा यह बताओ कि तुम लोग मेरे पीछे क्यों पड़ी हो ?"

ली ने उत्तर न दिया। अपनी वेदना छिपाने के लिए परदे के पीछे चली गई। विनोद भी जाने के लिए उठ खड़ा हुआ।

ली का भेद जानने के लिए को-सिंग का एक दूत प्रधान की आज्ञा से जीने पर खड़ा उनकी वार्ता सुन रहा था। विनोद की पगध्वनि सुनकर वह नीचे उतर गया।

ली विनोद को गमनोद्यत देख कर, आंसुओं को पोछती हुई पुनः कमरे में आ गई और उसका दामन पकड़ कर बोली—"विनोद बाबू, आप यों अविश्वास लेकर न जाइये। मेरी बात भी सुन लीजिए।"

विनोद ठहर गया, और अपना दामन छुड़ाते हुए बोला—"लो एकबार मैंने धोखा खाया, किन्तु अब न खाऊँगा। चिन के धोखे में फँसकर मैं एक वर्ष

मारा-मारा फिरा। खाना-पीना और सोना हराम हो गया। अब पुनः नारी की मोहनी में नहीं फसूँगा।"

"विनोद बाबू मैं धोखा नहीं देती, सत्य ही आपसे प्रेम करती हूँ।" कहते-कहते उसके नेत्र छलक आए।

"इसके लिए मैं उत्तरदायी नहीं हूँ।" उसके स्वर की कर्कशता ली के हृदय में तीर की तरह चुभने लगी।

वह इतनी मर्माहत हुई कि भूमिष्ठ होकर उसने उसके पैर पकड़ लिए, और रोते-रोते कहा—"तुम्हारे सिवाय मेरा इस संसार में कोई संबल नहीं है। एक चिन थी, वह चली गई, और अब तुम हो। तुम भी क्या मुझे परित्याग कर इस निष्ठुरता के साथ चले जाओगे ?"

विनोद उसके इस अप्रत्याशित कार्य से घबड़ा गया। वह हत-बुद्धि होकर उसकी ओर देखने लगा। उसको उठाने की चेष्टा में वह नीचे झुक रहा था कि को-सिंग ने प्रवेश किया। उसको जैसी रिपोर्ट मिली थी, वैसा ही दृश्य उसके सामने था। क्रोध से उसका चेहरा तमतमा उठा, किन्तु उस भाव का दमनकर वह जोर से हँसने लगा। हँसी की कर्कशता से उन दोनों का ध्यान भंग हुआ। ली उसको देखते ही झपाटे से उठ खड़ी हुई। विनोद भी हटकर दूर खड़ा हो गया।

को-सिंग ने बज्रगंभीर स्वर से कहा—"मेरे दूत ने ठीक ही रिपोर्ट दी थी कि मानलीला हो रही है। आप कौन हैं, जो हमारी चीनी नारियों को पथ-भ्रष्ट करने का दुस्साहस करते हैं। यद्यपि इस समय तो आप अपराधी नहीं जान पड़ते, सारा अपराध इस कुतिया का है, जो आपको घसीट कर ऊपर लाई, और शायद जब आप राजी नहीं हुए, तब यह पैर पकड़ कर आपके हृदय में करुणा का भाव उत्पन्न करने की चेष्टा कर रही थी। मैं इसको उचित दंड दूंगा। आप शीघ्र यहाँ से विदा हो जाइए। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि यह अब पुनः आपको नहीं सताएगी।'

यह कह कर वह विनोद को जाने का संकेत करने लगा। विनोद ने वहाँ ठहरना उचित न समझा, और कुछ सोचता हुआ नीचे उतर गया।

८

विनोद कमरे से बाहर निकल गया। जब वह इस अप्रत्याशित दृश्य पर विचारता हुआ जीने से उतर रहा था, तब उसने कान में को-सिंग के यह शब्द पहुँचे–"कुतिया आज तेरा भेद खुल गया। अब मुझे मालूम हुआ कि तू वृहत्तर चीन संघ की सेवा कैसे करती है? इसी जबान के प्रेम में फंसकर संघ का कार्य भूल जाने पर जिस तरह चिन, कांग की कोपभाजन बनी और संसार से बिदा हुई, उसी भाँति तुझे भी कुत्ते की भाँति मारा जायगा।"

चिन का नाम सुन कर विनोद के पैर स्तंभित रह गए। यद्यपि को-सिंग चीनी भाषा का प्रयोग कर रहा था, जिसका कुछ थोड़ा ज्ञान चिन के संसर्ग से उसे प्राप्त हुआ था, किन्तु वियोग की अवधि में वह विस्मृत सा हो गया था। चिन के नाम ने उस ज्ञान को सजगता दी और को-सिंग का कथन कुछ-कुछ उसकी समझ में आया। वह ली का उत्तर सुनने के लिए ठहर गया।

ली का सन्देह, कि चिन के यकायक अदृश्य होने में कांग का हाथ है, को-सिंग के शब्दों से सत्य में परिणत हो गया। पहले उसका मुँख विवर्ण हुआ किन्तु तुरन्त ही आत्म रक्षा के विचार ने उसे सतर्क कर दिया उसने अपने वक्ष, स्थल में छिपाई हुई पिस्तौल को टटोल कर निश्चय किया कि वह यथा-स्थान सुरक्षित है। उसने अपने वस्त्र के ऊपर वाले बटन खोल कर उसे क्षण मात्र में बाहर निकालने का उपाय कर लिया, किन्तु को-सिंग के लगाए हुए अभियोग के बचाव में कोई उत्तर नहीं दिया।

उसके मौन से क्रुद्ध होकर को-सिंग पुनः बोला—"अब मालूम हुआ कि तू क्यों मेरे प्रस्ताव की अवहेलना करती थी? तू खुद इस हिन्दुस्तानी कुत्ते से प्रेम करती है। मैंने अपने कानों से तेरी प्रेम-भिक्षा के शब्दों को सुना और उसके पैर पकड़ना देखा है। तू इन्कार नहीं कर सकती। मैं सोचता था कि वृहत्तर चीन संघ का कार्य क्यों इतना ढीला चल रहा! यह अब ज्ञात हुआ कि जिनको

गुप्तचरी का काम सुपुर्द है, वे अपना कर्तव्य पालन न कर प्रेम की रंगरेलियों में मस्त हो रहे हैं।

"प्रेम दिखाकर भारतीयों को पंचमांगी बनाने का ही काम मुझे दिया गया था, और वही मैं कर रही थी। आप शायद नहीं जानते कि विनोद एक प्रभावशाली भारतीय तथा यहाँ की कम्यूनिस्ट पार्टी का प्रधान संगठक एवं मन्त्री है। उसकी माँ गृहविभाग में डिप्टी मिनिस्टर है। उसका पिता अखिल भारतीय स्तर पर कम्यूनिस्ट पार्टी का संचालक है। कांग ने उसको तुरुप का पत्ता समझ कर उसको वशीभूत करने के लिए चिन को उसके पीछे लगाया था। किन्तु आज आप से मालूम हुआ कि कांग ने उसको मरवा दिया है, और उसकी मृत्यु के बाद उन्होंने वह भार मुझे सौंपा, तब से मैं उसको अपने बश में करने के लिए बराबर चेष्टा कर रही हूँ, किन्तु हत्थे चढ़ता ही न था। आज मौका मिला तो आपने आकर उसे भंग कर दिया।"

'अच्छा ! मेरे ऊपर दोष मढ़कर अपनी साजिश छिपाना चाहती है ? क्या तू नहीं जानती कि मैं इस क्षेत्र का सर्वोच्च अधिकारी हूँ, मेरे निर्णय पर कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता। तेरा छल मैं अच्छी तरह जान गया हूं। तू एक ढेले से दो शिकार करती है। संघ के कार्य के बहाने चिन भी इसी हिन्दी कुत्ते के प्रेम में फँस गई थी, और उसने मेरे स्वामी कांग के प्रस्ताव को ठुकरा दिया था, जिसके लिए उसको मौत के घाट उतारा गया। उसी प्रकार तू भी इस कुत्ते से प्रेम करने के कारण मेरी प्रेयसी बनने में हीला-हवाला करती है, इसलिये जो दंड चिन को मिला है, वही तुझे भी मिलेगा। यदि कुत्ते की मौत से बचना चाहती है, तो मेरे प्रस्ताव के अनुसार मेरी प्रेमपात्री बनना स्वीकार कर, और उसका प्रमाण मैं आज की रात्रि में, नहीं-नहीं, अभी इसी क्षण चाहता हूँ।"

यह कहता हुआ वह ली को अपने बाहु पाश में आबद्ध करने के लिए दोनों हाथ फैलाए हुए अग्रसर हुआ। इस समय उसकी आकृति रीछ के समान भयावनी थी। महीनों की दबी हुई ज्वाला उसके मदिरोन्मत्त नेत्रों से फूट रही थी। भय तथा लज्जा दोनों तिरोहित हो चुके थे।

उसकी भयावनी आकृति से ली भयभीत हरिणी की भाँति पीछे हटने लगी। कमरा शून्य था, उसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं था। अब उसे अपने अन्तिम सम्बल का अवलम्ब था। उसने द्रुत पदों के पीछे तथा तिरछे हटकर उसकी फैली हुई भुजाओं से अपने को दूर हटा लिया और चपला की चपलता से अपने वक्षस्थल में छिपाये हुए रिवाल्वर को निकाल कर उसकी ओर तानते हुए कहा—"सावधान, नराधम, सावधान! यदि एक कदम भी आगे बढ़ा अथवा वार किया तो गोली का शिकार बनेगा।"

उसकी वाणी गम्भीर थी भीरुता का लेश भी नहीं था। जिस प्रकार आक्रामक वन्य पशु अपने सम्मुख सहसा प्रज्वलित अग्नि-पुञ्ज देखकर क्षण भर के लिए संत्रस्त हो उसी स्थान पर स्तम्भित हो जाता है, कोसिंग भी उसी प्रकार पृथ्वी पर गड़-सा गया। उसने गुर्राते हुये कहा—"हूँ, तेरा यह साहस और दर्प!"

"साहस या दर्प नहीं, आत्मरक्षा का प्रयत्न है।"

"समझ ले, यह सौदा बहुत महँगा पड़ेगा।"

"अपने प्राणों से अधिक नहीं।"

"पहले तेरा दर्प चूर-चूर कर लूँ, तब तेरे प्राणों की बारी आवेगी।"

"तेरे से जो कुछ बने, वह कर लेना, अभी कमरे के बाहर निकल।"

"यदि न निकलूँ?"

"तो प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा। कुपित नारी सिंहनी से कम नहीं होती। मैं सावधान हूँ, तू बातों में लगाकर मेरा ध्यान बटाना चाहता है। इस रिवाल्वर में ६ गोलियां भरी हुई हैं। सेफ्टी-क्लिप खुला हुआ है, और मेरी तर्जनी घोड़े पर है। यह समझ ले कि तू मेरी ओर बढ़ा नहीं कि मैंने घोड़ा दबाया, और उसके दबाते ही तेरा धड़ निर्जीव हो कर गिर पड़ेगा। चल मेरे कमरे से बाहर निकल।"

कोसिंग को पीछे हटने के अतिरिक्त और कोई दूसरा उपाय नहीं था। वह उलटे पैरों पीछे हटने लगा। वह उसकी ओर पीठ फिराकर नहीं जाना

चाहता था। इतने सहज में हार मानने के लिए उनका मन तैयार नहीं होता था। वह उसकी सावधानता में किसी छिद्र को खोज रहा था।

द्वार पर पहुँचकर उसने कहा—"ली, अब भी समय है, मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर ले। तुझे मैं कांग से मांग लूंगा। वह मेरी मुट्ठी में है। इस देश पर चीन का अधिकार होने से मैं यहां का सर्वोच्च शासक कांग के द्वारा नियुक्त किया जाऊँगा। वह यह बचन दे चुका है। तेरे इस व्यवहार से मैं रुष्ट नहीं, वरन् प्रसन्न हूँ। तू सत्य ही मेरे जैसे पुरुष की प्रेयसी होने की उपयुक्त पात्र है।"

ली ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह पूर्ण सतर्कता से उसकी प्रत्येक गति का सूक्ष्म निरीक्षण कर रही थी।

जीने पर खड़ा विनोद उनका कथोपकथन सुन रहा था। जो कुछ उसने सुना और समझा, उससे उसे स्पष्ट आभास मिल गया कि ये चीनी किसी भारत विरोधी गुप्त षड़यन्त्र में सम्मिलित हैं, चिन तथा ली की किसी विशेष कार्य के लिए नियुक्त हुई है, और चिन ने कोई अपना या संघ का काम साधने के लिए ही उसे प्रेम जाल में फँसाया था। चिन के कार्य-कलाप उसके मस्तिष्क में चलित चित्रों की भांति तेजी के साथ घूमने लगे। वह पहले अपने ऊपर क्षुब्ध हुआ, और फिर चीनियों के संगठन से। वह समग्र दृश्य स्वयं देखने के लिए आतुर था, किन्तु उनके मध्य प्रवेश करना उसे अनधिकार चेष्टा प्रतीत हुई, इसलिए मन मारे वहीं खड़ा रहा। जब उसे प्रतीत हुआ कि को-सिंग आ रहा है, वह जाने के लिए उद्यत हुआ, त्योंही उसे चीत्कार सुनाई दिया। उसने ली का कंठस्वर स्पष्ट पहचाना और विद्युत–वेग से जीने के ऊपर चढ़ गया। ज्योंही वह कमरे में प्रवेश करने के लिए उसके द्वारपर पहुँचा, रिवाल्वर चलने की गड़गड़ाहट से कमरा प्रतिध्वनित होने लगा। सहसा एक गोली आकर उसके बाहुमूल में प्रविष्ट हो गई। आघात से व्याकुल होकर वह वहीं पर गिर पड़ा। गिरते-गिरते उसने देखा कि कमरे के भीतर को-सिंग लहू-लुहान पड़ा है, और ली भी गिरी हुई रिवाल्वर चला रही है, उसके चारों ओर खून बिखरा पड़ा है। उसने कुछ कहना चाहा, किन्तु मुख से शब्द

निकलने के पहले ही वह अचेत हो गया ।

जब को–सिंग द्वार पर पहुँच कर ली को प्रलोभन दे रहा था, वह केवल उचित मौके की तलाश में था । यद्यपि ली भी सतर्क थी, तथापि दोनों के बीच पर्याप्त व्यवधान हो जाने से वह कुछ अपने को निरापद समझने लगी थी। इसी अवसर पर उसे खाँसी उठने के आसार मालूम पड़े । वह उसके वेग को दबाने का प्रयत्न करने लगी, किन्तु खाँसी दाबने से दबती नहीं, वरन् वेगवती होती है । जहाँ वह खाँसने लगी, को-सिंग को मांगी मुराद मिली । उसने पलक झपकते ही अपने वस्त्र से छुरा निकाला और ली पर फेंक कर वार किया । छुरे का वार ली के पेट पर पड़ा । वह भरभरा कर गिरी अवश्य, किंतु दाहिने हाथ से बराबर गोलियाँ दागती रही। उसके रिवाल्वर की चार गोलियाँ को-सिंग के मस्तक, हृदय, पेट और जानु में लगीं, और तत्क्षण उसकी इहलीला संवरण हो गई । उसके रिवाल्वर की पांचवीं गोली, को-सिंग के धाराशायी होने से विनोद के बाहुमूल में जा लगी, जो कमरे में जाने का प्रयत्न कर रहा था ।

गोलियाँ दगने की गड़गड़ाहट नीचे दूकानदारों तथा पथारोहियों ने भी सुनी । वे सब ऊपर की ओर अस्त-व्यस्त दौड़े । दूकान का प्रधान कर्मचारी सबसे आगे था । कमरे के रास्ते में विनोद पड़ा था, उसको पैरों से हटाकर वह कमरे में प्रविष्ट हुआ । सबसे पहले उसने को-सिंग की परीक्षा की। उसका समस्त शरीर शोणित से भरा हुआ था । चारों क्षत-स्थानों से रक्त बह रहा था । प्रथम दृष्टि में ही उसे ज्ञात हो गया कि को-सिंग निर्जीव है, और आघात के साथ ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गए हैं

वह धड़कते हुए कलेजे से ली की ओर बढ़ा । ली पेट के बल पड़ी हुई थी । अपने दाहिने हाथ में वह अब भी रिवाल्वर पकड़े थी, किन्तु पकड़ शिथिल थी । रिवाल्वर की नली छूने से ज्ञात हुआ कि वह अब भी गरम है । उसने उसके नथुनों पर हाथ लगा कर मालूम किया कि वह अभी मरी नहीं है—धीरे-धीरे साँस आ रही है ।

किसी ने पुलिस के द्रुतगामी दल को सूचना दे दी थी पुलिस पूरे दल-

बल के साथ आ गई। जब प्रधान कर्मचारी ली को उलटने जा रहा था कि पुलिस वहाँ पहुँच गई, और उसे हाथ लगाने को मना कर दिया।

पुलिस ने सबको निकालकर कमरे की सब वस्तुएँ अपने अधिकार में ले ली। दूकान के सभी कर्मचारी हिरासत में ले लिए गए, और उसके चारों ओर पुलिस का घेरा पड़ गया।

६

दूसरे दिन जब चिन की नींद टूटी, तब पहर भर दिन चढ़ गया था। उसके कक्ष का मुख्य द्वार पूर्वाभिमुख होने से वह सूर्य की लड़खड़ाती किरणों के प्रकाश से, जो द्वार के छिद्रों से प्रवेश कर रही थीं, भर गया था। इतनी देर तक सोने का अभ्यास उसे नहीं था। वह हड़बड़ा कर उठ बैठी। इस समय उसका मस्तिष्क शून्य था। पिछली रात्रि की घटनायें विस्मृत थीं। उसकी अलसाई दृष्टि उस दीवाल पर पड़ी, जहाँ सुरंग में प्रवेश-मार्ग था। उसे भूलीं घटनायें स्मरण होने लगीं। उसे पहले यही प्रतीत हुआ कि वह सब स्वप्न था, इसका निर्णय करने के लिए वह उस दीवाल के पास गई। उसने खूँटी को अपनी ओर खींचा। उसके आगे खिंच आने पर दीवाल की पटिया अपनी मोटाई के बराबर खिंच आई, और जब उसने उसे हटाया तो वह उसे सरकाती हुई उस स्थान तक ले गयी जहाँ दीवाल पर लगे पत्थरों का जोड़ था। खूटी भी एक सन्धि-स्थल पर आकर ठहर गयी, और सुरंग का द्वार खुल गया। अब उसे निश्चय हो गया कि वह सब स्वप्न नहीं, सत्य था। उसने बताई गई रीति से सुरंग का द्वार बन्द किया और कोठरी का द्वार खोलकर बाहर आई।

अन्य दिनों जोरबाँग मन्दिर में प्रातःकाल बड़ी चहल-पहल रहती थी।

विद्यार्थी और बोद्ध भिक्षु 'ऊँ मणे पद्मे हुँ' का जाप करते थे, निजमन्दिर में घण्टे-घड़ियाल बजते थे, और सर्वत्र प्रमुदित जीवन की लहर देख पड़ती थी। किन्तु आज सर्वत्र सन्नाटा था। कहीं भी जीवन का लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होता था। उसका माथा ठनका। वह दौड़ती हुई, निज-मन्दिर की ओर गई। वहाँ भी आज निस्तब्धता छाई थी। मन्दिर में केवल बासबा अपने कुछ विश्वस्त शिष्यों के साथ बैठे पूजा-जाप के बजाय परामर्श कर रहे थे। वह पाठशाला की ओर बढ़ी। वहाँ न मासपा थे, और न छात्र। समस्त पाठशाला शून्य थी। बासबा के पास जाने का उसे साहस न होता था, और दूसरा कोई कहीं दिखाई नहीं पड़ा। वह यशोधर को ढूंढ़ने लगी। उसके मन में विचार आया कि शायद वह भी अभी तक उसीकी भाँति सो रहा हो। उसको जगाने के लिए वह उसके कक्ष की ओर व्याकुलता के साथ दौड़ी। यशोधर की कोठरी उसकी कोठरी के बगल में थी। उसके द्वार की कुन्डी बाहर से बन्द थी इसी-लिए यह साफ हाजिर था कि वह कोठरी में नहीं है। मन्दिर की शून्यता उसे काटने लगी। उसका हृदय किसी विपत्ति की आशंका से छटपटाने लगा। वह अपनी कोठरी के द्वार पर बैठ कर स्थिति पर विचार करने लगी।

वह सोचने लगी कि न-मालूम कौन भीषण कांड सहसा घटित हो गया है। चीनी सेनाओं से ल्हासा नगर की नाका बन्दी बहुत दिनों से चल रही थी, और नगर में भी अशांति के लक्षण इधर कई दिनों से प्रकट हो रहे थे। पाटोला के मार्ग असंख्य नर नारियों से भरे रहते थे। सर्वत्र युद्ध के चिह्न प्रस्फुटित हो रहे थे। चिन ने अनुमान किया कि शायद चीनी सेना से युद्ध आरम्भ हो गया है। उसे स्मरण हुआ कि मासपा ने पिछली रात्रि को सुरंग का रहस्य बताते हुये स्पष्ट रूप से इंगित किया था कि चीनियों से शीघ्र ही संघर्ष होने वाला है। किन्तु उसके मन ने प्रश्न किया कि यशोधर कहाँ है ? क्या वह भी युद्ध में सम्मिलित होने के लिए चला गया है। यह विचार आते ही वह उठ खड़ी हुई, और यशोधर की कोठरी का द्वार खोल कर रहस्य-भेद करने की चेष्टा करने लगी। किन्तु कोठरी में उसे ऐसा कोई चिह्न नहीं मिला जिसके आधार पर वह अनुमान करती कि वह युद्ध–क्षेत्र में गया है। वह

उसकी प्रत्येक वस्तु देखने लगी। सामान भी कुछ अधिक नहीं था, दो अंग-रखे जैसा तिब्बती पहना करते हैं, खूँटियों पर टँगे थे, और ओढ़ने बिछाने के कम्बल थे। उसने बिछाने वाला कम्बल उघाड़ कर चारपाई की भी जांच की, किन्तु वहाँ उसे कोई वस्तु नहीं मिली।

उसने चारपाई सरकाने का प्रयत्न किया, किन्तु वह खिची नहीं। उसने देखा कि उसके चारो पाये गड्ढों में घुसे हुए हैं। सिरहाने की ओर से उसको पकड़ कर पायों को ऊपर उठाया। पाए उठ गए और उसके नीचे गड्ढा कुछ चौड़ा दिखाई दिया। उसने सोचा कि ये गढ़े बनाए हुए हैं, तथा उनको बनाने वाला यशोधर के अतिरिक्त कोई अन्य नहीं है, क्योंकि उसके कमरे की चारपाई इधर-उधर सरकाई जा सकती थी, और छात्रावास की समस्त कोठरियों में एक समान प्रबन्ध था। सबके फर्श पक्के थे। उसने अनुमान किया कि यशोधर ने किसी गुप्त उद्देश्य से फर्श में गढ़े बनाकर चारपाई के पायों को उनमें स्थापित किया है। इन गढ़ों के अन्दर उसने कुछ गुप्त वस्तुएँ अवश्य छिपाई हैं। उसकी उत्सुकता सजग हुई। उसने चारों पायों को गढ़ों से निकाल कर चारपाई दूर रखी। शिरहाने के एक गढ़े में वह हाथ डालकर टटोलने लगी। चारों ओर उँगलियाँ घुमाते हुए, उसे एक दिशा में गढ़ा अधिक गहरा प्रतीत हुआ, जिससे उसने अनुमान किया कि वहाँ की मिट्टी हटाकर उसे पोला किया गया है। उसका हाथ बड़ी सुगमता से उस पोल में समाने लगा। पाँच छः इन्च की दूरी पर उसे डिबिया के आकार की कोई वस्तु मिली। उसे बाहर निकाल कर वह देखने लगी। डिबिया खोलते ही वह पहचान गई कि यह ट्रान्जिस्टर द्वारा संचालित ध्वनि-प्रेषक यन्त्र है।

वृहत्तर चीन संघ, की ओर से उसे भी ऐसे यन्त्र मिले थे, और उनको संचालित करने की युक्तिओं से वह सर्वथा परिचित थी। उनके मन ने कहा कि दूसरे गढ़े में इसी प्रकार ध्वनि-ग्राहक यन्त्र भी होगा। उसने दूसरे गढ़े को ढूंढ़ना आरम्भ किया। उसकी आँखें हर्ष से चमकने लगीं, उसने उसकी पोल से वैसी ही एक डिबिया निकाली, और जब उसे खोला तो उसका अनुमान सत्य प्रमाणित हुआ। वह दोनों चीजों को देखकर सोचने लगी कि क्या यशोधर भी

गुप्तचर है ?

उसने पाँयते के पाँयों के गढ़ों को देखना आरम्भ किया। उससे उसी भाँति कपड़ों का एक छोटा बस्ता मिला। वह उत्सुकता से उसे खोलकर देखने लगी। उसमें उसे वे पत्र मिले जो यशोधर को बिदा करते समय अविनाश बाबू ने चीनी अधिकारियों के नाम दिए थे। पत्र चीनी भाषा में लिखे थे। वह बड़ी उत्सुकता से उन्हें पढ़ने लगी। उनमें यशोधर का परिचय देकर लिखा था कि वह किसका पुत्र है, और किस कारण से तिब्बत भेजा गया है। उसकी सब भाँति रक्षा की जाय, और उसकी इच्छानुसार उसे पहुँचाने का पूरा प्रबन्ध किया जावे। चिन उन नामों से परिचित थी, जिनको पत्र लिखे गये थे। वे चीन के प्रभावशाली अधिकारी थे, और उनका घनिष्ट सम्बन्ध वृहत्तर चीन संघ से भी था। अनेकानेक विचारों की वह केन्द्र बन गई। उसे विश्वास हो गया कि यशोधर चीन का नहीं, भारत का गुप्तचर है।

उसने चौथा गढ़ा खोजना आरम्भ किया। वहां उसे एक टीन की छोटी सी डिबिया मिली। उसके खोलने पर उसे वह तमगा मिला, जिसके दोनों ओर आकृतियाँ बनी थीं, तथा उनके नीचे किसी सांकेतिक भाषा में कुछ खुदा हुआ था। चिन इसको भी तुरन्त पहचान गई। सुरक्षा के लिए उसको भी ऐसा ही एक तमगा मिला था। वह जानती थी कि चीन तथा रूस की कम्यूनिस्ट पार्टी इसके रखने वाले की रक्षा करने के लिए बाध्य हैं, अब यशोधर के गुप्तचर होने में उसे तनिक भी संदेह नहीं रह गया। अभी तक जिन मृदुल भावनाओं का वह अपने अन्तर हृदय में पोषण कर रही थी, वे यशोधर की वास्तविकता जानकर मुरझाने लगीं। उसके मन ने कहा कि जिसको अपने जीवन का आधार बनाने का विचार तू कर रही थी, वह भी शत्रु-पक्षी निकला। उसका मन मसोसने लगा। अपनी आन्तरिक मनोवेदना से वह शिथिल पड़ने लगी। उसका नारी हृदय सम्बल-हीन हो गया। वह अपने को नितान्त एकाकी जानकर उन वस्तुओं को निरखती हुई फूट-फूटकर रोने लगी।

कुछ देर रोने के पश्चात उसका मन हल्का हुआ। वह भविष्य का कार्यक्रम सोचने लगी। यशोधर का गुप्त भेद जानकर उस पर विश्वास करने के लिए

वह अब तैयार न थी। उसने सोचा कि उसकी गुप्त वस्तुओं को वह उसी भाँति छिपा देवे, जैसी रखी थीं, किन्तु वे उसके लिए भी उतनी ही प्रभाव-शाली थीं, जितनी यशोधर के लिए। इनकी सहायता से वह चीनियों के व्यूह से सुरक्षित निकल कर अपनी इच्छानुसार भाग सकती थी। जब ल्हासा चीन की सेनाओं से घिरा हुआ है, और बाहर निकलने के सब मार्ग बन्द हैं, तब उनकी उपादेयता और भी बढ़ गई है। वह उनको अपने अधिकार में रखने की बात सोचने लगी। अन्त में उसने कहीं अन्यत्र छिपाने का निर्णय किया। इस निर्णय के साथ ही प्रश्न स्थान का उपस्थित हुआ। उसकी कोठरी में ऐसा कोई गुप्त स्थान नहीं था, और न इतनी जल्दी बनाया जा सकता था। सोचते-सोचते उसे गुप्त सुरंग का ध्यान आया। उस विशाल जगह में वह आसानी से कहीं भी उनको छिपा सकती थी। फिर सोचा कि वे वस्तुएँ इतनी छोटी हैं, जिन्हें आसानी से वह अपने चोगे में छिपा सकती है। इस प्रकार वे सदैव उसके पास रह कर उसकी सहायता पहुँचा सकती हैं। उसने उनको अपने चोगे की भीतरी जेबों में छिपा लिया। फिर चारपाई को यथास्थान रख, कम्बल बिछा-कर यशोधर की कोठरी से बाहर आ गई।

अब भी बाहर सन्नाटा छाया हुआ था। दिन का दूसरा प्रहर लगभग समाप्तप्राय था। वह पुनः घूमती हुई पाठशाला की ओर गई। वहाँ इस समय कोई छात्र नहीं था, पहले की भाँति सर्वत्र त्रासजनक निस्तब्धता छाई थी। वहाँ से लौटकर जब वह निज–मन्दिर की ओर वहाँ का हाल चाल लेने जा रही थी, तब उसके भवन से निकलते हुये मासपा पर उसकी दृष्टि पड़ी। वह आतु-रता से उनकी ओर दौड़ी। उसकी पगध्वनि ने मासपा को पीछे देखने के लिए वाध्य किया। चिन को देखकर वह ठहर गये।

उसके समीप आने पर मासपा ने प्रश्न किया—"डोर जी, तुम अभी तक यहीं हो, गुप्त मार्ग से भागे नहीं। मैंने गत रात्रि को उस गुप्त मार्ग का भेद बता दिया था।"

"हाँ गुरुदेव, किन्तु मुझे कोई सूचना इस स्थान को त्याग करने की नहीं मिली, मैं आज बड़ी देर तक सोता रहा। जब से उठा हूँ, तब से इधर-उधर

घूमता-फिरता हूँ। सर्वत्र सन्नाटा है। कहीं कोई नहीं दिखाई देता।"

"दिखाई कौन दे ? सब विद्यार्थी और मन्दिर के सेवक भाग गये हैं। क्या तुमको नहीं मालूम कि चीनी सेनापति ने आज प्रातःकाल मन्दिर घेर लिया, और वे कुछ विद्यार्थियों को जिनमें राहुल भी था, गिरफ्तार कर ले गये हैं।"

"राहुल गिरफ्तार हो गया ?"

"हाँ, उसकी गिरफ्तारी से अन्य विद्यार्थी और सेवक आतंकित होकर भाग गए। मेरा अनुमान था कि तुम भी राहुल के साथ गिरफ्तार हो गये हो, अथवा गुप्त मार्ग से भाग गए होगे। परन्तु अब मालूम हुआ कि तुम अपनी कोठरी में पड़े सो रहे थे। इतना हलकम्प हो गया, और तुम सोते रहे, आश्चर्य है !"

"प्रायः ऐसा होता नहीं, किन्तु आज न मालूम क्यों, मैं सोता ही रहा ?"

"सेवकों के भाग जाने से आज भोजनगृह में हड़ताल है। अभी हम लोग घटनाओं से उत्पन्न परिस्थिति पर बासबा के साथ परामर्श कर रहे थे। आज रात्रि को मन्दिर खाली कर देने का निश्चय हुआ है। बासबा और मैं केवल रह जायगे।"

"किन्तु मैं भी आपको छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा।"

"अच्छा, इस प्रश्न पर फिर विचार करेंगे। अभी चलो, कुछ खाने-पीने का प्रबन्ध किया जावे।"

"मैं अभी प्रातकृत्य से निवृत्त नहीं हुआ ?"

"मैं भोजनगृह चलता हूँ, तुम वहाँ आकर मुझसे मिलो। किन्तु मन्दिर की सीमा का उल्लंघन मत करना। संभव है कि चीनी सैनिक इधर-उधर छिपे हों।"

"मैं सावधान रहूंगा।"

यह कह कर चिन शीघ्रता से चली गई। मासपा ने भी भोजन-गृह की ओर प्रस्थान किया।

१०

भोजन आदि से निवृत्त होकर चिन अपनी कोठरी में आकर विश्राम करने लगी। मासपा राजकर्मचारियों के साथ परामर्श करने चले गए। उन्होंने बताया था कि तिब्बत की राजकीय परिषद 'त्सोंगद्' का अधिवेशन कई दिनों से निरन्तर चल रहा है। चीनियों ने आक्रमण कर राजभवन पर गोले बरसाना आरम्भ कर दिया है। स्थिति बड़ी जटिल हो गई है, और यह विचार चल रहा है कि दलाईलामा तिब्बत त्याग कर कहीं अन्यत्र शरण लेवें। तिब्बत में दो दल हैं। एक चीनियों से सहानुभूति रखता है, और दूसरा उनका कट्टर विरोध करता है। इस समय ऐसी परिस्थिति है कि शत्रु-मित्र की पहिचान मुश्किल है। तिब्बत की सैनिक शक्ति चीनियों के मुकाबले में बहुत कमजोर है। लड़ कर प्राण तथा देश–रक्षा नहीं हो सकती। अधिकतर 'त्सोंगद्' के सदस्य दलाईलामा को देश छोड़ने का परामर्श दे रहे हैं। समय प्राप्त करने के लिए दोनों पक्षों में पत्र-व्यवहार चलाया जा रहा है।

चिन इन समाचारों से अत्यन्त भयभीत हुई, और वर्तमान परिस्थिति पर विचार करने के लिए वह एकान्त खोजती हुई अपनी कोठरी में आ गई। अभी तक रक्षा के लिए वह यशोधर पर निर्भर थी, किन्तु जबसे उसका गुप्त भेद खुला, तब से वह उसकी ओर से निराश हो गई। एक गुप्तचर का दूसरे गुप्तचर पर विश्वास करना मूर्खता है। दोनों के स्वार्थ भिन्न होने से उनके रास्ते जुदा-जुदा हैं। यदि वह भागे भी तो इस बीहड़ प्रदेश में अकेले किस प्रकार प्रवेश करे। चीन जाने का कोई प्रश्न ही न था। केवल भारत में उसे आश्रय मिल सकता था। भारत इतना विशाल देश है, जहां वह अपने को आसानी से छिपा सकती है। वह भारत की भाषा और सामाजिक रीति रिवाज तथा रहन–सहन से बखूबी परिचित है। वह भारतीय बन कर सहज ही जीवन के शेष दिन बिता सकती है। उसके पास नागार्जुन के दिए हुए एक

सहस्त्र रुपये अभी तक ज्यों के त्यों मौजूद हैं, जिनसे प्रारम्भिक खर्च निकल सकता है, और जीविका के लिए वह किसी पाठशाला में अध्यापिका के रूप में कार्य कर सकती है। इसी प्रसंग में उसे चन्द्रकला का ध्यान आया। अभी तक उसकी जीवन गति अन्य दिशा में मुड़ी हुई थी, इस लिए वह उसे बिल्कुल भूल गई थी। भारत में आश्रय लेने के विचार से उसकी स्मृति सजग हो गई। पुरानी घटनायें उसे याद आने लगीं। उसी से सम्बन्धित विनोद तथा ली भी उसके मस्तिष्क में झांकने लगे। पुरानी स्मृतियों ने उसको रोने के लिए मजबूर कर दिया। वह फफकने लगी।

रुदन के पश्चात् विश्रान्ति आती है। उसे दूर करने के लिए उसने जल पिया। शीतल जल ने नव-स्फूर्ति प्रदान की। वह कोठरी में घूमने लगी। कुछ देर घूमने के पश्चात् वह उस दीवाल के समीप खड़ी हुई, जहां सुरंग में जाने का द्वार था। उसने बताई हुई रीति से द्वार खोला, और उसके अन्दर प्रवेश करने का विचार करने लगी। उसने द्वार को बार-बार खोलने बन्द करने की आवश्यकता महसूस नहीं की, क्योंकि उसकी कोठरी का द्वार अन्दर से बन्द था, और मन्दिर में सिवाय मासपा तथा बासबा के कोई नहीं था। वे दोनों भी 'त्सोंगदू' की बैठक में भाग लेने चले गए थे। मासपा ने उसे यही बताया था। अतएव एक प्रकार से जोरवांग मन्दिर में केवल वही एक मात्र निवासिनी थी! मन्दिर की शून्यता के कारण उसका अन्तर बाह्य सभी शून्य हो रहा था। उसका मस्तिष्क शून्य था, उसमें विचार करने की शक्ति सर्वथा लुप्त हो गई थी। वह अन्यमनस्कता के साथ सुरंग में प्रविष्ट हुई।

सुरंग के भीतर उतना अन्धकार नहीं था जितना वह भय करती थी। सूक्ष्म मलिन चाँदना था, जैसा गोधूलि बेला के कुछ समय पश्चात् निशा आगमन के समय होता है। सरसराती हुई वायु बराबर चली आ रही थी। उसे कल रात्रि को मासपा ने सुरंग से बाहर जाने का मार्ग दिखाया था, किन्तु वह कहां से उसमें प्रविष्ठ हुए थे, नहीं बताया था। बाहर निकलने की दिशा के प्रतिकूल वह जाने लगी। उसने अनुमान किया कि इस प्रतिकूल दिशा में चलने से वह मन्दिर के अन्य गुप्त मार्गों का पता लगाने में समर्थ होगी। वह

सुरंग में बिना किसी अन्य प्रकाश की सहायता के बड़ी आसानी से जा सकती थी, किन्तु उसके गुप्त भेदों का पता लगाना कठिन था, इसलिए उसने मोम-बत्ती जलाना उचित समझा। जहाँ वह थी, वहीं आस-पास कोई ऐसा ताक ढूँढ़ने लगी, जहाँ मोमबत्तियाँ रखी हों, क्योंकि मासपा ने बताया था कि प्रत्येक द्वार पर ऐसी व्यवस्था है। किन्तु जब थोड़ी देर खोजने के बाद भी ऐसा कोई ताक पाने में असमर्थ रही, तब उसने अपनी कोठरी वाले द्वार के ताक से मोम-बत्ती निकाल कर जलाई, तथा प्रकाश में उसका सूक्ष्म निरीक्षण करने लगी। उसने देखा सुरंग की लम्बाई उस प्रकाश में आँकना कठिन है। वह चारों ओर दृष्टिपात करती हुई धीरे २ आगे बढ़ने लगी। थोड़ी दूर जाने पर उसे ताक और खूँटियाँ दिखाई, पड़ीं, जिनसे उसने अनुमान किया कि यह भी एक मार्ग इस सुरंग में प्रवेश करने का है। उसने उत्सुकता वश उसे उसी विधि से खोलने का प्रयत्न किया, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। बड़ी देर तक उसने नई २ युक्तियां कीं, किन्तु प्रवेश द्वार नहीं खुला। हार कर वह आगे बढ़ी। कुछ देर चलने के पश्चात् सुरंग बाईं दिशा को घूमी थी। इस मोड़ पर भी खूंटियां थीं। द्वार का अनुमान कर वह उसे भी खोलने का प्रयत्न करने लगी, परन्तु पहली जैसी असफलता उसे यहाँ भी मिली। वह जब लगभग पचास-साठ कदम गई होगी, तब ऐसे स्थान पर पहुँची जहाँ दाहिने-बाएँ जाने के लिए सुरंगें थीं। वह एक प्रकार से चौराहा-सा था। वह किस मार्ग का अनुसरण करे, इसका वह निश्चय नहीं कर सकी। उसने दाहिनी दिशा की सुरंग की ओर प्रस्थान किया। कुछ दूर चलने के पश्चात् वह एक बड़े मण्डप में पहुँची, जिसके चारों ओर अनेक खूंटियाँ लगी थीं। उनकी बनावट से उसने अनुमान किया कि वह जोरवांग के मन्दिर के ठीक नीचे है, और ये सब उसकी विविध कोठरियों से इसमें उतरने के मार्ग हैं। अब वह वहाँ खड़ी होकर दिशाओं का अनुमान करने लगी। निज मन्दिर पूर्वाभिमुख था, इसलिए वह उसकी प्रतिकूल दिशा को सन्मुख रखकर खड़ी हुई। अब उसकी पीठ की ओर पूर्व सामने पश्चिम, दाहिने उत्तर और बाएँ दक्षिण दिशायें थी। तीनों दिशाओं की खूँटियां बता रही थीं कि वहाँ सुरंग में प्रवेश करने के मार्ग हैं। सामने वाले मार्ग से वह आई थी।

अब उसने अपने को मंदिर के शिखर पर खड़ी होने की कल्पना की। उसे स्पष्ट प्रतीत हुआ कि पश्चिम दिशा वाला मार्ग, अर्थात् जिससे वह आई है, पोटाला के गुप्त कक्षों तक पहुँचने के लिए है। उसके मन ने प्रश्न किया कि वह पुनः लौटकर पोटाला स्थित राज मंदिरों का निरीक्षण करे। उधर जाने के पहले उसने मन्दिरों के सभी द्वारों को खोलकर देखने का निश्चय किया। दो दिशाओं के द्वार तो पहले द्वारों की भाँति नहीं खुले किन्तु जब उसने उत्तर दिशा के द्वार की खूँटियाँ खींची, तो वे सरक गईं, और ऊपर चढ़ने को सीढ़ियाँ दिखाई दीं। वह सहमती हुई ऊपर चढ़ने लगी। दस सोपानों के उपरान्त उसे वैसी ही व्यवस्था दिखाई दी और खूंटी घुमाकर उसने द्वार खोला। ऊपर निकल कर उसने अपने आपको बासबा के निजी कक्ष में पाया। इस कक्ष से वह भली भाँति परिचित थी, क्योंकि उसको अन्य विद्यार्थियों के साथ व्याख्यान सुनने के लिए मासपा वहां ले आया करते थे। इस समय वह कक्ष बिल्कुल शून्य था। मन्दिर के बाहर भीतर सब शून्य था। बासबा और मासपा दोनों त्सोगंदू की बैठक में गये हुए थे।

वह बासबा के निजी कक्ष को बड़े ध्यान से देखने लगी। यद्यपि वह कई बार वहाँ आ चुकी थी, तथापि उसको उसने पूरी तरह देखा नहीं था, क्योंकि उसका भेद प्रकट हो जाने का भय सदैव उसे बासबा से दूर रहने का उपदेश देता था। वह उनके व्याख्यान के समय सबसे पिछली पंक्ति में बैठती थी, और उसके समाप्त होने पर सबसे प्रथम उठ जाती थी। उसका गुप्तचरी-स्वभाव इस एकान्त को पाकर उस कक्ष का सर्वेक्षण करने के लिए उत्साहित करने लगा। सबसे पहले उसने उसका द्वार उढ़का दिया, ताकि कोई भूला-भटका आ भी जावे तो वह यही समझे कि बासबा ध्यान कर रहे हैं। अब निर्भय होकर उसने प्रत्येक वस्तु देखने का विचार किया।

कमरे में कोई विशेष सामान नहीं था। एक मृगछाला, कुछ ओढ़ने-बिछाने के कम्बल, कोरलो, और अनेक रंगों की मालायें थीं। उसका ध्यान उस कक्ष में लगी हुई खूंटियों की ओर गया। यह अनुमान कर कि शायद इनमें कोई किसी गुप्त मार्ग को खोलने में सहायक हो, वह बताई हुई

रीति से प्रत्येक को खींचने लगी। दक्षिण दिशा की दीवाल पर लगी हुई खूँटी सरकी, और पटिया ने सरक कर एक द्वार का मुहाना खोला। वह डरती हुई उसमें प्रविष्ट हुई। नीचे उतरने के लिए सीढ़ियां दिखाई दीं। वह द्वार बन्द कर नीचे आई, तथा आगे जाने का मार्ग उसने उसी विधि से खोला। इस समय वह एक विशाल कक्ष में थी। उसमें सैंकड़ों बड़े-बड़े तांबे के देग रखे थे। एक देग का ढक्कन उसने डरते-डरते उठाया। मोमबत्ती के प्रकाश में उसने देखा कि वह स्वर्ण-मुद्राओं से भरा है। अब उत्सुकता से वह जिस भी देग का ढक्कन उठाकर देखती, उसे स्वर्ण-मुद्राओं, आभूषणों अथवा रत्नों से भरा पाती। इतनी धनराशि की उसने कभी कल्पना ही नहीं की थी। वह आश्चर्य-विमुग्ध होकर उसके मूल्य का अनुमान करने लगी, किन्तु उसने अपने को असमर्थ पाया। तृषित नेत्रों से उन्हें देखती हुई वह विचारने लगी कि यह अनन्त राशि सहस्त्रों वर्षों के संचय का परिणाम है। उसका मन उस धन-राशि से कुछ उठा लेने का हुआ। उसने कुछ स्वर्ण मुद्रायें उठायीं भी, किन्तु विवेक ने उसे ऐसा अधम काम करने का परामर्श नहीं दिया। इधर धार्मिक संस्थान में रहने से उसकी मनोवृत्ति तथा संस्कारों में कुछ परिवर्तन भी हुआ था। मंदिर के द्रव्य को लेने के लिए उसकी सद्वृत्तियाँ उसे बारम्बार निषेध करने लगीं। वह उन्हें सतृष्ण नेत्रों से देखती हुई आगे बढ़ी। उस कक्ष से मिला हुआ उसे एक दूसरा कक्ष दिखाई दिया। वहाँ प्रवेश करने पर उसने देखा कि उसमें विविध प्रकार के शस्त्रास्त्र रखे हुये हैं। वहां पुरानी से पुरानी चाल की बन्दूकों से लगाकर आधुनिक काल तक की बन्दूकें, पिस्तौल, रिवाल्वर रखे हुए थे। प्रत्येक अस्त्र के साथ उसके कारतूस भी टँगे थे। उनको देखकर वह अपना लोभ संवरण नहीं कर सकी। उसके मन ने कहा कि आत्मरक्षा के लिए उसे एक रिवाल्वर और कारतूस लेना आवश्यक है। इनको मन्दिर और उनके निवासियों की रक्षा के लिए ही रखा गया है। मन्दिर निवासिनी होने के नाते उसे लेना पाप नहीं है। उसने उनमें से एक छोटा रिवाल्वर कारतूसों की पेटी के साथ अपने चोगे के नीचे छिपा लिया।

इसके बाद वह आगे बढ़ी। यहाँ पर भी एक तरफ की दीवार में दो

खूँटियां थीं, किन्तु वे खाली थीं— उन पर कोई चीज टँगी न थी उसने अनुमान किया कि शायद इसके द्वारा किसी अन्य कक्ष में पहुँचा जा सकता है। वह उन्हें खींचने लगी। वह खिची अवश्य, किन्तु सरकी नहीं। उसने अनुमान किया कि इस ताले को खोलने के लिए कोई दूसरी विधि है। वह उसे खोजने लगी। उसकी दृष्टि अकस्मात एक छोटी कील पर पड़ी। वह उसे आगे-पीछे दबाने लगी। पहले वह हिली नहीं, किन्तु जब उसने उसे पूरी शक्ति से सामने खींचा तो वह खटके के साथ कुछ बाहर निकल कर ठहर गई। अब उसके खूँटी खींचने से दीवाल की एक पटिया पूर्ववत सरक गई तथा द्वार प्रकट हो गया। अब उसकी समझ में आ गया कि यह कील ताले का काम करती है। इसका भीतर प्रवेश कर देने से खूँटी का सरकना बन्द हो जाता है।

वह धड़कते हुए कलेजे से उसमें प्रविष्ट हो गई। उसने अब अपने को एक सुरंग में पाया। इधर- उधर देखने से मालूम हुआ कि वह उसी मण्डप में पुन: पहुँच गई हैं, जहाँ से उत्तर की दिशा की खूँटी खींच कर बासबा के निजी कक्ष में पहुँची थी। अब उसे ज्ञात हो गया कि ताला बन्द होने के कारण वह पहले इस गुप्तद्वार को खोलने में असमर्थ रही थी। उसने अनुमान किया कि जो गुप्त द्वार उसके खोले नहीं खुले थे, वे सब कील रूपी ताले से बन्द कर दिए गए हैं। सम्भव है कि उनमें भी द्रव्य अथवा हथियार या अन्य वस्तुयें रखी हों। वहाँ खड़ी होकर वह सोचने लगी कि अब बासबा के कक्ष में जाने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उसके मुख्य द्वार को उसने केवल उढ़का दिया था, कुण्डी चढ़ाकर बन्द नहीं किया। वह पीछे लौटी। जब वह चौमुहाने में पहुँची, तो उसके मन में विचार आया कि पोटाला पहुँच कर वहाँ के राजमहलों की सैर करे। उसके सामने की सुरंग पोटाल जाती थी। बाईं ओर उसके कक्ष में जाने का मार्ग था, किन्तु दाहिनी ओर का मार्ग किधर जाता था, इसका ज्ञान वह प्राप्त नहीं कर सकी थी।

उसकी मोमबत्ती अब नि:शेष हो चली थी। दूसरी मोमबत्ती लेने को वह आस-पास के ताकों पर दृष्टि दौड़ने लगी, किन्तु वे सब खाली थे। उसे

रीति से प्रत्येक को खींचने लगी। दक्षिण दिशा की दीवाल पर लगी हुई खूँटी सरकी, और पटिया ने सरक कर एक द्वार का मुहाना खोला। वह डरती हुई उसमें प्रविष्ट हुई। नीचे उतरने के लिए सीढ़ियां दिखाई दीं। वह द्वार बन्द कर नीचे आई, तथा आगे जाने का मार्ग उसने उसी विधि से खोला। इस समय वह एक विशाल कक्ष में थी। उसमें सैकड़ों बड़े-बड़े तांबे के देग रखे थे। एक देग का ढक्कन उसने डरते-डरते उठाया। मोमबत्ती के प्रकाश में उसने देखा कि वह स्वर्ण-मुद्राओं से भरा है। अब उत्सुकता से वह जिस भी देग का ढक्कन उठाकर देखती, उसे स्वर्ण-मुद्राओं, आभूषणों अथवा रत्नों से भरा पाती। इतनी धनराशि की उसने कभी कल्पना ही नहीं की थी। वह आश्चर्य-विमुग्ध होकर उसके मूल्य का अनुमान करने लगी, किन्तु उसने अपने को असमर्थ पाया। तृषित नेत्रों से उन्हें देखती हुई वह विचारने लगी कि यह अनन्त राशि सहस्त्रों वर्षों के संचय का परिणाम है। उसका मन उस धन-राशि से कुछ उठा लेने का हुआ। उसने कुछ स्वर्ण मुद्रायें उठायीं भी, किन्तु विवेक ने उसे ऐसा अधम काम करने का परामर्श नहीं दिया। इधर धार्मिक संस्थान में रहने से उसकी मनोवृत्ति तथा संस्कारों में कुछ परिवर्तन भी हुआ था। मंदिर के द्रव्य को लेने के लिए उसकी सद्वृत्तियाँ उसे बारम्बार निषेध करने लगीं। वह उन्हें सतृष्ण नेत्रों से देखती हुई आगे बढ़ी। उस कक्ष से मिला हुआ उसे एक दूसरा कक्ष दिखाई दिया। वहाँ प्रवेश करने पर उसने देखा कि उसमें विविध प्रकार के शस्त्रास्त्र रखे हुये हैं। वहां पुरानी से पुरानी चाल की बन्दूकों से लगाकर आधुनिक काल तक की बन्दूकें, पिस्तौल, रिवाल्वर रखे हुए थे। प्रत्येक अस्त्र के साथ उसके कारतूस भी टँगे थे। उनको देखकर वह अपना लोभ संवरण नहीं कर सकी। उनके मन ने कहा कि आत्मरक्षा के लिए उसे एक रिवाल्वर और कारतूस लेना आवश्यक है। इनको मन्दिर और उनके निवासियों की रक्षा के लिए ही रखा गया है। मन्दिर निवासिनी होने के नाते उसे लेना पाप नहीं है। उसने उनमें से एक छोटा रिवाल्वर कारतूसों की पेटी के साथ अपने चोगे के नीचे छिपा लिया।

इसके बाद वह आगे बढ़ी। यहाँ पर भी एक तरफ की दीवार में दो

खूँटियां थीं, किन्तु वे खाली थीं— उन पर कोई चीज टँगी न थी उसने अनु-मान किया कि शायद इसके द्वारा किसी अन्य कक्ष में पहुँचा जा सकता है। वह उन्हें खींचने लगी। वह खिची अवश्य, किन्तु सरकी नहीं। उसने अनुमान किया कि इस ताले को खोलने के लिए कोई दूसरी विधि है। वह उसे खोजने लगी। उसकी दृष्टि अकस्मात एक छोटी कील पर पड़ी। वह उसे आगे-पीछे दबाने लगी। पहले वह हिली नहीं, किन्तु जब उसने उसे पूरी शक्ति से सामने खींचा तो वह खटके के साथ कुछ बाहर निकल कर ठहर गई। अब उसके खूँटी खींचने से दीवाल की एक पटिया पूर्ववत सरक गई तथा द्वार प्रकट हो गया। अब उसकी समझ में आ गया कि यह कील ताले का काम करती है। इसका भीतर प्रवेश कर देने से खूँटी का सरकना बन्द हो जाता है।

वह धड़कते हुए कलेजे से उसमें प्रविष्ट हो गई। उसने अब अपने को एक सुरंग में पाया। इधर- उधर देखने से मालूम हुआ कि वह उसी मण्डप में पुन: पहुँच गई हैं, जहाँ से उत्तर की दिशा की खूँटी खींच कर बासबा के निजी कक्ष में पहुँची थी। अब उसे ज्ञात हो गया कि ताला बन्द होने के कारण वह पहले इस गुप्तद्वार को खोलने में असमर्थ रही थी। उसने अनुमान किया कि जो गुप्त द्वार उसके खोले नहीं खुले थे, वे सब कील रूपी ताले से बन्द कर दिए गए हैं। सम्भव है कि उनमें भी द्रव्य अथवा हथियार या अन्य वस्तुयें रखी हों। वहाँ खड़ी होकर वह सोचने लगी कि अब बासबा के कक्ष में जाने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उसके मुख्य द्वार को उसने केवल उढ़का दिया था, कुण्डी चढ़ाकर बन्द नहीं किया। वह पीछे लौटी। जब वह चौमुहाने में पहुँची, तो उसके मन में विचार आया कि पोटाला पहुँच कर वहाँ के राजमहलों की सैर करे। उसके सामने की सुरंग पोटाल जाती थी। बाईं ओर उसके कक्ष में जाने का मार्ग था, किन्तु दाहिनी ओर का मार्ग किधर जाता था, इसका ज्ञान वह प्राप्त नहीं कर सकी थी।

उसकी मोमबत्ती अब नि:शेष हो चली थी। दूसरी मोमबत्ती लेने को वह आस-पास के ताकों पर दृष्टि दौड़ने लगी, किन्तु वे सब खाली थे। उसे

मासपा के बचन याद थे कि प्राय: सब द्वारों के पास प्रकाश के उपकरण मौजूद रहते हैं, किन्तु यहाँ एक भी मोमबत्ती नहीं थी, चकमक पत्थर और सूत की लच्छियां अवश्य रखी थीं। उसने सोचा कि मोमबत्ती लेने के लिये उसे अपने कक्ष की ओर ले जाने वाली सुरंग में प्रवेश करना पड़ेगा। वह उधर ही अग्रसर हुई।

इसी समय उसे कुछ व्यक्तियों की बातचीत का शब्द सुनाई दिया। शून्य स्थान में शब्द की प्रतिध्वनि बड़ी दूर तक जाती है। वह चौंकी, और अपनी सुरंग में आकर उसने मोमबत्ती बुझा दी, तथा एक ओर दुबक कर खड़ी हो आगन्तुकों की बातें सुनने तथा समझने का प्रयत्न करने लगी। थोड़ी देर में मासपा का कंठ स्वर उसे स्पष्ट मालूम पड़ा। उसने अनुमान किया कि दूसरे व्यक्ति अवश्य ही बासबा होंगे। वह शीघ्रता से सुरंग में अपने कक्ष की ओर चली। सुरंग में प्रवेश करते समय वह अपने कक्ष का द्वार खुला छोड़ आई थी, इससे उसके ढूंढ़ने में कोई तकलीफ नहीं हुई। जब वह अपने कक्ष के गुप्त द्वार में पहुँची, शब्द की प्रतिध्वनि से उसे मालूम हुआ कि मासपा और बासबा अब मण्डप में पहुंचे हैं। उसने शीघ्रता से अपने कक्ष में आकर गुप्त मार्ग बन्द कर दिया। इस समय वह बड़ी उत्तेजित दशा में थी। परिस्थिति पर विचार करने के लिए वह अपनी शय्या पर लेट गई।

११

ल्हासा नगर को चीनी सेना ने परिवेष्ठित कर रखा था। उसके सभी नाकों पर चीनी सिपाही तैनात थे, जो व्यक्तियों को प्रवेश तो करने देते थे, किंतु निकलने नहीं देते थे। ल्हासा से बाहर जाने का अनुमति-पत्र चीनी अधिकारियों से लेना पड़ता था, और वह किसी तिब्बती को शायद ही मिलता था। उन्हें

पंचमांगियों से आभास मिल गया था कि दलाई लामा देश छोड़ कर भारत में शरण लेने का विचार कर रहे हैं, इसलिए वे किसी को निकलने नहीं देते थे। शरीर रक्षकों से रहित होकर दलाई लामा को चीनी कैम्प में उपस्थित होने का आदेश दिया गया था, जिसे त्सोंगदू (राजसभा) स्वीकार नहीं कर रही थी। तिब्बत में आतंक तथा घबड़ाहट फैलाने के उद्देश्य से उन्होंने पोटाला पर गोलाबारी भी शुरू करदी थी, जिससे कुछ विशेष क्षति तो नहीं हुई, किंतु उससे तिब्बतियों को विश्वास हो गया कि चीनी सेना बहुत शीघ्र दलाई लामा को गिरफ्तार कर लेगी। उन्हें भय था कि दलाई लामा की गिरफ्तारी से तिब्बत के राजतन्त्र का सर्वथा नाश हो जायगा, और बाहरी संसार से कोई सहायता प्राप्त न हो सकेगी। राष्ट्र संघ का सदस्य न होने के कारण उसका स्वतन्त्र अस्तित्व संसार के राष्ट्रों द्वारा स्वीकार नहीं किया गया। भारत के अतिरिक्त तिब्बती कहीं पलायन भी नहीं कर सकते थे।

जब त्सोंगदू ने निश्चय कर दिया कि दलाई लामा भारत की ओर प्रयाण करें, तब प्रश्न यह उठा कि वह किस मार्ग से निकल कर जाँय। उस दिन नव वर्ष का त्योहार मनाने में तिब्बती जनता व्यस्त थी। खाम्पा जाति के सैनिकों से ल्हासा कम्पायमान हो रहा था, और प्रत्येक क्षण यही प्रतीत होता था कि संघर्ष छिड़ने वाला है। राज सभा के सदस्यों ने उन्हें ऐसी ही स्थिति उस समय तक बनाये रखने के लिए आदेश जारी किये थे, जब तक दलाई लामा ल्हासा से बाहर न चले जाँय। ऐसी कठिन स्थिति में परामर्श के लिए जोरवांग के प्रधान योगी तथा पुजारी बासबा को निमन्त्रित किया गया। वह मासपा के साथ गुप्त मार्ग से राजमहल गए।

वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा कि सब के चेहरे उतरे हुए हैं, और भयाकुल दृष्टि से सब सभासद उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। सभासदों ने उठकर उनकी अभ्यर्थना की, और एक विश्वस्त कर्मचारी उनको लेकर एकान्त कक्ष में गया। उसने कहा—"रिममोचे आप देख रहे हैं कि तिब्बत पर चीनी सेना अधिकार करने के लिये सन्नद्ध है। आज नव वर्ष के उत्सव के कारण चीनी अधिकारी रुक गये हैं, किन्तु कल वे अवश्य दलाई लामा को गिरिफ्तार

कर लेंगे। उनकी गिरफ्तारी के साथ ही तिब्बत की राजसत्ता लुप्त हो जायगी।"

बासबा ने लघु-मात्र उत्तर दिया—"जानता हूँ।"

"रिमपोचे, आप दिव्य दृष्टि से देखिए कि तिब्बत का क्या भविष्य है?"

"जो कुछ तिब्बत में घटित होने वाला है उसका ज्ञान मुझे भारत में ही हो गया था।"

"आपको भारत में ही ज्ञान हो गया था?" उसने आश्चर्य से पूछा।

"यहां के प्रधान-प्रधान अधिकारियों को मैंने भारत–यात्रा के पश्चात् बताकर सावधान कर दिया था।"

"किन्तु आपने मुझे नहीं बताया, कभी आभास भी नहीं दिया!"

"उस समय आप इस पद पर प्रतिष्ठित नहीं थे।"

"अब आप ही इस संकट को टालने की क्षमता रखता है, अन्य कोई भी तिब्बत में नहीं हैं।"

"मैं सेवा के लिए सर्वथा प्रस्तुत हूँ।"

अधिकारी कुछ आश्वस्त हुए। फिर बोले—"चीनी घेरे से किस प्रकार निकला जाय? चीनी सेनायें किसी को ल्हासा के बाहर नहीं जाने देतीं।"

बासवा विचार मग्न हो गए। अधिकारी उनका मुख देखने लगा।

थोड़ी देर प्रतीक्षा करने के पश्चात् उसने पूछा—"रिममोचे, क्या सोच रहे हैं?"

"निकलने का उपाय ही सोच रहा हूँ।"

"आप दिव्य दृष्टि का उपयोग कीजिये।"

"दिव्य दृष्टि की नहीं, दिव्य शक्ति की आवश्यकता है।"

"अर्थात्?"

अर्थात् यह कि मुझे अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर प्रकृति में विघटन उपस्थित करना होगा, और वह महा कठिन कार्य है।"

"प्रकृति में विघटन उपस्थित करने की क्या आवश्यकता है?"

"उसके बिना चीनी सेना के घेरे से धन और आप किस प्रकार निकल कर

जायेंगे ?"

"हाँ आचार्यप्रवर, द्रव्य तो ढोकर ले जाना ही होगा, और उसके साथ लगभग तीस–चालीस नर-नारी होंगे। बिना द्रव्य के परदेश में स्थित और भी त्रासजनक होगी।"

"हाँ द्रव्य ले जाना अनिवार्य है। राजकीय कोष के अतिरिक्त मेरे मन्दिर के कोष में भी अपार द्रव्य है, जिसको तिब्बत में छोड़ना मूर्खता है। चीनी इस कोष पर अधिकार करने के लिए प्रत्येक उपाय करेंगे।"

"हाँ रिमपोचे, आप का विचार ठीक है। चीनी तिब्बत के राज कोष पर दाँत गड़ाए हैं। आप के अतिरिक्त दूसरा कोई राजकोष की रक्षा नहीं कर सकता।"

"इसीलिए तो प्रकृति में परिवर्तन के साथ मोहिनी माया का भी प्रयोग करना पड़ेगा।"

"मोहिनी माया क्या है ?"

' प्राकृतिक वायु में वेसुध करने वाले तत्वों का योगबल से समावेश करना पड़ेगा, ताकि इस ओर उनका ध्यान न जावे।"

"और प्रकृति में विघटन कैसे होगा।"

"अन्धड़ और झंझा उत्पन्न करना होगा, ताकि चीनी सैनिक अपनी रक्षा में लगे रहें, और पीछा करने में असमर्थ हो जायें।

अधिकारी प्रसन्न होकर कहने लगा–"यदि ऐसा हो सके तो राजकोष और राज पुरुष सभी सुरक्षित निकल जायेंगे।"

"इतने से ही काम नहीं चलेगा, आगे का भी प्रबन्ध करना पड़ेगा ?"

"वह क्या रिमपोचे ?"

"राज्य कर्मचारियों की अदूरदर्शिता से ही यह परिस्थिति उत्पन्न हुई है। क्या आप नहीं जानते कि चीनियों के पास वायुयान हैं ? उनके द्वारा आपके दल का पता लगाना कोई कठिन कार्य नहीं होगा। भारत के अतिरिक्त आप अन्यत्र शरण ले नहीं सकते, और वहाँ तक आपको पहुँचने में दस-ग्यारह दिन से कम नहीं लगेंगे, जब कि आप रात-दिन चलते रहेंगे।"

"आप का अनुमान सत्य है, रिमपोचे ।"

"फिर उनके विमानों की दृष्टि से भी बचना आवश्यक हैं, नहीं तो उनके एक ही बम के आप लोगो का चिह्न तक अवशेष नहीं रहेगा। क्या आप लोगों ने इसकी भी कल्पना की है ?"

"नहीं, रिमपोचे, इस ओर तो हमारा ध्यान भी नहीं गया था।"

"इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि तुम लोगों की बुद्धि मारी गई है। संकट काल में बुद्धि और धैर्य सजग रखना ही वीरता है।"

"सत्य ही रिमपोचे, हम लोगों की बुद्धि पंगु हो गई है। तिब्बत की रक्षा अब आप के ऊपर निर्भर हैं।"

"अपनी शक्ति से अनुसार अब राज-पुरुषों की रक्षा करने का प्रयत्न करूँगा। देश की रक्षा करने का समय निकल गया।"

"क्या सत्य ही तिब्बत चीनियों के अधीन होगा ?"

"हाँ अभी तो ऐसा ही प्रतीत होता है। कुछ वर्षों तक तिब्बत में चीन का शासन अवश्य स्थापित रहेगा, किन्तु वह स्थायी नहीं होगा।"

"वह अवधि कितनी होगी ?"

"काल चक्र को भेदना मानव शक्ति के बाहर है।"

"किन्तु उसका आभास तो आप को प्राप्त हो सकता है।"

"संकेत बताते हैं कि अभी उसमें बिलम्ब है, चीनियों की सत्ता नष्ट होने पर ही यह संभव होगा।"

"चीनी सत्ता का पराभव क्या निकट भविष्य में संभव नहीं है ?"

"चीन अति दुर्धर्ष देश है। उसकी सैनिक शक्ति अपार है। उसके पास शिक्षित सैनिकों की संख्या दो करोड़ सत्तर लाख है, जिसमें पैंतालीस लाख सन्नद्ध सैनिक हैं, शेष दो करोड़ पच्चीस लाख आवश्यकता पड़ने पर बुलाये जा सकते हैं, इसके अतिरिक्त जनपद-सैन्य की कोई गणना प्राप्त नहीं है। संसार के तीसरे महायुद्ध की भूमिका चीन से प्रारम्भ होगी। अभी वह अपने अणु-बमों का परीक्षण कर रहा है, जिस दिन उसको सफलता मिल जायगी, वह श्वेतांगों से अधिकृत देशों की मांग करेगा, फिर उनको हस्तगत करने के

लिए युद्ध की घोषणा करेगा।"

"रिमपोचे, तब तो विश्व का संहार हो जायगा।"

"सृष्टि का संहार नहीं होता, उसका एक अंश ही नष्ट होता है, हाँ इस महायुद्ध में उसका एक विशाल भाग नष्ट होगा।"

"किन्तु संसार के राजनैतिक युद्ध का भय दूर करने के लिए निःशास्त्रीकरण की योजनायें बन रही हैं।"

"आंशिक सफलता उन्हें मिलेगी। युद्ध के बिना चीन का पराभव नहीं हो सकता, इसलिए प्राकृतिक शक्तियाँ उसको लड़ने के लिए बाध्य करेंगी। संहार के बिना निर्माण नहीं होता। पुरानी पद्धतियाँ नष्ट होने पर ही नई पद्धति स्थापित होती है। आगामी भविष्य में जो नई पद्धति स्थापित होगी, वह नई विचारधारा भारत में जन्म ले चुकी है। उसके एक सन्त गांधी ने उसे पराधीनता से मुक्त किया, अब उनका शिष्य तथा दूसरा सन्त विनोबा अपने गुरु के विचारों को कार्य रूप में परिणित करने के लिए अलख जगाए है। संसार यदि अपनी रक्षा करना चाहता है तो उसको उसी महापुरुष की वाणी और उपदेश के अनुसार चलना पड़ेगा।"

"रिमपोचे, हम लोग इसलिए भारत की शरण में जा रहे हैं।"

"वह भगवान् अमिताभ तथा अवलोकितेश्वर की जन्म-भूमि है। वहाँ के जल-वायु में त्रय-ताप नष्ट करने की सामर्थ्य है, क्योंकि अनेकानेक सन्तों महापुरुषों, और स्वयं भगवान के अवतारों से उसका कण-कण तपःपूत है, उसका वातावरण शुद्ध है, शान्तिदायक है। वह संसार का गुरु है, भागवत शक्तियों का आगार है, भगवान की क्रीड़ा-भूमि है। मेरे गुरुदेव ने भी इन्हीं कारणों से उस पुण्य-भूमि में पुनर्जन्म लिया है। उन्होंने इस संकट की सूचना, जिससे आज तिब्बत ग्रस्त है, बहुत पहले, जब हम लोग भगवान बुद्ध की ढाई हजारवीं जयन्ती के उपलक्ष में गये थे, मुझे दी थी। उन्होंने दिव्य दृष्टि से सब देख लिया था, और वहीं उसका परिणाम भी बता दिया था, तिब्बत का एकमात्र सहायक भारत है, और वही उसकी प्राणप्रतिष्ठा पुनः करेगा।"

"सत्य ही हमारा कल्याण भगवान बुद्धदेव की कृपा से वहीं होगा।"

"निस्सन्देह ।"

"किन्तु वहाँ तक पहुँचना बड़ा दुस्तर हो रहा है ।"

"भगवान अमिताभ की कृपा से वह सहज हो जायगा ।"

"किन्तु रिमपोचे आपने जो वायुयानों द्वारा हमारे ढूँढे जाने की बात सुनाई है, उससे हमें बड़ा भय हो रहा है । चीनी वायुयान हमें बहुत शीघ्र ढूँढ निकालेंगे, और तब हमारी मृत्यु निश्चित है ।"

"नहीं कालचक्र ने यह विधान नहीं रचा है । प्राकृतिक शक्तियाँ वैज्ञानिक उपकरणों से अधिक शक्तिशाली हैं । जब आप लोग बुद्ध भगवान की जन्मभूमि की ओर प्रस्थान कर रहे हैं, तब प्राकृतिक शक्तियाँ उनकी प्रेरणा से आपकी तिब्बत के राजतन्त्र की, रक्षा अवश्य करेंगी ।"

"आपकी वाणीं अभय प्रदान करती है, किन्तु मन की चंचलता शंका भी उत्पन्न करती है ।"

"मानव स्वभाव प्रत्येक वस्तु अथवा विचार का प्रत्यक्षीकरण चाहता है, अथवा प्रमाण माँगता है । वह प्राकृतिक शक्तियों को विज्ञान से बांधना चाहता है, किन्तु विज्ञान उनका मुखापेक्षी है, उनका स्वामी या कर्त्ता नहीं । प्राकृतिक शक्तियों का भण्डार, असीम, अगाध और अपार है, योगियों के ध्यान से भी परे है, अगम्य है, उन पर विज्ञान शासन नहीं कर सकता । विज्ञान तो केवल उनके वाह्य रूप का अल्प मात्र दर्शन करता है । प्राकृतिक शक्तियाँ सूक्ष्म हैं । इतनी सूक्ष्म, जिनकी कल्पना मनुष्य का मस्तिष्क करने में सर्वथा अक्षम है । सूक्ष्म का ज्ञान केवल सूक्ष्म तत्वों से, और उतना ही जितना मानव-मस्तिष्क ग्रहण करने में सक्षम है, हो सकता है । उसके लिए साधना, तपस्या और अथक परिश्रम की आवश्यकता होती है । अनेकानेक जन्मों की सतत साधना से ही उसका कुछ वास्तविक आभास मिलता है ।"

"किन्तु रिमपोचे, हमारा बचाव किस प्रकार होगा, इसका आभास देकर हमारी जड़ता नष्ट करें ।"

"इतना शंकालु न हों । जो कुछ भगवान तथा गुरु की कृपा से मुझे सूक्ष्म शक्ति प्राप्त हुई है, उसका भगवान अवलोकितेश्वर की कृपा से उपयोग कर आप लोगों के शिर बादलों के दल से बराबर छिपाये चलते रहने का

प्रयत्न करूँगा। बादलों का परदा इतना मोटा रहेगा कि वायुयानों को उनके ऊपर उड़ना पड़ेगा और वे अपने समस्त वैज्ञानिक उपकरणों से आपके दल को देखने में असमर्थ रहेंगे। बादल तभी फटेंगे जब आप भारत-सीमा में प्रवेश कर जायेंगे, यह मैं आप को विश्वास दिलाता हूँ।"

बालकों की भाँति प्रसन्नता से अधिकारी ने ताली बजाते हुए कहा—"यदि ऐसा हो सके रिमपोचे, तब हम लोग निश्चय ही सुरक्षित पहुँच सकेंगे।"

"कालचक्र का ऐसा ही विधान प्रतीत होता है। यदि ऐसा ही विधान है तो अवश्य मेरा क्षुद्र प्रयत्न उसे पूर्ण करने में सक्षम होगा, और यदि उसका कोई अन्य अथवा विपरीत विधान है, तब मेरा उद्योग विफल जायगा। कह चुका हूँ कि काल-चक्र से बलवान और कोई दूसरी शक्ति नहीं है। योगी उसी काम में हाथ डालते हैं, जिसका उन्हें आभास मिल जाता है कि वह काल-चक्र के विधान के प्रतिकूल नहीं है।"

"तब काल-चक्र का विधान तिब्बत के राजतन्त्र के अनुकूल है?"

"हाँ प्रतीत तो यही होता है।"

"तब तिब्बत का राजतन्त्र जीवित रहेगा।"

"निस्सन्देह। अच्छा अब आप लोग यात्रा का प्रबंध करें, और मैं अपने मन्दिर में जाकर भागवत शक्तियों को आप लोगों की रक्षा के लिए प्रेरित करने का आयोजन करता हूँ। ॐ मणे पद्मेहुँ।"

अधिकारी ने प्रसन्न चित्त से बासवा को भू-नत होकर प्रणाम किया। बासवा ने निश्चिन्त, निस्पृही रूप में अभय की वर्षा करते हुए मासपा के साथ गुप्त मार्ग से जोरवाँग मन्दिर की ओर प्रस्थान किया।

१२

तिब्बत के नव वर्ष के प्रथम दिन का उत्साह यकायक प्रबल झंझा के उठने से फीका पड़ने लगा। नागरिक जो सड़कों पर रंगरेलियाँ कर रहे थे, घरों में

त्राण पाने के लिए छिपने लगे, किन्तु खाम्पा सैनिक पूर्ववत विविध प्रकार की क्रीड़ाओं में संलग्न रहे, क्योंकि उन्हें त्सोंगदू का आदेश था कि उत्साह में कोई कमी न दिखाई जावे, और न वे सड़कों को जनशून्य होने दें। कुछ लोग इधर-उधर टोलियों में बटे हुए झंझा की प्रबलता पर टीका-टिप्पणी कर रहे थे। इस असमय में आँधी के आने से उनके उत्साह का कार्य क्रम बिगड़ गया था, और उनमें से कितने ही दैव को कोस रहे थे। कोसने वालों में चीनी सिपाही भी थे। सैनिक अनुशासन के कारण वे अपना स्थान छोड़ नहीं सकते थे, किन्तु वायु की प्रबल तरंगों नें छोटे-छोटे बालू के कण उनकी आँखों में घुस कर उन्हें देखने के अयोग्य बना रहे थे। प्राय: सभी अपनी आँखों को मलते हुए बैठे या खड़े थे, और वे उन अनेक पशुओं को देखने में असमर्थ थे जो अपनी पीठ पर मिट्टी तथा रेत के बोरों के नीचे तिब्बत के राजकोष का द्रव्य छिपाये चले जा रहे थे। सैनिकों और उन पशुओं के बीच चक्राकार पवन इतने वेग से चलकर बालू की दीवाल उठा रहा था जिसको भेदना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव-सा था। यदि किसी सैनिक की दृष्टि उधर गई भी, तो उसे स्पष्ट कुछ न दिखाई दिया। उसको बोरों की बालू, वायु में उड़ती हुई बालू के साथ एकाकार होकर यही अनुमान कराती थी कि पशुओं की पीठ पर कोई बोझ नहीं है, और वे तूफान से त्राण पाने के लिये भागे जा रहे हैं। उनके पास इधर-उधर जो राजसेवक देहाती वेष में उनकी रक्षा करते निर्दिष्ट स्थान के लिए जा रहे थे, वे धूल तथा रेत के पर्दे में बिल्कुल छिप गये थे। चीनी सैनिकों की उन पर दृष्टि नहीं पड़ी।

तूफान तीसरे पहर के अर्धांश में आरम्भ हुआ था, और ज्यों-ज्यों संध्या का आगमन समीप आ रहा था, त्यों-त्यों उसका वेग प्रबलतर हो रहा था। चतुर्थ प्रहर के आरम्भ में वह इतना भीषण तथा उग्र हो गया कि चीनियों की समस्त नाकाबन्दी शिथिल पड़ गई, और सभी सैनिक अपने-अपने स्थानों को छोड़ तम्बुओं में शरण लेने लगे। तम्बू भी धरे-बांधे न रहते थे। बालू में गड़े हुए खूँटों को तम्बुओं में भरी हुई वायु उखाड़ कर फेंक रही थी, और जब तक वे एक खूँटा ठोक कर पुन: गाड़ते, तब तक वह दूसरी ओर का खूँटी

उखाड़ डालती। झंझा इस समय एक महा नटखट पिशाच अथवा प्रेत के रूप में उन सैनिकों को नाकों चने चबवा रही थी। वे जहाँ आंखें खोलते, कोई किरकिही उनमें प्रविष्ट हो जाती और बालू के छोटे-बड़े कणों को साथ लिये वायु उनके मुख पर थपेड़े मारती थी। वे व्याकुल होकर यत्र-तत्र शरण लेने के लिए भाग गये, और नाके तिब्बत के राज-पुरुषों को निकालने की सुविधा देने के लिए खाली छोड़ गये।

यद्यपि संध्या होने में अभी पर्याप्त बिलम्ब था, तथापि सूर्य बिम्ब धूल-कणों से इतना आच्छादित हो गया था कि उसके प्रकाश की प्रखरता नष्ट हो गई थी, और कुछ गजों के आगे देखना असम्भव हो गया था। पश्चिमीय क्षितिज पर स्थित भगवान अंशुमाली इस क्षेत्र के लिए अंशुओं से रहित होकर काई-चू नदी को पार करते हुए तिब्बत के राजघराने को अभय प्रदान करने लगे। नदी के नाके पर एक भी सैनिक नहीं था। किसी ने इनसे कोई प्रश्न नहीं पूछा, किसी ने कोई बाधा उपस्थित नहीं की।

काई-चू नदी के उस पार शीघ्रगामी अश्वों का प्रबन्ध किया गया था। सबके निरापद पहुँच जाने पर, वे 'नेथांग', जो ल्हासा से दक्षिण तीस मील की दूरी पर आबाद था, की ओर तूफान के साथ तूफान की गति से रवाना हो गए। उस समय उनके सामने केवल आगे बढ़ने की लगन थी और आश्चर्य की बात थी कि जिस अंधड़ से भयभीत होकर चीनी सैनिक अपने प्राण बचाने के लिए छिप गए थे, वह इन शरणार्थियों को कोई रुकावट नहीं डाल रहा था, वरन् उनके घोड़ों में नव-स्फूर्ति भर रहा था। वह अधिकारी जिससे बासबा का वार्तालाप हुआ था, बार-बार उनको स्मरण करता हुआ मन ही मन प्रणाम कर रहा था। उसे कभी-कभी अनुभव होता कि बासबा राजपुरुषों के दल के सामने वायु-वेग से चलते हुए उन्हें पथ प्रदर्शित कर रहे हैं।

अर्धरात्रि के लगभग नीथांग गाँव में सब देशत्यागी पहुँच गये, क्योंकि यहीं पर सब के मिलन का निश्चय हुआ था। आगे बड़ा दुरूह मार्ग था। भयानक तथा दुर्गम पथ की चढाई थी। प्रात:काल होने के पहले वे त्साँगपो अर्थात् ब्रह्मपुत्र नदी को पार करना चाहते थे, किन्तु उनकी गति इतनी तीव्र

थी कि वे सब ब्राह्म-मुहूर्त में ही पहुँच गये, हालांकि उन्हें सत्रह हजार फुट की ऊँचाई पर स्थित ची–दर्रे की चढ़ाई चढ़ कर नीचे घाटी में उतरना पड़ा था, और वह भी पैदल !

इसके आगे का मार्ग सर्वथा सुरक्षित था। यह प्रदेश खाम्पाओं से आबाद था, जो चीनी सेनाओं से निरन्तर युद्ध कर रहे थे। ज्यों ही प्रातःकाल का सूर्य निकला, त्योंही प्रचण्ड वायु के झोकों ने न-मालूम कहाँ से गहरे काले बादलों को एकत्रित करना आरम्भ किया, और देखते-देखते घटाटोप अन्धकार छा गया, केवल पथ की सूक्षम रेखा दिखाई पड़ती थी।

पिछले दिन के चतुर्थ प्रहर से यात्रा आरम्भ हुई थी, अतएव विश्राम करने के लिए कुछ देर ठहरना आवश्यक था, हालांकि वे सब उतनी थकावट महसूस नहीं करते थे, जितना उनको भय था। उन्होंने दिन को विश्राम करने तथा रात्रि को चलने की योजना बनाई थी, किन्तु प्राकृतिक अवस्था ऐसी बन गई थी कि दिन और रात्रि एक समान हो गए।

यद्यपि तिब्बत के अधिकारियों का पलायन गुप्त रखा गया था, तथापि जब वे खाम्पाओं से शासित प्रान्तों में पहुँचे, तब जगह-जगह पर जनता उनका स्वागत करने के लिए तैयार खड़ी मिली। तिब्बत के ये प्रान्त अत्यन्त दुर्गम माने जाते थे। उनमें केवल वहाँ के निवासी ही विचरने की शक्ति रखते थे। खाम्पाओं से शासित होने के कारण यह क्षेत्र चीनियों की शासन–सत्ता के बाहर था और अभी तक पूर्ण स्वतन्त्रता का अनुभव कर रहा था। अतएव तिब्बत के अधिकारियों को किसी चीनी सैनिक का सामना नहीं करना पड़ा, वरन् जैसे बालक हाथों-हाथ एक दूसरे की गोद में पहुँचाया जाता है। उसी प्रकार वे भी खम्पा स्वयंसेवकों से रक्षित गाँव-गाँव निरापद पहुँचाए जा रहे थे।

यह यात्रा पूरे पन्द्रह दिनों में समाप्त हुई, वे सब के सब भारत के प्रान्त असम की सीमा में प्रविष्ट होकर चीनियों की गिरफ्तार से सर्वथा बाहर आ गए। पलायन के दिनों में कोई चीनी वायुयान उन्हें देख नहीं सका, यद्यपि उन्होंने कई बार उनकी घड़घड़ाहट अवश्य सुनी थी। बादलों का स्तूप उनकी रक्षा

करता हुआ उनके साथ-साथ चल रहा था। जिस दिन वे सब भातर-सीमा में प्रविष्ट हुए, उसी दिन सूर्य को आच्छादित रखने वाला बादलों का वह समूह आकाश में विलीन हुआ। जब सब सुरक्षित भारत की सीमा में आगए, तब प्रधान अधिकारी ने उत्तर की ओर मुख कर बासबा को अनेक प्रणाम किए, तथा उनकी कृपा के लिए उन्हें असंख्य धन्यवाद दिए। बासबा ने उन्हें सुरक्षित रूप से भेजने का जैसा आश्वासन दिया था, वैसा अपने योगबल से समस्त धन-जन सहित सब को भगवान बुद्ध की जन्मभूमि में भेज दिया।

(उपर्युक्त परिच्छेद में वर्णित घटना ऐतिहासिक तथ्य है, औपन्यासिक कल्पना नहीं। विज्ञान अभी तक पंचतत्वों को वशीभूत करने में समर्थ नहीं हुआ है। कभी होगा, यह अपेक्षित है। —लेखक)

१३

तिब्बत स्थित चीनी सेना के प्रधान सेनापति ताई-लुंग अपने शिविर में वृहत्तर चीन संघ के उपाध्यक्ष कांग के सामने दक्षिण-पूर्व एशिया, आस्ट्रेलिया, और दक्षिणी अमरीका का मानचित्र खोले बैठे थे। दोनों के मुख गम्भीर थे, और वे किसी अति गहन विषय पर वार्तालाप कर रहे थे। कांग के सामने मदिरा की बोतल और सोने का गिलास रखा हुआ था, जिसमें में वह मदिरा डाल कर पन्द्रह–बीस मिनटों के अन्तर पर पी लेता था। ताई-लुंग मदिरा सेवन नहीं करता था। वह चाय पीने का अभ्यासी था, इसलिए एक बड़े बर्तन में चाय भी रखी थी, जिसे वह कांग के मदिरा सेवन के साथ पीता था।

कांग ने मदिरा की चुस्की लेते हुए कहा—"जेनरल, तुम्हारे सामने एक बहुत विषम और विशाल कार्य है। उसके सम्पादन का भार मैं तुम पर

डालना चाहता हूँ।"

ताई-लुंग ने विनम्रता के साथ उत्तर दिया—"मेरी सेवायें चीन के लिये सदा समर्पित हैं। आप आदेश दीजिये, उनका पालन मैं यथाशक्ति करूँगा।"

"तुम से ऐसी ही आशा है, तभी यह गुप्तभेद तुम पर प्रकाशित करता हूँ। अभी इसको अपने ही तक सीमित रखना, किसी अन्य पर चाहे वह कितना ही तुम्हारा विश्वास-पात्र हो, व्यक्त न करना। यह मेरी निजी योजना है, जिसे मैं सुविधा और समय आने पर कार्यान्वित करूँगा।"

"आपका विश्वासपात्र होने से मैं अपने को धन्य तथा गौरवान्वित मानता हूँ।"

"अच्छा, सुनिए। यह तो आप जानते ही हैं कि चीन की आबादी दिन प्रति दिन बढ़ रही है। अभी वह लगभग पैंसठ-सत्तर करोड़ से कुछ अधिक है, और जिस गति से उसमें वृद्धि हो रही है, उसके देखने से अनुमान होता है कि दस वर्षों में अस्सी-पचासी करोड़ हो जायगी।"

"हाँ, उससे बहुत अधिक ही होगी। यदि पांच प्रतिशत प्रतिवर्ष के अनुपात से वृद्धि-क्रम मान लिया जावे तो पैंतीस करोड़ की वृद्धि होती है। इस प्रकार दस वर्षों में एक अरब पांच करोड़ की जनसंख्या हो सकती है।"

"ठीक है, परन्तु मैं इस संख्या में लगभग बीस पचीस करोड़ व्यक्तियों को घटा देता हूँ, जो आगामी युद्धों में, जिनकी मैं योजना बना रहा हूँ मारे जायेंगे। इसलिए मैं केवल पैंसठ-करोड़ हीं आंकता हूँ।"

"हाँ, अब हिसाब ठीक बैठ गया।"

काँग मदिरा की चुस्कियां लेने के बाद कहने लगा—"इस बड़ी आबादी के बसानें, तथा भरण-पोषण का भार हमारे ऊपर है। चीन के अधिकार में जितनी भूमि अभी है, वह उसके लिए पर्याप्त नहीं है। हम मक्षिकाओं की भाँति रहते हैं, हमारे पास खेती करने की पर्याप्त भूमि नहीं है, हमारे सभी साधन, अति सीमित तथा अपर्याप्त हैं, और सत्य यह है कि हम इतनी बड़ी जनसंख्या का पालन नहीं कर सकते हैं।"

"इसमें कोई सन्देह नहीं। आबादी की समस्या को हल करने के लिए ही

हम तिब्बत पर अधिकार जमाने जा रहे हैं।"

"परन्तु तुम क्या समझते हो कि इस मुट्ठी भर पहाड़ी ऊसर भूमि से हमारी समस्या हल हो जायगी ?"

"नहीं। किन्तु इस भूमि पर अधिकार किए बिना हम किसी दिशा में बढ़ भी तो नहीं सकते। उत्तर और पश्चिम में रूस है, जो हमारा एकमात्र सशक्त मित्र है, और पूर्व में सागर है, अतएव तीनों दिशाएँ हमारे लिए अवरुद्ध हैं।"

"ठीक, अब केवल दक्षिण दिशा में हम प्रसार कर सकते हैं।"

"हाँ, और वही हम कर रहे हैं। तिब्बत के अधिकृत होने पर अपनी सीमायें हिमालय तक ले जाकर अपनी स्थिति दृढ़ करेंगे और इसके पश्चात् ……… ।"

कांग ने उसे आगे बोलने न दिया, और बीच ही में कहा—"मैं समझ गया कि तुम्हारा संकेत बरमा, तथा भारत की ओर है।"

"हाँ, मैं यही कहने जा रहा था।"

"परन्तु मैं नहीं चाहता कि तुम भारत पर अधिकार करने की दिशा में सोचो। उस पर सैनिक अधिकार हम नहीं करेंगे, न उससे समारो समस्या सुलझेगी। भारत की आबादी पाकिस्तान को मिलाकर लगभग चीन के बराबर अथवा कुछ न्यून है। प्रथम तो हम भारत पर सैनिक अधिकार कर नहीं सकते, और मान लो कि हम अधिकार करने में सफल भी हो जांय, तो उससे हमारी आबादी के बसाने की समस्या कभी हल नहीं हो सकती। भारत में भी चीन की भांति नव जागरण हुआ है। वह अपनी स्वतन्त्रता के लिए, अपनी तिल-तिल भूमि के लिए लड़ेगा और संसार के समस्त देश इसकी सहायता के लिए दौड़ पड़ेंगे, यहां तक कि हमारा मित्र रूस यातो तटस्थ रहेगा, या फिर वह भी उसकी सहायता करेगा, क्योंकि रूस भी चीन की जनसंख्या से मन ही मन डरता है, और उसका नाश चाहता है। किन्तु बरमा पर अधिकार करना हमारे लिए उपयोगी होगा, क्योंकि उसकी आबादी कम है और उसके तट से भारतीय द्वीप-समूह समीप है। किन्तु अभी बरमा का प्रश्न छोड़ो।"

"आप का विचार सत्य है। परिस्थितियों से यही प्रमाणित होता है।"

"किन्तु भारत को मैं अछूता नहीं छोड़ना चाहता। उस पर मैंने शान्त युद्ध के द्वारा अधिकार जमाने की योजना बनाई है।"

"यह शान्त युद्ध कैसा ? अभी तक दो ही प्रकार के युद्ध, एक शीत तथा दूसरा उष्ण सुने गए हैं, आज आप तीसरे प्रकार का युद्ध शान्त युद्ध बता रहे हैं, कृपा कर इस पर प्रकाश डालिए।"

कांग अपने स्वभावानुसार बहुत सन्तुष्ट हुआ। उसने मुस्कराते हुए कहा—"यह मेरी अपनी योजना है। यह युग शान्ति युग है। विश्व के सब देश उष्ण युद्ध को समाप्त करना चाहते हैं, इसीलिये नि:शस्त्रीकरण की योजनायें, बन, बिगड़ और पुन: बन रही हैं। अणु, हाइड्रोजन बमों तथा अन्य आणविक अस्त्रों के आविष्कार से विश्व भयग्रस्त है। वह सोचता है कि उष्ण-युद्ध होने से प्रलय हो जायगी, परन्तु मैं ऐसा नहीं सोचता।"

"क्या आपका विचार है कि आणविक शस्त्रों के प्रयोग के बाद भी संसार का संहार नहीं होगा ?"

"नहीं, मैं यह नहीं सोचता। आणविक युद्ध से प्रलयकाल अवश्य उपस्थित होगा, क्योंकि उनकी संहारक शक्ति चर-अचर सभी का नाश करेगी।"

"फिर, आप क्या सोचते हैं ?"

कांग ने पुन: मदिरा पान के पश्चात् कहा—"भारत अहिंसा में निष्ठा रखता है, वह पश्चिमीय प्रजातन्त्र प्रणाली को अपनाये है। चतुरता इसी में है, जब हम शत्रु को उसी के अस्त्रों से पराजित करें, अर्थात् हम प्रजातन्त्र प्रणाली का उपयोग कर अहिंसक युद्ध लड़कर अपना कार्य-साधन करें।"

"वह किस प्रकार ?" ताई-लुङ्ग विस्मृत दृष्टि से कांग को निरखने लगा।

कांग मन ही मन प्रसन्न होता हुआ बोला—"आजकल की प्रणाली से उष्ण युद्ध में दैनिक व्यय लाखों रुपयों का होता है, और एक वर्ष के युद्ध में अरबों रुपया खर्च करना होगा, तथा परिणाम भी अनिश्चित-सा रहेगा। यदि हम इस धन का अर्धांश खर्च कर भारत में चीन-अनुयायी पंचमांगी सेना

बनाने में सफल हों, तो हमारा उद्देश्य पूरा हो जायगा। भारत के सभी कम्यु-निष्ट प्रायः रूस तथा चीन के मुखापेक्षी हैं, और अधिकांश चीन के। इस धन से हम कम्युनिष्टों को चीन-मैत्री आन्दोलन चलाने में सहायता देवें, और भारत के किसी संसद चुनाव में हम उन भारतीयों को जो चीन के प्रति वफादार हों, प्रत्याशी बनाकर धन तथा प्रचार से सहायता पहुँचावें, तो निश्चय ही चीन-समर्थकों का एक बहुत बड़ा दल उसका सदस्य हो जायगा। भारत में अभी 'मत' का मूल्य कुछ रुपयों पर निर्भर रहता है, और वहाँ के निवासी बहुत नगण्य मूल्य में उसे बेचने को तैयार रहते हैं। उनमें देश प्रेम की भावना अभी जागृत नहीं हुई, वे केवल अपने क्षुद्र स्वार्थ-साधन में रत रहते हैं। उनकी इस कमजोरी से हम लाभ उठावेंगे।"

"यह इतना सरल नहीं है। न भारत की जनता इतनी मूर्ख है, और न वह पंचमाँगी बन सकती है जैसा आप अनुमान करते हैं। परन्तु फिर भी बहस के लिए यदि हम स्वीकार कर लें कि भारतीय संसद में चीन समर्थक दल पहुँच गया, तो उससे क्या लाभ चीन को होगा ? यह तो आप पहले ही कह चुके हैं कि भारत पर चीन अधिकार नहीं करेगा।"

"यह तो हमारी योजना की भूमिका मात्र है। जैसा मेरा अनुमान तथा प्रयत्न है, उसके अनुसार यदि भारतीय संसद में हमारे समर्थकों ने अपना बहु-मत बना लिया, तब हमारे उद्देश्य की प्राप्ति अति सुगम हो जायगी। परन्तु मान लीजिए कि बहुमत नहीं बना, किन्तु, एक तिहाई अथवा उससे कुछ कम अधिक संख्या में हमारे समर्थक पहुँच जाते हैं, तब भी हमारी योजना सफल होगी, किन्तु कुछ कठिनता के साथ। तब हमें अपने सैनिक बल का भय प्रद-र्शित करना पड़ेगा।"

"क्षमा कीज़िएगा, अभी आप की योजना का कोई आभास नहीं मिला।"

"धैर्य रखिए। मेरी योजना है कि भारत का वह भूखण्ड हमारे अधिकार में आ जावे, जिससे बंगाल की खाड़ी अर्थात् हिन्द महासागर तक हमारी सेनाएँ सुगमता तथा अबाध रूप में पहुँच सकें। यह भूखण्ड सिक्किम तथा भूटान से आरम्भ होकर बिहार तथा अड़ीसा अथवा बंगाल के पश्चिमी समुद्र

तट पर समाप्त होता है। यदि हम समस्त बिहार प्रान्त की मांग करेंगे तो भारत उसको बिना युद्ध के नहीं देगा, किन्तु हम युद्ध करना नहीं चाहते।"

"यह विचित्र बात है कि आप भारत के संरक्षित सिक्किम,भूटान और उसका प्रदेश बिहार अपने अधिकार में लेना चाहते हैं, और वह भी बिना युद्ध के! समझ में नहीं आता कि यह कैसे सम्भव हो सकता है?"

"जिससे भारत युद्ध न करे, हम को अपनी माँग में कुछ कमी करना होगा। हम भारत से सौ-सवा सौ मील या इससे भी कम चौड़े गलियारे की माँग करेंगे, जिसमें बौद्धों के तीर्थ स्थान आ जांय। भारत में बौद्ध तीर्थ हैं, सारनाथ, गया, कपिल वस्तु राजगृही, लुम्बिनी आदि। तिब्बत के संरक्षक के रूप में हम बौद्ध धर्म की संरक्षकता सहज ही हस्तगत कर संसार में अपने को उसका भी संरक्षक घोषित कर सकते हैं। इस युद्ध में दलाई लामा को हम गिरफ्तार कर उनके द्वारा यह माँग प्रस्तुत करेंगे कि चूंकि तिब्बत बौद्ध-प्रदेश अथवा बुद्धस्तान है, इसलिए भारत स्थित समस्त बौद्ध तीर्थ, तिब्बत के अधीन होने चाहिए।"

"ठीक हैं किन्तु इस माँग को भला भारत क्यों स्वीकार करेगा?"

"भारत को स्वीकार करना पड़ेगा। धर्म के आधार पर भारत का विभाजन हो चुका है, और एकमात्र उसी कारण से मुस्लिम प्रदेश पाकिस्तान बना है। इसी उदाहरण पर हम तिब्बत के द्वारा बौद्ध-तीर्थों की माँग करेंगे, जिसका हमारे समर्थक भारतीय संसद्-सदस्य, जी-जान से समर्थन करेंगे, तथा हम प्रचार द्वारा इस माँग का औचत्य प्रमाणित करते रहेंगे। इसके अतिरिक्त भारत के बौद्ध, जिनमें वहाँ के हरिजनों तथा निम्न जातियों की अधिकता है; क्योंकि वहाँ के अनुसूचित जातियों के नेता अम्बेदकर बौद्ध हो जाने से उनके अनुगामियों की पर्याप्त संख्या बौद्ध हुई है, सवर्णीय हिन्दुओं से निरन्तर लांक्षित तथा घृणा किये जाने के कारण धर्म के नाम पर हमारा समर्थन करेंगे। उनको उकसाना बिल्कुल कठिन नहीं होगा। जहाँ उनके नेताओं को थैलियां भेंट की गईं, वे बड़ी खुशी से हमारी मांग का समर्थन कर अपने दिलों का संचित आक्रोश निकालेंगे।"

"आप की योजना बड़ी दूरदर्शी है।" ताई-लुँग ने हर्ष से कहा।

"हाँ, यह तो मेरी योजना का प्रथम चरण है। अब दूसरा चरण सुनिये—सम्प्रति काल में हिन्द महासागर की उपयोगिता, अन्य दो प्रशान्त तथा अतलान्तिक महासागरों से अधिक हो रही है। संसार के वे भू-भाग, जिन पर श्वेतांगों ने जबरिया एकाधिपत्य कायम कर लिया है, जैसे इन्डोनेशिया, आस्ट्रेलिया, तथा दक्षिणी अमरीका, सब हिन्द महासागर के तटीय देश हैं। अतएव जो राष्ट्र इस महासागर पर अधिकार रखेगा, वह इन देशों को भी अधिकृत कर सकेगा। ये सभी प्रदेश उपजाऊ हैं, और लगभग गैर आबाद हैं। हमारी अरबों चीनी जनता इन भू-खण्डों में बड़ी सुविधा के साथ रह सकती है। दुनिया के मुट्ठी भर श्वेतांग सीनेजोरी से इन विशाल क्षेत्रों पर अपना प्रभुत्व जमाये हैं, और दूसरे देशों के निवासियों को घुसने नहीं देते। उनके इस एकाधिपत्य को हमें तोड़ना है। ये प्रदेश अब चीन अथवा पीतांगों के होंगे, और वहाँ अब हमारी जनता रहेगी।"

ताई-लुंग ने हर्ष विभोर होकर कहा—"इस योजना के लिए मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिए।"

कांग बड़ी निश्चिन्तता के साथ मदिरा सेवन करने लगा। उसने सगर्व ताई-लुंग की ओर देखते हुए कहा—"हिन्द महासागर पर चीन का आधिपत्य जमाने के लिए हम भारत से सौ-सवा-सौ मील चौड़े गलियारे की माँग करेंगे, और जिस प्रकार हम उसे प्रस्तुत करेंगे, वह अवश्य ही भारतीय संसद् द्वारा स्वीकृत होगी। आगे हमारा अभियान होगा, हिन्द महासागर के द्वीप समूहों और आस्ट्रेलिया पर अधिकार जमाने की ओर। बंगाल की खाड़ी में हम एक विशाल समुद्री बेड़ा बनावेंगे। चीन का दक्षिणी भू-भाग वीयेतनाम तक कम्यूनिस्ट प्रदेश है। कैन्टन से लगाकर वहाँ के बन्दरगाहों तक हमारा दूसरा बेड़ा रहेगा। जब ये दोनों बेड़े पूर्व और पश्चिम से कैंची के दो फलों की भाँति इन देशों की ओर अभियान करेंगे, और हमारी हवाई सेना उनकी रक्षा करेगी, तब श्वेतांगों की शक्ति हमारा मुकाबला नहीं कर सकेगी, तथा चीनी अजदहा इन प्रदेशों को बड़ी आसानी से हड़प जायगा। श्वेतांगों की शक्ति ताश के पत्तों की भाँति

ढह जायगी ।"

ताई-लुंग ने हर्ष से ताली बजाते हुए कहा—"बड़ी अपूर्व योजना है। इस योजना के पूर्ण होने से निश्चय ही चीनी जनता को बसने के लिए विशाल भू-भाग मिलेंगे, और इनके खनिज पदार्थों पर अधिकार हो जाने से हमारा राष्ट्र संसार का सबसे सशक्त राष्ट्र होगा।"

"बेशक, अब श्वेतांगों का एकाधिपत्य नहीं रह सकता। बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध पीतांगों की उत्कर्षता तथा श्वेतांगों के क्षय का है।"

"किन्तु पश्चिम के श्वेतांग राष्ट्र बलवान हैं, उनकी संहारक शक्ति अपूर्व है।"

"हमें इसका भय नहीं है। आणविक शस्त्रों का सृजन अब किसी एक राष्ट्र के एकाधिकार में नहीं है। हम उनका निर्माण कर रहे हैं। यदि वे आणविक शस्त्रों का उपयोग करेंगे तो हम भी उसका उत्तर उन्हीं शस्त्रास्त्रों से देंगे। वे अपनी मुट्ठी भर आबादी के बल पर हमें पराजित नहीं कर सकते। यदि उनके एक सैनिक के बदले हमारे चार सैनिक मरेंगे, तब भी हम सबल बैठेंगे। अन्तिम अधिकार पदादिक सेना द्वारा ही होता है। हमारे पास अभी तीन करोड़ से अधिक सेना तैयार है, जो क्षणमात्र में रण प्रांगण में उतारी जा सकती है। इसके अतिरिक्त हमारी सैन्य शक्ति में करोड़ों की वृद्धि अति अल्प अवधि में हो सकती है। क्योंकि हमारी जनसंख्या संसार में सबसे अधिक है।

ताई-लुंग कुछ बोलने वाला था कि उसकी दृष्टि शिविर-रक्षक पर पड़ी। उसको देख कर उसने पूछा—"क्यों, क्या कहना चाहते हो ?"

उसने उत्तर दिया—"जोरवांग मन्दिर के विद्यार्थी गिरफ्तार होकर आ गये हैं, उनके लिए क्या आदेश है ?"

कांग ने पूछा—"कितने विद्यार्थी पकड़े गये हैं ?"

उसने उत्तर दिया—"इसका सही उत्तर तो नायक ही दे सकते हैं। वैसे यहाँ पर वे दस-बारह दिखाई देते हैं।"

"अच्छा, उनमें से जिसका नाम यशोधर हो, उसे मेरे सामने उपस्थित करो।"

शिविर रक्षक के जाने के पश्चात् ताई-लुंग ने पूछा— 'क्या आप इस यशोधर नाम व्यक्ति को जानते हैं ?"

"सूरत से तो नहीं जानता, किन्तु यह भारत की कम्यूनिस्ट पार्टी के एक प्रांतीय संचालक किसी अविनाश बाबू के पुत्र हैं, जिनकी रक्षा के लिए रूस तथा चीन की कम्यूनिस्ट पार्टी के प्रधानों ने मुझसे आग्रह किया है। यह यशोधर हमारे बहुत काम का व्यक्ति साबित होगा। हमें इसके द्वारा तिब्बत के गुप्त भेद जानने में सुविधा होगी, क्योंकि जोरवांग मन्दिर का घनिष्ट सम्बन्ध तिब्बत के राजतंत्र से है। जिसमें कोई सन्देह न हो, इसलिए उसको अनेक विद्यार्थियों से मामूली पूछ-तांछ कर एक दिन बाद छोड़ दीजियेगा। मैं तब तक इस यशोधर को टटोलता हूँ कि यह हमारे लिए कितना उपयोगी हो सकता है।"

ताई-लुंग उसे सैनिक अभिवादन कर विदा हो गया, और कांग आनन्द से यशोधर की प्रतीक्षा करता हुआ मदिरा सेवन करने लगा।

१४

अनेकानेक आशंकाओं का भार लिए जब यशोधर कांग के सामने उपस्थित हुआ, तब दोनों एक दूसरे को विस्मत दृष्टि से देखने लगे। यद्यपि दोनों एक दूसरे से अपरिचित थे, तथापि काँग को प्रतीत हुआ कि वह पहचाना हुआ है, किन्तु उसे कहाँ और कब देखा है, यह उसे याद नहीं आ रहा था। उसने अनुमान किया कि शायद अपनी भारत यात्रा में उसे देखा हो। उसका स्मरण आते ही चिन का चित्र उसके सामने आ गया, और उसके साथ विनोद का भी। चिन के गुम होने के पश्चात् उसके मन में अपने प्रतिद्वन्दी विनोद को देखने की इच्छा हुई थी, और चाउ ने उसको दिखाया भी था, किन्तु परिचय का आदान-प्रदान नहीं कराया। विनोद की तेजस्वी आकृति उसके मन में घर कर गई थी, और वह क्षण भर के लिए मुग्ध होकर उसकी पौरुषेय कान्ति को देखता तथा सराहता रहा। जीवन में सबसे बड़ी हार उसको चिन

से मिली थी । वह अपनी हार से तिलमिला रहा था । विनोद को देख कर यद्यपि उसकी तिलमिलाहट बढ़ी थी, तथापि उसके मन को स्वीकार करना पड़ा था कि जो नारी विनोद से प्रेम करेगी, वह उससे प्रेम करना स्वीकार नहीं करेगी । विनोद के प्रति उसका द्वेष कुछ तीव्र हो गया था, किन्तु वह जानता था कि चिन के भाग जाने में विनोद सर्वथा निर्दोष है, इसलिए उसने उससे प्रतिशोध लेने का विचार त्याग दिया था । उसने कोंसिग को बता दिया था कि चिन का पता विनोद के जरिये चलेगा, इसलिए वह उस पर अपनी दृष्टि रखे । पुरानी बातों का स्मरण करते-करते उसने यशोधर से सहसा प्रश्न किया—"तुम्हारा नाम विनोद है ?"

यशोधर अपने बड़े भाई का नाम सुनकर चौंक पड़ा । उसने सिर हिलाकर नकारात्मक उत्तर देते हुए कहा—"नहीं,मेरा नाम यशोधर है, विनोद मेरे बड़े भाई का नाम है ।"

"विनोद तुम्हारा बड़ा भाई है, किन्तु तुम में और उसमें कोई अन्तर नहीं मालूम होता । उम्र और शक्ल सूरत में दोनों यकसां दिखाई देते हो !"

"हम दोनों जुड़वां भाई हैं, वह कुछ घन्टे पहले पैदा हुए थे ।"

"अब समझ में आया कि तुम दोनों में क्यों अन्तर नहीं हैं । अविनाश बाबू तुम्हारे पिता का नाम है ?"

"हाँ ।"

"तुम कब तिब्बत में आये थे, और क्यों ?"

"बौद्ध धर्म के ग्रन्थों के अध्ययन के लिए । मैंने भी बुद्ध भगवान की ढाई हजारवीं जयन्ती पर बौद्ध धर्म की दीक्षा लेकर भिक्षु व्रत स्वीकार किया था ।"

"जब कई चीनी कुमारियाँ भिक्षुणी हुई थीं ?"

"जी, हाँ ।"

"तुम्हारा किसी चीनी भिक्षुणी से आलाप हुआ था, उनमें से क्या किसी के साथ परिचय है ?"

"हाँ एक दो को जानने का अवसर मिला था, किन्तु घनिष्टता किसी से नहीं हुई ।"

"चिन-चुन अथवा ली-सूँग को जानते हो ?"

"हाँ उन को जानता हूँ, क्योंकि एक दो बार वे दोनों मेरी माँ से मिलने आई थीं।"

"तुम्हारी माँ से मिलने ?"

"हाँ, मेरी माँ भारतीय संसद की सदस्या हैं, अब आज-कल डिप्टी मिनिस्टर हैं।"

"अच्छा श्री मती मणिमाला जी तुम्हारी माँ हैं ?"

"जी हाँ।"

"तब तो तुम मेरे बहुत घनिष्ठ निकले। यद्यपि अपनी भारत यात्रा में उनसे परिचय नहीं हुआ, तथापि मैं उनका बहुत प्रशंसक हूँ। ऐसी नारियों से ही भारत गौरवान्वित हुआ है। वह तो पहले क्रांन्तिकारी दल से सम्बन्धित थीं।"

"जी हाँ।"

"तुम मेरे पुत्र तुल्य हो, और उसी प्रकार तुम्हारे साथ व्यवहार होगा। आओ, मेरे पास इस कुर्सी पर बैठ जाओ। अभी तक शायद तुमने जलपान भी न किया होगा। तुम्हे जो तकलीफ हुई है, उसके लिये क्षमा करना। अब सबसे पहले जलपान कर लो, फिर निश्चिन्तता के साथ बात करेंगे।"

यशोधर ऐसे अच्छे व्यवहार की आशा नहीं करता था। कांग के व्यवहार से वह चकित रह गया। चीनी सेना में आने पर उसने काँग की कठोरता के सम्बन्ध में कई कहानियाँ सुनी थीं, उनके आधार पर उसने एक शुष्क, दृढ़, एवं हृदय हीन व्यक्ति की कल्पना की थी, परन्तु साक्षात् होने पर उसका भ्रम निवारण हुआ और उसके स्नेहसिक्त व्यवहार का उस पर गहरा प्रभाव पड़ा। जब उसके सामने अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों सहित ट्रे आई, तब उसे विश्वास करना पड़ा कि जो कुछ उसने सुना था, वह गलत था। अपने सैनिकों के प्रति कठोर अनुशासन रखने से, वे उसके विरुद्ध विभिन्न आरोप लगा रहे थे। वह शान्ति के साथ प्रात:आहार करने लगा।

पिछली रात्रि को जब मासपा जोरबांग मन्दिर के गुप्त मार्गों का भेद बताकर गये थे, तब प्रातःकाल की सफेदी आसमान पर छा गई थी, और वह समय उसके सोकर उठने तथा नित्यकर्म करने का था। चिन तो थकावट के कारण सो गई थी, परन्तु यशोधर न सो सका, वह दैनिक कर्म में लग गया। स्नानादि से निवृत्त होकर वह ज्योंही पूजन के लिए मन्दिर में प्रवेश कर रहा था। त्योंही चीनी सैनिक उसको गिरफ्तार करने के लिये पहुँच गये। उन सब विद्यार्थियों को पकड़ लिया, जो उनके सामने पड़े। यशोधर भी उनमें फँस गया। उन्होंने सब के नाम-धाम पूछे और जब उन्हें मालूम हुआ कि पकड़े गए विद्यार्थियों में यशोधर मौजूद है, तब आगे धर-पकड़ नहीं की और उनको लेकर चले गए। यशोधर को अत्यन्त गुप्त रीति से गिरफ्तार करने का आदेश मिला था, क्योंकि कांग की योजना उसको अपना गुप्तचर बना, मन्दिर के भेद जानने की थी।

जब सुमधुर भोजन पेट में गया, तब आलस्य ने उसे धर दबाया और वह बैठे-बैठे ऊँघने लगा। कांग उससे आलाप के लिए आया, किन्तु उसको ऊँघते देख कर उसके सोने का प्रबन्ध करके चला गया। उसी शिविर में उसके लिए शय्या बिछा दी गई, और वह निश्चिन्तता के साथ सोने लगा।

तीसरे प्रहर के अर्धांश में उसकी नीद टूटी। उस समय तूफान आरम्भ हो गया था। वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। शिविर में अपने को पाकर वह आश्चर्य से इधर-उधर देखने लगा। गहरी नींद ने प्रातःकाल की घटनाओं को विस्मृत कर दिया था, धीरे-धीरे वे याद आने लगीं। तूफान प्रतिक्षण प्रबल होता जा रहा था। अभी तक उसके शिविर का द्वार ही हवा के झोंकों से झूल रहा था और जब हवा भर जाने से पूरा शिविर डगमगाने लगा, तब वह उछल कर चारपाई से कूद कर उससे बाहर आया। बाहर आते ही वायु के थपेड़ों से व्याकुल होकर उसे पुनः उसमें शरण लेना पड़ा। पवन की उग्र सनसनाहट के साथ चीनी सैनिकों का त्रस्त हाहाकार उसे अशान्त तथा अस्थिर बनाने लगा। किसी ने उसकी खबर न ली, और न कोई उसकी सहायता के लिए आया। सब अपने-अपने प्राण बचाने में लगे थे। वह अकेला

शिविर को बचाने में असमर्थ था। शिविर के खूंटे उखड़ रहे थे, और जब तक वाह उनको पुन: गाड़े, तब तक पवन ने उसे आकाश में उड़ा कर उस पर पटक दिया। यशोधर शिविर के मोटे कपड़ों से ढक गया। वह अपने को उससे मुक्त करने का प्रयत्न करने लगा, किन्तु वह इस समय द्रौपदी का चीर हो रहा था। वायु उसे बार-बार कपड़े के परतों में उलझा देती थी। उसका दम घुटने लगा। बड़े परिश्रम के उपरान्त उसे तम्बू का एक छोर मिला। वह ज्योंही उससे निकल कर उठने का प्रयत्न करने लगा, त्योंही छोटे कंकरों तथा रेत के कणों से पूरित वायु के प्रबल झोकों ने उस पर प्रहार करते हुए गिरा दिया। उसकी आखें बन्द होने के कारण वायु के प्रहार से बच गईं, नाक, गाल और कान पीड़ा से जलने लगे। अंधड़ का वेग चक्राकार था, वह चारों ओर से प्रहार कर रहा था। उसकी समझ में न आया कि वह कहाँ भाग कर अपनी रक्षा करे। चीनी सेना के समस्त शिविर ढह गये थे। उनका करुण आर्तनाद वायु के प्रबल गर्जन-तर्जन में छिप गया था, फिर भी वह उसके साथ सम्मिलित होकर उसे और भयावह बना रहा था।

चीनी सैनिक व्याकुलता से इधर-उधर दौड़ रहे थे, किन्तु पवन भी सर्वत्र उनका पीछा कर रहा था। उन्हें मुहूर्त भर का विश्राम नहीं लेने देता था। वह थपेड़ों पर थपेड़े मार रहा था, और उनसे त्राण पाने का कोई उपाय न था। उनके शिविर गिर पड़े थे, उनके कपड़े लत्ते उड़ रहे थे, उनकी सारी व्यवस्था अस्तव्यस्त होगई थी। जिस शिविर में कांग तथा सेना के उच्च अधिकारी थे, उसकी रस्सियों को अनेक सैनिक थामे हुए खूँटों को बाहर उखड़ने से रोक रहे थे। उसका द्वार बन्द किए अनेक सैनिक उसके सिरों को दाबे हुए थे, जिसमें हवा प्रवेश न कर सके, परन्तु वह सूक्ष्म दरारों से भी घुस कर तम्बू को उखड़ाने की चेष्टा कर रही थी। मनुष्य की शक्ति सीमित है। रस्सियाँ पकड़े-पकड़े सैनिकों के हाथ जलने लगे। कंकरों की मार से उनके गाल भी लहू-लुहान होने लगे, और गर्दन से उसके छोटे-छोटे कण घुसकर उनके शरीर को भी भेदने लगे। सैनिक अनुशासन शिथिल पड़ने लगा और उसके साथ उनकी दृढ़ता भी ढीली पड़ गई। सर्वत्र ऐसी

गड़बड़ी फैल गई मानों पवन का यही उद्देश्य था। उसने हुमक कर अपना जोर लगाया और दूसरे क्षण शिविर धरशायी हो गया। सैनिक बेचारे रेत में लुढ़कने लगे। कांग तथा उच्च पदस्थ सैनिक कर्मचारी धूल में लोटने लगे। चूँकि शिविर के बाहर–भीतर सैनिकों की संख्या बहुत थी, इसीलिए अपने ऊपर शिविर की छत उठाकर उन्होंने उसके बैठने का प्रबन्ध किया। अब पवन अपने सामने की समस्त रुकावट दूर कर चुका था, वह गेंद की भांति शिविर को ठोकर देकर मारने लगा। ऐसे अंधड़-तूफान का सामना उन्होंने अपने जीवन में कभी नहीं किया था। भगवान को वह स्मरण कर नहीं सकते थे, क्योंकि उन्होंने मार्क्स तथा ऐंजेल को अपना कर उनको देश से निष्कासित कर दिया था। उन्हें केवल अपनी शक्ति का भरोसा था, किन्तु वह अंधड़ से लड़ते-लड़ते क्षीण हो गई थी। अब हैरानी से वे एक दूसरे का मुख निहार रहे थे। प्राणों का मोह उन्हें कुछ सचेत करता, किन्तु अंधड़ के झोंके उन्हें परास्त कर उनका मखौल उड़ाते थे।

यशोधर उस तूफान में गिरता-पड़ता जिधर जाता, उधर ही तम्बुओं की रस्सियों में उलझ कर गिर पड़ता। मार्ग का उसे कोई पता नहीं मिलता था। इस समय वहां का समग्र भाग बालुका का वृत्ताकर विशाल क्षेत्र बन रहा था। उसके मन में विचार उदय हुआ कि इस अवसर का लाभ उठाकर वह क्यों न भाग जावे ? यद्यपि कांग के व्यवहार से उसे कोई शिकायत नहीं थी, मित्र की भाँति उसने उसका स्वागत-सत्कार किया था, तथापि वह शत्रु-पक्षी था। तिब्बत को अ पने अधीन करने के लिए उसका प्रयास था और वही तिब्बत इस समय उसके लिए शरणस्थल बना हुआ था। बासबा और मासपा उसके गुरु थे। डोर जी उसका सहपाठी और सखा था। इसके विपरीत चीनी उसके अपरिचित, आततायी तथा शत्रु थे। उसने अनुमान किया कि इस प्रकार की आवभगत करने की परम्परा चीनियों की नहीं है। वे प्राय: अन्य मनुष्यों से घृणा करते हैं। केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए वे मित्रता करते हैं। हालांकि उसके पिता ने चीनी अधिकारियों को उसके विषय में लिखा है, लेकिन इस स्वागत सत्कार का यही एकमात्र कारण नहीं हो

सकता। अवश्य इसके पीछे उनकी कोई गुप्त अभिसन्धि है। संभव है कि वे उसके द्वारा जोरवाँग मन्दिर का भेद जानना चाहते हों। भेद बताना विश्वास-घात करना होगा, मासपा जैसे आचार्य, और बासबा जैसे योगी को कष्ट में डालना होगा। इस तूफान में कौन कहाँ गया है, इसका पता लगाना मुश्किल है। उसे अब डोर जी के साथ तिब्बत छोड़ देना चाहिए। यद्यपि ल्हासा की नाकाबन्दी है, और कोई बाहर नहीं जाने पाता, तथापि इस समय उनकी व्यवस्था सब अस्तव्यस्त है। वह बड़ी आसानी से उनके घेरे से निकल सकता है अब उसे जोरवांग मन्दिर पहुँच, डोर जी को साथ लेकर देश छोड़ देना चाहिए।

यह विचार आते ही वह मार्ग ढूँढने लगा, किसी प्रकार वह चीनी शिविरों को पार कर एक ऐसे स्थल पर आया, जहां से वह परिचित था। आश्चर्य की बात यह थी कि वह ज्यों-ज्यों चीनियों के शिविरों से दूर होता जा रहा था, त्यों-त्यों वायु का वेग कम पड़ता जाता था, मानों अंधड़-तूफान केवल उनको ही त्रस्त्र करने तथा उनका प्रबन्ध बिगाड़ने के लिए उदय हुआ है। पोटाला के मार्ग पर अब भी जनता उत्सव मना रही थी। अंधड़ ने उसे अधिक परेशान नहीं किया था। यशोधर उनको देखता हुआ जोरवाँग मन्दिर की दिशा में शीघ्रता से चलने लगा।

१५

लगभग अर्धरात्रि के समय बासबा की समाधि टूटी। मासपा उनके पास बैठे एकटक उनको देख रहे थे। बासबा ने 'ॐमणे पद्मे हुं' कह कर एक दीर्घ निःश्वास लेते हुए कहा—"मासपा, तिब्बत के राजतन्त्र की रक्षा भगवान अवलोकितेश्वर की कृपा से हो गई। प्रायः सभी राजपुरुष चीनियों के घेरे से

सुरक्षित निकल कर 'नेथांग' पहुँच गये हैं। वहाँ से वह भारत की सीमा की ओर प्रस्थान करेंगे।"

मासपा ने उन्हें भू-नत होकर प्रणाम किया, फिर कहा—"रिमपोचे, आँधी-तूफान का वेग अब कम हो रहा है।"

"उसकी अब कोई आवश्यकता नहीं रह गई। प्राकृतिक तत्वों को संचालित करने में मेरी साधना निःशेष हो गई है। योगबल से मैंने पवन को प्रेरित कर चीनी सैनिकों की घेरा बन्दी को विनष्ट किया, और प्रभुकृपा से सभी सुरक्षित पहुँच गए। हां, यह तो बताओ, मेरी आज्ञानुसार तुमने मन्दिर के कोष को निष्कासित कर राजपुरुषों के पास पहुँचा दिया था?"

"जी हां, आपके समाधिस्थ होने पर मैंने राज-सेवकों को बुलाकर गुप्त मार्ग से काई-चू नदी के तट पर समस्त कोष पहुँचा दिया है।"

'बहुत ठीक, और शस्त्रास्त्र तथा बारूद?"

"शस्त्रास्त्र भी भेज दिये हैं। जितने कारतूस थे, सब दे दिए हैं, केवल बारूद बची है, उसे भी आपकी आज्ञानुसार सुरंग के मंडप में जो इस स्थान के ठीक नीचे है, इकट्ठा करवा दी है।"

"ठीक, और सुरंग का द्वार जो पोटाला तथा राजमहलों की ओर जाता है, उसका क्या प्रबन्ध किया?"

"उसे पत्थरों से चुनवा कर मार्ग अवरुद्ध कर दिया है। अब इधर-उधर से आवागमन बन्द हो गया।"

"यह तुमने बहुत उत्तम किया और तुमने वर्तिकायें मण्डप से सुरंग के बाहरी द्वार तक लगा दी हैं, जिससे अग्नि बारूद के ढेर तक पहुँच सके?"

"जी हाँ, पुरानी वर्तिकायें, जो ऐसे अवसरों के लिए बनी रक्खी थीं, उनको बारूद के घोल से सिक्त कर सुरंग की समस्त लम्बाई में बिछा दी हैं जब हम लोग मुख्य द्वार पर पहुँच कर उसमें अग्नि लगा देंगे, तो वह बड़ी सुगमता से बारूद के ढेर तक पहुँच जायगी।"

एक दीर्घ निश्वास लेकर बासवा बोले—'कालचक्र की गति अगम्य है। कौन जानता था कि इस प्राचीन मन्दिर का अग्निदाह मेरे हाथों सम्पन्न होगा,

और भगवान की प्रतिमा जिसकी हम शताब्दियों से पूजा करते आए हैं, अपने हाथों विसर्जन करना होगा, ताकि चीनी म्लेच्छ उसको भ्रष्ट न कर सकें।"

कहते-कहते उनके नेत्र अश्रु पूरित हो गए। मासपा भी व्यथा से पीड़ित होकर रोने लगे।

बासबा ने आंसुओं को पोंछते हुए कहा—"और गुरुदेव के गत जन्म के शरीर के सम्बन्ध में क्या करना चाहिये ?"

' आदेश दीजिए रिमपोचे।"

"क्या तुमको स्मरण नहीं है कि भारत में जब उनका जीव महाभागे गायत्री की कुक्षि से नव कलेवर प्राप्त कर आनन्द के रूप में प्रकट हुआ था, और मैंने योगबल से उनके मस्तिष्क के उस कोष को, जिसमें गत जन्मों की स्मृतियाँ संचित रहती हैं, संचालित कर आलाप किया था, तब उन्होंने वार्तालाप के अन्त में आदेश दिया था कि तिब्बत अथवा बुद्धस्तान त्यागने के पूर्व उनके शरीर का अग्निदाह कर देना।"

"हाँ रिमपोचे, भलीभांति स्मरण है।"

"अब एक मात्र वही कर्त्तव्य शेष रह गया है। क्या कुछ सेवक अभी हैं, या सबको बिदा कर दिया ?"

"सेवकों को तो मैंने बिदा कर दिया है, किन्तु भारतीय विद्यार्थी डोर जी तथा यशोधर मौजूद हैं।"

"यशोधर क्या चीनियों की कैद से छूटकर आगया ?"

"आपकी कृपा से उसकी भी मुक्ति हुई है।"

"मैंने तो उसके छुड़ाने का कोई प्रयत्न नहीं किया ?"

"आपने प्रत्यक्षरूप से नहीं, किन्तु परोक्ष रूप से तो किया ही है।"

"अपना आशय स्पष्ट करो मासपा !"

"रिमपोचे, आपने जो योगबल से पवन संचालित कर झंझा तथा अंधड़ की उत्पत्ति कर चीनी सेना की नाकाबन्दी बिघटित की, उसी अवसर का लाभ उठाकर यशोधर मन्दिर वापस आ गया।"

"वह भाग आया है, अनुमति पाकर नहीं आया ?"

"हां, रिमपोचे, चीनियों की अनुमति लेकर नहीं आया।"

"उससे यह पूछा कि चीनियों ने यहाँ के विद्यार्थियों को क्यों पकड़-वाया था ?"

"उसे स्वयं नही ज्ञात है कि उसको तथा अन्य विद्यार्थियों को गिरफ्तार करने में उनका क्या उद्देश्य था। उसके माता-पिता का नाम पूछ कर उसके साथ बड़ा सद्व्यवहार किया, भोजन कराया, और उसके सोने का प्रबन्ध भी कर दिया, क्योंकि गतिरात्रि को वह सो नहीं सका था, इसलिए ऊँघ रहा था। जब सोकर उठा, तब आँधी शुरू हो गई थी। तम्बुओं के गिर पड़ने से उनका प्रबन्ध अस्त-व्यस्त हो गया, और वह उस अवसर का लाभ उठाकर चला आया। न उसको किसी ने देखा और न उसने किसी से अनुमति ली।"

"मेरा अनुमान है कि वे लोग यहाँ का भेद जानना चाहते होंगे। उन्हें इस मन्दिर की प्राचीनता मालूम है, इसलिए अनुमान करते होंगे कि यहां पर अवश्य धनराशि रखी होगी, उसी का पता लगाने के लिए विद्यार्थियों को गिरफ्तार कराया था।"

"यही विवेचना सत्य प्रतीत होती है।"

"इन दोनों भारतीयों का क्या प्रबन्ध किया जाय ?"

"आप निर्देश कीजिए।"

"मैं तो शरीर त्यागने का विचार कर रहा हूँ, तुम इन दोनों को साथ लेकर भारत चले जाओ। तुम से चीनी नहीं बोलेंगे।"

"रिमपोचे, आप शरीर त्यागने की क्यों सोच रहे हैं ? अभी आपका समय पूर्ण नहीं हुआ है।"

"हाँ, समय तो पूर्ण नहीं हुआ, किन्तु इस भयंकर पाप का प्रायश्चित करना होगा।"

"आपने कौन-सा भयंकर पाप किया है, रिमपोचे ?"

"प्राकृतिक तत्वो में बलात् भयंकर विघटन उत्पन्न करना प्रकृति के प्रति अपराध है।"

"यह तो आप ने तिब्बत की राजसत्ता उसके राज तन्त्र सुरक्षित करने के उद्देश्य से किया है इसमें आप का कोई स्वार्थ-साधन नहीं हुआ, इसलिये अपराध नहीं है ।"

"हाँ, तुम्हारी व्याख्या ठीक है, परन्तु इस शरीर को रखने से कोई लाभ नहीं है । यहाँ की लीला समाप्त हुई, अब आगामी जीवन में अवशिष्ट तपस्या पूरी करूँगा ।"

"क्या भारत चलकर बड़े गुरुदेव के दर्शन न कीजिएगा ।"

"वह लालसा तो अभी मन में है ।"

"सद्लालसा अपूर्ण रखने से जीव उसको पूर्ण करने के लिए पुनर्जन्म लेता है ।"

"हाँ धर्म का विधान ऐसा ही है ।"

"तब फिर आप क्यों अवैध कार्य करते हैं । आप हमारे साथ भारत चलिए और बड़े गुरुदेव को शिक्षित कीजिए, जिस प्रकार उस जन्म में उन्होंने आप को किया था । ऋण उतारने का अवसर अब शायद जीवन में फिर नहीं मिलेगा ।"

"अच्छा, विचार करूँगा । [illegible]धर यदि सो न गया हो तो उसको मेरे पास भेज दो । मैं चीनियों के समाचार जानना चाहता हूँ ।"

मासपा उनका संकेत समझ कर उठ खड़े हुए, और यशोधर तथा डोर जी को ढूँढ़ने चले गये ।

१६

संध्या समय यशोधर जोरवाँग मन्दिर के प्राँगण में पहुँचा । चतुर्दिक शून्य वातावरण देखकर किसी आकस्मिक दुर्घटना की आशंका से उसका माथा

ठनकने लग। उसे भय हुआ कि कहीं चीनियों ने उसकी गिरफ्तारी के बाद मासपा और बासबा आदि को भी गिरफ्तार कर, मन्दिर को न उजाड़ दिया हो। परन्तु तोड़-फोड़ के लक्षण कहीं न दिखलाई दिये, और न कहीं कोई चीज बिखरी अथवा अस्तव्यस्त मिली। इससे उसको कुछ ढाढ़स हुआ, किन्तु अन्धकार और स्मशान जैसे सन्नाटे से वह घबड़ाने लगा। डोर जी अथवा चिन से भी उसकी भेंट न हुई। वह रहस्य जानने के लिए मन्दिर की ओर गया, परन्तु वहाँ भी कोई न मिला। बासबा के कक्ष के द्वार बन्द दे, किन्तु बाहर से जंजीर खुली थी। उसने द्वार खोलकर देखा, भीतर बासबा समाधिस्थ थे उसकी आशंका कुछ कम हुई। अब उसे निश्चय हुआ कि मासपा भी कहीं अवश्य होंगे। बासबा के कक्ष का द्वार उढ़काकर वह उन्हें खोजने चला। पाठशाला में जहाँ उनका कक्ष या, जाने से ज्ञात हुआ कि वहां बिल्कुल सूना हैं, और मासपा के कक्ष का द्वार बाहर से बन्द था। वहाँ से वह पाठशाला गया। उसके निरीक्षण से मालूम हुआ कि दोपहर का भोजन बना था, किन्तु बहुत थोड़ी मिकदार में। एक ताक पर कुछ बना भोजन भी रखा था। जब उसे कोई न दिखाई दिया, तब वह अपनी कोठरी की ओर घूमा।

उसकी कोठरी का द्वार खुला था। भीतर पहुँच कर उसने प्रकाश किया, और उसको अव्यवस्था देखकर उसे आश्चर्य हुआ। वह प्रत्येक वस्तु को अपने क्रम से रखता था, और जब प्रातःकाल गया था, तब सभी चीजें यथा स्थान करीने से सजी थीं। उसने अनुमान किया कि किसी ने उसकी अनुपस्थिति में कोठरी की तलाशी ली है। पहले उसका ध्यान अपनी चारपाई की ओर गया जहाँ उसने ध्वनि-प्रसारक यन्त्र छिपाये थे। चारपाई को गढ़ों से बाहर निकाल कर उसने अन्दर हाथ डाल कर टटोलना शुरू किया। गढ़ा बिल्कुल खाली था। क्रम से उसने सभी गढ़ों में हाथ डाला, किन्तु उसकी सब वस्तुएँ गायब थीं। अब उसे निश्चय हो गया कि किसी ने अवश्य उसकी वस्तुएँ निकाल ली हैं। वह संत्रस्त दृष्टि से उन गढ़ों को दुबारा देखने लगा। उसे पुनः निराश होना पड़ा वह शिर झुका कर अत्यन्त मलीन मन से विचारने लगा कि चीनियों को किस प्रकार उन वस्तुओं की सूचना मिली जो वे उठाकर ले

गए। मन्दिर के किसी व्यक्ति की ओर उसका ध्यान नहीं गया।

इसी समय द्वार पर एक छाया दिखाई दी, और तुरन्त ही वह अन्धकार में अदृश्य हो गई। उसे किसी शत्रु पक्षी गुप्तचर का भय हुआ। आवेग प्रेरित होकर एक ही छलांग में उसने कोठरी का दरवाजा लांघ कर उस छाया को पीछे से पकड़ लिया। छाया खिलखिला कर हँस पड़ी। यशोधर ने हँसी पहचान कर उसे छोड़ दिया। वह चिन थी, जो यशोधर के प्रत्येक कार्य की निरीक्षण करती हुई उसका पीछा उसके मन्दिर प्रवेश के समय से इतनी सावधानी से कर रही थी कि उसको किसी प्रकार का सन्देह नहीं हुआ था। चिन ने निर्णय कर लिया था कि यशोधर गुप्तचर है। इस एकान्त अवस्था में वह क्या करता है, वह जानने के लिए आकुल थी। वह अपनी चोरी से उत्पन्न प्रतिक्रिया देखने के लिए, उसके द्वार पर आई, और उसको द्वार के सम्मुख बैठा देख कर वहाँ से भाग कर छिपी भी, किन्तु यशोधर की क्षिप्रता से पकड़ गई।

यशोधर ने पूछा– "डोर जी, क्या तुम नहीं पकड़े गए ?"

चिन हँस रही थी, उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

यशोधर ने कुछ तीव्र स्वर में पूछा—' तुम इस संकट के समय हँस क्यों रहे हो। मैं घंटों से परेशान ढूँढ़ता—फिरता हूँ, तुम कहीं न दिखाई दिए। अब तक तुम कहां थे, और दूसरे सब विद्यार्थी तथा आचार्य मासपा आदि कहां हैं। क्या वे सब चीनियों द्वारा पकड़ लिए गए ? गुरुदेव बासबा तो अवश्य अपने कक्ष में बैठे समाधिस्थ हैं। मैंने मन्दिर और पाठशाला, पाकशाला आदि सभी छान डाले, किन्तु कहीं कोई दिखाई न दिया। प्रातःकाल तक सब ठीक ठीक था। मेरी गिरफ्तारी के बाद ही कोई गुरुतर कांड घटित हुआ है। मैं तो व्याकुल हूँ, रहस्य जानने के लिए उत्कंठित हूँ, और तुम हंस रहे हो। बताओ, यह सब कैसे हो गया ?"

जब चिन की हँसी न थमी, तब उसने उसे झकझोरते हुए कहा—"तुम क्यों हँस रहे हो, मेरी समझ में नहीं आता ? यह क्या हँसने का समय है ?"

"मैं हँस रहा हूँ तुम्हारा पर्दा फाश हो जाने से। जिस भेद को तुम इतने

दिनों से छिपाए थे वह आज प्रकट हो गया ।"

"क्या मतलब ?"

"अब मतलब पूछते हो ? तुम्हारा भेद क्या तुम से छिपा है ?"

"मैं किसी भेद को छिपाये हूँ, यह मुझे स्वयं नहीं मालूम ।"

"वाकई, तुम बड़ी चतुर गुप्तचर हो ।"

"क्या कहा, मैं गुप्तचर हूँ ?"

"और नहीं तो क्या तुम सीधे-सादे विद्यार्थी हो ।"

"विद्यार्थी के अतिरिक्त मैं दूसरा कुछ नही हूँ, यह विश्वास दिलाता हूँ ।"

"ठोस प्रमाणों के समक्ष वचनों का कोई मूल्य नहीं है ।"

"तुम्हें आज क्या हो गया है डोर जी ?"

"यही प्रश्न मैं तुम से पूछता हूँ । तुम सीधे-सादे विद्यार्थी से चीनियो के गुप्तचर कैसे और कब हो गए ?"

"मैं चीनियों का गुप्तचर हूँ !"

"भारत के गुप्तचर होकर आज कल चीनियों का साथ दे रहे हो । तुम प्रत्येक सन्ध्या को टहलने के बहाने उनके शिविर में जाकर यहाँ के भेद उनको बताते थे ।"

"यह गलत है ।"

चिन ने बिना ध्यान दिए कहा—"मालूम होता है कि तुमने आज प्रातः-काल अपने वायरलेस द्वारा उनको सूचना दे दी कि वे तुम को आकर पकड़ कर ले जाँय, ताकि तुम उस गुप्त मार्ग का भेद उनको बता दो, जो रात्रि में मासपा ने हम दोनों को बताया था ।'

"तुम क्या कह रहे हो, होश में आओ नहीं तो······।"

"नहीं तो क्या चीनियों से पकड़वा दोगे ?"

यशोधर दाँत किटकिटा कर रह गया । वह अपना क्रोध दमन करने का प्रयास करने लगा ।

चिन ने अपने चोंगे से ध्वनि-प्रेषक यन्त्र दिखाते हुए पूछा—"इसे पहचानते हो ?"

यद्यपि अन्धकार था, परन्तु डिबिया का आकार स्पष्ट मालूम पड़ता था। उसे पहचान कर उसने कहा—"हाँ, यह मेरा यन्त्र तुमने चुराया है ?"

"यह देखो, ध्वनि-ग्राहक यन्त्र भी है।"

"तब मेरे दो पत्र तथा तमगा भी तुम्हारे पास होगा ?"

"हाँ वे भी हैं। मैंने उन पत्रों को पढ़ लिया है, और उनको जानता हूँ, जिनको वे लिखे गये हैं। तुम्हारा तमगा भी मेरे पास है जिसके जरिए कम्युनिस्ट देशों में सुरक्षा प्राप्त होती है, तथा पुलिस अधिकारी तंग नहीं करते, और न पार-पत्र आदि की आवश्यकता होती है।"

"मैं अभी तक चिन्तित था कि उन्हें कौन ले गया ? मेरा अनुमान था कि मेरी गिरफ्तारी के बाद चीनियों ने मेरी कोठरी की तलाशी लेकर उन चीजों को चुरा लिया। वे वस्तुयें तुम्हारे पास हैं, जानकर चिन्ता दूर हुई।"

"लेकिन मैं इन्हें मासपा को देने का विचार कर रहा हूँ।"

"नहीं, ऐसी नासमझी न करना। इस गम्भीर परिस्थिति में उनका दूसरा अर्थ लगाया जायेगा।"

"क्यों, वह भी वही अर्थ लगायेंगे, जो मैं लगा रहा हूँ।"

"अर्थात् ?"

"अर्थात्, यह कि तुम भारत के गुप्तचर हो, ओर अपने पिता से आदेश पाकर अब चीनियों की सहायता कर रहे हो।"

"मैं कहता हूँ कि यह तुम्हारा ख्याल गलत है।"

"मैं कैसे मान लूँ ?"

"इन वस्तुओं को मेरे पिता ने यात्रा के समय अपनी कुशलता का समाचार देने के लिए दिया था, और यदि चीनियों के कुचक्र में फँस जाऊँ तो रक्षा के लिए वे पत्र तथा तमगा दिए थे। इन वस्तुओं की आवश्यकता न पड़ने पर मैंने उन्हें छिपा रखा था।"

"छिपाया था बड़े यत्न से, किन्तु मैंने पता लगा ही लिया।"

"समझ में नहीं आता कि तुमने कैसे उस छिपी जगह का पता पा लिया।"

"क्योंकि मैं भी गुप्तचर हूँ।"

"तुम गुप्तचर हो यह, क्या कह रहे हो डोर जी !"

"मैं सत्य कह रहा हूँ। जब तुम्हारा भेद प्रकट हो गया, तब मैं भी अपना परिचय तुम पर प्रकट करता हूँ, ताकि हम पुन: मित्र बनकर इस देश को साथ-साथ छोड़ सकें।"

"क्या हमारी तुम्हारी मित्रता में कभी व्याघात पहुँचा है ?"

"अब आगे मित्रता में व्याघात न पहुँचे, इसलिए मैं अपना भेद प्रकट कर रहा हूँ।"

"मैं विश्वास दिलाता हूँ कि मैं गुप्तचर नहीं हूँ। भारतीय संस्कृति के पुरातन ग्रन्थ जो भारत में लोप हो गये हैं, उनके अध्ययन के लिए ही मैं आया था। इस सन्दर्भ में तुम मुझे गुप्तचर कह सकते हो। ये तिब्बती लामा बिना बौद्ध हुए अपने ग्रन्थों का अध्ययन किसी को नहीं करने देते, इसलिए मैंने दीक्षा ली, और दो वर्षों से यहाँ अध्ययन कर रहा हूँ।"

"यह तो आधी बात हुई।"

"नहीं इतनी ही पूर्ण है।"

"ध्वनि-प्रेषक यंत्र क्यों रखते हो ?"

"कहा तो, माता-पिता को अपनी कुशलता का समाचार देने तथा वहाँ के हाल जानने के लिए मैं उनका व्यवहार किया करता था।"

"चीनियों को समाचार नहीं देते थे ?"

"नहीं उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।"

'फिर आज तुम क्यों पकड़े गये थे ?"

"मैं स्वयं नहीं जानता और न मुझसे किसी ने कोई प्रश्न पूछा। एक अधिकारी ने मेरे माता-पिता का नाम पूछा था, और उन्हें जानकर मेरा अतिथि जैसा सत्कार किया। रात्रि को न सोने के कारण मैं ऊँघने लगा, तब उसने मेरे सोने का प्रबंध कर दिया। जब सोकर उठा, तभी अंधड़ तूफान आ गया और सब चीनी शिविर ढह गये। सेना का सब प्रबन्ध अस्तव्यस्त हो गया, और मौका पाकर मैं भाग आया।"

"और कोई उल्लेखनीय बात नहीं हुई ?"

"एक बात मेरी समझ में नहीं आती कि उस चीनी अधिकारी ने पहली दृष्टि में मुझे विनोद, जो मेरे बड़े भाई का नाम है, कह कर कैसे पुकारा !"

"क्या कहा, उसने तुम्हें विनोद समझा ?"

"हाँ, शायद तुम नहीं जानते कि विनोद मेरा यमज भाई है। हमारी शक्लों में कोई अन्तर नहीं है।"

चिन स्वयं विचारों में तल्लीन हो गई थी। उसको चुप देख कर उसने कहा—"हाँ एक बात उसने और पूछा था। मेरे साथ बुद्ध की ढाई हजारवीं जयन्ती पर कई चीनी कुमारियों ने भी भिक्षुणी की दीक्षा ली थी। उनमें मेरे जान पहचान की दो लड़कियाँ थीं, एक का नाम चिनचुन था, और दूसरी का नाम ली-सूँग। दोनों मेरी माता के पास आती थीं। उनके सम्बन्ध में भी उसने पूछा था।"

चिन ने भयाकुल कंठ से पूछा—"क्या पूछा था ?"

"यही कि क्या मैं चिन तथा ली-सूँग को जानता हूँ ?"

"फिर तुमने क्या उत्तर दिया ?"

"मैंने वही कहा, जो सत्य था।"

"भला बताइये तो, क्या उत्तर दिया ?"

"यही कि उनको मैंने अपनी माँ के पास आते-जाते देखा था, उनसे मेरी कोई घनिष्टता नहीं हुई।"

"क्या उसने यह नहीं पूछा कि वे इस समय कहाँ हैं ?"

"जहाँ तक याद है ऐसा कोई प्रश्न नहीं किया।"

"चिन को क्या तुम पहचानते हो ?"

"एक -दो बार दूर से देखा था अब तो बहुत समय बीत गया। अब नहीं पहचान सकता।"

इसी समय मासपा मन्दिर का कोप और शस्त्रास्त्र निकलवा कर मन्दिर के क्षेत्र का निरीक्षण करते वहाँ आ गये। दोनों ने प्रणाम किया। यशोधर को देख कर मासपा चकित रह गये। उसका हाल जानने के लिये उन्होंने अपने

साथ चलने का संकेत किया। यशोधर उनके पीछे-पीछे चल दिया। चिन आशंकाओं का बोझ लिये अपनी कोठरी में चली गई।

१७

रात्रि के पिछले पहर में बासबा अपने गुरु के सुरक्षित रखे हुए कंकाल को जलाकर निश्चिन्त हुए। तैल से सिक्त हड्डियों के ढाँचे को जलने में उतनी ही देर लगी, जितनी तृण की राशि को लगती है। तैल के अतिरिक्त जिन औषधियों का लेप उस पर चढ़ा था, उन्होंने भी बारूद का काम किया। उन से ऐसे चमकदार स्फुलिंग निकलते थे, जैसे आतिशबाजी के अनारों से निकलते हैं। जब अग्नि हड्डियों में प्रविष्ट हुई तो छोटे पटाखों जैसे शब्द निकलने लगे। चिटचिटाती हुई हड्डियाँ लाल पीली लौ निकालती हुई जलने लगीं। चन्दन की लकड़ियाँ तो शरीर जलने के बाद भी बहुत देर तक जलती रहीं और उनके सुवासित धूम से वातावरण सुगन्धित हो गया।

शरीर के पंचतत्व में मिल जाने के पश्चात्, बासबा ने उसके फूल को एकत्रित कर स्वर्ण-कलश में रखा, तथा उसका अवशिष्ट भाग जो लकड़ियों की राख में मिल जाने से उठाया न जा सका था, उसे अपने शरीर में लपेट लिया। उनका संकेत पाकर मासपा ने भी भस्म-स्नान कर डाला। यशोधर तथा चिन को भस्म-स्नान करने का आदेश न मिलने से वे दूर खड़े देखते रहे।

भस्म-स्नान के समाप्त होने पर बासबा के संकेत से मासपा ने स्वर्ण-कलश उठा लिया, और उनके पीछे जाने लगे। यशोधर और चिन ने भी उनका अनुसरण किया। जब बासबा अपने कक्ष के द्वार पर पहुँचे, तब उनकी दृष्टि इन दोनों पर पड़ी। उन्होंने मासपा से एक विचित्र भाषा में, जिसको यशोधर और चिन ने कभी नहीं सुना था, कुछ कहा और कक्ष में चले गये। मासपा ने उनके पास आकर कहा—"वत्स, अब तुम लोग शयन करो। प्रात:

काल कुछ दिन चढ़े हम लोग यह स्थान त्याग कर देंगे। तुम दोनों भी सुरंग के गुप्त मार्ग से निकल काई चू नदी के तट पर मिलना। सूर्योदय से एक प्रहर के बीच अवश्य ही यह स्थान छोड़ देना, बल्कि यह कहना उचित होगा कि एक प्रहर के पहले-पहले नदी तट पर पहुँच जाना। इसमें किसी तरह की भूल न हो।" उन्होंने कोई प्रश्न पूछने का अवसर उन्हें नहीं दिया और शीघ्रता के साथ चले गए।

उनके जाने के पश्चात् यशोधर ने जाते हुए चिन से कहा—"आज के पहले मैंने गुरुदेव को इतना घबड़ाया हुआ नहीं देखा। गम्भीर से गम्भीर स्थिति में वह पहाड़ की तरह अचल रहने वाले हैं। इसके पीछे अवश्य कोई रहस्य है।"

"गुप्तचर बुद्धि जाग्रत होने से ही ऐसी शंका गुरु-वाक्य में कर रहे हो।"

"डोर जी, मैं तुम से कह चुका हूँ कि मैं गुप्तचर नहीं हूँ।"

"मैं इन प्रमाणों के समक्ष कैसे मान लूं कि तुम गुप्तचर नहीं हो।"

"इसका प्रमाण तुम्हें मिल जायगा, मेरे ध्वनि-प्रसारक तथा ध्वनि-ग्राहक यन्त्रों से। वे दोनों एक ही किलो साइकल पर मिले हुये हैं। तुम यन्त्र चालित करो, मेरे पिता की बातचीत तुम्हें सुनने को मिलेगी।"

"अच्छा, परीक्षण करता हूँ। पहले यह बताओ कि तुम किस स्थान से यन्त्र-चालित करते थे?"

"मन्दिर के शिखर से, क्योंकि वही सबसे ऊँचा स्थान है, जहाँ से वायु तरंगें निर्विघ्न पहुँच सकती हैं।"

"तब मन्दिर के शिखर पर चलो। कौन से मार्ग से जाते थे, पिछले या अगले?"

"मैं पिछले मार्ग से जाया करता था। अगला मार्ग पाठशाला से जाता है, जहां विद्यार्थियों के मिलने की सम्भावना रहती थी। पिछला मार्ग बिल्कुल सूना रहता है, उधर सीढ़ी न होने से कुछ चढ़ना-उतरना पड़ता है।"

"जब तुम चढ़-उतर सकते हो, तब मैं भी चढ़-उतर लूंगा।"

यशोधर उसको लिए हुए मन्दिर के पिछले भाग में गया, और परकोटे

की दीवाल पर उछल कर चढ़ गया । चिन उतना ऊँचा उछलने में असमर्थ थी, इसलिए उसको सहारा देकर उठाना पड़ा। वहाँ से वे दोनों छतों पर चढ़ते हुए बराबर आगे बढ़ते गए। कई स्थानों पर चिन को सहारा देकर चढ़ाना पड़ा। अन्ततोगत्वा वे दोनों मन्दिर के ऊपरी मण्डप पर पहुँच गये।

चिन ने अपने चोगे से दोनों यन्त्रों को एक स्थान पर स्थापित किया। ध्वनि-प्रसारक यन्त्र चालू करने पर यशोधर ने चिन को एक विशेष पुर्जे को घुमाने के लिए कहा। चिन के पूछने पर कि इसे क्यों चलाया, यशोधर ने उत्तर दिया कि इसके चलाने से पिता जी के ध्वनिग्राहक यन्त्र में घण्टी बजने लगेगी, और उसे सुनकर वह अपना ध्वनि-प्रसारक यन्त्र चलायेंगे। यह कह कर उसने अपने ध्वनि-ग्राहक यन्त्र में उसी प्रकार एक पुरजा घुमा दिया। कुछ देर तक प्रतीक्षा करने पर उसके ध्वनि-ग्राहक यन्त्र की घण्टी बजने लगी। उसे सुन कर यशोधर ने कहा—"पिता जी बात करने के लिये तैयार है, बोलो, तुम बात करोगे या मैं।"

चिन ने पीछे हटते हुए कहा—"नहीं, तुम बात करो।"

यशोधर ने कहा—"मैं यशोधर बोल रहा हूँ।"

ध्वनि-ग्राहक यन्त्र से शब्द आया–"मैं अविनाश, बोल रहा हूँ। कहो, तुम अच्छे हो ?"

"हां, आपके आशीर्वाद से मैं बिल्कुल स्वस्थ हूँ।"

"क्या समाचार हैं ?"

'समाचार बहुत बुरे हैं। यहां चीनी सेनाओं की हलचल बढ़ गई है। शायद. बहुत जल्द चीनी कब्जा कर लेंगे। आज शाम को बहुत भीषण अंधड़ आने से उनकी दशा अस्त-व्यस्त हो गई है। आज प्रात:काल मुझे वे पकड़ कर ले गये थे। वहां एक भीमकाय व्यक्ति के समक्ष मुझे पेश किया गया। उसने मेरा नाम-धाम पूछ कर मित्रवत व्यवहार किया, और समुचित खानें पीने की व्यवस्था कर मुझे शयन करने की अनुमति दी, किन्तु तूफान की घड़घड़ाहट से थोड़ी देर बाद में जाग पड़ा। अंधड़ इतना प्रबल था कि चीनी सेना के सब

शिविर उखड़ गये, और धूल तथा कंकरों की मार से सभी त्राहि-त्राहि करने लगे। अवसर पाकर मैं निकल भागा।"

अविनाश बाबू बोले—"अभी कुछ देर पहले मुझे अंधड़ की सूचना मिल चुकी है। तुम्हारा वहाँ रहना अब ठीक नहीं है। कल तुम चीनी शिविर में चले जाना। वहाँ के अधिकारी तुमको भारत पहुँचने का प्रबन्ध कर देंगे। मेरे कहने के अनुसार ही उन्होंने तुम्हें पकड़ बुलाया था। तुम अपने पत्र चीनी अधिकारी को दे देना, और तमगा भी दिखा देना। यद्यपि इनकी कोई जरूरत नहीं है, तथापि देने में कोई हर्ज नहीं। उनसे देने, दिखाने से तुम्हारी प्रतिष्ठा बढ़ेगी। चीनी तुम्हारे शत्रु नहीं, मित्र हैं, उनसे तुम्हें कोई भय नहीं होना चाहिए।"

यशोधर ने कहा—"जोरवाँग मन्दिर के पुजारी बासबा और मासपा ने स्थान त्याग करने का आदेश दे दिया है।"

"यह तुम्हारे हित में है। तुम वहां से सीधे चीनी सेना में जाकर उसी भीमकाय अधिकारी से मिलना। मैं उन्हें प्रातःकाल के पहले-पहले समुचित सूचना भेज दूंगा।"

"जो आज्ञा, परन्तु मेरा विचार है कि मैं अपने आचार्य के साथ आऊँ ?"

"नहीं अब तुम उनका साथ छोड़ दो। उनके साथ रहने से तुम विपत्ति में पड़ सकते हो। मेरी आज्ञा का यथावत पालन करो।"

"किन्तु मेरे साथ एक और भारतीय प्रवासी है, क्या उसको साथ लेकर चीनी सेना में नहीं जा सकता ?"

"यह बताकर तुमने बहुत अच्छा किया। तुम अपने प्रवासी मित्र को भी अपने साथ ले जाना। मैं चीनी अधिकारियों से उसके विषय में भी कह दूँगा। तुम्हारे साथ वे उसकी भी रक्षा करेंगे। तुम्हारी माँ अच्छी तरह हैं। आज विनोद न-मालूम कैसे और क्यों यहाँ के चीनी जूते वाले की दूकान पर गया था। शायद जूता खरीदने गया होगा उस दूकान के ऊपर के कमरे में वह चीनी भिक्षुणी रहती थी, जो तुम्हारे साथ दीक्षित हुई थी, और कई बार

घर भी आ चुकी थी। उससे और एक चीनी पुरुष से झगड़ा हो गया । दोनों ने एक दूसरे पर आक्रमण किया। चीनी पुरुष ने छुरे का प्रहार कर उसे गिरा दिया, और भिक्षुणी ने गोलियों से उसकी इहलीला समाप्त कर दी । चीनी पुरुष तो तत्काल मर गया, किन्तु भिक्षुणी घायल अस्पताल में है । उसकी दशा चिन्ताजनक है। गोली चलने की आवाज सुनकर विनोद अपने स्वभावा-नुसार रक्षा करने के उद्देश्य से ऊपर चढ़कर गया, कमरे के द्वार पर पहुँचते पहुँचते एक गोली उसके बाहुमूल में लगी। अभी तक वह अचेत पड़ा है । गोली आपरेशन से निकाल ली गई है, किन्तु शायद शिर के किसी मर्मस्थल पर चोट पहुँचने से अचेत है। डाक्टर कोई भय की बात नहीं बताते । संभव है प्रातःकाल तक चेतना आ जाय।"

"यह तो बड़ा दुखद समाचार है। आजकल चीनियों के उत्पात सर्वत्र बढ़ रहे हैं।"

"यह तो कोई उनका आपसी झगड़ा था। उससे विनोद का कोई सम्बन्ध नहीं है, यह परिस्थिति से स्पष्ट प्रमाणित होता है। पुलिस जांच कर रही है। क्रमशः सब भेद प्रकट होगा । तुम विनोद की कोई चिन्ता न करो। चीनी अधिकारी तुम्हें वायुयान द्वारा भेजेंगे, और इस प्रकार तुम तीन-चार दिनों में स्वयं यहां आ जाओगे मैं इनसे अनुरोध करूँगा कि वे तुम्हें वायुयान से भेजें, ताकि तुम उस दुर्गम क्षेत्र की कठिनाइयों से बच सको । हमारा आशीर्वाद जानना, और कल अवश्य चीनी सेना में चले जाना। बस इतना ही यथेष्ठ है।"

वार्तालाप समाप्त होने पर यशोधर ने देखा कि चिन के नेत्रों से अश्रु-धारा बह रही है, और उसका शरीर कांप रहा है।

यशोधर ने भीत कंठ से पूछा—"डोर जी, क्या हुआ, तुम रो क्यों रहे हो?"

प्रश्न सुन कर चिन की रुलाई बढ़ गई। उसके मुख से अनायास निकल गया—"तब ली मारी गई। क्या हम लोगों के भाग्य में यही बदा है?"

यशोधर स्पष्ट रूप से उसका कथन नहीं सुन सका था। उसके शब्द

उसासों में फंसे रहने से अस्पष्ट थे ।

यशोधर ने उसके आंसुओं को पोछते हुए कहा—"न-मालूम तुम क्यों रो रहे हो। रोना तो मुझे चाहिए, क्योंकि मेरा भाई विनोद आहत हुआ है, और अभी तक अस्पताल में अचेत है।"

"अरे हाँ, विनोद भी तो आहत हुआ है!" रुदन करते हुए चिन ने कहा।

"पिता जी ने कहा है कि चीनी पुरुष तत्काल मर गया, तथा भिक्षुणी मरणासन्न है।"

"वह मर जायगी, हम सब का ऐसा ही अन्त होगा।"

"क्या तुम उस चीनी भिक्षुणी से परिचित थे?"

चिन ने परिस्थिति सँभालते हुए सिर हिलाकर नकारात्मक उत्तर दिया।

यशोधर ने पूछा—"हम सबका ऐसा ही अन्त होगा—इन शब्दों का अर्थ मेरी समझ में नहीं आया।"

चिन ने परिस्थिति सँभाल ली थी। उसने उत्तर दिया—"जब चीनियों ने हमें घेर लिया, तब मृत्यु निश्चित है।"

"किन्तु हम लोग तो चीनी सेना में कल प्रातःकाल स्वयमेव चलेंगे। पिता जी का यही आदेश है। चीनी तिब्बतियों के शत्रु हैं, किंतु हमारे साथ मित्रता का व्यवहार करेंगे। वे हमें वायुयान द्वारा भारत भेजेंगे।"

मैं चीनी सेना में नहीं जाऊँगा। आचार्य मासपा के कथन के अनुसार काम करूँगा।"

"उनके साथ जाने से पकड़े जाने का भय है।"

"चीनी सेना को आत्म समर्पण करने की अपेक्षा उनके साथ जाना कहीं श्रेयस्कर है। जब पकड़े जाने की बारी आवेगी, तब देखा जायगा। दो–दो हाथ चलाने को तो मिलेंगे। चीनी सेना में जाकर कुछ किये-धरे न होगा। बन्दियों की भांति कुढ़ कुढ कर मरना पड़ेगा। यहाँ स्वछन्द वातावरण में लड़ते भिड़ते मरना कहीं श्रेयस्कर है।"

"अच्छा, अब नीचे चलो। हम लोग इस समस्या पर पुनः विचार

करेंगे।"

"अब तुम्हारा रास्ता अलग है, और मेरा अलग।"

यह कह कर चिन शीघ्रता से चल दी। इस बार उतराई थी, इसलिए वह बिना किसी सहारे के नीचे उतरती चली गई। यशोधर उसके पीछे-पीछे चलता रहा। अपनी कोठरी के पास पहुँच कर चिन बिना उसकी ओर ध्यान दिए दरवाजा खोल कर प्रविष्ट हो गई, और भीतर से उसने कुण्डी बन्द करली। यशोधर अपनी कोठरी के बाहर खड़ा होकर विचारने लगा।

१८

प्रत्यूष वेला में चीनी सेनाओं ने पोटाला घेर लिया, और राजमहल पर गोलाबारी आरम्भ कर दी। खाम्पा सैनिकों ने उनके प्रत्युत्तर में चीनी सेना पर आक्रमण किया। दोनों में युद्ध होने लगा। पिछले दिन की आँधी से क्षुब्ध चीनी अपनी जान पर खेल कर युद्ध कर रहे थे, और खाम्पा तिब्बतेश्वर को भागने का अधिक से अधिक समय देने के लिए युद्ध कर उन्हें संत्रस्त करने लगे। ल्हासा निवासियों को विदित हो गया था कि तिब्बतेश्वर देश त्याग कर भारत में शरण लेने के लिए पलायन कर रहे हैं। इससे वे बड़ी निश्चिन्तता से चीनियों का मुकाबला कर रहे थे।

मुट्ठी भर खांपा सैनिक चीनियों के समक्ष कब तक ठहरते? घण्टे-डेढ़ घण्टे के युद्ध में पोटाला लाशों से पट गया। ताई-लुँग और कांग चुने हुए सैनिकों के साथ, तिब्बतेश्वर के आवास "नारबुलिंगका" राजमहल में प्रविष्ट हुए। वे उनको गिरफ्तार करने की योजना बना चुके थे, और समझते थे कि भगवान बुद्ध का अवतार कहलाने वाले तिब्बतेश्वर कुछ ही समय में उनके बन्दी बनने वाले हैं। जितना वे तिब्बत पर अधिकार करने के लिए आतुर नहीं थे,

उतना उनको बन्दी बना उनकी महिमा लोप करने के लिए व्यग्र थे। सातवीं शताब्दी से तिब्बतेश्वर देवत्व का किरीट धारण करते आये, और अब तक उनकी सत्ता को किसी राज्य के अधिपति ने चुनौती नहीं दी थी। यहाँ तक कि चीनी नराधिपों ने भी उन्हें वही सम्मान अतीत काल में दिया, तथा कभी उनकी महिमा को लघु करने का प्रयत्न नहीं किया। चीन के करोड़ों निवासी लामाई धर्म पर आस्था रखते थे तथा उन्हें भगवान बुद्ध का अवतार मान कर उसी भक्तिभाव से नमन-पूजन करते थे, जैसा तिब्बती करते आये हैं। चीन के कम्यूनिस्ट नेता इसे पाखन्ड कहते, और उसका दलन करने के लिए वे विशेष रूप से उत्सुक थे। संसार में धार्मिक तीर्थ तथा क्षेत्र अनेक हैं, संत नबी और पैगम्बर भी अनेक उत्पन्न हुए, किन्तु किसी देश का शासक पीढ़ी दर पीढ़ी भगवान का अवतार माना जाकर इतनी शताब्दियों तक पूजित नहीं हुआ। कालचक्र सबको खाता चला गया। चीनी कम्यूनिस्ट अपने को कालचक्र का पर्याय मानते हैं। अपने को पुरानी रूढ़ियों, परम्परागत विश्वासों का संहार स्वीकार करने में वे गौरव अनुभव करते हैं। भगवान की सत्ता को लोप करने के लिए वे सदैव तुले रहते हैं। वे मानव को समस्त शक्ति का केन्द्र समझते हैं, और उसी की प्रधानता मान्य कराने का प्रयत्न करते हैं। वे स्वीकार नही करते कि मानव एक सीमित आकार का प्राणी है, अतएव उसकी शक्ति भी सीमित हैं। ब्रह्माण्ड विशाल है—इतना विशाल कि मानव की अंक गणना समाप्त हो जाती है, किन्तु उसकी सीमायें फिर भी वैसी ही और उतनी ही दूर बनी रहती हैं।

ताई-लुंग और कांग के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उन्हें "नारबुलिंगका" का राजमहल जन शून्य दिखाई दिया। तिब्बतेश्वर का स्वर्ण-सिंहासन अपने स्थान पर शोभित था, राजमहल की सजावट भी उसी प्रकार थी, किन्तु सब निर्जन था। बड़े-बड़े विशाल प्रकोष्ट भाँय-भाँय कर रहे थे। उनकी बातचीत प्रतिध्वनित होकर कभी-कभी उन्हें चौंका देती, और ऐसा प्रतीत होता कि वहाँ का शून्य मुखरित होकर उनका उपहास कर रहा है।

ताई-लुंग ने अधीरता के साथ कहा—"मालूम होता है कि चिड़िया उड़ गई।"

कांग ने हँसते हुए कहा—"अरे भाई, वह भगवान था, अन्तर्धान हो गया।"

दोनों हँसने लगे।

"हम ऐसे भगवानों को प्रकट कराना भी जानते हैं।" ताई-लुंग ने सगर्व कहा।

"अब वह यहाँ नहीं, भारत में प्रकट होंगे। कल के अधड़ का लाभ उठा कर सभी भाग गए, परन्तु उनको भारत पहुँचने के लिए लम्बी यात्रा करनी पड़ेगी। सैनिकों को चारों दिशाओं में भेजो, वायुयानों से उनकी गति-विधि का पता लगाओ। उनको आदेश दो कि वे जहाँ मिलें, बमों के प्रहार से उड़ा दें। ल्हासा की जनता को इतना पीसो कि वह अपने भगवान का पता बताने के लिए मजबूर हो जाय। खाम्पा सैनिकों को इतना त्रास दो कि वे उन भगोड़ों का भेद उगल दें।"

"आपके आदेश के अनुसार कार्य होगा। जिनका जरा भी लगाव उन भगोड़ों के साथ मालूम हुआ, उनको इतना कठोर दण्ड दिया जायगा कि पत्थर भी पिघल जाय। अभी तक तिब्बतियों ने चीन का रोष नहीं देखा है, उसकी एक झांकी इनको शीघ्र देखने को मिलेगी। बच्चे बूढ़े, नर-नारी सभी को चीनी अजदहा उदरस्थ कर लेगा।"

"हाँ ऐसा ही करो। हम लोग चंगेज व तैमूर के अधिकारी हैं। वे महा पुरुष नगरों को होली में परिवर्तित करते थे, और फिर उसको बुझाते थे नर-रक्त से। तुम भी ल्हासा को जलाकर स्मशान में परिणत कर दो, सभी जीवित प्राणियों की बलि चढ़ा दो। तिब्बत को इस प्रकार नष्ट करो कि उसकी गाथा सहस्त्रों वर्षों तक गाई जाय। जितने मठ यहाँ हो, उनको उजाड़ दो। लामाओं को तलवार के घाट उतार दो। प्रत्येक नागरिक की सम्पत्ति जब्त कर लो। मैंने सुना है कि जोरवांग मन्दिर में अपार द्रव्य है।"

"हाँ ऐसे ही समाचार मुझे भी मिले हैं। मैंने उसके चारो ओर गुप्त रूप से नाकाबन्दी करवा दी थी। जहाँ तक मेरा अनुमान है, वहाँ का कोष अभी

तक बाहर नहीं निकला है।"

"इसीलिए तो वहाँ जा रहा हूँ। तुम यहां का प्रबन्ध करो। यदि वह भारतीय वहाँ मिल गया, जो अन्धड़ में हमारी गिरफ्त से निकल भागा था, तब बहुत काम निकलेगा। उसे वहाँ के गुप्त मार्गों का ज्ञान अवश्य होगा।"

"उसी के पिता ने वायरलेस द्वारा कुछ घण्टे पहले आलाप किया था ?"

"हाँ, वह अपने पुत्र को बचाने के लिए उद्विग्न है। कहता था कि उसको वायुयान से भेज दो, जैसे हम लोग उसके नौकर हैं! तिब्बत के पश्चात् जब भारत की ओर हमारा अभियान होगा, तब उसे हमारी शक्ति का कुछ थोड़ा ज्ञान होगा।"

"यदि वह उसके कथनानुसार चीनी शिविर में आ जाय, तब उसके साथ कैसा व्यवहार किया जाय ?"

"वही व्यवहार जो तिब्बतियों के साथ हो। इस समय वह तिब्बत का नागरिक है, भारत का नहीं।"

"भारतीय राजदूतावास कोई आपत्ति नहीं करेगा ?"

"इसका भय नहीं है। उसकी मां अवश्य कुछ हंगामा उठा सकती है, क्योंकि वह डिप्टी मिनिस्टर है। अच्छा अभी, उससे छेड़-छाड़ न करना। उसको आराम से रखना, तब तक मैं जोरवांग मन्दिर से वापस आ जाऊँगा। वह यदि वहीं मिल गया, तब मैं उसको अपने साथ ले आऊँगा। उसके साथ कैसा व्यवहार किया जाय, यह हम लोग बाद में निश्चय करेंगे।"

यह कह कर कांग ने चुने हुए सैनिकों को लेकर जोरवांग मन्दिर की ओर प्रस्थान किया। उसके जाने के पश्चात् चीनी सैनिक लूट पाट करने में लग गये। तिब्बतेश्वर का स्वर्ण सिंहासन विविध उपकरणों के आघातों से चूर्ण-चूर्ण हो गया। स्वर्ण एकत्रित कर सैनिक कोष में भेज दिया गया। साज-सज्जा तथा अलंकार युक्त मूर्तियां खण्ड-खण्ड कर जूतों के नीचे रौंदी जाने लगीं। देश-विदेशों के कालीन उठवाकर चीनी शिविरों में भेज दिए गए, राज महल की दीवारें और मंडप स्वर्णखचित तथा रत्नजटित था। सैनिक उसको निकालने-बिगाड़ने में लग गये। न-मालूम कहां एक बिल्ली छिपी बैठी थी। वह अवसर

पाकर प्राण-रक्षा के लिए अपने आश्रय-स्थान से निकल कर भागने लगी। चीनी सैनिकों ने उसे घेर लिया और शोर मचाने लगे कि भगवान बुद्ध बिल्ली के रूप में प्रकट हुए हैं। जब उसके निकलने का मार्ग चारों ओर से अवरुद्ध हो गया, तब आत्मरक्षा के लिये उसने अन्तिम प्रयास किया। वह उछल कर ताई-लुंग की गरदन पर सवार हो गई, और उसकी श्वास-नली में अपने पैने दांत गड़ा कर झूल गई। ताई-लुंग पृथ्वी पर गिर पड़ा। सैनिकों ने उसकी गरदन छुड़ाने के अनेक प्रयास किये, किन्तु वे सब निष्फल हुए। ताई लुंग की श्वांस की नली क्षत-विक्षत हो गई, और उसके प्राण पखेरू उड़ने का प्रयास करने लगे। सैनिकों ने बिल्ली की पूँछ पकड़ कर खींचना शुरू किया, परन्तु वह अपने प्राणों की परवा न कर उसकी नली दबोचे हुए, उसकी छाती पर पैर जमाए उसी भाँति हिला-झुला रही थी, जैसे वह चूहे मारती है। एक सैनिक ने किरिच से उसे छेद-छेद कर मारना शुरू किया, किन्तु वह मरते-मरते, ताई-लुंग को भी अपने साथ ले गई।

एक चीनी बौद्ध, जिसको नए शासन में जबरिया सैनिक बनाया गया था, एक कोने में खड़ा उनके कृत्य देख रहा था। उसके मुख से सहसा निकल गया—"क्या यह भगवान बुद्ध के उपहास करने का प्रत्यक्ष प्रमाण है?" उसने एक दीर्घ निःश्वास के साथ मन ही मन प्रणाम किया।

ताई-लुंग की मृत्यु के साथ तिब्बतेश्वर के राजमहल की तोड़-फोड़ समाप्त करदी गई। सैनिक उदास मन से उसका शव उठाकर चीनी शिविर में ले गए।

१९

यशोधर के सामने यह एक बड़ी समस्या उत्पन्न हो गई, कि वह अपने पिता का आदेश पालन करे अथवा मासपा से काई-चू नदी के तट पर मिलकर उनके साथ पलायन करे। उसका मन चीनियों पर विश्वास करने की गवाही नहीं देता था। इधर मासपा के साथ भागने में अनेक मुसीबतों का सामना था, और यह भी निश्चित न था कि वह सही सलामत उस भयानक बीहड़ भूमि को पारकर भारत-सीमा में प्रवेश कर सकेगा। डोरजी ने चीनी सेना में उसको साथ जाने से स्पष्ट इनकार कर दिया था। उसके कथन से यह निश्चित था कि वह मासपा का साथ करेगा। वह उसके साथ भारत से आया था, और अब तक साथ-साथ रहा था। उसको इस प्रकार अकेला छोड़ने को उसका मन नहीं होता था। शेष रात्रि उसने इसी उधेड़-बुन में व्यतीत की।

प्रातःकाल होने पर वह उठकर अपनी कोठरी से बाहर आया, और चिन रूपी डोरजी का द्वार बन्द पाकर प्रात-कृत्य से निबटने के लिए चला गया। जब नियमानुसार वह भगवान बुद्ध की प्रतिमा का पूजन करने के लिए गया, तो उसने देखा कि मूर्ति अपने स्थान पर नहीं है। मासपा, अथवा बासबा के भी दर्शन नहीं हुए। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि मन्दिर बिल्कुल शून्य है, उन दोनों ने प्रतिमा लेकर मन्दिर त्याग दिया है।

खिन्न मन से वह अपने निवास स्थान की ओर चला। इस समय चिन की कोठरी का द्वार खुला हुआ था, किन्तु वह वहाँ न थी। उसने अनुमान किया कि डोरजी गुप्त मार्ग से चला गया है। उसने उसका अनुसरण कर उसको समझा-बुझाकर ले आने का विचार किया। उसने उसकी कोठरी में प्रवेश किया, वहाँ का गुप्त द्वार उसने खोला, फिर उसे बन्द कर वह सुरंग में उतर गया। उसने मोमबत्ती जलाकर प्रकाश उत्पन्न किया, और शीघ्रता से सुरंग के बाहर निकलने वाले द्वार की ओर चला। सुरंग मिट्टी

के तेल की बू से भरी थी। यह बू कहाँ से आ रही है जानने के लिए वह उतावला हो गया, परन्तु उसे कुछ पता न लगा। उसका इरादा था कि वह डोरजी को सुरंग के बाहर निकलने के पहले ही पकड़ ले, इसलिए वह कुछ दूर चलने के पश्चात् दौड़ने लगा। मील-डेढ़ मील का मार्ग उसने बड़ी शीघ्रता से तय किया, परन्तु डोरजी का कोई चिह्न न मिला। वह जानता था कि झरने के बगल से ऊपर चढ़ना उसके लिये कठिन है, वह क्षण भर वहीं खड़ा होकर दम लेने और विचारने लगा। सहसा उसके मन में यह विचार आया कि उसने सुरंग में प्रवेश करने में बहुत जल्दी कर दी। डोर जी भी उसी की भाँति प्रात-कृत्य से निवृत्त होने के लिए गया होगा। जितना वह सोचता, उतना उसे यही विश्वास होता था कि सुरंग में प्रवेश करने के पहले उसे मन्दिर में सर्वत्र-ढूँढ़ लेना था यह विचार आते ही वह पीछे लौट पड़ा।

इधर चिन भी अनेक विचारों में निमग्न रहने से सो न सकी थी। ली की मृत्यु के समाचार से वह अत्यन्त कातर हो गई थी। विनोद के घायल होने की खबर से उसे पीड़ा हुई थी। यद्यपि उसने विनोद से कभी प्रेम नहीं किया था, तथापि अनेक दिनों तक साथ रहने से एक प्रकार का मोह उत्पन्न हो गया था, और यशोधर के प्रति उसका मानसिक आकर्षण भी कुछ दूर तक उस मोह को बढ़ाने में सहायक हुआ था। उन दोनों के आहत होने का रहस्य प्रकट न होने से वह अनेकानेक अशुभ कल्पनायें कर रही थी। यद्यपि उसने कांग के तिब्बत पहुँचने का समाचार नहीं सुना था, और न उसने यशोधर से उसकी आकृति के बारे में पूछा था, तथापि उसने यशोधर के द्वारा जो वर्णन अपने पिता से करते सुना, उससे यह शंका हो गई थी कि यशोधर से विनोद तथा ली के सम्बन्ध नें प्रश्न पूछने वाला या तो स्वयं कांग है, अथवा उसका कोई विश्वासी अनुचर। उसकी भयावनी आकृति उसके कांग होने की परिचायक थी। यह विचार आते ही वह सिर से पैर तक कांप उठी।

अपनी प्राण-रक्षा के लिए उसने यशोधर का साथ छोड़ने का निश्चय कर लिया। उसे विश्वास था कि यशोधर अपने पिता के उपदेशानुसार चीनी सेना में जायगा और उसका स्वयं वहाँ जाना मृत्यु-मुख में प्रवेश करने के तुल्य

होगा। उसने मासपा के साथ तिब्बत त्यागने का निश्चय किया।

जब यशोधर ने प्रातःकाल उसका द्वार खटखटाकर खुलवाने का प्रयत्न किया, तब वह जागती थी; किन्तु उसने द्वार नहीं खोला और चुपचाप पड़ी रही। जब उसके चले जाने का इतमीनान हो गया, तब अपनी कोठरी का द्वार खोल कर वह मन्दिर के पिछवाड़े चली गई, तथा वहाँ से मन्दिर की छत पर चढ़ कर एक कोने में छिप कर बैठ गई। उस स्थान से वह यशोधर का आना-जाना देख सकती थी। उसने यशोधर को प्रात कृत्य से निपट कर आते देखा, मन्दिर में पूजा करने के लिए प्रवेश करते देखा, और निराश मुद्रा में वापस लौटते देखा। उसे वहाँ से अपनी कोठरी नहीं दिखाई देती थी। वह बड़ी देर तक उसकी प्रतीक्षा करती रही, किन्तु जब उसने उसे कहीं न देखा, तब वह नीचे उतरी। चारों ओर उसकी टोह लेती हुई वह अपनी कोटड़ी में आई। यशोधर की कोठड़ी का द्वार बाहर से बन्द देखकर उसने अनुमान किया कि "वह उसकी ओर से निराश होकर चीनी सेना में चला गया है।" वह निश्चिन्त होकर अपनी कोठरी में बैठ कर अपना सामान बाँधने लगी। नागार्जुन के दिए हुए एक हजार रुपयों के नोटों को उसने अपनी कमर में बांधा और अपने वस्त्रों की एक छोटी गठरी बनाई। को-सिन के कमरे की अलमारी से लाये हुये दोनों छुरे अब भी उसके पास थे; उसने उनको अपने चोगे में छिपाया। मन्दिर के शस्त्रागार से लाये रिवाल्वर में उसने क्रमशः छः कारतूस भरे, शेष कारतूसों की पेटी उसने अपने अँगरखे के नीचे कंधे में पहनली। इस समय वह अपने को बिल्कुल अकेली समझती थी। जब उसने यशोधर को मन्दिर से निराश मुद्रा में लौटते देखा था, तब उसे विश्वास हो गया था कि बासबा और मासपा मन्दिर त्याग कर चले गये हैं। उसे मासपा के वचन याद थे कि "तुम दोनों पहर भर दिन चढ़ने के पहले-पहले मन्दिर त्याग, गुप्त मार्ग से आकर क़ाई-चू नदी के तट पर मिलो।" उसने अनुमान किया कि यद्यपि अभी एक घड़ी से अधिक दिन नहीं चढ़ा है तथापि उसको शीघ्र से शीघ्र स्थान छोड़ देना चाहिये। वह उठ कर बताई हुई विधि से सुरंग का द्वार खोलने लगी।

सुरंग का द्वार उसने अभी खोला ही था कि उसे मन्दिर की ओर कुछ

खटपट सुनाई दी। उसने अनुमान किया कि शायद मासपा अभी गये नहीं। वह उत्सुकता से अपनी कोठरी के द्वार के बाहर आकर खड़ी हो गई, तथा इधर-उधर देखने लगी। वहां से उसे कुछ दिखाई न पड़ा, इस लिए कुछ दूर आगे बढ़ गई। इसी समय सहसा मन्दिर के प्रांगण में अनेक चीनी सैनिक प्रवेश करते दिखाई दिए। उन सैनिकों में जो सबसे आगे झूमता हुआ चल रहा था, उसको वह पहली ही दृष्टि में पहचान गई। वह कांग था, जो मदिरा के नशे से मदांध था। ज्योंही वह भागी, त्योंही उसकी दृष्टि उस पर पड़ गई। कांग ने अनुमान किया कि भागने वाला व्यक्ति यशोधर है। वह उससे एकान्त में बात करना चाहता था इसलिए उसने अपने सैनिकों को वहीं ठहरने तथा मन्दिर में खोज करने का आदेश दिया, और स्वयं उसको पड़कने के लिए दौड़ पड़ा। चिन उस समय अपनी कोठड़ी का द्वार बन्द कर रही थी। कांग ने उछल कर दोनों किवाड़ों के बीच में अपना पैर डालकर पटों को बन्द होने से रोक दिया। चिन और कांग की आँखें चार हुईं। काँग ने पहचाना कि यह यशोधर नहीं है, किन्तु शक्ल उसकी जानी पहचानी है। जब तक कांग अपने हाथ लगा पटों को धक्का दे, तब तक चिन अपनी सम्पूर्ण शक्ति से दोनों पटों को बन्द करने लगी। काँग का पैर पटों के बीच में दब जाने से घायल हो गया। पीड़ा से छटपटाहट होने लगी और उसके साथ अदम्य क्रोध भी उत्पन्न हुआ। उसने बल पूर्वक पटों को धक्का दिया। चिन उसके बल के समक्ष नितांत क्षुद्र थी। वह उछल कर पीछे हट गई और रिवाल्वर निकाल कर गोली चलाने जा रही थी कि कांग भीतर आ गया। जब से उसकी आखें चिन की आंखों से मिलीं थीं तब से उसकी चेतना उसके मस्तिष्क के स्मृति-कोष में चक्कर लगा रही थी। बिजली की तरह उसके मन में यह विचार कौंध गया कि यह चिन है। जब रिवाल्वर तानते हुए उसने उसे देखा, और उसके चेहरे पर गौर किया तो उसे निश्चय हो गया कि यह पुरुष वेप में चिन ही है। उसने रिवाल्वर की किंचित परवा न करते हुए बज्र गम्भीर शब्द में कहा—"अरे भिक्षुणी नहीं, भिक्षु-वेप में मैं चिन को देख रहा हूँ। खूब मिली, आशा के विपरीत मिली; काशी में चरका देकर निकल भागी, अब

कहां जायगी ?"

चिन की दशा ऐसी हो रही थी जैसे महान अजगर के सामने निरीह हरिणी के शावक की होती है। जैसे वह अवश हो जाता है, वैसे ही वह लाचार हो गई। उसकी शक्ति क्षीण हो गई। रिवाल्वर के घोड़े को पकड़े हुए उसकी तर्जनी उसको दबाने में असमर्थ हो गई। इसी समय सुरंग के भीतरी द्वार पर यशोधर आ गया। उसने सुरंग का द्वार खुला देख कर अनुमान किया कि डोरजी अभी सुरंग में आने वाला है। सम्भव है उसको देखकर वह उसके साथ चलने से इन्कार कर दे, इसलिए एक कोने में खड़ा होकर उसके आगमन की प्रतीक्षा करना उसने श्रेष्ठ समझा। उसने मोमबत्ती जमीन पर स्थापित कर दी। वह इतनी उजलत में था कि उसकी दृष्टि उस बारूद के घोल से सिक्त कपड़े की रस्सी पर नहीं पड़ी, जो उस जगह से अति निकट पड़ी थी, जहां उसने मोमबत्ती जमाई थी। वह अत्यन्त उत्सुकता से चिन के आने की प्रतीक्षा करने लगा। चिन तो नहीं आई, प्रत्युत ये शब्द उसके कानों में पड़े—"बोलिए, चिनचुन जी, अब आप भाग कर कहां जायेंगी ? विनोद के साथ काशी में गुलछर्रे उड़ाती थी, और यहां उसके भाई यशोधर के साथ मौज कर रही हो; बृहत्तर चीन संघ ने क्या इसी दिन के लिए तुझे पाला और गुप्तचरी की शिक्षा देकर सारनाथ भेजा था ? क्या तुझे ये हिन्दुस्तानी छोकरे महामहिम कांग के मुकाबले में अच्छे जँचे ? विनोद घायल होकर अस्पताल में पड़ा है, तेरी साथिन ली मेरे सेवक को-सिन द्वारा मारी गई, और आज तू मेरे हाथों कुत्तों से नुचवाई जायगी। देख तो, मैं किस तरह सता-सता कर तेरी जान लेता हूँ!"

यशोधर इन शब्दों को सुनकर स्तंभित रह गया। उसके मन ने प्रश्न किया कि डोर जी क्या छद्म वेष में नारी है ? उसने उस घटना की पुनरावृत्ति सुनी, जो प्रातःकाल के कुछ देर पहले अपने पिताजी से सुनी थी। उसके पैर थरथर काँपने लगे, और उसी कँपकँपाहट में उसका पैर मोमबत्ती से लग गया, जो धक्का लगने से फर्श पर गिर पड़ी। उसकी लौ का जहाँ रस्सी से स्पर्श हुआ, वह स्फुलिंग छोड़ती उत्तरोत्तर मन्दिर के भीतरी भाग की ओर सुलगती

आगे बढ़ने लगी। यशोधर का ध्यान उस ओर नहीं गया। इस समय उसका मानसिक संतुलन नष्ट हो चुका था।

अब उसके कान में शब्द आये, जिन्हें चिन कह रही थी—"कांग ! जानले, जिस प्रकार ली ने तेरे अनुचर को-सिन को मारा, उसी प्रकार तू मेरे हाथ से मरेगा। एक कदम भी बढ़ा तो इस रिवाल्वर की छः गोलियाँ तेरे शरीर में बिधी दिखाई देंगी। नारी स्वभाव से भीरु होती है, परन्तु उसके साहस की भी थाह किसी पुरुष ने आज तक नहीं पाई है। मेरी मृत्यु तो निश्चय ही है लेकिन तू भी बच कर नहीं जाने पायेगा।"

उसने कांग का उत्तर सुना। वह कह रहा था—"तू इस खिलौने का डर दिखाती है। तेरा पुरुष वेष अवश्य है, परन्तु वस्तुतः तू नारी है। पुरुष नारी से कभी भय नहीं खाता। यह तो बता, तू कैसे यहां तक आई ?"

"इसको जानकर तू क्या करेगा ?"

"मैंने उस भुतहे मकान की सुरँग का पता लगा लिया, जहाँ से तू भागी थी, परन्तु अब तू किसी सुरंग से नहीं भाग सकेगी। यद्यपि तेरे पीछे किसी सुरंग का द्वार देख रहा हूँ, पर तू भाग नहीं सकती। कांग की आँखों में आज तक कोई धूल नहीं झोंक सका है ?"

"मैं तुझे मार कर इसी सुरंग से जाऊँगी।"

"तेरी रक्षा कोई करे, तभी तो इस सुरंग से भाग सकेगी। इस मन्दिर को मेरे सिपाहियों ने घेर लिया है।"

"याद रख मैं आजन्म ब्रह्मचारिणी हूँ। मेरा सतीत्व मेरी रक्षा करेगा ?"

"वेश्या का भी क्या कोई सतीत्व होता है ?"

"इसका ज्ञान तुझे आज हो जायगा। आज अपने माता-पिता का प्रतिशोध लूंगी।"

"जैसा तेरा पिता कुत्ते की मौत मरा था, वैसे ही तू आज तड़प-तड़प कर मरेगी।"

"देख, वहीं स्थिर रह, एक कदम भी आगे बढ़ाया......................नहीं मानता तो ले।"

इन शब्दों के बाद ही यशोधर ने उछलने का शब्द सुना, और उसके साथ रिवाल्वर चलने का फटाफट शब्द सुनाई पड़ा। उत्सुकता उसे सुरंग के द्वार पर घसीट लाई। उसने देखा कि कांग घायल अवस्था में भूमि पर पड़ा है; और चिन उसे ठोकरें लगा रही है। इसी समय उसे कोठरी के द्वार पर कांग के सैनिक दिखाई दिए। कांग को भू-पतित देखकर उन्होंने दौड़ कर चिन को पकड़ लिया। चिन का रिवाल्वर छीन लिया गया था, किन्तु इसी समय सहस्त्रों बमों के एक साथ विस्फोट होने से जैसा भयंकर रव उत्पन्न होता है, उससे भी भयंकर शब्द आकाश में गूंज गया, और समस्त मन्दिर नींव सहित उड़ गया। मासपा द्वारा मन्दिर के नीचे मण्डप में एकत्रित कराए हुए बारूद के ढेर में यशोधर द्वारा गिराई गई मोमबत्ती से बारूद के घोल से सिक्त रस्सी जलती हुई वहां तक अग्नि ले गई, और उसके स्फुलिंगों ने विस्फोट कर दिया। मंदिर की नींव तक उड़ गई, और उसके साथ ही कांग के समस्त सैनिक भी उड़ गए। चिन की कोठरी की छत गिर गई। चिन तथा कांग के सैनिक बड़े-बड़े शिला खण्डों के नीचे दब गए। सुरंग के अन्दर रहने के कारण यशोधर पर शिलाखंड तो नहीं गिरे, किन्तु भूकम्प के भयंकर धक्के ने उछल कर बहुत दूर सुरंग में एक ओर फेंक दिया।

२०

काई-चू नदी के तट की एक कन्दरा में मासपा और बासबा बैठे हुए डोरजी रूपी चिन तथा यशोधर की प्रतीक्षा सूर्योदय से कर रहे थे। यह तट जनशून्य था चीनी सेना के सैनिक कुछ दूर पर नदी की नाकाबन्दी किए सतर्क खड़े थे। उन्हें तिब्बतेश्वर के पलायन का हाल नहीं विदित था। ज्यों-ज्यों देर हो रही थी, त्यों-त्यों दोनों चिन्ताकुल दृष्टि से सुरंग के मुहाने की ओर देख कर

प्रतिक्षण उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। जब दो घड़ी के लगभग दिन चढ़ आया, तब वासबा की उद्विग्नता बढ़ी और उन्होंने कहा—"मासपा, अभी तक वे दोनों नहीं आये। अभी बहुत काम करना है। चीनी सेना की हलचल बढ़ने लगी है।"

"उनके न आने का कारण समझ में नहीं आता। मैंने रात्रि में आपकी आज्ञानुसार उनको समझा दिया था कि पहर भर दिन चढ़ने से पहले सुरंग से निकल कर नदी तट पर आ जाना। वे दोनों आज्ञाकारी एवं अनुशासन को मानने वाले हैं। उनमें अवज्ञा का भाव मैंने कभी नहीं पाया।"

"किन्तु आज तो उन्होंने आज्ञा-पालन में त्रुटि दिखाई है। इतनी गम्भीर परिस्थिति में उन्हें समय का मूल्य मालूम होना चाहिए था।"

"परिस्थिति की गम्भीरता का ज्ञान उन्हें नहीं है।"

"यशोधर तो चीनी शिविर से भाग कर आया था, उसे गम्भीर परिस्थिति का अनुमान कर लेना चाहिए।"

"हां अनुमान तो उन्हें अवश्य कर लेना 'चाहिए, यद्यपि स्पष्ट रूप से मैंने उन्हें कुछ नहीं बताया था, कि हम लोग तिब्बत त्याग कर भारत सीमा की ओर प्रस्थान कर रहे हैं।"

"एक घड़ी तक और प्रतीक्षा करो। यह भी सम्भव है कि सुरंग का खोलना भूल गए हों, अथवा कहीं तुमने हड़बड़ी में उनके द्वार न बन्द कर दिए हो। प्रायः ऐसा हो जाता है।"

"नहीं रिमपोचे, मैंने सब मार्गों में ताला बन्द कर दिया था, केवल उन के द्वार खुले छोड़ दिये थे।"

"प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त हम कुछ नहीं कर सकते।"

मासपा ने आकाश की ओर देखते हुए कहा—"रिमपोचे, अंधड़ तो शान्त हो गया है, किन्तु बादल उमड़ते आ रहे हैं।"

"बादलों के दल यदि आकाश को आच्छादित न करेंगे, तब तिब्बतेश्वर की रक्षा कैसे होगी चीनी वायुयानों से ?"

"रिमपोचे, तब यह आप की ही योजना है !"

"भगवान बुद्ध अवलोकितेश्वर ने मेरे द्वारा यह कार्य सम्पन्न कराया है। मैं तो निमित्तमात्र हूँ, प्रेरणा और शक्ति उन्हीं की है।" यह कह कर उन्होंने प्रणाम किया।

"भारत सीमा में तिब्बतेश्वर को पहुँचने के लिए लगभग दो सप्ताह तक का समय चाहिए।"

"जब तक वे भारत सीमा में सकुशल नहीं पहुँच जायंगे, तब तक इसी प्रकार आकाश मेघाच्छन्न रहेगा।"

"क्या मेघों के नीचे उनके वायुयान नहीं उड़ सकते ?"

"उड़ सकते हैं, किन्तु वे पर्वतों के शिखरों से टकराकर चूर-चूर हो जायंगे। स्वरक्षा की भावना उन्हें ऐसा करने से रोकेगी।"

"क्या वे अपनी दूरबीनों के प्रयोग से उनकी गति-विधि का पता नहीं लगा लेंगे ?"

"मानव-रचित यन्त्र प्राकृतिक शक्तियों के सम्मुख निस्तेज, निष्क्रिय हो जाते हैं। उन्हें धूम के अतिरिक्त पृथ्वी तल की कोई वस्तु नहीं दिखाई देगी।"

मासपा ने भूनत होकर कृतज्ञता सहित बासबा के चरण स्पर्श करते हुए कहा—"रिमपोचे, आप भगवान अमिताभ के अवतार से किसी प्रकार कम नहीं हैं, जो प्रकृति को अपनी इच्छानुसार संचालित कर सकते हैं।"

"मासपा, मेरी तुलना भगवान अमिताभ से करने का पाप मत करो। योगशक्ति उन्हीं को प्राप्त होती है जिन पर प्रभु कृपा करते हैं। प्रभु ने यह शक्ति मुझे इसीलिए प्रदान की, क्योंकि उनको तिब्बतेश्वर की रक्षा करना अभीष्ट था। बिना उनकी इच्छा के प्राकृतिक तत्वों के संचालन की बात तो बहुत दूर है, वृक्ष का एक पत्ता भी नहीं हिलाया जा सकता। मनुष्य की अपनी शक्ति अत्यन्त सीमित और नगण्य है। केवल उसके भरण-पोषण के लिए जितनी शक्ति चाहिए, उतनी ही उसको प्राप्त है।"

"किन्तु बिभिन्न प्रकार के आविष्कार मनुष्य के द्वारा हो रहे हैं ?"

"जब तक उन आविष्कारों का सम्बन्ध उसके भरण-पोषण तक सीमित

रहता है, तब तक वे सुखकर और उपादेय हैं, और जहाँ उन्होंने उस परिधि का उल्लंघन किया, वे उसके संहार के साधन बन जाते हैं। प्रकृति के साथ सह-यात्रा मानव जीवन को सुखी और सम्पन्न बनाती है, उसके विरुद्धाचरण से वह घातक हो जाती है ।"

इसी समय जोरवांग मन्दिर में विस्फोट हुआ, और भयंकर रव दिशाओं में व्याप्त हो गया। विस्फोट का धक्का वहाँ तक पहुँचा, और वे दोनों भूमि पर लुढ़क गये। मेघाच्छन्न आकाश में अग्नि-प्रकाश की लौ इतनी ऊँची उठी, जिससे दिशायें लाल वर्ण से रंग गईं। आकाश के बादल तक रक्ताभ हो गए। विस्फोट की प्रतिध्वनि पहाड़ों से टकरा कर पुनः आकाश और पृथ्वी को कम्पायमान करने लगी। शिलाओं के छोटे-छोटे खण्ड उड़कर बासबा और मासपा के चारों ओर बिखर गये। कन्दरा में बैठे होने के कारण वे दोनों उनके आघातों से बच गए, किन्तु थोड़ी दूर पर नाकाबन्दी किए चीनी सैनिक बुरी तरह आहत हुए। उस आघात से अनेक के सिर फट गए, किसी का हाथ टूट गया, और किसी का पैर। अछूता कोई नहीं बचा। सर्वत्र त्राहि-त्राहि का चीत्कार उठने लगा। कितने ही चीनी बौद्ध सैनिकों ने उसे दैवी प्रकोप समझकर तिब्बतेश्वर को संत्रस्त करने का प्रतिफल अनुमान किया। वे सभी सैनिक अनुशासन की परवा न कर भूनत हो "नारबुलिंगका" की दिशा में प्रणाम करने लगे।

बासबा और मासपा एक दूसरे से प्रश्न करने लगे।

बासबा ने कहा—"यह तो मन्दिर का विस्फोट मालूम होता है। अभी तुमने वर्तिका में तो अग्नि स्पर्श नहीं कराया, फिर विस्फोट कैसे हुआ ?"

"यही तो मैं भी सोच रहा हूँ। यशोधर और डोरजो के निकल आने पर अग्नि स्पर्श कराने का आदेश आपने दिया था।"

"किन्तु उनके आने के पहले ही विस्फोट कैसे हो गया।"

"सम्भव है उनकी मोमबत्ती असावधानता से उसी वर्तिका पर गिर पड़ी हो, अथवा और कोई दुर्घटना हुई हो।"

"मन्दिर के विस्फोट से इस पर्वत को कोई हानि नहीं पहुँचेगी, इससे सुरंग भी सुरक्षित रहेगी, क्योंकि वह इस पर्वत को काट कर बनाई गई है, परन्तु

धमाका अवश्य पहुँचेगा। उससे वे भयभीत हो सकते हैं।"

"यदि आज्ञा हो तो जाकर देख आऊँ और उनको लिवा लाऊँ।"

"ऐसी अवस्था में जाना ही पड़ेगा।"

मासपा ने आदेश पाकर तुरंत बुद्ध-मन्दिर में प्रवेश कर सुरंग का प्रवेश द्वार खोला, और नीचे उतर गए। उनको प्रकाश की कोई आवश्यकता नहीं थी। पैरों से टटोल कर उन्होंने वर्तिका ढूँढ़ने का प्रयत्न किया, किन्तु वह जल गई थी। बारूद का धूम सुरंग में भरा हुआ था। मासपा खांसते हुए त्वरित पदों से आगे बढ़ते गए। मार्ग में उन्हें कहीं कोई न मिला। जब वे यशोधर की कोठरी के सामने पहुँचे, तब ध्वस्त दीवारों से प्रकाश छन-छन कर आ रहा था, और पास ही यशोधर अचेत खड़ा था। मासपा धड़कते हुए हृदय से उसकी नाड़ी-परीक्षा करने लगे। जब उसे चलते हुए पाया, तब उन्हें परम सन्तोष हुआ। वे उसको चैतन्य करने के प्रयत्न में अपने उत्तरीय से हवा करने लगे। थोड़ी देर के प्रयत्न से उसे होश आ गया। उसने नेत्र खोल कर चारों ओर देखा, फिर मासपा को पहचान कर संभ्रम उठने का प्रयत्न करने लगा।

मासपा ने सस्नेह उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"क्यों अब कैसी तबियत है?"

"बिल्कुल ठीक हूँ। आप कैसे आये?"

"जब तुमको आने में देर हुई, और विस्फोट हो गया, तब यह देखने के लिए कि तुम सुरक्षित हो या नहीं आया हूँ। सुरक्षित होने की दशा में तुमको और डोर जी को अपने साथ ले जाना चाहता हूँ। डोरजी कहाँ हैं?"

यशोधर ने सविस्तार हाल वर्णन करने के पश्चात् कहा—"पता नहीं डोरजी जीवित है या मर गया?"

"तो उसको देखा जावे। संभव है कि अभी प्राण शेष हों।"

"किन्तु देव, वह पुरुष वेष में नारी थी। कांग की बातचीत से तो यही मालूम हुआ।"

"पुरुष वेष में वह नारी थी?" संत्रस्त स्वर में उन्होंने पूछा।

"हाँ गुरुदेव हम सब लोगों को उसने भ्रम में रखा। चीनी शिविर में जिस सेनापति से मेरा आलाप हुआ था, उसका नाम कांग था। ऐसा मालूम होता है कि कांग उसको पहले से जानता था। उसने शायद उसको गुप्तचर के रूप में भारत भेजा था। वहाँ उसका सम्पर्क मेरे बड़े भाई विनोद से हुआ, जो कांग की इच्छा के प्रतिकूल था। कांग ने उसे वहीं कैद कर रखा था, वहां से वह किसी गुप्त मार्ग द्वारा निकल भागी और पुरुष के छद्म वेष में हम लोगों के साथ चली आई।"

"किन्तु वह नागार्जुन के मारफत आई थी, इसलिए उनको उसका भेद अवश्य ज्ञात रहा होगा। उन्होंने तुम्हारी भाँति उसकी भी सिफारिश की थी।"

'संभव है कि उन्होंने भी धोखा खाया हो, जिस प्रकार हम सब ठगे गए हैं।"

"हो सकता है, किन्तु विश्वास नहीं होता। उन्होंने कहा था कि वह भूटान का निवासी है, जिसके माता-पिता का देहान्त बचपन में हो जाने से, उसका पालन-पोषण वहाँ के किसी बौद्ध मन्दिर में हुआ है। यह उन्होंने जान-बूझ कर मिथ्या भाषण किया है।"

"अब हम लोग भारत चल ही रहे हैं, इसका निर्णय वहाँ हो जायगा।"

"यदि उन्होंने धोखा दिया है, तो अपराध अमार्जनीय है। हम लोगों के संस्थानों में नारियों का आगमन निषिद्ध है। हमें इसके लिए कठोर प्रायश्चित करना पड़ेगा।"

"चलिए उसको देख लिया जाय कि वह अभी जीवित है या मर गई।"

"देखने में क्या लाभ ! वह अवश्य मर गई होगी। उसकी प्रवञ्चना का फल उसे अवश्य मिला होगा।"

"यदि आज्ञा मिले तो मैं ही जाकर देख आऊँ।"

"ब्रह्मचारी होने से तुम्हारा जाना भी निषिद्ध है।"

"गुरुदेव मृत होने पर पुरुष तथा नारी का भेद मिट जाता है। उसके पास मेरी कुछ वस्तुयें हैं, उनको लेना आवश्यक है।"

"तब जाओ, ले आओ, किन्तु नारी स्पर्श के पाप का तुम्हें प्रायश्चित करना पड़ेगा।"

"जो विधान आप बतायेंगे वह करूँगा।"

मासपा नहीं गए। सुरंग का द्वार नष्ट होने से बच गया था। वह उसी प्रकार से उन्मुक्त था। उसने चिन की कोठरी में प्रवेश कर देखा कि एक बड़े शिलाखण्ड के नीचे उसका सिरो भाग चकनाचूर हो गया है। कांग और दूसरे चीनी सैनिक भी शिलाखण्डों के नीचे दबे पड़े थे। यशोधर ने बड़े संकोच के साथ उसका चोंगा अलग किया। नारी अंग प्रयत्क्ष हो गए। वह नेत्र बन्द किए हुए उसके वस्त्र को टटोलने लगा। उसकी जेब में ध्वनि प्रेषक और ग्राहक यंत्र मिले अवश्य, किन्तु वह भी टूट-फूट गये थे। मालूम होता था कि कोई शिलाखण्ड उस स्थान पर भी गिरा था, जहाँ वे छिपाये गये थे। चीनी अधिकारियों के जो पत्र उसके पिता ने दिए थे, वे वैसे हो कपड़े में लिपटे हुए थे। उनका कुछ बिगाड़ नहीं हुआ था, तमगा अवश्य बदशक्ल हो गया था। केवल पत्रों को लेकर शेष वस्तुयें वहीं छोड़ दी, किन्तु तत्क्षण उसके मन में विचार आया कि इनको मासपा को दिखाना अनुचित है। उसने उनके टुकड़े-टुकड़े कर वहीं बिखेर दिये। अन्तिम दृष्टि चिन के शव पर डाल कर वह मासपा के पास लौट आया।

मासपा ने पूछा—"ले आये?"

"वे लाने योग्य नहीं रहीं, सब टूट-फूट गई हैं। डोर जी का मुख बिल्कुल कुचल गया है, पहचाना भी नहीं जाता।"

'जिस मुख से उसने इतना बड़ा असत्य भाषण किया, उसका यही परिणाम है। चलो शीघ्रता से हम लोग निकल चलें। गुरुदेव सुरंग के बाहर प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"सुरंग का द्वार तो बन्द कर दूं!"

"कर सकते हो, किन्तु उसकी कोई आवश्यकता नहीं। मन्दिर नष्ट हो गया।" कहते-कहते उनके मुख से एक दीर्घ निःश्वास निकल गया।

यशोधर सुरंग का द्वार भीतर से बन्द कर मासपा के पीछे-पीछे चल

कर दूसरे द्वार पर आया । यहाँ पहुँचकर मासपा ने कहा—"वत्स,आज मुझ को भी गुरू से छल करना पड़ेगा । यदि उन्हें कह दिया जायगा कि डोर जी पुरुष के छद्म वेष में नारी थी, तब इसका घातक प्रभाव उन पर पड़ेगा । संभव है प्रायश्चित रूप में वे शरीर त्याग कर दें, इसलिए इस भेद को हम लोग अपने तक ही सीमित रखेंगे । केवल उसकी मृत्यु की सूचना देना, मैं मौन रहूँगा।"

यशोधर ने शिरनत कर स्वीकार किया । वे दोनों द्वार खोल कर बाहर आये तथा उसे बंद कर बासबा के सामने उपस्थित हुए । यशोधर ने डोर जी के चीनियों द्वारा पकड़े जाने, तथा विस्फोट द्वारा उसके मरने की सूचनायें दी। बासबा ने कोई विशेष पूछ-ताछ नहीं की । 'ऊँ मणे पद्मे हुं' कह कर वे उठ खड़े हुए, और त्वरित पदों से भारत सीमा की ओर रवाना हो गये ।

२१

मणिमाला बड़ी व्यग्रता से ली का मृत्यु -वक्तव्य, जो उसने मरने के कुछ देर पहले मेजिस्ट्रेट के समक्ष दिया था, पढ़ने लगी । उसका आशय इस प्रकार था।

"मेरा नाम ली–सूँग है, नहीं जानती कि यह माता-पिता का दिया नाम है अथवा वृहत्तर चीन संघ के संचालकों का । मेरे माता-पिता कौन थे, उनका क्या नाम था, नहीं जानती । उनको देखने की धूमिल याद भी नहीं है। मेरा पालन-पोषण चीन के शंघाई नगर से बीस-पच्चीस मील दूर बाँग गांव के सरकारी अनाथालय में हुआ था । उस अनाथालय के अधिकारियों से ज्ञात हुआ था कि मेरे पिता चांगकाई शेक के समर्थकों में थे । चीन की लाल क्रांति के अवसर पर उन्होंने उनकी ओर से युद्ध किया था, और पराजित होने पर

वह सपरिवार मार डाले गये। चूँकि उस समय मेरी अल्पावस्था थी, इसलिए मुझे छोड़ दिया और सरकारी अनाथालय में भरती करा दिया। अनाथालय के कर्मचारी बड़े निर्दयी स्वभाव के थे और कठोर अनुशासन रखते थे। उनसे सभी बच्चे भयभीत रहते थे। वे उनकी आज्ञाओं का पालन करते हुए भी मार-पीट से बचते न थे।

अनाथालय में प्रविष्ट होने के बाद मैं बहुत दिनों तक बीमार रही। मेरी कोई देख-भाल भी नहीं करता था, किन्तु न-मालूम क्यों मरी नहीं। वहाँ एक बुढ़िया चांगविन नाम की कुछ दयालु स्वभाव की थी ; इसलिए कि वह किसान घराने की थी, तथा उसका पुत्र लाल सेना में लड़ते हुए मारा गया था। वह मुझे अवश्य प्यार करती थी। वह अन्य अधिकारियों के सामने बड़ी कठोरता का व्यवहार करती, एकान्त में वह अपना स्नेह मुझ पर उड़ेलती थी, इससे मेरा लगाव उसके प्रति बढ़ता गया। वह मुझे सिखाती थी कि अधिकारियों के समक्ष में कभी भूल कर उसका स्नेह प्रदर्शन न करूँ, नही तो वे उसको कहीं अन्यत्र स्थानान्तरित कर देंगे। मैं उसको खोने के लिये तैयार न थी, इसलिए किसी से कुछ नहीं कहती थी। अपनी भावनायें और अपने विचार अपने ही तक सीमित रखने की आदत पड़ गई थी।

कुछ दिनों बाद मेरी शिक्षा शुरू हुई। चीनी भाषा पढ़ाने के साथ मुझे व्यायाम भी सिखाया जाने लगा। चीनी भाषा की पढ़ाई समाप्त होने पर मुझे विदेशी भाषायें भी सिखाई जाने लगी, जिनमें जापानी, हिन्दी और अंग्रेजी मुख्य थी। इसके अतिरिक्त मुझे तैरना घुड़सवारी, दौड़ना छुरे चलाना, बन्दूक से निशाना लगाने का भी अभ्यास कराया जाता था। यह शिक्षाक्रम मेरी सोलह वर्ष की अवस्था तक चलता रहा। इसी बीच मेरी एक मात्र आधार बुड़िया चांगविन का देहान्त हो गया। उसकी मृत्यु का प्रभाव मेरे ऊपर बहुत पड़ा, जिसे अधिकारियों ने भी लक्ष्य किया। उन्होंने मुझे पहले शंघाई भेजा, फिर वहाँ से कैन्टन। कैन्टन में मुझे एक भारतीय परिवार के साथ रहना पड़ा, जहाँ मैं उनकी सेवा-टहल करती थी, और भारतीय आचार विचार का अध्ययन करती थी। उस परिवार के साथ रहने से मुझे अच्छी

तरह हिन्दी बोलने का अभ्यास हो गया। कुछ महीनों पश्चात् वहां से मुझे चुङ्ग-किग भेजा गया।

चुंगकिग में मेरी भांति मेरी समवयस्क कई युवतियां आई थीं। उनमें से अधिकांश भारत की विभिन्न प्रांतीय भाषायें जानती और बोलती थी। हम लोगों को एक दूसरे से परिचित होने का अवसर दिया गया। वहाँ मालूम हुआ कि हम सबको भारत जाना है, और वहाँ के चीनी-परिवारों के साथ मिल कर उनके सम्बन्धियों के रूप में रहना है। यहां हमें यह भी बताया गया कि हमें अपने देश चीन की सेवा के लिये विशेष काम सम्पादित करना है। उन्होंने बताया कि हमें भारतीयों के साथ घनिष्टता बढ़ाकर उनके मस्तिष्क में चीन के प्रति अनुराग उत्पन्न करना है। घनिष्टता बढ़ाने का उपाय बताया गया, भारतीय नवयुवकों से प्रेम सम्बन्ध स्थापित करना तथा अन्य प्रलोभनों से उनकी विचार धारा को भारत-विरोधी बनाना। इसलिए हमको चतुर नारियों के द्वारा प्रेम के विविध अभिनय सिखाये गए, जैसे रोना, हँसना कटाक्ष करना, मुस्कराना, कोप करना, पुलकित होना आदि। हमें अपनी इन्द्रियों के दमन करने का भी अभ्यास कराया गया। गान तथा नृत्य की भी शिक्षा दी गई। जब हम इस कला में निष्णात हो गईं, तब वृहत्तर चीन संघ के तीन प्रमुख सदस्यों की समिति के समक्ष हमें उपस्थित किया गया, जिन्होंने हमारी परीक्षायें लीं, तथा उत्तीर्ण होने पर हमें भारत के विविध नगरों में चीनी परिवारों के साथ रहने के लिये भेज दिया। मेरा कार्यक्षेत्र काशी स्थिर हुआ और चाउ-चिन की पुत्री के रूप में मेरे रहने का प्रबन्ध किया गया।

इसी प्रसंग में वृहत्तर चीन संघ का कुछ परिचय देना असंगत न होगा। लालक्रांति के पश्चात् कुछ दूर दृष्टा चीनी राजनीतिज्ञों ने अमरीका की क्यू-क्लक्स-क्लैन के आधार पर विशिष्ट प्रभावशाली व्यक्तियों की एक समिति बनाई। क्यू-क्लैक्स-क्लैन की स्थापना दक्षिणी संयुक्त राज्य अमरीका के गोरे निवासियों ने काले नीग्रो लोगों को देश से निर्वासित करने तथा उनके साथ कोई सामाजिक सम्बन्ध न रखने के उद्देश्य से की थी। वृहत्तर चीन संघ

का उद्देश्य एक विशाल पैमाने पर था। वह श्वेतांगों को भारत, इन्डोनेशिया के द्वीप समूह, आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अमरीका से निकाल कर उनमें चीनियों को बसाना चाहता था। चीन की आबादी दिन प्रतिदिन बढ़ रही थी, और अकेले चीन देश में सब का गुजारा नहीं हो सकता था। भारत को छोड़कर अन्य प्रदेशों की आबादी बहुत कम और वहां भूमि के बड़े-बड़े खंड अछूते पड़े हैं, जिन पर न खेती होती है, और न कोई अन्य उत्पादन। ये क्षेत्र मुट्ठी भर श्वेतांगों के अधिकार में हैं, और वे किसी अन्य एशिया वासी को इनमें प्रवेश नहीं करने देते। जो थोड़े बहुत चीनी वहाँ वाणिज्य-व्यवसाय करते हुए रहने लगे हैं, उनके निकालने की भी चेष्टाएँ हो रही हैं। एशिया से सम्बन्धित प्रदेशों का सुदूर निवासी योरोपियनो का अधिकार उन्हें असह्य हो रहा है। भारत के उत्तरी प्रदेशों को वे इसलिए अपने अधीन करना चाहते हैं, ताकि भारतीय महासागर पर उनका आधिपत्य स्थापित हो सके। किन्तु भारत एक सशक्त राष्ट्र है, उसकी जनसंख्या भी उसके समतुल्य यदि नहीं, तो कुछ ही थोड़ी है, इसलिये वे उससे लड़कर अपनी शक्ति क्षीण करना नहीं चाहते थे। परन्तु बंगाल की खाड़ी में विकास पाने के लिये उनको कुछ भूमिखन्ड भूटान से समुद्र तक अवश्य चाहिए था, इसलिये उन्होंने एक ऐसी योजना बनाई, जिसमें सांप भी मरजाय और लाठी भी न टूटे।

उनके सामने धर्म के आधार पर भारत-विभाजन का एक ताजा उदाहरण था। वे सोचने लगे कि धर्म को आधार बनाकर भारत का पुनः विभाजन कराने की योजना बनानी चाहिए। चीन के कम्युनिस्ट राष्ट्र हो जाने से उसका कोई राजकीय धर्म नहीं था, किन्तु तिब्बत बौद्ध धर्मानुयायी था, और भारत में भी बौद्धों की संख्या काफी है, तथा बौद्ध तीर्थ, और उसके पूज्य स्थान भारत में हैं। एतएव यदि चीन तिब्बत पर अपना अधिकार करले, तो उसके धर्म का संरक्षकत्व स्वतः उसे प्राप्त हो जाता है और वह उस आधार पर भारत से उस प्रदेश की मांग कर सकता है, जहाँ बौद्धों के तीर्थ हैं। ये बौद्ध तीर्थ हैं–सारनाथ, कपिलवस्तु, राजगृही, गया आदि, अर्थात् वर्तमान उत्तर प्रदेश का पूर्वीय अंचल और बिहार राज्य बौद्धों का प्रदेश घोषित किया जा सकता है।

यदि वे दोनों प्रदेश समूचे न मिल सकें, तो कम से कम सौ दो सौ मील चौड़ा गलियारा ही मिल जाय, जिसमें ये सब तीर्थ आ जावें। गलियारा मिलने से भी चीन का उद्देश्य सिद्ध हो जाता है, और उसको बंगाल की खाड़ी में निकास मिल जाता है। इन्हीं सब उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिये एक संगठित योजना बनाई गई, और उसका प्रारम्भिक कार्य सम्पादन करने का भार हमें सौंपा गया।

इसी उद्देश्य से चीन ने भारत के साथ मैत्री की और बांडुंग, सम्मेलन में भाग लिया, पंचशील के सिद्धांत अपनाए और भारत-चीन मैत्री संघों की स्थापना कराई तथा कालान्तर में चीनी-भारतीय शिष्ट-मंडलों का आवागमन भी होने लगा, और दोनों देशों की संस्कृति के उत्थान के लिए लोक गीत तथा नृत्यों का पारस्परिक प्रदर्शन भी आरम्भ हुआ। चीनी गुप्तचर इन शिष्ट-मंडलों के सदस्यरूप में आकर बसने लगे, और सर्वत्र उनका एक सुदृढ़ संगठन बन गया।

इस योजना की आड़ में एक बहुत बड़ा प्रपंच छिपा हुआ था। चीनी गुप्तचर जिनमें नारियाँ भी पर्याप्त संख्या में थी, भारतीयों के साथ बेतकल्लुफी के साथ मिलते-जुलते, और उनके मन में चीन के कारनामों का विशद वर्णन कर उसके प्रति भक्ति तथा आसक्ति उत्पन्न करते थे। चीनी नारियाँ उन्हें अपने मोहजाल में फंसाकर उन्हें पंचमांगी बनाती थी, और जिनको आर्थिक कष्ट था, उनकी आर्थिक सहायता करती थीं। इन पंचमांगियों द्वारा भारत में ऐसा जनमत बनाना अभीष्ट था, जो चीन की मांग—बुद्धस्तान अथवा तिब्बत की सीमा समुद्र-तट तक बढ़ाने का समर्थन करे, और पाकिस्तान के उदाहरण पर बौद्ध धर्म के लिए देश के विभाजन का औचित्य प्रमाणित करे। इस योजना के अन्तर्गत यह भी था कि भारतीय संसद् में चीन समर्थकों को इतनी संख्या में भेजा जाय जो वहाँ यदि बहुमत न बना सकें, तो भी इतना प्रबल अल्प मत बनावें, जिसकी माँग 'अल्प संख्यकों के अनुसार ठुकराई न जा सके। भारत धर्म-सापेक्ष देश है। "बौद्धधर्म खतरे में" का नारा जहाँ बुलन्द किया गया, समस्त बौद्ध उसका पक्ष लेंगे, तब थोड़े

ही प्रयत्न से चीन का उद्देश्य पूरा हो जायगा, तथा पाकिस्तान की भांति बुद्धस्तान भी बन जायगा।

दैवयोग से इसी अवसर पर भगवान बुद्ध की ढाई हजारवीं जयन्ती का समारोह भारत में आयोजित हुआ। चीन ने इससे पूरा-पूरा लाभ उठाने की योजना बनाई। भारतीयों को आकंपित करने के लिए अनेक चीनी नवयुवकों और चीनी नवयुवतियों को बौद्ध धर्म में दीक्षित करा कर उन्हे छद्म-भिक्षुणी बनवाया। उनके वेष भिक्षुणी के थे, परन्तु उनके कर्म गुप्तचरों के थे। वे नवयुवकों को अपने जाल में फाँस कर अफीम मिश्रित औषधियाँ सेवन कराकर उनकी विचार तथा कर्त्तव्य शक्ति को लुप्त करने लगीं। इसी प्रकार हमारी एक सखी चिन-चुन ने काशी के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी अविनाश बाबू के पुत्र विनोद को वशीभूत किया, तथा उसने चीन के प्रति निष्ठा उत्पन्न की। विनोद बाबू प्रेम में इतने विभोर हो गये कि वह चिन के साथ एक मकान में पृथक रहने लगे; किन्तु इसी समय हमारे वृहत्तर चीन संघ का उप-सभापति कांग-कुँग भारत आया, और चिन से उसका कुछ विवाद हो गया, जिससे या तो उसने उसको मरवा दिया, अथवा वह उसके भय से कहीं ऐसी गुम हो गई, जिसका पता अभी तक नहीं चला। कांग जाते समय काशी शाखा के संचालन का भार अपने विश्वस्त नौकर को-सिन को दे गया था। उसकी कुदृष्टि मेरे ऊपर हुई, और वह मुझे तंग करने लगा। मैंने यह बात अपने साथियों से बताई। उन्होंने मुझे सतर्क रहने का उपदेश दिया, तथा छुरेबाजी और पिस्तौल चलाने का अभ्यास जो छूट गया था वे पुन: कराने लगे। दैवयोग से इनके अभ्यास से ही मेरी इज्जत-आबरू उस दिन बची। उसी दिन विनोद बाबू मेरे घर के सामने से गुजर रहे थे। चिन के अदृश्य हो जाने पर उनको फँसाये रखने का भार मुझे सौंपा गया था। किन्तु मेरा मन छल करने की गवाही नहीं देता था। वस्तुत: मैं भी उनसे प्रेम करने लगी थी। छल-कपट का आचरण करना मुझे नहीं सुहाता था, किन्तु विनोद बाबू मुझसे प्रेम नहीं करते थे। उनके मन में चिन अब भी बसी हुई थी, इसलिए मेरे अनेक प्रयत्नों के बावजूद वह मेरी ओर

आकर्षित नहीं हुए। मैं उसके सामने अपना दिल खोलना चाहती थी, परन्तु कोई अवसर नहीं मिलता था। वे पार्टी के काम में तन-मन से जुटे हुए थे। उस दिन अनायास उनको घर के सामने देख कर मैं अपनी इच्छा का दमन न कर सकी और उनको ऊपर आने का संकेत किया। वह ऊपर तो नहीं आये किन्तु चाऊ की जूतों की दूकान में चले गए। मैं नीचे जाकर ऊपर ले आई। चाऊ की दूकान में को-सिन के गुप्तचर काम करते थे, उनमें से किसी ने जाकर को-सिन को सूचना दी। जब मैं विनोद बाबू से बातें कर रही थी, तभी यकायक को-सिन आ गया। वह विनोद बाबू को वहां से जाने का आदेश देकर मेरी इज्जत-आबरू लेने पर उतारू हो गया। मैंने रिवाल्वर निकाल कर उसको धमकाते हुए कमरे के बाहर निकलने का आदेश दिया। वह पिस्तौल के भय से पीछे अवश्य हटा, किन्तु दरवाजे पर पहुँचकर उसने मेरे, ऊपर छुरा फेंक कर वार किया को-सिन पक्का छुरे-बाज था। उसका निशाना मेरे पेट पर लगा। मैं भी उस पर रिवाल्वर की गोलियाँ चलाती गई, जब तक मुझे होश रहा। मैं नहीं जानती कि विनोद बाबू को मेरे रिवाल्वर की गोली कैसे लगी। संभव है कि वह गए न हों, और जीने पर खड़े होकर हमारा वाद-विवाद सुनते रहे हों, को-सिन से मेरी रक्षा करने के लिए ऊपर चढ़ आये हों, और कोई गोली उनके लग गई हो। अपने रिवाल्वर की गोली से विनोद बाबू को आहत करने का मुझे आन्तरिक दुख है। भाग्य से गोली किसी घातक स्थान में नहीं लगी, इसलिए अपने प्रियतम की हत्या के अपराध से मैं बाल-बाल बच गई। आशा है कि वे मुझे मृत जानकर मेरे इस अपराध की मार्जना के लिए क्षमा प्रदान करेंगे। को-सिन के मारे जाने से मुझे कोई दुख नहीं हुआ, बल्कि मेरे इस कार्य से अनेक कुमारियों की रक्षा हो गई।

मैंने यह वक्तव्य अपने पूर्ण होश-हवास में तथा स्वेच्छा से दिया है, जिसमें उल्लिखित घटनायें बिल्कुल सत्य हैं।

निशान अँगूठा—ली-सूंग, गुप्तचर वृहत्तर चीन संघ की शाखा काशी।

इसके पश्चात् मैजिस्ट्रेट की तसदीक और उसके हस्ताक्षर थे।

मणिमाला ने वक्तव्य पढ़कर एक दीर्घ नि:श्वाश के साथ स्वगत कहा—"उफ इतना बड़ा षड़यन्त्र ! भगवान की कृपा से ही यह भेद खुल गया, नहीं तो भारत को अनेक कठिनाइयों से मुकाबला करना पड़ता। बाहर के दुश्मनों से बचा जा सकता है, परन्तु आस्तीन के सांपों से कैसे बचा जाता ? विनोद भी इस षड़यन्त्र का शिकार बन गया था, और यशोधर तो चीनियों के गढ़ में है। भगवान उसकी रक्षा करें। मैंने उसको तिब्बत भेजकर जीवन में सबसे बड़ी मूर्खता की है। अब उसकी किस प्रकार रक्षा की जाय।" सोचते-सोचते उनकी आंखों से अजस्त्र अश्रु-धार बहने लगी।

२२

करवट बदलते हुए विनोद के मुख से एक हलकी कराह निकल गई। पास में बैठी परिचारिका ने मृदु स्वर में कहा—"जब आप को करवट बदलना होता है, तब आप मुझ से क्यों नहीं कहते ?"

विनोद ने कोई उत्तर नहीं दिया। नर्स धीरे-धीरे उसके शिर पर हाथ फेर कर सान्त्वना देने लगी। विनोद अपने विचारों में निमग्न हो गया।

अस्पताल के प्राइवेट वार्ड में विनोद की चिकित्सा का प्रबन्ध किया गया था। ली की गोली से आहत होने के पश्चात् पुलिस ने उसको अस्पताल भेज-कर अविनाश बाबू को सूचना दी थी। कम्युनिस्ट पार्टी का मन्त्री होने के नाते उसे प्राय: सभी पुलिस अधिकारी जानते-पहचानते थे। उन्हें यह भी मालूम था कि उसकी मां उप-गृहमन्त्राणी है, अतएव पुलिस के सभी अधिकारी अपना अपना कर्त्तव्य पालन करने के प्रति जागरूक और सतर्क थे। अस्पताल के डाक्टरगण भी उसी प्रकार सचेष्ट थे, और आवश्यकता से अधिक कार्य-तत्परता दिखला रहे थे। उसी दिन शाम को उसके स्कन्ध का आपरेशन किया गया,

और गोली निकाली गई, किन्तु उसने बाहुमूल की हड्डी को तोड़ दिया था। हड्डी बैठाकर यथोचित चिकित्सा होने लगी।

चेतना आने पर उसका सर्व–प्रथम प्रश्न था कि ली बच गई है या नहीं, किन्तु डाक्टरों के आदेशानुसार उसे कोई उत्तर नहीं मिला। अविनाश बाबू और मणिमाला दिल्ली से श्याम सुन्दर तथा पुलिस का तार पाकर दूसरे दिन सवेरे वायुयान से आए, और सीधे अस्पताल जाकर उन्होंने प्रधान चिकित्सक से भेंट की। वह उन्हें आश्वासन देकर विनोद के पास ले गया, जो उस समय होश में थे ।

मणिमाला ने अश्रुपूरित नेत्रों के साथ पूछा–"विनोद, अब कैसी तबियत है। दर्द कैसा है ?"

विनोद ने हाथ जोड़कर माता-पिता को नमस्कार किया, और मीठी मुस्कान सहित कहा–"अब तो बिल्कुल अच्छा हूँ। मामूली दर्द है।"

मणिमाला को पुलिस–रिपोर्ट मिल चुकी थी। उसने घटना के सम्बन्ध में कोई प्रश्न नहीं किया।

विनोद ने अविनाश बाबू से कहा–"बाबू जी, आज आप पार्टी के कार्यालय चले जाइयेगा। कई आवश्यक मामलों पर आज निर्णय लेना होगा।"

अविनाश बाबू ने कहा—"तुम उसकी चिन्ता न करो।"

विनोद कुछ देर मौन रहने के बाद बोला—"चीन के सम्बन्ध में कुछ भयानक समाचार मिले हैं। पार्टी की पालिसी निश्चित करना है।"

मणिमाला ने हस्तक्षेप करते हुए कहा—"मुझे कुछ ऐसे समाचार मिले हैं, जिनसे प्रकट होता है कि चीन कोई गहरा षड़यन्त्र कर रहा है। उसने भारत की सीमा तक पक्के मार्ग बनाए हैं और चीनी धीरे-धीरे भारत की ओर बढ़ रहे हैं। अतएव हमें चीन से सतर्क रहना है।"

"हाँ, इसी प्रकार के समाचार कलिम्पोंग से आए हैं, इसीलिए तो उन पर विचार करने के लिए मैंने कार्यकारिणी की बैठक बुलाई थी।"

"तुम इन चिन्ताओं को छोड़ो, पहले स्वस्थ हो, फिर राजनीति सोचना।"

इसी समय सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस ने कमरे में प्रवेश किया, और अभिवादन

कर ली का मृत्यु-वक्तव्य मणिमाला को देते हुये कहा–"कृपा कर सबसे पहले इस पर ध्यान दीजिए। यह देश रक्षा से सीधा सम्बन्ध रखता है।"

मणिमाला ने ली का मृत्यु वक्तव्य लेकर अपने थैले में रख लिया, और कहा–"आप तीसरे पहर आइयेगा, तब तक मैं इसे पढ़ लूँगी।"

विनोद ने पूछा—"क्या है माँ ?"

पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने मणिमाला को उसके विषय में कुछ न कहने का संकेत किया, और स्वयं उत्तर दिया—"घटना की विस्तृत रिपोर्ट है, आप से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।"

विनोद ने पूछा—"ली-सूँग को मैंने घायल होते देखा था, वह जीवित है!"

"उसकी चिकित्सा हो रही है।"

"क्या आप मेरा बयान नहीं लेंगे ?"

"आपके स्वस्थ होने पर आपका बयान लिया जायगा, अभी हम दूसरे मामले की जांच कर रहे हैं।"

"क्या वह चीनी मर गया, जिसने ली पर वार किया था ? मैंने उसे छुरा चलाते देखा था।"

"आप धैर्य रखिए कोई जल्दी नहीं हैं।"

"मैं बयान देने के लिए समर्थ हूँ। आपने बताया नहीं कि क्या वह आक्रामक चीनी मर गया, अथवा उसकी भी चिकित्सा हो रही है ?"

"वह मर गया है।"

विनोद ने निश्चिन्तता की साँस ली।

डाक्टर ने मणिमाला से कहा—"विनोद बाबू अब बिल्कुल निरापद हैं, आप जा सकती हैं। उनके स्वास्थ्य की सूचना मैं बराबर भेजता रहूँगा।"

मणिमाला ने विनोद के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"अब मैं जाकर गायत्री दीदी को भेजती हूँ, और तुम्हारे आहार का प्रबन्ध करती हूँ।"

"आप बुआ जी को क्यों तकलीफ दीजियेगा। यशो का कोई समाचार मिला है ?"

"उसका समाचार कई दिनों से नहीं मिला । उसके लिए भी चिन्तित हूँ ।"

अविनाश बाबू ने कहा—"आज रात्रि को उसका समाचार प्राप्त करने का प्रयत्न करूँगा । तुम उसके लिए चिन्तित न हो, जहाँ तक तक अनुमान है, वह स्वस्थ और ठीक है ।"

इसी समय चन्द्रकला ने व्यस्तता के साथ प्रवेश किया । वह कमरे को मनुष्यों से भरा पाकर वापस लौटने लगी ।

मणिमाला ने उसे रोकते हुए कहा—"क्यों वापस जा रही हो । विनोद को देखने आई थी क्या ? वह अब ठीक है ।"

चन्द्रकला ने अभी तक मणिमाला को घबड़ाहट के कारण नहीं पहचाना था । उसने उन्हें प्रणाम करते हुए कहा—"आप कब आईं ?"

"अभी आ रही हूँ । आप तो प्रसन्न हैं ? आप आज कल क्या कर रही है ?"

"आपकी कृपा से सब ठीक है । अभी अभी समाचार पत्र में मैंने इस हत्याकांड का समाचार पढ़ा । अपनी सखी ली-सूंग की गोली से विनोद बाबू के आहत होने का समाचार पढ़कर अवाक रह गई, और उनका स्वास्थ्य जानने के लिए भागी आ रही हूँ । कल संध्या को हीं ली से भेंट हुई थी, और उसके थोड़ी देर बाद हत्याकांड हो गया ।"

"ली ने विनोद को गोली नहीं मारी, वह आक्रामक चीनी पर अपने बचाव में गोली चला रही थी । इत्तिफाक से विनोद उसकी लपेट में आगया ।"

'सुना है कि ली भी उस आततायी के छुरे से घायल हो गई है ।"

"हां, यह सत्य है ।"

"क्या मैं उसे देख सकती हूँ ?"

डाक्टर ने हस्तक्षेप करते हुए कहा—"नहीं, पुलिस की आज्ञा नहीं है ।"

पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने कहा—"आप घटना घटित होने के पहले ली-सूंग से मिली थी ?"

"जी हां, मैं उसके घर के सामने से जा रही थी । वह छज्जे पर खड़ी

थी। उसने मुझे ऊपर बुलाया और हम लोग काफी देर तक बातें करती रहीं। मैं कुछ देर और बैठती, किन्तु सर्वोदय समाज की आवश्यक बैठक थी, इसलिए शीघ्र चली आई थी।"

"क्या आप संत विनोबा के सर्वोदय समाज में काम करती हैं?"

"जी हां, मैं उसकी एक सेविका हूँ, और काशी शाखा की संचालिका हूँ।"

"आप के बयान की आवश्यकता होगी। आप कहां मिलेंगी?"

"मैं स्थानीय महिला विद्यालय में संस्कृत भाषा की अध्यापिका हूँ। मेरा नाम चन्द्रकला है। मैं छात्रावास की अधीक्षिका भी हूँ।"

"आवश्यकता पड़ने पर मैं आप को कष्ट दूंगा।"

"अवश्य, जो कुछ जानती हूँ, बता दूँगी।"

"ली-सूंग को आप कबसे जानती हैं?"

"ली-सूंग और उसकी सखी चिनचुन मेरी छात्राएँ थीं लगभग तीन वर्ष पूर्व वे दोनों संस्कृत पढ़ने आती थीं।"

चिनचुन का नाम सुनकर विनोद सचेष्ट हुआ। उसके मुंदे नेत्र स्वतः खुल गए।

"वे स्कूल की छात्रा नहीं थीं?"

"एक प्रकार से थीं, और नहीं भी थीं।"

"दो विरोधी बातें कैसे एक साथ हो सकती हैं?"

"इस प्रकार कि वे विद्यालय को शुल्क देती थीं किन्तु पढ़ती थीं केवल संस्कृत तथा बौद्ध-ग्रन्थ। हिन्दी-चीनी-मैत्री-संघ' की सिफारिश से उन्हें विद्यालय में प्रविष्ट किया गया था, परन्तु इसके अतिरिक्त वे अन्य विषय नहीं पढ़ती थी।"

"विद्यालय में बिना भर्ती हुए भी वे अपनी निजी शिक्षिका नियुक्त कर सकती थी।"

"यह विद्यालय के नियमों के विपरीत था। विद्यालय की किसी शिक्षिका को प्राइवेट ट्यूशन वर्जित है।"

"आपने अभी कहा कि आप विनोद बाबू को देखने आई थीं, तो क्या आप विनोद बाबू को पहले से जानती हैं ?"

"हाँ उनसे कुछ थोड़ा सा परिचय है। एक बार वह मुझ से चिनचुन का हाल जानने के लिये मेरे विद्यालय भी गये थे।"

पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने हँसते हुए कहा—"शायद आप उस घटना का जिक्र करती है, जब आप की प्रधान अध्यापिका डाक्टर स्नेहलता ने फोन के बाद मेरे सहकारी मिस्टर गुप्त को बुलवाया था, और उन्होंने विनोद बाबू से परिचित न होने के कारण अभद्र व्यवहार किया था। मिस्टर गुप्त ने वह घटना मुझे बताई थी।"

"जी हाँ।"

'चिनचुन का कोई हाल मिला ?"

"जी नहीं, वह न-मालूम कहां अदृश्य हो गई।"

मणिमाला ने पूछा—"चिनचुन शायद वही चीनी लड़की है, जो यशोधर के साथ भिक्षु धर्म में दीक्षित हुई थी। वह अदृश्य कैसे हो गई ? संभव है कि किसी बौद्ध-बिहार में चली गई हो।"

"बौद्ध बिहार में जाती तो उसके साथियों को मालूम होता ? ली भी नहीं जानती थी कि वह कहाँ चली गई। उन सबका अनुमान है कि उसने गंगा में डूब कर आत्महत्या कर ली, अथवा किसी ने उसे मार कर उसकी लाश गायब कर दी।"

"भला उसको कौन मारेगा ?"

पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने कहा—"ये चीनी उतने निरीह नहीं हैं जितने ऊपर से दिखाई पड़ते हैं। ये लोग हत्या करने में बड़े सिद्धहस्त होते हैं। इनको छुरेबाजी के भयानक प्रयोग में विशेषज्ञ समझिये। इनके गढ़ में घुसना मौत को आमन्त्रित करना है। इनकी कुचालों से इन्हें कोई देश प्रश्रय नहीं देता। भारत ही एक ऐसा सीधा देश इन्हें मिला है, जहाँ ये स्वच्छन्दता के साथ बिहार करते हैं।"

डाक्टर ने घड़ी देखते हुए कहा—"अब राउन्ड पर जानें का समय है। मैं

आज्ञा चाहता हूँ ।"

मणिमाला ने कहा—"हम लोग भी अब जायेंगे ।" फिर चन्द्रकला से कहा—"यदि आपको अवकाश हो तो कुछ देर बैठकर विनोद से बातें कर उसका मन बहलाए, तब तक मैं जाकर गायत्री दीदी को भेजती हूँ ।"

"मुझे पूर्ण अवकाश है । आज विद्यालय बन्द है । मैं विनोद बाबू के पास बैठी रहूँगी । जब तक वह नहीं आएगी ।"

यह कहकर मणिमाला, और अविनाश बाबू चले गये । चन्द्रकला कुर्सी खींचकर विनोद के पास बैठ गई ।

२३

चन्द्रकला अपने विचारों में मग्न मौन बैठी थी । विनोद के भी नेत्र मुँदे हुए थे । जब कभी चन्द्रकला अपने विचारों में उलझी उसकी ओर दृष्टि-पात करती, वह यह न तय कर पाती थी कि वह सचमुच सो रहे हैं, अथवा उसी की भांति विचार-मग्न हैं, जिनको रोगी के पास बैठने का अभ्यास नहीं है, अथवा जो स्वभाव से वाग्विलासी होते हैं, वे अधिक देर तक चुप नहीं बैठ सकते । बिना बोले उन्हें कल नहीं पड़ती । लगभग वैसी ही स्थिति चन्द्रकला की थी । वह पुन: बैठी-बैठी ऊबने लगी । अन्त में अपनी बोलने की आदत से लाचार होने के कारण, उसने सहसा पूछा—"विनोद बाबू, क्या आप सो रहे हैं ?"

विनोद ने, जो वस्तुत: सो नहीं रहा था, अपनी आँखें खोल कर उसकी ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखा । चन्द्रकला ने मुस्कराते हुए कहा—"यदि आप सो नहीं सकते, तो फिर कुछ बातें ही करिये । चुप रहने से मेरा मन घबड़ाता है ।"

"कहिये क्या बातें की जाँय, और किस विषय पर?"

"अच्छा बताइये कि आप कब ली के घर पहुँचे थे। मैं भी उस दिन उससे मिली थी"

"मैं जानता ही नहीं कि आप कब गई थीं ?"

"लगभग तीन-या चार के मध्य गई थी, और आप ?"

"मैं चार या पाँच के मध्य पहुँचा था।"

"जब मैं गई थी, तब ली को मैंने बड़ी उद्विग्न दशा में पाया था।"

"जब मैं गया था, तब मैंने भी ली को बड़ी उद्विग्न परिस्थिति में देखा था।"

"वह बहुत अकेलापन महसूस करती थी। चिन के वियोग में वह बहुत दुखी थी।"

"हाँ, यही मेरा भी अनुमान है।"

"चिन न मालूम कहाँ चली गई ?"

"मुझे मालूम होता है कि वह अब इस संसार में नहीं है।"

"आप ऐसा क्यों समझते हैं।"

"उस चीनी ने, जिसने ली पर छुरे का वार किया था, ली से कहा था कि किसी कांग नामक चीनी ने उसे मरवा दिया है।"

"इन चीनियों की महिमा कुछ समझ में नहीं आती।"

"शायद ये लोग छल से भारत पर अपना अधिकार जमाना चाहते हैं ?"

"यह आप किस आधार पर कहते हैं ?"

"मैंने स्पष्ट सुना है कि चीन में कोई वृहत्तर चीन संघ है, जिसका उद्देश्य है भारत को पराधीन बनाना। भाई-भाई के प्रपंच में वे हमें धोखे में डालना चाहते हैं ?"

"आप से और चिन से तो बहुत घनिष्टता थी ?"

"मुझे तो वह और ली, तथा अन्यचीनी भिक्षु णियाँ सब चीन की गुप्तचर मालूम पड़ती है। पहले चिन कार्य क्षेत्र में अवतरित हुई, फिर ली। उन दोनों का उद्देश्य था नवयुवकों को पथभ्रष्ट करना।"

"क्या ली ने ऐसी कोई इच्छा प्रकट की थी ?"

"हाँ, उसने स्पष्ट शब्दों में अपनी भावना व्यक्त की थी।"

"अच्छा ! चिन का भेद तो मुझे मालूम था, किन्तु ली का नहीं।"

"चिन की मृत्यु के पश्चात् वह भार ली को सौंपा गया था।"

"इसका आप को कैसे ज्ञान हुआ ?"

"यद्यपि मैं चीनी भाषा पूरी तरह नहीं समझता तथापि जो कुछ थोड़ा ज्ञान है, उससे मैंने ली और उसके साथी के मध्य हुये आलाप से यही समझा था। ली ने मुक्त कण्ठ से यह स्वीकार भी किया था।"

"तब तो ये चीनी बड़े विश्वासघाती हैं !"

"ये स्वभावत: विश्वासघाती होते हैं। ये आस्तीन के सांप हैं, जिस थाली में खाते हैं, उसी में छेद करते हैं।"

"लेकिन ली और चिन बड़ी भोली मालूम पड़ती थी।"

"वे अपने भोलेपन के भीतर विष छिपाए थीं।"

"अब आपका क्या रुख होगा ?"

"अब मैं अपनी पार्टी त्याग दूँगा।"

"क्यों ? पार्टी का इसमें क्या दोष है ?"

"उसके दृष्टिकोण से मैं अब सहमत नहीं हूँ।"

"अर्थात् ?"

"अर्थात् यह कि वे पर-मुखापेक्षी हैं। उनकी स्वतन्त्र नीति नहीं है। हमें यह न भूलना चाहिए कि हम भारतीय पहले हैं, भारत हमारा देश है और हमारा एक स्वतन्त्र अस्तित्व है। जिस प्रकार योरोप के वृक्ष हम अपनी भूमि में स्थापित नहीं कर सकते, उसी प्रकार हम विदेशी सिद्धान्तों को भी अपने देश में पनपा नहीं सकते। सिद्धांतों की वेदी पर हम देश का बलिदान नहीं कर सकते।"

"साम्यवाद की विचारधारा का उद्भव तो भारत में ही हुआ था। सच्चा साम्यवाद तो सर्वोदय में है, जहाँ निम्नतम स्थिति में रहते हुए व्यक्ति को सबके बराबर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा सन्निहित है। मनुष्य मनुष्य में

कोई भेद नहीं है, पूंजीपति और मजदूर में कोई विभिन्नता नहीं है, शासक और शासित दोनों एक ही इकाई के दो सिरे हैं।"

"मैं इन्हीं विचारों की उधेड़बुन, आज प्रातःकाल से कर रहा हूँ। पश्चिम का साम्यवाद वर्ग-संघर्ष को जन्म देता है। संघर्ष शान्ति मूलक नहीं, वरन् ईर्ष्या, द्वेष और विग्रह उत्पन्न करता है। उद्देश्य-प्राप्ति के लिए साधनों की आवश्यकता होती है, साधनों से उद्देश्य के रंग रूप पर प्रभाव पड़ता है। प्रकाश की रेखाओं से वस्तुओं की यथास्थिति ज्ञात होती है, किन्तु उन के अभाव में वस्तुयें अन्धकार में लुप्त होकर अपना निजत्व खो देती हैं, उसी प्रकार साधन यदि निर्मल, अहिंसक, एवं सुनियमानुकूल होंगे, तब साध्य भी कल्याणकारी और शान्ति-दायक होगा।"

"सत्य है विनोद भैया, बिल्कुल सत्य है। क्षमा कीजियेगा, मैं आपको 'बाबू' न कह कर 'भैया' पुकारने लगी।"

"यदि यह सौभाग्य मुझे दो बहिन, तो मेरे जीवन का एक बहुत बड़ा अभाव पूर्ण हो जायगा। भाई के जीवन में एक बहिन न होने से बहुत बड़ा सूनापन रहता है। क्या उस शून्य को तुम पूरा करोगी बहिन ?"

कहते-कहते विनोद का कण्ठ अवरुद्ध हो गया।

चन्द्रकला उसका हाथ पकड़ते हुए बोली—"किन्तु भैया, मैं गरीब हूँ, अनाथ हूँ।',

"किन्तु स्नेह से तो तुम भरी-पूरी हो। पैसा पश्चिमीय साम्यवाद का मापदण्ड भले ही हो, किन्तु वह हमारे देश का नहीं हो सकता। यहाँ का माप-दण्ड है स्नेह, जो स्वयं पवित्र होते हुए, उसको भी पवित्र करता है, जिसे दिया जाता है, और वह भी पवित्र होता है जो देता है। स्नेह अपने प्रतिदान में केवल स्नेह मांगता है, पैसा नहीं। भाई रहते, बहिन निस्संबल नहीं होती और बहिन रहते भाई पथभ्रष्ट नहीं होता।"

"आज मेरे जीवन का यह परम पुण्य दिवस है, जो तुम्हारा जैसा भाई अनायास ही पाया।"

"और बहिन, क्या तुम अपने सौभाग्य में मेरे सुख की कल्पना भूल

जाओगी ?"

इसी समय गायत्री, आनन्द को लिए हुए प्रविष्ट हुई। उसके नेत्र अश्रु-पूरित थे और पैर कांप रहे थे। जब से उसने बिनोद के आहत होने का समाचार सुना था, वह जल-हीन मीन की भांति उसको देखने के लिए तड़प रही थी। डाक्टरों ने उसके आने की अनुमति नहीं दी। मणिमाला ने जब घर पहुँच कर उसे अस्पताल जाने को कहा, वह उस भांति दौड़कर जाना चाहती थी, जैसे गाय बन्धन से छूट कर अपने बछड़े को प्यार करने के लिए आतुरता से दौड़ती है।"

वह विनोद से कुछ कहना चाहती थी, किन्तु जो कुछ उसके मन में था, वह उसके मानसिक बवण्डरमें खो-सा गया। जब उसका कण्ठ नहीं फूटा, तब उसके मन के उद्वेग को बताने का भार उसके अश्रुओं ने उठा लिया।

विनोद ने मुस्कराते हुये कहा—"बुआ, मैं अब बिल्कुल अच्छा हूँ। तुम घबड़ाओ नहीं, मेरा कुछ नहीं बिगड़ा।"

गायत्री ने कुछ कहने का फिर उद्योग किया, किन्तु वह कृतकार्य नहीं हुई। बिनोद हँसकर अपनी स्वस्थता का परिचय देने लगा।

गायत्री अपने मन को शान्त करने के लिए एक कुर्सी पर बैठ गई। आनन्द उसको छोड़ कर विनोद के पास चला गया। उसने कहा—"दादा, अम्मा रोती हैं।"

"हां भैया आनन्द, तुम्हारी अम्मा खुशी से रो रही हैं।"

"दादा, क्या खुशी से भी रोया जाता है। मुझे तो जब कोई डाँटता-मारता है, मैं तब रोता हूँ।"

"जब बहुत खुशी होती है, तब भी आदमी रोने लगता है।"

चन्द्रकला ने पूछा—"यह लड़का बड़ा सुन्दर है!"

"यह भी तुम्हारा छोटा भाई है। जानती हो, यह उस जन्म के लामा हैं ?"

"सच ?"

"हाँ, क्या तुमने दो वर्ष पहले यह बात नहीं सुनी थी ? शहर में तो

इसकी बहुत चर्चा हुई थी। समाचार पत्रों में भी इस घटना का वर्णन छिपा था। सैकड़ों आदमी इसके दर्शन के लिये आते थे।"

"इसकी भनक तो मेरे कानों में भी आई थी; परन्तु मैंने कपोल-कल्पना समझा था।"

"नहीं यह बिल्कुल सच है।"

"इसका हाल जरा विस्तार से बताइए।"

"बातें यों हुई कि एक दिन सहसा आप त्रिपिटक का पारायण हमारे पूजा गृह में करने लगे। बुआ जी उसे सुनकर मुझे बुला ले गईं। मैंने देखा कि आप ध्यान में मग्न ऐसी भाषा में धारा- प्रवाह बोल रहे हैं, जो मेरी समझ में नहीं आई। बुआ जी मेरी माँ और पिता को बुलाकर ले आईं। यशोधर टेप-रिकार्डर ले आया, जिसमें उसने इनके शब्दों को भर लिया। मेरे यहाँ एक बौद्ध सन्यासी नागार्जुन आया करते हैं। वह उस टेप-रिकार्डर को लेकर एक बौद्ध लामा बासबा के पास गए और उनको सुनाया। संयोग से वे वही शब्द थे, जो उनके गुरुने अन्तिम समय में उपदेश के रूप में उनसे कहे थे। बासबा को वे शब्द याद थे। उन्होंने बताया कि इस उपदेश को उनके गुरु ने जो ल्हासा के जोरवाँग मन्दिर के महन्त थे, अपने देह त्याग के पूर्व उनको सुनाया था, जिस में उन्होंने यह इच्छा जाहिर की थी कि उनका शरीर सुरक्षित रखा जावे और वह अगले जन्म में पुन: आवेंगे। लामाओं के विश्वास के अनुसार उनके महन्तों का पुनर्जन्म हुआ करता है। बासबा ने आनन्द को देखने की इच्छा प्रकट की। किन्तु बुआ जी राजी नहीं हुईं और आनन्द को लेकर कलकत्ता भाग गईं। बासबा ने योगबल से उनका पता लगा लिया और मैंने ट्रंककाल कर उनसे बातचीत की। बुआ जी डरती थीं कि यदि बासबा आनन्द को देख लेगा, तो भगा ले जावेगा। इसी डर से वह आती न थीं। अन्त में माँ और बाबू कलकत्ते गये तथा बुआ जी को आश्वासन देकर लिवा लाये। बासबा की भेंट आनन्द से हुई। उन्होंने योगशक्ति द्वारा आनन्द को अचेत कर उसको पूर्वजन्म की याद दिलाई। आनन्द ने बासबा से बातें की और बताया कि तिब्बत में भयानक रक्त पात होने वाला है, वहाँ के राजतंत्र में भारी उथल-पुथल होगी और वहाँ

के बहुत से निवासी भारत में आकर शरण लेंगे । बासवा को इस भविष्यवाणी से महान शोक हुआ ।"

मैंने सुना था कि आप का छोटा भाई भी तो उनके साथ तिब्बत गया था ?"

हाँ वह भारत के प्राचीन ग्रन्थों की खोज में गया है ।"

"अभी तक आए नहीं ?"

"नहीं, इधर तिब्बत पर चीन के आक्रमण के समाचार कलिम्पोंग से मिले हैं । सुना है कि चीन ने तिब्बत पर अधिकार कर लिया है, और लामाई शासन का अन्त कर दिया है । तिब्बतेश्वर कहीं भाग गए हैं, जिनका पता नहीं लग रहा है । वहाँ के बौद्ध मठों पर चीन का कब्जा हो गया है ।"

"इस लड़ाई-झगड़े में आप के भाई पर विपत्ति आ सकती है ।"

"उसका प्रबन्ध कर लिया गया है । वहाँ की कम्यूनिस्ट पार्टी के नेताओं को सावधान कर दिय गयाा है । जाते समय भी पिता जी ने उसको वहाँ के अधिकारियों के नाम पत्र लिख कर दिए हैं । उसको ध्वनि प्रेषक तथा ग्राहक यन्त्र भी पिता जी ने दिये थे, जिसके द्वारा वह अपनी कुशलता का समाचार प्रति सप्ताह भेजा करता था । इधर पिछले हफ्ते से उसका कोई समाचार नहीं मिला है । सम्भव है पिता जी को मिला हो । उनसे इस विषय में कोई बात नहीं हो सकी, क्योंकि बहुत से अन्य व्यक्ति मौजूद थे ।"

"जब तक उनका समाचार नहीं मिलता, तब तक चिन्ता का विषय है ।"

"इसमें क्या सन्देह, परन्तु जहाँ तक अनुमान है उसका बाल बाँका नहीं होगा । मैंने भी कलिम्पोंग, पीकिंग और ल्हासा के अधिकारियों को सचेत कर दिया है ।"

"क्या आप लोगों का सम्बन्ध चीन से है !"

"हाँ संसार के सभी कम्यूनिस्टों का सम्बन्ध एक दूसरे से रहता है । जिस प्रकार पूजीवादी देश संगठित हैं, उसी प्रकार कम्यूनिस्ट देश भी हैं ।"

अभी आपने कहा था कि कम्यूनिस्ट पार्टी से सम्बन्ध विच्छेद कर देंगे ।"

"हाँ, मैं अब उनका साथ नहीं दे सकता। मैं भारतीय पहले हूँ, कम्यूनिस्ट बाद में। इसके अतिरिक्त चिन तथा ली से जो कुछ सुना है उससे स्पष्ट हो गया है कि चीन के विचार हमारे देश के प्रति मित्रता के नहीं हैं। वह कूट-नीति से काम ले रहा है, और सर्वत्र उसके गुप्तचर भारत के विरोध में काम कर रहे हैं। ये गुप्तचर इस देश में पंचमांगियों को जन्म दे रहे हैं। अब यह अनुमान दृढ़ हो रहा है कि चीन भारत पर आक्रमण की तैयारी कर रहा है। मैत्री दिखा कर देश को गाफिल रखना चाहता है, और अपनी स्थिति मजबूत कर वह एक दिन भारत पर अवश्य आक्रमण करेगा। गुड़ दिखा कर वह पत्थर मारेगा।"

"आप सर्वोदय में काम कीजिए। दोनों का उद्देश्य एक है, केवल साधनों में अन्तर है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' भारत का ही तो नारा है!"

"हाँ, मेरा झुकाव इसी ओर हो रहा है। सर्वोदय ही सच्चा समाजवाद है, जहां हर एक इकाई स्वतंत्र होते हुए भी समस्त 'सर्व' में सन्निविष्ट है, पृथक होते हुए भी एकत्रीभूत है। स्वराज्य का विकसित रूप सर्वोदय में ही मिलता है। व्यक्ति की इकाई के साथ गाँव की इकाई बनती है, और समस्त गांवों की इकाइयाँ राष्ट्र की इकाई बनाती हैं। न कोई निम्नस्तर है, और न कोई उच्च जिस प्रकार भगवान की चार विभूतियों जल, अग्नि, पवन और आकाश पर समस्त जीवों को समानाधिकार प्राप्त है, उसी प्रक ८ भूमि पर होना चाहिए। मनुष्य ने जब भूमि पर अधिकार करने का प्रयत्न किया है तब से कलह-विग्रह ने जन्म लिया, और मानव की इकाई पहले परिवार, फिर गाँव, देश और फिर राष्ट्र में विभजित होती गई। बिभाजन की क्रियायें ज्यों-ज्यों बढ़ती गई, त्यों-त्यों लोभ ईष्या, द्वेप और मत्सर की मात्रायें भी बढती गई। यदि संसार से युद्धों को विदा करना है, तब सबसे पहले भूमि को भी अन्य तत्वों की भाँति स्वतंत्र करना होगा।"

"यही सर्वोदय की पुकार है।"

"यह सर्वोदय की प्रथम सीढ़ी है। सर्वोदय का व्यापक रूप समस्त मानवता और समस्त जगत है।"

गायत्री ने, जो अब स्वस्थ हो चुकी थी, चन्द्रकला की ओर संकेत करते हुए पूछा—"बिनू यह बहन जी कौन है ?"

विनोद ने हँसते हुए कहा—"बुआ जी, यह आप की बहिन जी नहीं, मेरी बहिन जी हैं ।"

गायत्री चकित होकर चन्द्रकला की ओर देखने लगी । चन्द्रकला ने भूमिष्ट होकर उनके चरण स्पर्श करते हुए कहा—"बुआ जी, बिनू भैया ने आज मुझे अपनी बहिन बनाकर मेरे जीवन के सूनेपन को मिटाया है । मैं बिल्कुल अनाथ थी । माता-पिता का देहान्त मेरे बाल्यकाल में ही हो चुका था । मामा-मामी ने परिवरिश की । मामा काशी के विख्यात पण्डित मधुसूदन शास्त्री थे, जिन्हें तीन वेद कंठस्थ थे, और काशी की पण्डित मंडली के शिरमौर समझे जाते थे । उनके भी कोई सन्तान नहीं थी । भाई बहिन मिलने का सौभाग्य वहाँ भी न मिला । उन्होंने मुझे पुत्रवत् शिक्षा दी, और जो कुछ उनके पास था वह सब दिया । किन्तु अधिक दिनों तक वे भी जीवित न रहे; मैं जब उन्नीस वर्ष की हुई, तब मामा-मामी का देहान्त हो गया । दोनों चार-पाँच दिनों के अन्तर में मर गए । मैं पुन: संसार में अकेली रह गई । मेरे मामा के मित्र महिला विद्यालय के मैनेजर थे, उन्होंने मुझे उसमें संस्कृत पढ़ाने के लिए नियुक्त कर दिया । घर में अकेले रहना संभव नहीं था, इसलिए छात्रावास की अधीक्षक भी बना कर उसमें मेरे रहने का प्रबन्ध कर दिया । बुआ जी, बस इतना ही मेरा परिचय है ।"

गायत्री उसकी कहानी से द्रवित हो गई । उसको भी अपना बाल्यकाल स्मरण आया । उसने भी अपने माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् मामा-मामी के यहाँ आश्रय लिया था, किन्तु अन्तर इतना था कि उसके मामा, अर्थात् अविनाश बाबू के पिता, की छत्र-छाया उस पर बहुत दिनों रही, तथा उनका पुत्र उसको भाई के रूप में प्राप्त हुआ था ।

उसने उसे हृदय से लगाते हुए कहा—"बेटी, कालचक्र ने जब तुम्हें हम लोगों से मिला दिया है, तब तुम्हारे सब अभाव पूर्ण हो जायगें । बिनू के रूप में यदि तुमने भाई पाया है, तो मैं तुम्हारी माँ बन कर अपनी कन्या-सन्तान

का अभाव पूर्ण करूँगी। कन्या के बिना दान कर्म अधूरा रहता है। कन्यादान प्रजापति का दान है।"

चन्द्रकला ने गद्‌गद कंठ से पूछा—"तब आपको मैं माँ कहूँगी ?"

गायत्री ने उसे स्नेह-विभोर होकर हृदय से चिपटाते हुए कहा—"हाँ, बेटी, कहो, कहो, बार-बार कहो।"

चन्द्रकला ने स्नेह-वारि बरसाते हुए कहा—"माँ !"

गायत्री का कंठ तो मूक हो गया, किन्तु उस एकाक्षरी सम्बन्ध के उत्तर में उसके हृदय-कोष का संचित स्नेह आखों से प्रवाहित होकर उसके मस्तक और कपोलों को चूमने लगा।

२४

मणिमाला ने सक्रोध ली का मृत्यु-वक्तव्य अविनाश बाबू के सामने पटकते हुए कहा—"लीजिये पढ़िये, अपने चीनी मित्रों के काले कारनामें। आप चीनियों की मित्रता का बहुत दम भरते थे, उन्हें भाई-भाई कहते आपका कंठ कभी थकता नहीं था। अब उन्हीं दोस्तों और भाइयों की करतूतें भी जान लीजिए। यह एक चीनी गुप्तचर का मृत्यु-वक्तव्य है, जो किसी प्रकार मिथ्या अथवा कल्पित नहीं हो सकता।"

अविनाश बाबू ने बिना कुछ उत्तर दिये, ली का वक्तव्य उठा लिया, और वह उसे पढ़ने लगे। मणिमाला, उसकी प्रतिक्रिया उत्सुकता से देखने लगी।

अविनाश बाबू ज्यों-ज्यों उसे पढ़ते जाते, त्यों-त्यों उनका चेहरा निष्प्रभ होता जाता था। उसे आद्योपान्त पढ़कर उनके मुख से निकल गया—"बहुत बड़ा षड़यन्त्र है। बहुत बड़ा धोखा है।"

"अब तो आपकी आंखें खुली !" कहते-कहते मणिमाला अपनी क्षुब्धता में खो गई।

अविनाश बाबू अपराधी की भाँति चुप रहे। वक्तव्य-पत्र को बार-बार उलटने पलटने लगे। उनके नेत्र नत थे, और मुख कान्ति-हीन।

"मैं हमेशा कहती थी कि विदेशियों पर विश्वास करना अनुचित है, इनसे अपकार के अतिरिक्त उपकार नहीं हो सकता, परन्तु आप कभी मानते न थे। चीन ही क्यों, दुनियां भर के कम्युनिस्ट आपके सगे हो गए थे, और स्वदेशी सरकार को आप शत्रुता की दृष्टि से देखते थे। गलतियाँ किससे नहीं होतीं। यदि आप कोई गलती समझते हैं, तो यहां प्रजातन्त्र है ; आप उन गलतियों को सुधारिए। गलतियां सुधारने का दायित्व आप पर भी उतना ही हैं, जितना सरकार पर। किन्तु गलतियों को सुधारने के लिए आप जयचन्द और विभीषण तो न बनें।"

अविनाश बाबू निरुत्तर रहे। सत्य का गला घोटना वह न जानते थे। प्रतिवाद करने की क्षमता उनमें नहीं रही थी।

"किसी की भी गलतियां निकालना सहज है। जिसके भी स्वार्थ को आघात पहुँचा, वही विरोधी होकर गालियां सुनाने लगा, किन्तु वस्तुस्थिति कोई देखने-समझने को तैयार नहीं होता। उसके लिये न दिल है, और न दिमाग है, और शायद अवकाश भी नहीं है। जिस रंग के चश्मे से देखिए, उसी रंग की दुनियां दिखाई देगी। स्वार्थ का चश्मा हटाकर फिर उघड़ी आँखों से देखिए, समझिये और विचारिये। परिस्थितियों को नजर-अन्दाज न कीजिये, हिमालय से भी उच्च उद्देश्यों की ओर ध्यान दौड़ाइये, अपनी वित्त-हीनता और जनसंख्या का लेखा-जोखा कीजिए, प्रतिगामियों के समूह की गणना कीजिए, विदेशियों द्वारा संचालित विविध कुचक्रों, तथा प्रचारों को हृदयंगम कीजिये ; फिर किसी को दोष दीजिए।" मणिमाला बोलते-बोलते भावावेश से थक गई।

अविनाश बाबू ने शुष्क स्वर में कहा—"जो कुछ कहना शेष रहा हो, वह भी कह डालिए।"

"कहूँ क्या ? दूसरों की थाली का भात सदा सुहावना लगता है। चीन के उन्नयन की गाथा गाते आप नहीं थकते। अपने परिश्रम को उनके समक्ष हेय समझ कर निन्दा करते हैं, किन्तु क्या आप नहीं जानते कि जो कुछ उन्होंने प्राप्त किया है, वह लाखों करोड़ों व्यक्तियों का खून बहा कर पाया है। पश्चिमीय कम्यूनिज्म की नींव सदा खून पर उठती है, इसीलिये वह मानवीय सद्‌गुणों से नितान्त रिक्त रहती है। वहाँ न अपना घर है, और न परिवार ; न अपनी सन्तान है, और न पत्नी। जो कुछ, है सब 'स्टेट' का है। मानव स्नेह लेकर उत्पन्न होता है, और आपकी विचार धारा उसका गला घोट देती है। वह वैयक्तिक शान्ति और सुख की कामना करता है, और आप उसका व्यक्तित्व ही मिटा देते हैं। उसका अपना कुछ, रंचमात्र आधार भी नहीं रखते। उसे कम्यून की मशीन का एक पुरजा बनाकर उसके व्यक्तित्व को नष्ट कर देते हैं, किस लिए ? इसलिये कि जिसमें बड़े छोटे का भेद मिट जाय, धनी-निर्धन का भेद मिट जाय, सब बराबर हो जांय ; परन्तु क्या आप अपना लक्ष्य प्राप्त कर सके हैं ? जिस शोषण को आप मिटाना चाहते हैं, वह आपकी प्रणाली से और उग्र तथा प्रचंड होता है। आप तो इतना शोषण करते हैं कि व्यक्ति को निर्जीव, निष्क्रिय, निस्तेज बनाकर उसका दिल और दिमाग तक नष्ट कर देते हैं। उसके विचारों को बन्दी बनाते हैं, उसके मुख पर ताला बन्द करते है, उनके जजबात का खून करते हैं। आप तो इतना शोषण करते हैं कि इन्सान का कयाफा ही बदल जाता है। वह इन्सान से मशीन बन जाता है, फिर भी आप कहते हैं कि हम समता स्थापित करते हैं !"

अविनाश बाबू ने थकित स्वर में कहा-"इस वक्तव्य से मेरी आंखें खुल गई हैं, मणि।"

"ठीक है कि आंखें देर में खुली हैं, किन्तु खुल गई हैं यही सन्तोष है। सुबह का भूला यदि शाम को आ जाता है, तो वह भूला नहीं कहा जाता। देखिए, कम्युनिस्ट देश पाशविक बल से केवल रोटी के बदले में काम करवाते है। वह भी जबरिया मशीनों का काम वे मनुष्यों से लेते हैं। सर्वत्र पार्टी के

गुप्तचर काम करते हैं। वे पिता के हाथों पुत्र का गला कटवाते हैं, और पत्नी, भाई, सन्तान सब एक दूसरे के प्रति गुप्तचरी करते हैं। किसी के जीवन में शान्ति नहीं है, किसी को सन्तोष नहीं है। आप लोग हिटलर की बुराइयों के पुल बांधते हैं, उसके संचालित गेस्टापों से क्या कम्यूनिस्टों का गुप्तचर विभाग, किसी प्रकार कम है ? आप कहते हैं कि चीन ने बड़ी उन्नति कर ली है, मैं पूछती हूँ कि क्या वे अपना अन्न-संकट दूर करने में समर्थ हुए हैं ? क्या चीनी जनता भारतीयों की अपेक्षा अधिक सुखी रहती है ? अनेकानेक दानवी प्रयत्नों के बाद भी क्या वे भारत से अधिक उत्पादन कर सके हैं ? यह सर्वांगीण उन्नति जो आप अपने देश में, इतने अल्पकाल में देखते हैं, वह तब है, जब भारत की जनता सरकार के साथ पूर्ण सहयोग नहीं देने पाती आप जैसे नेताओं के बहकाने से, भारत को समृद्धिवान बनाने का स्वप्न देखते हैं विदेशियों के बल से। आप सैनिक-शक्ति के अतिरिक्त किसी दूसरी शक्ति पर, जिसमें मानवता नष्ट न हो, वरन् विकसित हो, विश्वास नहीं करते। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि यदि भारत की जनता अपना सहयोग दे, तो पाँच वर्षों का काम तीन वर्षों में पूर्ण हो सकता है।"

"किन्तु चीन पर विश्वास का सूत्र तो आपकी सरकार से ही आरम्भ हुआ है !"

"हमारी नीति है सबकी सदाशयता पर, सबसे मैत्री रखने की। मैत्री-भाव में छल-कपट का स्थान नहीं है। हम मित्रता का भाव बढ़ाते हैं, और यदि कोई छुरा छिपाए भी अपना हाथ मैत्री के लिए बढ़ाता है, तो हम उस छुरे की परवा नहीं करते। विश्वासघात आज तक कहीं नहीं फलीभूत हुआ है। उसकी प्रतिक्रिया में विश्वासघाती स्वयं नष्ट होता है। भारत हजार वर्षों तक विदेशियों द्वारा आक्रान्त रहा, किन्तु जहां वह स्वतन्त्र हुआ, वह संसार की नैतिकता का नेतृत्व करने लगा। आज किसी राष्ट्र को भारत के प्रति अविश्वास नहीं है, सन्देह तक नहीं है। वह निर्भय है, अपनी शान्ति तथा मैत्री की नीति पर अचल है, अडिग है। उसकी वाणी सीधी है—सरल है,

कूटनीतिक दांव-पेंच से मुक्त रहती है। जो वह कहता है, उस पर संसार सोचता है, विचार करता है, और आत्म-निरीक्षण करता है। मैं पूछती हूँ कि क्या चीन को भी यह मान्यता प्राप्त है ?"

अविनाश बाबू पुनः चुप रहे। वे अपने में बहुत लज्जित हो गए थे।

मणिमाला फिर कहने लगी–"आइए, हमारे साथ सहयोग कीजिए। अपनी शक्ति को बिखेरिए नहीं - नेतागीरी के चक्कर में मत पड़िए। पार्टियों की अभी कोई आवश्यकता नहीं है। अभी हमें निर्माण करना है। उसको एकांगी मत बनाइए। ईर्ष्या और द्वेष को त्यागिए, और सब के कन्धे से कन्धा मिलाकर निर्माण कार्य में जुट जाइए। जर्मनी ध्वस्त होकर भी पन्द्रह वर्षों में पहले से भी अधिक विकसित हो गया है, क्योंकि वहाँ कोई पार्टी एक दूसरे के पैर पीछे नहीं घसीटती थी। आपको स्वतन्त्र हुए एक शताब्दी से अधिक हो गया है। आप अपनी पार्टी को ध्वंसक कार्यों में प्रवृत्त करते हैं। आपके सम्मुख समूचे देश की तस्वीर नहीं हैं, अपने-अपने स्वार्थों की क्षुद्र तस्वीरें हैं, संकुचित ध्येय हैं आपके। आपको परवा नहीं कि देश का अहित हो रहा है आपकी विरोधी नीतियों से। आप तो केवल नेता बने रह कर आत्म-सम्पन्नता को देश-सेवा समझ बैठे हैं। स्वार्थ का त्याग किए बिना उसकी क्या उन्नति सम्भव है ?"

"अब बस करो मणि, तुम बहुत कटु होती जा रही हो। तुम क्या मुझको वेईमान और गद्दार समझती हो ?"

"मैं कदापि ऐसा नहीं सोच सकती। हम दोनों ने कन्धे से कन्धा मिला कर देश की आजादी की लड़ाई लड़ी है। हम एक दूसरे को भली-भांति जानते और समझते हैं। आजादी के बाद हम लोगों में मत-भिन्नता हुई। आप कम्यूनिस्ट हो गए, और मैं प्रजातांत्रिक। लक्ष्य दोनों का एक है–केवल मार्ग विभिन्न हो गए हैं। इतना तो आप स्वीकार करेंगे ही।"

"इसमें संदेह की गुंजायश नहीं है !"

"आप विनाश के द्वारा लक्ष्य प्राप्त करना चाहते हैं, अर्थात् आप अपने विरोधियों का हनन अथवा उन देशवासियों का खून करना चाहते हैं, जो

आपके दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं, दूसरे शब्दों में आप एकतन्त्रीय शासन स्थापित करना चाहते हैं।"

"ठीक, इसके सिवाय दूसरा शीघ्रकर उपाय ही नहीं है। राष्ट्र को एकमना होने के लिये यह खून खराबी आवश्यक है।"

"बहुत ठीक, परन्तु आप रक्तपात का साधन अख्त्यार कर देश को एकमना बनाना चाहते हैं।"

"हां, 'ऋण शेषश्च, अग्नि शेषश्च वर्धयति पुनः पुनः'। इस अग्नि अर्थात् बुराई, भ्रष्टाचार को निःशेष करने से ही कल्याण है।"

"परन्तु यह बताइए कि क्या कीचड़ से कीचड़ धुलता है? रक्तपात एक जघन्य कर्म है, यह तो आप स्वीकार करेंगे ही।"

"सदुद्देश्य के लिए रक्तपात जघन्य नहीं, वरन् आशीर्वाद है।"

"आपके दृष्टिकोण से आर्शीवाद है, परन्तु थोड़ी देर के लिए आप अपने को उन भ्रष्टाचरियों के स्थान पर रख लीजिए। उस समय क्या आप इस रक्तपात का औचित्य स्वीकार करेंगे?"

"नहीं, परन्तु एक भ्रष्ट व्यक्ति के विचारों का कोई मूल्य नहीं।"

"परन्तु मनुष्य वे भी हैं। आप भ्रष्टता नाश करने के लिये व्यक्ति का नाश करते हैं।"

"वेशक, साँप और साँप की मां, दोनों को मारना चाहिए, ताकि साँप उत्पन्न ही न हो सकें। आप यदि चाहें कि साँप अपना विष त्याग दे, तो क्या यह सम्भव है?"

"आप विष को नष्ट कीजिये, विष नष्ट होने पर साँप निरीह है।"

"किन्तु उसकी सन्तान तो विषपूर्ण होगी।"

"ऐसा वातावरण बनाइये कि साँप अपनी काटने की आदत भूल जाय।"

"आप प्रकृति को बदलना चाहती हैं, यह असम्भव है।"

"आप भी उसी प्रकार मानव-प्रकृति को नष्ट करना चाहते हैं, जो असम्भव है। आपके प्रयत्न से वह कुछ समय के लिये रुक भले ही जाय, किन्तु वह कालान्तर में आपके यहाँ किसी अन्य रूप में पनपने लगेगी।

भ्रष्टाचार का जन्म होता है शक्ति से प्रभुता से। अधिकारी ही सदैव भ्रष्ट होते हैं, जन साधारण नहीं, क्योंकि उनमें शक्ति का अभाव है। अतएव जिस भ्रष्टाचार को आप निपातित कर रहे हैं, इसकी क्या गारन्टी है कि आप स्वयं उसके शिकार नहीं हो जांयगे। कम्यूनिस्ट देशों का भृष्टाचार क्या समाप्त हो गया है ? वहां सब एक दूसरे की जान के ग्राहक बने रहते हैं। कोई शान्ति से नहीं रहता। भृष्टाचार ने केवल अपना रूप बदला है वहां। वह एक वर्ग को छोड़कर समस्त जाति में छा गया है?"

"फिर आप भृष्टाचार किस प्रकार मिटाना चाहती हैं।"

"हृदय परिवर्तन से। मानव में दो विचार-धारायें बराबर चलती हैं, एक पशुत्व की और दूसरी मनुष्यत्व की। मनुष्यत्व की भावना को पुष्ट कीजिये, पशुत्व की शक्ति स्वतः क्षीण होती जायगी।"

"परन्तु यह महाकठिन ही नहीं, वरन् असम्भव है।"

"आप केवल अपनी सदाशयता पर विश्वास करते हैं, दूसरों को इससे रहित मानते हैं। क्या भगवान ने एक केवल आप और आप के अनुयायियों को ही सदाशयता का एकाधिकार सौंपा है ?"

"नहीं, ऐसा तो मैं नहीं कहता।"

"फिर आप अपने विचारों को क्यों दूसरों पर जबरिया लादना चाहते है ? क्या इस विचार के मूल में आप के एकाधिकार की भावना छिपी हुई नहीं है ? आप बुराई का नाश भलाई से कीजिए। आप ईंट का जबाब पत्थर से नहीं, फूलों से दीजिए। आप यह न भूल जाइए कि आप का विरोधी भी मनुष्य है, उसको भी जीने का अधिकार उतना ही है, जितना आपको। आप अपने सुशासन से, सद्विचारों से सद्भावनाओं से उसकी बुराई का नाश क्यों नही करते ? माना, यह कठिन है, सु-साध्य नहीं है, किन्तु जितनी थोड़ी भी सफलता आप को मिलेगी वह ठोस होगी। मनुष्य अनुकरण करने का प्राणी है। यदि वातावरण शुद्ध होगा तो उसका प्रभाव भी उस भृष्ट आदमी पर पड़ेगा। जिस प्रकार हवा और जल के प्रवाह को कोई रोक नहीं सकता उसी प्रकार वातावरण का प्रवाह है। उससे भृष्ट से भृष्ट व्यक्ति भी प्रभावित

हुए बिना नहीं रह सकता। सुधारने का मार्ग तपस्या और त्याग से होता है, आपाधापी से नहीं। अच्छे साधनों से विपरीत फल नहीं प्राप्त हो सकता। बुराई को बुराई द्वारा मिटाने से बुराई उत्पन्न होगी और भलाई से बुराई मिटाने से चाहे देर भले ही हो, किन्तु वह सदा के लिए जायगी। अंगुलिमाल जैसा भयानक व्यक्ति भी भगवान बुद्ध की भलाई के प्रभाव से अपनी बुराई छोड़ बैठा था।"

इसी समय गायत्री ने आकर कहा—"तुम दोनों की बहस कभी समाप्त होगी या नहीं? तुम दोनों को बकवास का रोग हो गया है। जानती हो भाभी, आज मुझे एक पुत्री मिल गई है!"

मणिमाला ने मुस्कराते हुए कहा—"कहाँ मिली? क्या किसी ने उस कन्या को अपना अपकर्म छिपाने के लिए कूड़े घर में फेंक दिया था?"

"तुम क्या बकती हो भाभी? मैंने पली-पलाई विद्वान, शिक्षित पुत्री पाई है, जिसको देखकर तुम्हें सचमुच ईर्ष्या होगी।"

"ननद के सौभाग्य से मैं कभी ईर्ष्या नहीं करूँगी, क्योंकि वह मेरी भी उतनी ही है, जितनी तुम्हारी। बताओ तो, वह कौन है?"

"अच्छा सुनो, वह चन्द्रकला है। आज बिनू ने उसे धर्म-बहिन बनाया और मैंने उसे धर्म-पुत्री।"

"वही चन्द्रकला, जो आज बिनू को देखने आई थी बदहवासी की हालत में और महिला विद्यालय में पढ़ाती है?"

"हाँ, वही चन्द्रकला जो रूप, गुण, और शील, स्वभाव में सत्य ही चन्द्र की पूर्ण कला है। वह बेचारी अनाथ है। एकाकी है, नहीं एकाकी थी, अब नहीं है, क्योंकि उसको बिनू जैसा भाई मिला है और मेरी···।"

गायत्री अपनी आत्म प्रशंसा करते-करते रुक गई। मणिमाला ने सहास्य उसका वाक्य पूरा किया—"और तुम्हारी जैसी साक्षात् स्नेह, वात्सल्य की अवतार—माँ।"

"भाभी, तुम तो व्यंग्य बोलती हो!"

मणिमाला ने उसे चिपकाते हुए कहा—"नहीं दीदी, मैं सत्य कहती हूँ।

तुम हो वस्तुतः त्यागमयी, स्नेहमयी, वात्सल्यमयी भारतीय माँ की प्रतीक, जो भारत का एक मात्र गौरव है। तुम्हारे स्पर्श से पूत भावनायें जन्मती, फूलती-फलती है। तुम्हारी वाणी से मन का कलुष धुल जाता है, और तुम्हारे सत्संग से समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं। दीदी, मैं सत्य कहती हूँ, इसमें अतिरेक न समझो, व्यंग्य न मानो।"

उत्तर में वह कुछ कहना चाहती थी, किन्तु मणिमाला ने उसके कपोलों को चूमते हुए कहा—"बस चुप रहो, प्रतिवाद न करना।"

दोनों हंसने लगी। अविनाश बाबू भी अपने मन का क्षोभ भूल कर निर्निमेष दृष्टि से उन दोनों का स्नेह-बन्धन देखने लगे।

२५

बासवा ने अपने साथियों के साथ उसी मार्ग का अनुसरण किया, जिससे दो दिन पूर्व तिब्बतेश्वर ने यात्रा की थी। यद्यपि मासपा वृद्ध थे और यशोधर युवक तथापि वे साथ-साथ जा रहे थे और दोनों में न-मालूम कहां की शक्ति आ गई थी कि वे तनिक भी थकावट नहीं महसूस करते थे। और, बासवा उन दोनों की अपेक्षा अधिक चल रहे थे। आकाश मेघाच्छन्न था। बसन्त काल की वायु जो मेघागमन से शीतल हो गई थी, उन्हें पग-पग पर उत्साह तथा नवशक्ति प्रदान कर रही थी। मध्यान्ह में वे ची दर्रे के निकट पहुँच गए और आगे की चढ़ाई पर ज्यों ही चढ़ने लगे, बासवा की दृष्टि एक लता पर पड़ी, जिससे हाथ-हाथ भर लम्बी कई फलियाँ लगी थी। बासवा ठहर गए, और मासपा को उन फलियों को तोड़ने का आदेश दिया। यशोधर भी उनकी सहायता करने लगा। उस लता में लगभग पचास साठ फलियाँ लगी थी। कुछ थोड़ी तोड़ने के पश्चात् मासपा ने पूछा—"रिमपोचे, क्या सब फलियाँ तोड़ ली

जाँय या कुछ छोड़ दी जाँय।"

बासबा ने उत्तर दिया—"सब तोड़ कर अपने उत्तरीय में बाँध लो। इन फलियों के टूट जाने के पश्चात् लता में पुन: आठ दस दिनों के अन्तर पर इतनी अथवा कुछ न्यूनाधिक फलियां निकल आवेंगी। जब संयोग से सहायता अनायास मिल गई, तब तुम दोनों इसको पहचान लो। यात्रा और योगसाधन के लिए यह परमावश्यक वस्तु है।"

यशोधर और मासपा बड़ी बारीकी से लता की पत्तियों, को देखने लगे। उसकी पत्तियां शंख के आकार की थीं—अर्थात् टहनी के समीप गोल, उसके आगे गोलाई मोटी होती हुई, ढलावदार और सिरे पर बिल्कुल पतली थी। लता की ऊँचाई लगभग तीन फुट थी, और वह एक देवदारु वृक्ष के सहारे ऊपर चढ़ रही थी।

बासबा ने समीप आकर कहा—"इस लता का नाम है 'सांगिका'। यह प्राय: ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों पर ही उत्पन्न होती है। इसकी फलियों के बीजों में क्षुधा हरने की शक्ति है। एक फली के बीज, जो चावलों की तरह होते हैं, एक बार खा लेने से चार दिनों तक भूख नहीं लगती और न शक्ति क्षीण होती है। योगाभ्यासी को सूक्ष्म से सूक्ष्म भोजन करने का आदेश है, और इससे अधिक सूक्ष्म भोजन दूसरा नहीं है। यह मल नहीं उत्पन्न करती। अन्न खाने से योग—अभ्यास के पहले उदर-कोषों का परिष्कार करना पड़ता है, जिसकी क्रियायें अलग हैं। 'सांगिका' के बीज खाने मे एक बार का परिष्कार किया हुआ उदर-कोष चार दिनों तक काम करता है। प्रथम तो प्यास बहुत कम लगती है और जो कुछ जल पिया भी जाता है, वह मूत्र रूप होकर निकल जाता है।"

मासपा ने प्रसन्न होकर कहा—"तब तो यह बड़ी अनोखी वस्तु है। इससे हमारे भोजन की समस्या हल हो जायगी।"

"हाँ, मैं इस लता को खोजते हुए यात्रा कर रहा था।"

यशोधर इसी समय सहसा 'हाय' करके बैठ गया। मासपा और बासबा उसकी ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखने लगे।

मासपा ने पूछा—"क्या हुआ राहुल !"

यशोधर ने अपना बायाँ पैर दोनों हाथों से दबाए, कराहते हुए कहा—"किसी विषधर बिच्छू ने डंक मार दिया है।"

बासबा ने मासपा को एक ओर घसीटते हुए कहा—"तुम उधर न आओ नहीं तो तुम भी व्यथा से पीड़त हो जाओगे।"

मासपा भयाकुल दृष्टि से पृथ्वी की ओर देखते हुए पगडण्डी पर आ गए। बासबा ने पृथ्वी पर बैठ कर एक दूसरी लता की कुछ पत्तियाँ लेकर अपनी हथेली में रगड़ी और उनके रस को यशोधर के क्षत स्थान पर टपका दिया। उसका स्पर्श होते ही व्यथा कम होने लगी। यशोधर ज्यों-ज्यों उनके आदेशानुसार रगड़ता गया, त्यों-त्यों चढ़ता हुआ विष कम होने लगा, और लगभग पाँच मिनट में वह पूर्ववत् स्स्वथ हो गया।

पीड़ा समाप्त होने पर यशोधर ने पूछा—"रिमपोचे, बिच्छू तो कहीं दिखाई नहीं देता। शायद वह लताओं में छिप गया है।"

बासबा ने मुस्कराते हुए कहा—"वत्स, बिच्छू ने नहीं इस लता के कांटे ने चुभकर तेरे शरीर को व्यथित किया था।"

मासपा और यशोधर ने एक साथ प्रश्न किया—"लता के काँटे से वृश्चिक दंशन कीं व्यथा उत्पन्न हुई ? यह बड़ी भयंकर लता है !"

बासबा ने उत्तर दिया—"भगवान अवलोकितेश्वर की प्रकृति बड़ी विचित्र है। प्राय: सांगिका के निकट ही यह वृश्चिक लता उसकी रक्षा के लिए उत्पन्न होती है ? फलियों को तोड़ते समय यदि असावधानी से पैर वृश्चिक लता पर पड़ जाता है, तब उसमें वृश्चिक-दंशन की पीड़ा होने लगती है, और तोड़ने वाला अपने कार्य को छोड़ देता है। इसी वृश्चिक लता के बिल्कुल समीप यही दूसरी लता उत्पन्न होती है जो वृश्चिक दंशन की पीड़ा को शान्त करती है। वृश्चिक लता से मैंने तुम्हें सावधान नहीं किया, इसका मुझे कोई ध्यान नहीं रहा।"

मासपा ने पूछा—"रिमपोचे, क्या तीनों लतायें सदैव साथ-साथ उत्पन्न होती हैं ?"

"नहीं, सांगिका के निकट वृश्चिक लता और विष निवारण करने वाली लता अवश्य, उत्पन्न होगी, किन्तु सांगिका के बिना भी ये दोनों लतायें उत्पन्न होती हैं। वृश्चिक लता के पास उसका विष निवारण करने वाली लता अवश्य होगी। वृश्चिक लता दंशन होने के पश्चात् उसके समीप ही इस दूसरी लता को ढूंढना चाहिए। इसका रस लगाते ही विष की पीड़ा दूर हो जायगी।"

"प्रकृति ने यह अच्छा कौतुक किया है।"

"कौतुक नहीं, सांगिका की रक्षा की है। सांगिका में एक बड़ा दोष यह है कि वह बिना अग्नि-संस्कार किये यदि खाई जायगी, तो पेट फुला देगी और असह्य वदना होगी। अग्नि में शोधने से यह दोष मिट जाता है। राहुल, अब तुम्हारी पीड़ा दूर हुई?"

यशोधर साँगिका की फलियां अपने उत्तरीय में बांध कर बासबा के पीछे पीछे रवाना हुआ।

पहाड़ की चढ़ाई आरम्भ हो गई। ची दर्रा समुद्र-स्तर से लगभग अठारह हजार फुट ऊँचा है। हिमाच्छादित होने से वहाँ की यात्रा बड़ी कठिन है। पवन की गति यहाँ पर लगभग तीस-चालीस मील प्रति घन्टा होती है, जिससे पैर उठते नहीं। पगडन्डी के दोनों तरफ भयंकर तल रहित खाइयाँ भी हैं, और यदि वायु के झोंके से पैर डगमगा गए, तो मृत्यु निश्चित है।

यशोधर ने भय-विह्वल कंठ से कहा—"गुरुदेव यहाँ तो पैर टिकते ही नहीं।"

लगभग ऐसी ही स्थिति मासपा की भी थी। उनके लम्बे चोंगे वायु-वेग से उड़कर उनकी गति में बाधा पहुँचा रहे थे। बासबा ने उनकी स्थिति देखकर कहा—"थोड़ी देर बैठ जाओ। वायु का वेग कम हो जायगा।"

इसी समय उन्हें वायुयानों की घड़घड़ाहट सुनाई दी, किन्तु बादलों का परदा उन्हें छिपाये था। बासबा ने कहा—"शत्रुओं को तिब्बतेश्वर के जाने की सूचना प्राप्त हो गई है। वे अपने वायुयानों से उन्हें खोज रहे हैं।"

मासपा ने आकाश की ओर देखते हुए कहा—"क्या ये बादल हमसे अधिक

ऊँचाई तक फैले हुए हैं।"

"हां, इनकी तह ऊपर और मोटी हो गई है। साधारण रूप से बादलों की ऊँचाई इतनी अधिक नहीं होती, परन्तु तिब्बतेश्वर को भारत की सीमा तक निर्विघ्न पहुँचाने के लिए भगवान अवलोकितेश्वर ने यह घना परदा डाल दिया है। हम भी इस समय बादलों की साधारण ऊँचाई से ऊपर हैं, किन्तु हमें भी वे नहीं देख सके, और न हम उन्हें।"

मासपा ने उन्हें प्रणाम करते हुए कहा—"रिमपोचे यह सब आप की शक्ति से ही सम्पन्न हुआ है।"

"नहीं मैं क्षुद्र व्यक्ति हूँ, मुझे ऐसी सामर्थ्य नहीं है। मेरी प्रार्थना को भगवान ने स्वीकार किया है, इसलिए मैं उनका आभारी हूँ।"

वायु का वेग इस समय तक कम हो गया था। बासबा के संकेत से दोनों उठ खड़े हुए और दर्रे से नीचे उतरने लगे।

२६

३१ मार्च सन् १९५९ को प्रातःकाल तिब्बतेश्वर भारत सीमा में सुरक्षित पहुँच गए। भारतीय जनता ने उनका स्वागत उसी प्रकार किया, जैसा वह अपने आदरणीय धार्मिक नेताओं का करती है। तेजपुर तक सुरक्षित पहुँचने के लिए उनके साथ भारतीय सेना का एक दस्ता तैनात था। तेजपुर पहुँचकर उनकी रेलयात्रा आरम्भ हुई, और वे अपने साथियों समेत भारत के अतिथि स्वीकृत हुए।

बासबा उनके पीछे-पीछे यात्रा कर रहे थे। जब उनके सुरक्षित पहुँच जाने का विश्वास उन्हें हो गया, तब उन्होंने एक संध्या को मासपा को बुलाकर कहा—"मासपा मेरा, कार्य समाप्त हो गया। तिब्बतेश्वर भारत की सीमा में प्रविष्ट हो गए हैं। अब मैं प्रायश्चित करूँगा?"

मासपा ने विकल स्वर में पूछा--"कैसा प्रायश्चित रिमपोचे ?"

बासवा ने विहँस कर कहा--"मैंने प्रकृति के साथ बलात्कार किया है।"

"कैसे रिमपोचे ?"

"प्रकृति की सहज गति में मैंने अपनी साधना के बल से उलट-फेर किया है, जो नियमों के विपरीत है।"

"किन्तु उद्देश्य तो सर्वथा वैध तथा उचित था ?"

"हाँ सदुद्देश्य होने से ही मुझे सफलता मिली, किन्तु कार्य तो प्रकृति की शक्तियों के संचालन का था, जो मनुष्यमात्र के लिए वर्जित है। ऐसे कार्यों के करने की व्यवस्था इसी प्रकार के अवसरों के लिए है, किन्तु उसके साथ प्रायश्चित का भी विधान है।"

"ऐसे विधान का प्रयोजन ?"

"प्रयोजन है, इसीलिये उसकी व्यवस्था की गई है ?"

"रिमपोचे, कृपया वह प्रयोजन बताने का कष्ट करें।"

"मानव में जो अहंभाव है, उसको नष्ट करने के लिये प्रायश्चित की व्यवस्था है।"

"आप में उसका सर्वथा अभाव है।"

"यह अहंकार इतना सूक्ष्म है कि जरा सी सन्धि पाकर वह मानव पर अपना अधिकार जमा लेता है। अहंभाव शरीर के साथ संलिप्त रहता है, क्योंकि इसकी उत्पत्ति उसी भाव से होती है। शरीर का नाश होने पर वह भाव स्वयमेव नष्ट हो जाता है।"

"क्या आप प्रायश्चित, अपना शरीर त्यागकर करना चाहते हैं ?"

"हाँ मासपा, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है। शरीर बनने के साथ ही मस्तिष्क का निर्माण हुआ है, और जब तक जीव किसी दूसरे शरीर में प्रवेश नहीं करता, तब तक मस्तिष्क का परिवर्तन भी नहीं होगा। इस शरीर की क्रिया आगामी जीवन में बिलुप्त हो जायगी।"

"अर्थात् नष्ट हो जायगी।"

"नहीं क्रिया कोई नष्ट नहीं होती केवल अतीव सूक्ष्म रूप होकर अर्ध-

चेतन अवस्था में नए शरीर के मस्तिष्क कोषों में निवास करने लगती है और नवीन शरीर के धर्म के समक्ष वह कुछ काल के लिए अचेतन हो जाती है, क्योंकि नव-शरीर का धर्म पहले सम्पन्न होता है। अर्ध-चेतन अवस्था की क्रियायें अवसर और वातावरण पाकर पुन: चैतन्य होती है, तब वे नव-शरीर की क्रियाओं को संचालित करती हैं। इसी को भाग्य और अन्त:प्रेरणा कहा जाता है। समस्त बाह्य जगत के कार्यों की नींव रूप वे होती है।"

"और अन्तर्जगत की क्रियाओं का संचालन कैसे होता है?"

"जिस प्रकार चकमक पत्थर के द्वारा प्रकट किया हुआ अग्नि का क्षुद्र स्फुलिंग, सूखे सूत्र को अपना रूप दे देता है, उसी प्रकार नव शरीर के द्वारा की गई कोई घटना, पुरानी क्रियाओं को जाग्रत कर देती है। जहां से गत शरीर की क्रिया खंडित हुई थी, वहाँ से नव-शरीर के द्वारा यह क्रिया आरंभ होती है। जीव अपने एक शरीर से निर्वाण प्राप्त नहीं करता। उसे अनेकानेक शरीर धारण कर सतत संघर्ष करना पड़ता है। भगवान बुद्ध को जो ज्ञान प्राप्त हुआ था, वह उनके एक जीवन के प्रयत्न के फलस्वरूप नहीं था। उन्हें भी अपने अनेक जन्मों में प्रयास करना पड़ा था। उसकी पूर्णता तब हुई जब उन्हों ने कपिलवस्तु के राजकुमार का शरीर धारण किया।"

"किन्तु देव, आप यदि जानबूझ कर शरीर त्याग करेंगे तो क्या यह आत्महत्या नहीं होगी? आत्महत्या तो पाप है।"

"यह विचार केवल सांसारिक जनों के लिए है, जिसमें वे तनिक से क्षुब्ध होने पर स्वचेष्टा से शरीर न त्यागें। इसके अतिरिक्त प्रायश्चित के लिए जो शरीर-त्याग होता है, वह आत्महत्या नहीं है। एक न्यायालय किसी जघन्य अपराध पर दोषी को प्राणदण्ड देता है, उसे तुम हत्या नहीं कहते। उसे दण्ड कहते हो। यहां पर मेरा मन न्यायाधीश है, वह इस शरीर द्वारा सम्पन्न किये गये अनुचित कार्य अथवा अपराध के लिए प्राण दन्ड का विधान नियमानुसार करता है, अतएव यह आत्महत्या नहीं है, केवल प्राणदण्ड है।"

"मैं वैध तथा अवैध धर्म का विश्लेषण नहीं करना चाहता मेरी प्रार्थना है कि आप हम लोगों को निराधार न छोड़ें।"

"निराधार कैसे ? अब तुम्हें और तिब्बतेश्वर को भारत का आश्रय प्राप्त हो गया है। भारत अपने अतिथियों का आदर करना जानता है। यह उसकी अत्यन्त प्राचीन परम्परा है। भारतीय अपने अभ्यागतों को सदैव गुरु मानते आये हैं, और फिर शरणार्थियों की तो वे अपना जीवन देकर रक्षा करते हैं। मानवता का उच्चतम विकास यदि विश्व में कहीं हुआ है, तो वह भारत की पुण्यभूमि है, जिसके कण-कण में वायु की एक एक लहर में उसके सपूतों की तपस्या सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में व्याप्त है। मासपा तुम सुरक्षित हो, तिब्बतेश्वर सुरक्षित है, और राहुल का तो यह देश ही है।"

"परन्तु रिमपोचे, आप के बिना मैं ही जीवित रह कर क्या करूँगा ?"

"मासपा, तुममें शरीर के प्रति मोह जाग्रत हो रहा है। शरीर केवल निर्वाण-प्राप्ति का साधन मात्र है। उसके साथ मोह निर्वाण—मार्ग का बाधक है।"

"रिमपोचे, मुझसे भी एक गुरुतर अपराध हो गया है। उसका प्रायश्चित मुझे भी करना है।"

'.मासपा, तुम किसी भ्रमवश ऐसा कथन कर रहे हो। तुमसे कोई अपराध नहीं हो सकता।"

"रिमपोचे, मैंने मोहवश एक नहीं दो-दो अपराध किये हैं।"

"अच्छा तुम्हीं बताओ।'

"प्रथम अपराध यह है कि मैंने आप के साथ प्रतारणा की है।"

"मुझसे तुम ने छल किया है, सहसा विश्वास नहीं होता ?"

"रिमपोचे, डोर जी नामक क्षात्र वस्तुतः पुरुष नहीं था।"

"तब फिर वह क्या था ?"

"वह पुरुष-में नारी थी, और सभवतः चीनी गुप्तचर थी, जो भारत में काम कर रही थी। उसका किसी अधिकारी से मत-भेद या ऐसा ही कुछ अपराध हो गया, और वह उसके कोप से बचने के लिए पुरुष वेष में हमारी शरण में नागार्जुन द्वारा आई। उन दिनों हम लोग सारनाथ में थे। हमारे

दल के साथ राहुल की मित्र बन कर वह चली आई।"

"राहुल क्या उसकी प्रवंचना से परिचित था?"

"नहीं रिमपोचे, राहुल ही नहीं, हम सब भी उसकी वास्तविकता नहीं जान सके। यह रहस्य-भेद राहुल के द्वारा ही हुआ है, क्योंकि उसने डोर जी का कथोपकथन एक चीनी अधिकारी कांग के साथ सुना था, जब हम लोग उन दोनों की प्रतीक्षा सुरंग के बहिर्मार्ग पर कर रहे थे, और मन्दिर में सहसा विस्फोट हुआ था।"

"मैंने तुम को उनको लिवा लाने के लिये सुरंग मार्ग से भेजा था।"

"मैं जब राहुल की कोठरी के गुप्तद्वार पर पहुँचा, तब मुझे राहुल अचेत मिला। विस्फोट के प्रभाव से वह अचेत होकर गिर पड़ा था। मन्दिर के अन्य भाग गिर गये थे, किन्तु सुरंग सुरक्षित थी। मैंने राहुल को सचेत किया और डोरजी के सम्बन्ध में पूछा। उसने डोरजी की कथा सांगोपांग वर्णन की, जो कुछ उसने सुना और देखा था। तब मुझे मालूम हुआ कि डोर जी वस्तुतः पुरुष नहीं था।"

"ठीक है परन्तु इसमें तुमने प्रवंचना क्या की?"

"मैंने इस भय से कि आप इस गुप्तचर अपराध के लिए कोई कठोर प्रायश्चित न करें, इसलिए मैंने राहुल को डोरजी की वास्तविकता छिपाने के लिए आग्रह किया और इस प्रकार आपसे छल किया।"

"हां, किसी सीमा तक तुम्हारे ऊपर दोष आता है, परन्तु इसके लिए दूसरा प्रायश्चित हैं; प्राणदण्ड कदापि नहीं।"

"परन्तु रिमपोचे पढ़ाते समय कभी-कभी मेरा उसके शरीर से स्पर्श हो गया है, अतः मेरा शरीर नारी-स्पर्श से अपवित्र है। जब तक अज्ञात था, तब तक मैं अपराधी नहीं था, किन्तु अब जब से यह ज्ञात हुआ है, तब से इसके प्रति मेरे मन को अत्यन्त घृणा हो गई है। मेरा जीव इस अपवित्र भार को वहन करने में असमर्थ है। मैं स्वयं इसको शीघ्र से शीघ्र त्यागने के लिए उत्सुक हूँ।"

बासबा ने सोचते हुये कहा—"हां, यह प्रश्न अवश्य विचारणीय है। मासपा

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस नारी के आगमन से साथ ही हमारे पुण्य स्थान तथा देश पर आपत्ति आना आरम्भ हुआ है। भगवान अवलोकितेश्वर स्वयं इस अपवित्रता से क्षुब्ध हुए, और उन्होंने अपने उस पुण्य-मंदिर को नष्ट करने की प्रेरणा हमें दी। उनको इस अनियमितता तथा अनाचरण से कितनी मार्मिक पीड़ा हुई होगी, इसकी कल्पना करते हुए मेरा मन सिहर उठता है। अब मुझे वे अनेक दुःस्वप्न याद आ रहे हैं, जो मैं प्रायः नित्य जोरवांग मन्दिर में रहते हुए देखा करता था; उनका कारण यही डोर जी नामक नारी का मन्दिर की पुण्य-भूमि में आगमन था।"

"जैसे किसी दुर्गन्धित पदार्थ के आ जाने से समस्त वातावरण दूषित हो जाता है, उसी प्रकार इस चीनी नारी के आगमन से मन्दिर भ्रष्ट और अपवित्र हो गया है।"

"अन्ततोगत्वा, हमारी पुण्य भूमि का निपात इन चीनियों द्वारा होना था, और वही हुआ भी। एक चीनी नारी ने हमारे मन्दिर का विस्फोट कराकर नाश कराया, और चीनी सेना तिब्बतेश्वर को जन्म भूमि से विलग करने का कारण बनी।"

यशोधर अभी तक मौन बैठा, उनका संवाद सुन रहा था, हाथ जोड़ कर सहसा बोल उठा—"गुरुदेव यदि अपराध क्षमा हो, तो एक प्रश्न पूछूँ।"

बासबा ने स्वीकृति का संकेत किया।

"क्या नारी इतनी हीन और अपवित्र है कि उसके स्पर्श मात्र से, अथवा किसी स्थान पर उसके जाने से वह स्थान ही भ्रष्ट हो जाता है, और इतना भ्रष्ट कि उस स्थान तथा शरीर का नाश करना पड़े?"

"नहीं वत्स, नारी न हीन है और न अपवित्र। वह पुरुष की अर्धांगिनी है, किन्तु संसारियों के लिए, गृहस्थ-धर्म पालन के लिए। उससे सृष्टि उत्पन्न होती है, इसलिए वह सदैव संपूज्य है। परन्तु लामाई धर्म में कुछ ऐसे नियम बनाए गए हैं, जिनमें नारी का बहिष्कार होता है, और वह केवल योग-साधना के लिए हैं। यौगिक क्रियाओं की साधना में नारी की कोई आवश्यकता नहीं है, इसलिए

दर्शन तक वर्जित किया गया है। अतएव मनीषियों ने ऐसे धार्मिक क्षेत्रों में उनका आवागमन तक निषिद्ध ठहराया है। नियमों का पालन तथा उल्लंघन ही पाप और पुण्य है। नियमों के अभाव में समाज का रूप संगठित समाज नहीं, वरन् विश्रृंखल समूह हो सकता है, लगभग वैसा ही, जैसा पशुओं का होता है। अतएव जहाँ-जहाँ नियमों का उल्लंघन होता है, उसके लिए प्रायश्चित अथवा दण्ड का विधान है।"

"गुरुदेव, अपराध क्षमा हो। जानबूझ कर किये गए कर्म से ही दोष या अपराध लगता है। डोर जी नारी थी, इसका ज्ञान उसके अतिरिक्त किसी को नहीं था, फिर उसके स्पर्श से हम सब पापी हो गये ? हमने अपने ज्ञान में उसे स्पर्श नहीं किया।"

"अपराधी न होते हुए भी हम अपवित्र हो गए। दर्शन तथा स्पर्श से जो प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है, वह और अधिक अपवित्र बनाती है। किसी स्थान पर मल गिर जाने से स्थान की पवित्रता तो अवश्य नष्ट हुई, और उसके स्पर्श से वायु समस्त वातावरण को अपवित्र कर देती है। जोरवांग मन्दिर के परकोटे में शताब्दियों से किसी नारी ने प्रवेश नहीं किया था; केवल इस नियम के सतत पालन से एक परम्परा अथवा धारा स्वतः बन गई। इस नियम का उल्लंघन जिस व्यक्ति के द्वारा होगा, वही अपराधी होगा। इस उदाहरण में डोर जी ने, जाने अथवा अनजाने इस नियम को भंग किया, तो वह स्वयं अपराधिनी हुई, और उसको दण्ड भोगना पड़ा, अर्थात् उसके अतिरिक्त सभी मन्दिर निवासी सुरक्षित निकल आये, केवल उसे चीनी आततायियों के साथ प्राण-त्याग करना पड़ा।"

"उसको अपराध का दण्ड मिल गया, किन्तु हमने तो कोई अपराध नहीं किया है !"

"ब्रह्माण्ड की समस्त चर-अचर वस्तुओं में गुरुत्व-आकर्षण होता है। डोर जी के आगमन से उसकी आकर्षण रेखायें स्वतः फैलने लगीं। उससे मन्दिर के नारी-हीन वातावरण में उसकी आकर्षण रेखाओं से कुछ विघटन प्रारभ हुआ

और उसके निरन्तर निवास से उसका वातावरण बराबर प्रभावति होने के कारण भ्रष्ट हो गया। उसकी आकर्षण रेखाओं ने हम सब को स्पर्श किया। यदि हम उसके आगमन से परिचित होते, तो हमारी मानसिक शक्तियाँ उससे संघर्ष करतीं, और हमारे ऊपर उसका प्रभाव न पड़ने पाता। हमारी शक्ति सतत साधना से बलवती थी, वह उसके दूषित प्रभाव को नष्ट करने में समर्थ होती। उसका गुप्त निवास हमारी शक्तियों को जाग्रत रूप में उद्बोधित करने में असमर्थ रहा, परन्तु वह सदैव अपने प्रभाव से परोक्ष रूप से उन्हें दूषित करती रही। इसलिए उसके निवास का यह घातक परिणाम हुआ कि वह स्वयं नष्ट हुई, और मन्दिर को भी अपवित्र होने के कारण ध्वस्त होना पड़ा। पवित्र शक्तियों ने हमारे मन को अज्ञातरूप से प्रभावित कर मन्दिर के तलघर में विस्फोटक द्रव्यों के रखने की प्रेरणा दी तथा ऐसी परिस्थितियाँ कालचक्र ने उपस्थित की, जिससे उसका निपात हो।"

"देव इसको अधिक स्पष्ट कीजिये।"

"नियमों के दृढ़ पालन से उस स्थान का ऐसा वातावरण बना, जो नारी के गुरुत्व-आकर्षण से सर्वथा मुक्त था। डोर जी के आने से वह वातावरण क्षुब्ध हुआ। यदि हम उसे निष्कासित कर देते, तो बिगड़ा हुआ वातावरण कालान्तर में शुद्ध हो जाता, परन्तु हमने ऐसा किया नहीं। इसलिये उस नारी से विमुक्त वातावरण ने स्वयं को नष्ट करना उचित समझा और उसने हमको, जो उस मन्दिर के अधिष्ठाता थे, प्रेरित कर हमें निमित्त बना अपना विनाश कराया।"

"गुरुदेव, मन्दिर नष्ट हो गया, और डोरजी नामक नारी नष्ट हो गई, अब आप लोगों के शरीर त्याग की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। तपस्या और साधना से हम अपना शरीर डोर जी के दूपित गुरुत्वाकपर्ण से मुक्त कर सकते हैं।"

" हाँ, यह सर्वथा शास्त्र-सम्मत है। मासपा प्रायश्चित के द्वारा अपने को शुद्ध कर सकते हैं ?"

"और रिमपोचे, आप ?"

"मैंने प्रकृति-विरुद्ध आचरण किया है। प्रकृति को अपनी इच्छानुसार संचालित करने का प्रयास किया, जो अवलोकितेश्वर भगवान की कृपा से सफल भी हुआ, परन्तु यह कर्म ऐसे विचारों को जन्म देगा, जिससे अहंकार की सृष्टि होगी, जो योग साधना के मार्ग में बाधक होगे। अतएव उससे बचने के लिए मनीषियों तथा त्रिकालज्ञों ने उस शरीर को, जिसके द्वारा यह कार्य सम्पन्न हुआ, त्यागने का विधान रचा। शरीर तो कार्य करने का माध्यम मात्र है। उसके विकृत हो जाने पर उसका त्यागना सर्वथा उचित है।"

मासपा ने कहा—"रिमपोचे, आप मेरे प्रायश्चित की व्यवस्था देते हैं, परन्तु मेरा अन्तर्मन इस अपवित्र शरीर को धारण करने की अनुमति नहीं देता।"

"मनुष्य के अन्तर्मन की प्रेरणा सर्वोत्तम है। यदि तुम इस शरीर के साथ सम्बन्ध रखने के इच्छुक नहीं हो, तब उसका त्यागना ही श्रेष्ठ है, नहीं तो योगसाधना में सदैव अपवित्रता का विचार बाधक होगा। अतएव वत्स यशोधर, तुम और मासपा जंगल से शुष्क लकड़ियों को इकट्ठा कर दो चिताओं की रचना करो, एक मेरे लिए और दूसरी मासपा के लिए। उन चिताओं में अग्नि-प्रवेश कर अपनी गुरु-दक्षिणा के ऋण से मुक्त होना।"

"किन्तु गुरुदेव, क्या प्रायश्चित का यही विधान मेर लिये लागू नहीं होगा?"

"नहीं, अभी तुम्हारा शरीर नया है। प्रायश्चित के द्वारा वह शुद्ध हो सकता है। मासपा का शरीर वृद्ध हो चला है, उनकी इच्छानुसार उसका निपात होने में उसके जीव का कल्याण होगा। इसलिये मैं तुम्हारे शरीर-त्याग करने की व्यवस्था नहीं दे सकता। मध्यान्ह के पहले पहले चिताओं का रच जाना आवश्यक है, क्योंकि चिताओं में अग्नि-प्रवेश ठीक मध्यान्ह काल में होना चाहिए।"

यशोधर निरुत्तर हो गया। वह मासपा के साथ सूखी लकड़ियां एकत्र करने लगा। इतने दिनों के सम्पर्क ने उसके हृदय में उन दोनों आचार्यों के प्रति श्रद्धा और भक्ति के साथ-साथ मोह भी उत्पन्न कर दिया था। वह उन्हें

अपना ही समझने लगा था। बासबा से अधिक मासपा से उसका लगाव था, क्योंकि वह उन्हीं के सम्पर्क में अधिक रहा था। मासपा भी उसको अन्य शिष्यों की अपेक्षा अधिक स्नेह-दृष्टि से देखते थे, तथा उसके प्रति दयालु और सहनशील रहते थे। जब वे दोनों बासबा की दृष्टि से ओझल लकड़ियाँ बीन रहे थे, तब अवकाश पाकर यशोधर मासपा के चरण पकड़ कर बोला—"गुरुदेव, आप अग्नि-प्रवेश न करें।" इसके आगे वह कहने में असमर्थ हो गया। भावावेश से उसका कण्ठ अवरुद्ध हो गया।

मासपा के भी नेत्र सूखे न रहे। उन्होंने उसे कण्ठ से लगाते हुए कहा—"वत्स, अधीर न हो। मुझे सन्तोष है कि तुम निरापद अपनी जन्मभूमि में पहुँच गए हो। मेरा दायित्व पूर्ण हो गया। अब मोह ममता मत फैलाओ। तुम्हारे निष्कपट स्नेह से मैं भली-भाँति परिचित हूँ। मुझे अब अपना कर्त्तव्य पालन करने दो।" कहते-कहते वह स्वयं अधीर हो गए।

"गुरुदेव, तब मैं भी आपके साथ अग्नि-प्रवेश करूँगा।"

"नहीं वत्स, यह तुम्हारे वयस के अनुकूल नहीं है। इस शरीर द्वारा तुम्हारी साधना अभी पूर्ण नहीं हुई है। प्रथम इस शरीर का सदुपयोग कर लो। शास्त्रों का ऐसा ही विधान है।"

"परन्तु आपका वियोग तो मैं सहन नहीं कर सकता।"

"जो कुछ मैं जानता था, वह सब तुम्हें बता दिया है। साधना करना अब तुम्हारा काम है। शारीरिक वियोग क्षणिक है। आगामी जीवन में हम फिर मिलेंगे, क्योंकि जीवों का पारस्परिक स्नेह-बन्धन उन दोनों को आगामी जीवन में पुनः मिलाता है।"

"परन्तु········परन्तु।"

मासपा ने आदेशपूर्ण स्वर में कहा—"राहुल सावधान हो। मैं तुम्हें अग्नि प्रवेश की आज्ञा नहीं दे सकता। मोह-ममता को त्याग करो, वे जड़ता के चिन्ह हैं। क्या मेरी शिक्षा निरर्थक करोगे?"

यशोधर ने आसुओं को पोंछते हुए कहा—"आपकी इच्छा के विपरीत कुछ नहीं करूँगा, किन्तु मन नहीं मानता।"

"साधक को पहले अपने मन को वशीभूत करना होता है। मेरा आशीर्वाद तुम्हारी सतत रक्षा करेगा। चलो, शीघ्रता से काष्ठ इकट्ठा करो। समय बहुत अल्प है। ठीक मध्याह्न में अग्नि-प्रवेश का मुहूर्त रिमपोचे ने स्थिर किया है। उसमें एक विपल का भी अन्तर न होना चाहिए।"

यह कह कर वह शीघ्रता से काष्ठ भारों को उठाकर एक स्थान पर डालने लगे। यशोधर को भी वैसा ही करना पड़ा। फिर दोनों में कोई वार्ता नहीं हुई।

कुछ घड़ियों में काष्ठ समुचित मात्रा में इकट्ठा हो गया। मासपा ने दोनों चिताओं को पास-पास सजाया। जब चिता बनकर पूर्ण हो गई, तब बासवा ने आकर कहा—"राहुल, हम यतियों को अग्नि-दान देने की परम्परा शिष्यों द्वारा प्रचलित है। शिष्य पुत्र स्थानीय होता है, अतएव मैं और मासपा दोनों चिता रोहण कर समाधिस्थ होते हैं। तुम अग्नि लिए तैयार रहो, जब सूर्य आकाश के मध्य भाग में प्रवेश करे, तब तुम इसे प्रज्वलित कर देना। समय का ज्ञान शलाका-प्रणाली से ज्ञात करते रहना। और यह द्रव्य लो, जो मैं मन्दिर के कोष से ले आया था। इसमें स्वर्ण, रत्न, और भारतीय मुद्रायें हैं। अपने घर तक पहुँचने के लिये जो आवश्यक हो, उसे ऋण-रूप में ले लेना। घर पहुँच कर इस निधि को पूर्ण कर तिब्बत के शरणार्थियों के कोष में जमा कर देना। मेरे गुरुदेव को, जो तुम्हारी बुआ गायत्री की कुक्षि से उत्पन्न हुए हैं, मेरे शत-शत प्रणाम निवेदन करना। तुम योगसाधना में सदैव प्रवृत्त रहो। यही मेरा अन्तिम आशिर्वाद है। ॐमणें पद्मे हुं।"

यशोधर ने उनको साष्टांग प्रणाम किया। बासबा ने उसके शीश को छूकर आशीर्वाद दिया। इसी प्रकार मासपा ने भी उसे आशीर्वाद दिया। वे दोनों काष्ठासनों पर बैठ कर समाधिस्थ हो गए। यशो तीन अंगुल की शलाका पृथ्वी पर स्थापित कर समय की गणना करने लगा। जहाँ मध्याह्न-काल आया, यशोधर ने गुरुदेव की आज्ञानुसार उनको चिताओं में अग्निप्रवेश कर दिया। लाल लाल लपटों ने क्षणमात्र में उनके काष्ठवत् शुष्क शरीरों को अपने मुख में छिपा लिया।

यशोधर का अश्रु प्रवाह उसकी मानसिक अग्नि को शनैः शनैः बुझाने का प्रयत्न करने लगा। ठीक उसी समय तिब्बतेश्वर ने भारतीय सीमा में रेल-यात्रा आरम्भ की।

२७

अविनाश बाबू ने मणिमाला के कमरे में प्रवेश करते हुए सोत्साह कहा—"सुनती हो, यशो सकुशल भारत आ गया है। तेजपुर से उसका तार आया है।"

मणिमाला के कमरे में चन्द्रकला, गायत्री, विनोद और श्यामसुन्दर बैठे आगामी कार्यक्रम पर परामर्श कर रहे थे। आनन्द एक ओर बैठा खिलौनों के साथ खेल रहा था। अविनाश बाबू की ओर सबका ध्यान तुरन्त आकृष्ट हो गया।

सबसे पहले गायत्री ने कहा—"भगवान को कोटिशः धन्यवाद है। भैया जरा वह तार दिखाइये।"

अविनाश बाबू ने तार समाचार का लिफाफा उसकी ओर बढ़ा दिया, किन्तु मणिमाला ने झपट कर उसे पहले ही ले लिया। गायत्री हाथ फैलाये ही रह गई।

जब लिफाफा उसे न मिला, तब गायत्री ने मणिमाला का हाथ पकड़ते हुए कहा—"पहले मैं पढ़ूंगी भाभी !"

"दीदी, मैं उसकी माँ हूँ, पहले मैं पढ़ूँगी।"

"भाभी, मैंने उसको पाल—पोस कर बड़ा किया है, मेरा अधिकार पहले है।"

"दीदी, मैंने उसे जन्म दिया है, मेरा अधिकार पहले है।"

"यदि वस्तुतः तुम इसकी माँ होतीं, तो क्या उसे भगवा पहना कर घर

से निकालतीं और दुर्गम पहाड़ों में सन्यासियों के साथ जाने की प्रेरणा देती ।"

"इसके लिए मुझे दोष न दो, अपने भाई से लड़ो, जिन्होंने पिता के अधिकार का उपयोग कर मेरे ऊपर अत्याचार किया, और मेरी इच्छा के विपरीत उसको जंगलों और पहाड़ों में भटकने के लिए भेज दिया ।"

इसी वाद-विवाद में मौका पाकर चन्द्रकला ने मणिमाला के हाथ से लिफाफा छीन लिया और वह भागकर कमरे के बाहर जाती हुई बोली— "सब से पहले अधिकार बहिन का है। अम्मा और मामी मुझे भुलाए ही देती हैं ।"

चन्द्रकला अब गायत्री को अम्मा, और मणिमाला को मामी कहती थी। गायत्री ने उसे गोद ले लिया था, तथा अब वह उसके आग्रह से उसके साथ रहने लगी थी। वह उनमें इतनी हिल-मिल गई थी, मानो वह वहीं जन्मी हो। उसके निष्कपट स्नेह की छाप सबके मानस-पटल पर पड़ी थी और सब उसे प्यार करते थे।

चन्द्रकला के लिफाफा छीन लेने पर अविनाश बाबू ने हँस कर कहा— "दो बिल्लियों की लड़ाई में बन्दर ही लाभ उठाता है ।"

मणिमाला और गायत्री झेंपी दृष्टि से एक दूसरे को देखने लगी।

चन्द्रकला ने लिफाफा खोल कर पत्र निकालते हुए कहा—"मैं अपने साथ सबको लाभान्वित करूँगी, अर्थात् जोर से पढ़ूंगी, ताकि आप सब लोग सुन लें। विनोद भाई, आओ मेरे साथ तुम भी पढ़ो। बहिन को भाई के लिए कुछ भी अदेय नहीं है ।"

विनोद की उत्सुकता कुछ कम नहीं थी। चन्द्रकला के निमन्त्रण पर वह उसके समीप चला गया। चन्द्रकला ने तार का फार्म उसे पकड़ा दिया, और पढ़ने को कहा।

विनोद ने जो कुछ पढ़ा, उसका आशय था—"मैं आचार्य बासबा और मासपा के साथ तिब्बतेश्वर का अनुसरण करता हुआ, अट्ठारह दिनों की यात्रा के पश्चात तेजपुर पहुँच गया। कलकत्ता होकर हावड़ा–दिल्ली मेल से मुगलसराय पहुँचूंगा। –यशोधर ।"

गायत्री ने पूछा—"विनू यह तो बताओ, तेजपुर से काशी का कितने दिनों का रस्ता है।"

मणिमाला ने कहा—"विनू, मत बताना।"

"विनू तुम्हारा लड़का है, लेकिन मेरा भी भतीजा है। मिनिस्ट्री की शान यहाँ भी दिखा रही हो, यह न भूल जाना कि जनता होने के नाते मैं तुम्हारी स्वामिनी हूँ।"

"हाँ मैं ऐसी सेविका हूँ जिसका हुक्म आप लोगों को मानना होता है।"

"हनुमान जी जैसे सेवक की इच्छा भगवान रामचन्द्र कब टाल सकते थे। वस्तुत: सेवक ही स्वामी पर शासन करता है। भक्त के बश में हैं भगवान।"

अविनाश बाबू बोले—"सेवक का जब स्वार्थ-भाव लुप्त हो जाता है, तब वह स्वामीत्व प्राप्त करता है। त्याग से जो शक्ति प्राप्त होती है, वह अजेय है।"

"महात्मा गाँधी, और संत विनोबा ने स्वार्थ को त्याग कर ही महत्ता प्राप्त की है। सच्चा त्याग वस्तुत: निजत्व की भावना का त्याग है। जैसा कहा भी है—

अयं निज: परोवेत्ति गणना लघुचेतसां।

उदार चारितांनाम् वसुधैवहि कुटुम्बकम्।

"यही संत विनोवा का मूल मंत्र है।" सहास्य चन्द्रकला ने योग दिया।

"तुम अब सर्वोदयी हो गयी?"

"हाँ मामा जी, मैं और विनू भैया दोनों सर्वोदय में काम करेंगे।"

"साम्यवाद का सच्चा स्वरूप भी वही है।"

"अच्छा, अच्छा अब खरबूजा रंग पकड़ने लगा!" मणिमाला ने हँसते हुए कहा।

"अरे इसमें तअज्जुब की बात क्या है। खरबूजा खरबूजे को देखकर रंग पकड़ता ही है। यह लोकोक्ति निस्सार नहीं है।"

"इसका मतलब यह है कि आप अब कम्यूनी चोगा उतार कर सर्वोदयी चोगा धारण कर रहे हैं?"

"कम्यूनिज्म और सर्वोदय में जहाँ तक सिद्धान्तों का प्रश्न है, कोई अन्तर नहीं है। परन्तु साधनों में अन्तर अवश्य है।"

"मामाजी, साधनों के अन्तर से साध्य में भी अन्तर आता है। वस्तुत: साध्य की उत्कृष्टता साधना से बनती है। अनुपान से औषधि के गुणों में अन्तर आ जाता है।"

'तुम्हारे कथन में कुछ सत्यता अवश्य है, चन्द्रकला। क्रान्तिकारी होने के नाते उसी पद्धति पर मेरा विश्वास जमा रहा, और पश्चिमीय कम्यूनिज्म के सिद्धान्त मेरे मनोकूल प्रतीत हुए। पश्चिमीय भौतिकवादी होने से वह भौतिक साधनों का आश्रय लेता है, परन्तु भारतीय सिद्धान्त इसके विपरीत सूक्ष्म आत्मिक तत्वों पर आधारित होने से सर्वदा कल्याणमय हैं।"

"अस्तु, सुबह का भूला यदि शाम को घर पहुँच जाय तो वह भूला नहीं कहाता !" मणिमाला ने फिकरा कसा।

"हमें क्या मालूम था कि सिद्धन्तों की आड़ में विश्व-विजय की अभि-सन्धि छिपी हुई है।" विनोद ने पिता की सहायता की।

"यह तो साधारण बुद्धि रखने वाला व्यक्ति भी सहज ही समझ सकता है कि भौतिकवादी विदेशी कभी नि:स्वार्थ सहायता नहीं करेंगे। जरा साम्यवाद का ढिंढोरा पीटने वाले देशों को देखिये, वहाँ स्वार्थवाद नग्न रूप में ताण्डव कर रहा है। नेतृत्व अर्थात् एकाधिकार प्राप्त करने के लिए एक ही सिद्धांतों के अनुयायियों की उसी प्रकार हत्यायें की जाती हैं, जैसे राज्य प्राप्त करने के लिये उसके उत्तराधिकारियों में रक्तपात करने की परम्परा चली आती है।" मणिमाला ने अविनाश बाबू पर पुन: प्रहार किया।

"मामी जी के कथन में बहुत कुछ सत्यता है।" चन्द्रकला ने समर्थन किया।

"सिद्धांतों के लिए कोई नहीं जूझता। जूझन होती है अपनी महत्वा-कांक्षाओं की पूर्ति के लिए। जनता को पशु बल से पंगु बनाकर पशुओं की भांति उन्हें हांकने की क्रिया का नाम कम्यूनिज्म है। मुट्ठी भर व्यक्तियों में समझौता होकर पार्टी बनती है, और वह सत्ता अपना कर देश भर के

व्यक्तियों की वैयक्तिक स्वतंत्रता हर लेती है। वह मानव को मानव नहीं रहने देती वरन् उन्हें मशीन का एक पुर्जा बनने के लिए मजबूर करती है। पार्टी की दशा और भी शोचनीय होती है, वहाँ एक दूसरे से सभी शंकित रहते हैं। वे यह भी नहीं जानते कि दूसरे दिन का प्रातःकाल उन्हें देखने को मिलेगा या नहीं। आप ही बताइये कि इसके अतिरिक्त कम्यूनिज्म का क्या कोई दूसरा रूप है ?" मणिमाला ने पुनः प्रहार किया।

"एकमना होने के लिए ऐसा किया जाता है। मानव-स्वभाव चंचल है, और वह बिना दबाव, अथवा भय के एक दिशा में प्रवृत्त नहीं होता।"

"होता है, यदि उसके लिए प्रयत्न किया जाय। किन्तु उसके लिए नेता को तपस्या और त्याग करना पड़ता है। महात्मा गाँधी ने समग्र भारत वर्ष की जनता को आजादी प्राप्त करने के लिये एकमन और एक-प्राण करने में सफलता पाई थी। आज संत विनोबा अपने त्याग तथा तपस्या से समता की भावना जन-जन में भर रहे हैं। तिलंगाना में जो कम्यूनिस्ट नहीं कर पाये, वह सन्त ने कर दिखाया। विनोबा का मूल मंत्र स्वार्थ-त्याग आज सबके हृदय में घर करने लगा है।" चन्द्रकला ने कहा।

गायत्री ने उनके वाद-विवाद से ऊब कर कहा—"जहाँ दो राजनीतिज्ञ बैठेंगे, वहाँ की शान्ति अवश्य नष्ट हो जायगी। उधर वर्षों के पश्चात् मौत के मुख से निकल कर लड़का घर आ रहा है और इधर राजनीति के पचड़े उठाये जाकर आपस में नोंक-झोंक चल रही है। चाहिए था घर को बन्दनवारों से सजाना, भगवान की पूजा करना, भगवान का प्रसाद बाँटना, और यहाँ हो रहा है वाद-विवाद, झगड़ा ! मैं तो तुम लोगों की राजनीति से ऊब गई हूँ।"

विनोद ने अपनी बुआ के समर्थन में कहा—"आप बिल्कुल ठीक कहती हैं, बुआजी।"

"बस, यशो आ जावे, मैं उसको लेकर अलग रहूँगी, फिर तुम सब आपस में कटना जूझना। घर में भी राजनीति, बाहर भी राजनीति ! अजीब तमाशा है।"

"बात यह है कि तुम्हारी भाभी के मन में जो बुग्ज भरा हुआ है,वह कैसे दूर होगा, जब तक…………।" अविनाश बाबू ने स्वरक्षा में कहा।

"सारा दोष तो मेरा है। तबेले की बला बन्दर के सिर।"

"मामी जी, बन्दर नहीं वँदरिया अर्थात् मेरे सिर पर रहने दीजिए।"

यह कहकर चन्द्रकला हँसने लगी। उसकी हँसी में सबों ने योग दिया। हास्य की धारा में वातावरण की शुष्कता बह गई।

गायत्री ने कहा—"मैंने पूछा था कि तेजपुर से मुगलसराय तक कितने दिनों का रास्ता है, इस साधारण प्रश्न का जवाब नहीं मिला है।"

"रेल का टाइम-टेबुल देखूं तो बतलाऊँ।" विनोद ने उत्तर दिया।

"देखो न, क्या उसके देखने के लिए किसी पण्डित से मुहूर्त निकलवाना पड़ेगा।"

"तब आइए, हम लोग दूसरे कमरे में चलें।"

ठीक है, मैं भी यही चाहती हूँ !"

"अम्मा जी, क्या मैं भी चल सकती हूँ।" चन्द्रकला ने पूछा।

"नहीं तू भी राजनीतिज्ञ है, तू अपनी मामी-मामा के पास ठहर।"

यह कहकर गायत्री शीघ्रता से विनोद के साथ चली गई।

२८

श्री भगवान रामचन्द्र के आगमन से कौशिल्या को जितना हार्दिक हर्ष हुआ होगा, उससे यदि अधिक नहीं तो समतुल्य अवश्य यशोधर के प्रवास से आगमन पर गायत्री को हुआ। जब दाढ़ी मूछों से मण्डित यशोधर गाड़ी से सर्व-प्रथम गायत्री के पैर छूने के लिए झुका, वह घबड़ा कर दो पग पीछे हट गई और चकित दृष्टि से उस नवयुवक को देखने लगी। मणिमाला और अविनाश बाबू उसकी घबड़ाहट देख खिलखिला कर हँस पड़े।

मणिमाला ने हँसते हुए कहा—"यशो, अपना नाम बताकर पहले अपना परिचय दो, तब तुम्हारी बुआ चरण-स्पर्श कराएँगी । इतने दिनों में तुझे भूल गई हैं ।"

गायत्री ने एक बार मणिमाला और दूसरी बार यशोधर को देखा । उसके मन ने प्रश्न किया कि क्या यही यशोधर है, जो कुछ वर्ष पहले तिब्बत गया था ?

यशोधर ने गायत्री के चरण-स्पर्श करते हुये कहा—"बुआ जी, मैं यशोधर आप को प्रणाम करता हूँ ।"

वाणी पहचान कर गायत्री का भ्रम दूर हो गया, उसने अश्रु-पूरित नेत्रों से उसे उठाते हुए कहा—"बेटा यशो, तू इतना बदल गया ।" कहते कहते विह्वल हो उसने उसका शिर चूम कर बलैया ली । इसके बाद उसकी ठोड़ी पकड़ कर उसे देखते हुए बोली—"तू अब दाढ़ी मूछों वाला हो गया !"

यशोधर हँसने लगा । इसके पश्चात् उसने क्रमशः मणिमाला, अविनाश बाबू और विनोद के चरण-स्पर्श किए । नागार्जुन एक ओर खड़े उनका मिलन देख रहे थे । जब यशोधर ने उनकी चरण वन्दना की, तब नागार्जुन ने आशीर्वाद देकर पूछा——"महात्मा बासबा और मासपा को कहाँ छोड़ आये ?"

बासबा और मासपा का नाम सुनकर गायत्री का मुख अकस्मात पीला पड़ गया । वह भयाकुल दृष्टि से चारों ओर देखने लगी । सबों ने गायत्री का यह भाव परिवर्तन लक्ष्य किया । बासबा से सम्बन्धित घटनायें, जो अभी तक विस्मृत थीं, उभर आईं और वह रेल के डिब्बे की ओर देखने लगी ।

यशोधर ने उत्तर दिया–"उन दोनों ने अग्नि—समाधि ले ली ।"

नागार्जुन ने पूछा–"अग्नि समाधि ले ली, क्या मतलब ?"

कुछ अपराधों के प्रायश्चित स्वरूप वे दोनों चितारोहण कर समाधिस्थ हुए और मैंने उनकी आज्ञानुसार चिता में अग्नि लगाई । उन्होंने निर्वाण प्राप्त कर लिया ।"

"ऐसा उनसे क्या अपराध हुआ ?"

"महर्षि बासबा ने तिब्बतेश्वर के देश-त्याग में सहायता देने के लिए प्राकृतिक शक्तियों को अपनी योग शक्ति से सँचालित करने का अपराध किया था।"

"वह किस प्रकार ?"

"चीनी सेनाओं ने ल्हासा के चारों ओर इतना कड़ा घेरा डाल रखा था कि कोई पक्षी पर नहीं मार सकता था। तिब्बत की राज्य सभा ने तिब्बतेश्वर को अविलम्ब देश त्याग कर भारत में शरण लेने का परामर्श दिया। किन्तु प्रश्न था कि कैसे चीनी सेनाओं के घेरे से निकला जाय ! लड़-भिड़ कर निकलना असम्भव था, क्योंकि चीनी सेना संख्या में अधिक थी और उनके पास आधुनिकतम हथियार थे, जिनका मुकाबला तिब्बती सेना कदापि न कर सकती थी। केवल दैविक सहायता से वह सुरक्षित तिब्बत त्याग सकते थे। अतएव एक राज कर्मचारी ने इस कार्य के लिए बासबा की सहायता मांगी। बासबा ने देशहित और राज्यहित के लिए सहायता देना स्वीकार किया। नव वर्ष के प्रथम दिन तिब्बत त्यागने की तिथि निश्चित हुई थी। तिब्बतेश्वर के साथ उनके सभासदों और कोष को भी ले जाना था। इतने व्यक्तियों तथा सामान के साथ उनके घेरे से तब तक निकलना सम्भव नहीं था, जब तक कोई ऐसी प्राकृतिक हलचल न उत्पन्न की जावे, जिससे उनका घेरा स्वयमेव नष्ट हो जाय और वे स्वयं अपनी प्राण-रक्षा में संलग्न हो जाँय। इस उद्देश्य से बासबा ने अपने योगबल से भयंकर अंधड़ उत्पन्न किया, जिससे उनकी सारी व्यवस्था भंग हो गई। अकस्मात् उसी दिन मुझे चीनी शिविर में उनके एक शक्ति शाली व्यक्ति काँग ने पकड़ मँगवाया था। काँग ने मेरा परिचय प्राप्त कर बड़ी उदारता से मेरे साथ व्यवहार किया और मैं भोजन कर सो गया। जागने पर देखता हूँ कि बड़ा भीषण तूफान उठा हुआ है। अपने जीवन में ऐसी विकराल आँधी मैंने न देखी और न सुनी थी। उनके शिविर आंधी में उड़ रहे थे, उनके खूँटे उखड़ गये थे। बन्धन टूट गए थे। रेत की कंकणियों को उड़ाती हुई झंझा थपेड़े मार रही थी, रेणु के छोटे-छोटे कण उनकी आंखों में

बरबस घुसकर उन्हें अन्धा बना रहे थे। उस आंधी तूफान से उनका समस्त प्रबन्ध उलट-पलट गया । ऐसा अवसर पाकर तिब्बतेश्वर बिना किसी कठिनाई के उनकी आंखों के नीचे से होकर निकल गये, और रातोरात चलकर उनकी पकड़ से बाहर हो गए।"

मणिमाला ने पूछा—"चीनियों के वायुयान भी क्या उस आंधी में नष्ट हो गये थे ? वे तो बड़ी सुगमता से उनका पीछा कर सकते थे।"

"इसका प्रबन्ध भी महर्षि बासबा ने किया । उन्होंने तिब्बत के उस प्रान्त के आकाश को, जिधर से उनके जाने की योजना बनी थी, अत्यन्त घने बादलों से आच्छादित कर दिया, जिनको बेधकर देखना असंभव था। चीनियों के वायुयान उड़ते थे, किन्तु वे तिब्बतेश्वर को देखने में असमर्थ थे । एक दिन जब हम लोग ची दर्रे पर थे, चीनी वायुयानों का रव हमने सुना, किन्तु घटा टोप बादलों के कारण न वे हमें देख सके और न हम उनको ।"

"क्या उनके वायुयान बादलों के नीचे नहीं उड़ सकते थे ?'

"प्रयत्न उन्होंने अवश्य किया होगा, परन्तु वे सफल नहीं हुये । पृथ्वी तल के समीप उड़ने की क्षमता इसलिये नहीं थी कि पहाड़ों के शृंगों से टकराने का भय था । महर्षि बासबा ने अपने प्रबन्ध में कोई सन्धि नहीं छोड़ी ।"

"यह तो बड़ी आश्चर्य-जनक घटना है"

"हां मां, योग का ऐसा चमत्कार आधुनिक युग में न देखा और न सुना गया है । और इससे भी अधिक चमत्कारिक बात यह है कि बादल उतने दिनों तक बराबर छाये रहे , जितने दिनों तिब्बतेश्वर को भारत–सीमा तक पहुँचने की आवश्यकता थी ।"

"अर्थात् बादल पन्द्रह-बीस दिनों तक बराबर छाए रहे ?"

"हाँ, और वे उसी दिन फटे तथा सूर्य भगवान के दर्शन हुये, जब तिब्बतेश्वर और हम भारत सीमा में सुरक्षित पहुँच गये।"

"इतने दिनों तक सूर्य बिल्कुल नहीं निकला ?"

"नहीं, एक क्षण के लिये भी नहीं। पवन भी इतना प्रबल था कि पैर पृथ्वी पर टिकते ही न थे, किन्तु फिर भी हवा की प्रचंडता हमारे चलने में

बाधक नहीं थी, बल्कि यदि मैं कहूँ कि वह हमें ठेलती हुई अग्रसर कर रही थी, तो अतिशयोक्ति न होगी। पृथ्वी पर चलते हुये भी हमें यही प्रतीत होता था कि मानों हम हवा में उड़ रहे हैं। ऊँची-नीची घाटियाँ, ऊबड़-खाबड़ मार्ग हम बिना किसी श्रम के और थकान महसूस किये पार करते हुए अग्रसर होते जाते थे। महीनों का रास्ता हमने केवल अट्ठारह दिनों में पार किया।"

"रास्ते में तुम्हारे खाने-पीने की क्या व्यवस्था थी ? किसी कृषक अथवा भेड़ चराने वालों के घर रात्रि में अवश्य ठहरते रहे होंगे ?"

"नहीं माँ। गुरु कृपा से हमें भोजन की कोई आवश्यकता नहीं हुई। महर्षि के आदेशानुसार हमने 'सांगिका' नामक लता की बहुत सी फलियाँ तोड़कर अपने पास रख ली थीं। चार-चार दिनों के अन्तर में हम एक-एक फली अग्नि में भून कर उसके बीज खा लेते थे, जिसमें हमें भूख-प्यास कुछ न लगती थी। हमारा शरीर इतना हलका हो गया था कि हमें उसका कोई भार प्रतीत नहीं होता था। रात्रि में केवल डेढ़-दो प्रहर विश्राम करते थे, पत्थरों की शिलाओं पर, और एक कम्बल से हमारा जाड़ा मिट जाता था। यह सब सांगिका के प्रभाव से होता था। अन्न खाने से ही सरदी-गरमी सताती है। मैं तो अब इस सिद्धांत पर पहुँचा हूँ कि अन्न ही सब रोगों की जड़ है।"

विनोद ने सहर्ष पूछा—"यशो, सांगिका की कुछ फलियां अपने साथ लाये हो क्या ?"

"हमने उस लता से बहुत फलियाँ तोड़ ली थीं। उसमें से बहुत कम खर्च हुई है, शेष मेरे पास हैं।"

"जरा देखूँ तो, बड़ी अद्भुत वस्तु है। अभी तक हम सुनते ही थे कि पहाड़ों पर ऐसे फल-फूल, कन्द-मूल है, जिनको खा लेने से भूख नहीं लगती, जिनका व्यवहार तपस्वी और साधक करते हैं।"

यशोधर ने अपना उत्तरीय खोंल कर सब फलियां विनोद को पकड़ा दीं। एक-एक उठाकर सब लोग देखने लगे।

विनोद ने कहा—"ये तो लुबिया की फली की भांति हैं।"

"जी हां, इनको कच्चा नहीं खाया जाता। अग्नि में भूनने से इनके बीज, जो चावल की तरह होते हैं, पक जाते हैं। एक फली में आठ-दस बीजों से अधिक नहीं निकलते। उनमें से जो कच्चे रह गये हों, उन्हें फेंक देना चाहिये। बीज पकने पर बिल्कुल भात-कणों के समान श्वेतवर्ण के हो जाते हैं। छः सात बीज खाकर पानी पी लेने से, थोड़ी देर बाद ऐसा मालूम होता है कि मानों अभी भर पेट खाया है। चार दिन तक न भूख लगती है और न प्यास है, परन्तु बीच-बीच में जल पी लेना चाहिए, जिससे रक्त में जल की कमी न होने पावे।"

"भूख बिल्कुल नहीं लगती?"

नहीं, किसी वस्तु के खाने की इच्छा तक नहीं होती, यहाँ तक कि दूध पीने की भी नहीं। केवल जल पीजिये, यद्यपि प्यास सताती नहीं। गुरुदेव बताते थे कि योगियों के कृश होने का यही कारण है कि वे जल भी नहीं पीते, इससे रक्त गाढ़ा होकर सूखने लगता है; और प्राणायाम से वह संचालित होता रहता है।"

"कमजोरी बिल्कुल नहीं आती?"

"नहीं, वरन् इसके विपरीत अदम्य तेज और शक्ति रहती है।"

"बड़ी अद्भुत बात है। काश, यदि इसकी खेती की जाने लगे, तो संसार की अन्न–समस्या का अन्त हो जाय।"

"परन्तु भैया, यह गृहस्थों के लिये नहीं है। यह बड़े दुर्गम स्थानों में स्वतः उत्पन्न होती है, और प्रकृति भी बड़ी सतर्कता से इसकी रक्षा करती है। इस लता के समीप चारों ओर वृश्चिक लता होती है, जिसका कांटा छू जाने से बिच्छू के डंक मारने की सी पीड़ा होती है। अनजान व्यक्ति यदि इसकी फलियां तोड़ने का प्रयत्न करेगा, तो वह वृश्चिक लता के कांटों का शिकार होगा, और वह तोड़ना भूल कर प्राण बचाने के लिए भागा-भागा फिरेगा। मैं उन कांटों का शिकार हो चुका हूँ।"

"अच्छा! तुम ठीक कैसे हुए? क्या बासबा ने मंत्र-बल का प्रयोग किया था।"

"नहीं भैया; उन्होंने मन्त्र बल का प्रयोग नहीं किया, और न उसकी कोई आवश्यकता ही थी। इसी वृश्चिक लता के समीप एक दूसरी लता पैदा होती है जिसका रस क्षत-स्थान पर लगा देने से विष तुरन्त उतर जाता है। वही उन्होंने किया।"

गायत्री ने कहा—"भगवान की महिमा अपरम्पार है।"

नागार्जुन ने कहा—"वत्स तुम इस सांगिका लता का गुण बखान करने लगे, और प्रस्तुत विषय भूल ही गए। आचार्य बासबा को अग्नि-प्रवेश करने की क्या आवश्यकता हुई ?"

"भदंत जी, उनका कहना था कि उन्होंने अपनी योगशक्ति से प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन, उनको स्वेच्छानुसार संचालित करके किया है। यह उनकी दृष्टि में यौगिक शास्त्र के अनुसार महान अपराध था। इससे अहंकार उत्पन्न होने की संभावना रहती है, जो योग-साधकों के लिए वर्जित है तथा गुरुतर अपराध होने के कारण प्रायश्चित अपेक्षित है।"

"यह तो उन्होंने लोक-कल्याण के लिए किया था, स्वार्थ-साधना के लिए नहीं।"

"इससे अधिक परोपकार, देशोपकार और क्या होगा, किन्तु वह किसी प्रकार माने नहीं, यद्यपि आचार्य मासपा ने भी उन्हें तर्कों से परास्त करने का यत्न किया था।"

"और आचार्य मासपा ने क्यों प्राण त्याग किये ?"

"इसके मूल कारण आप ही थे भदंत जी !"

"मासपा के प्राण त्याग करने का कारण मैं था ? वत्स, तुम क्या कहते हो ?"

"डोर जी को तो आपने ही मासपा के साथ भेजा था !"

डोर जी का नाम सुनते ही नागार्जुन का चेहरा उतर गया। वह भीत दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे।

"डोरजी ने क्या अपना भेद प्रकट कर दिया था ?"

"उसने नहीं, किन्तु घटनाओं ने स्वयं प्रकट कर दिया।"

"वह कैसे ?"

यशोधर ने विनोद की ओर देखा, फिर कहा—"उसकी कहानी बड़ी है, और यह उपयुक्त अवसर भी नहीं है।"

नागार्जुन चुप होकर सोचने लगे।

गायत्री ने कहा—"क्या स्टेशन पर ही सब बातें हो जाँयगी ? घर नहीं चला जायगा ?" कहते-कहते उसकी दृष्टि चन्द्रकला पर गई, जो एक ओर दुबकी खड़ी आनन्द का मन बहला रही थी। उसने उसे बुलाते हुए कहा—"अरी चन्द्रा, यहाँ आ, अपने भाई से नहीं मिलेगी क्या ?"

यशोधर की दृष्टि उधर गई। गायत्री के अह्वान पर वह यशोधर के समीप आई, और प्रणाम करती हुई बोली—"भैया, आप प्रसन्न तो हैं।"

यशोधर ने प्रश्न भरी दृष्टि से मणिमाला, और गायत्री की ओर देखा। गायत्री ने मुस्कुराते हुए कहा—"यह मेरी दत्तक पुत्री है। नाम चन्द्रकला है। विनोद की बीमारी में मैंनं इसे अनायास पाया, यह पहले विनोद की धर्म-बहिन बनी, पीछे मेरी पुत्री। महिला विद्यालय में संस्कृत प्राध्यापिका थी, किन्तु मैंने नौकरी छुड़वा दी, अब मेरे साथ रहती है। तेरे प्रवास में मैंने यह पुत्री पाई है।"

"वाह बुआ जी, तब तो मैं फिर प्रवास में जाऊँगा, जिससे तुमको दूसरी पुत्री मिल जाय।" उसके कथन से सभी हँस पड़े।

गायत्री ने हँसते हुए कहा—'प्रवास मैं अब क्यों जाने दूंगी। अब तेरे रहने से एक दूसरी कन्या अपनी पुत्र-वधू बनाकर जाऊँगी। बहुत जल्द तेरे गले में वह सांकल डाल दूंगी, जो तुझे घर से जकड़ देगी। भाभी, यशो का विवाह मैं करूँगी और विनू का तुम करना। ठीक है न ?"

"तुम दोनों का विवाह करना दीदी। इन दोनों को तुमने ही पाल-पोस कर बड़ा किया है। ये दोनों तुम्हारे ही बच्चे हैं।"

"नहीं मैं अन्याय नहीं करूँगी। बड़ा तुम्हारा है और छोटा मेरा।"

अविनाश बाबू ने कहा—"हिस्सा बांट घर में करना। बाजे वाले प्रतीक्षा

कर रहे हैं।"

'यशोधर ने पूछा—"बाबू जी, बाजे वाले कैसे ?"

"यह सब बातें अपनी बुआ से पूछो, मैं कुछ नहीं जानता। सब उन्हीं का प्रबन्ध है।"

मणिमाला ने हँसते हुए कहा—"तू प्रवास से लौटा है, इसलिए तेरे स्वागत में दीदी ने पुलिस बैंड मँगवाया है। गाजे-बाजे से तेरा प्रवेश घर में होगा। रास्ते भर रुपयों-पैसों की उछाल होगी। घर में अलग बाजे बजेंगे। सत्यनारायण की कथा कराई जायगी, एक सौ आठ ब्राह्मणों को भोजन का निमन्त्रण दिया गया है। हवन, जप, यज्ञ सब होंगे और न-मालूम वह क्या-क्या करेंगी, बस वही जानती हैं।',

यशोधर ने चकित होकर पूछा—"बुआ जी, आप यह क्या तमाशा कर रही हैं?"

"तू पूछने वाला कौन है ? जो मेरा मन है, वह करती हूँ। चल, गाड़ी में बैठ।"

"चन्द्रकला ने हँसते हुए कहा—"भैया, मोटर फूलों से सजाई गई है।"

':तू चुप रह चन्द्रा, तेरे विवाह में इससे चौगुना करूँगी, तू यशो से ईर्ष्या मत कर।"

यह कह कर वह यशोधर का हाथ पकड़ कर घसीटती हुई सबसे आगे चली। सब लोग उनका अनुसरण करने लगे।

२६

रात्रि के एकान्त में भी मणिमाला को नीद नहीं आ रही थी। वह विकलता से करवटें बदल रही थी। उसका मस्तिष्क अनेक चिन्ताओं से

दुखित, क्लान्त और परेशान हो गया था। उसका विचार-कोष भँवर की भाँति मंडरा रहा था, जिसमें कोई एक विचार स्थिर नहीं रहने पाता। वह अजीब उलझनों में पड़ी हुई उन्हीं में डूब-उतरा रही थी।

उसकी विकलता देखकर अविनाश बाबू ने पूछा—"क्या बात है ? नींद नहीं आती क्या ?"

उसने कोई उत्तर नहीं दिया, जैसे उसने सुना ही न हो।

थोड़ी देर प्रतीक्षा करने के पश्चात् उन्होंने फिर पूछा–"बोलती क्यों नहीं, क्या बात है ?"

मणिमाला ने रुद्ध कण्ठ से कहा—"क्या बोलूं ? घर में और बाहर जब विरोधाग्नि प्रज्वलित है, तब क्या किसी को नींद आ सकती ?"

"अब तो घर में कोई विरोध नहीं है। मैंने तुम्हारे नेतृत्व में चलना स्वीकार कर लिया है। जब घर का विरोध मिट गया, तब बाहर के विरोध का मुकाबला किया जा सकता है।"

"तुम्हारा क्या विश्वास ? अभी जब धक्का लगा, तब तुम्हारी बुद्धि ठीक राह पर आई, किन्तु वह कब तक स्थिर रहेगी, नहीं कहा जा सकता।"

"मेरा ऐसा अविश्वसनीय आचरण तो कभी नहीं रहा !"

"जब हम दोनों क्रान्ति में संलग्न थे तब नहीं था, किन्तु बाद में परिवर्तन हो गया। ऐसा परिवर्तन, जिसने देश को पुनः गुलाम बनाने का रास्ता खोला। सरहद पर चीनियों की हलचलें बढ़ रही हैं। तिब्बत के पश्चात् अब उनका आक्रमण भारत पर होगा, और हमारे देशवासी ही उनकी सहायता करेंगे, यह कैसी विडम्बना है ! विनोद और तुम आगे बढ़कर उनका स्वागत करोगे !"

"कैसी बातें तुम करती हो ! मेरी आँखें खुल गई हैं।"

"किन्तु उनको बन्द होते क्या देर लगती है। जहाँ सिद्धान्त का भूत सवार हुआ, वहाँ तुरन्त परिवर्तन हो जायगा।"

"जब इतना अविश्वास है, तब मेरे पास कोई उपाय नहीं है।"

"उपाय है, यदि उसे करने का बीड़ा आप उठायें। विश्वास बातों से

नहीं कर्म से होता है।"

"तुम मुझसे कौन काम करवाना चाहती हो ?"

"मैं नहीं करवाना चाहती, आप स्वयं स्वेच्छा से करें। प्रायश्चित मन के परिवर्तन से होता है, और जो काम प्रायश्चित के लिए आवश्यक हैं, वे यदि निष्ठा पूर्वक किये जाते हैं, तब विश्वास भी उत्पन्न होता है। विश्वास के लिए कर्म आवश्यक है।"

"कहता तो हूँ श्रीमती जी, आप मुझसे प्रायश्चित में कौन सा काम करवाना चाहती हैं ?"

"आप स्वयं क्यों नहीं सोच सकते ?"

"देवी जी को जो अभीष्ट हो, वह करने में सद्यःफल की प्राप्ति होगी।"

"देखिए, व्यंग्य मत बोलिए।"

"मैं व्यंग्य नहीं, तथ्य कहता हूँ, जब आपका नेतृत्व स्वीकार कर लिया है तब आपका आदेश पालन करूँगा। यदि क्रान्ति में मैं तुम्हारा नेता था, तो अब शान्ति में तुम नेतृत्व करो, मैं तुम्हारा अनुगमन करूँगा।"

"यदि यह बात आप सत्हृदय से कहते हैं, तब आप अपने अनुगामियों को चीन से लड़ने के लिए सन्नद्ध कीजिए। जो पंचमांगी बनाए गए हैं, उनको देश के प्रति वफादार बनाइए। वे देश का सौदा न कर उस पर अपने प्राण निछावर करें।"

"इसमें क्या कोई सन्देह है ! मैं विश्वास दिलाता हूँ कि अपनी पार्टी के सदस्यों को देश-रक्षा के लिये तैयार करूँगा। तुम भी सहयोग करो।"

"मैं तो आपसे सहयोग मांगती हूँ मेरा तो यह कर्त्तव्य ही है। जितने चीनी देश में रह रहे हैं, उनकी कड़ी निगरानी की जा रही है। उनको पंजीबद्ध किया जा रहा है। उनको तो सहज ही दबाया जा सकता है, क्योंकि उनका रूप खुला हुआ था। असली डर तो है भारतीयों से, जिन पर चीन के कम्यूनिजम का रंग चढ़ा हुआ है, और उसी के लिये आपका सहयोग चाहती हूँ। आप उस पार्टी के संचालकों में थे, मुझे उनके नामों की सूची दीजिए, ताकि उन पर निगरानी रखी जा सके।"

"यह तो विश्वासघात होगा।"

"देखिए आई न वही कठिनाई ! देश के साथ जो गद्दारी कर रहे हैं, उन गद्दारों का नाम बताने को आप विश्वासघात कहते हैं ?"

"जब तक कर्म प्रकट रूप नहीं धारण करता, तब तक कानून लाचार रहता है। केवल विचार-मात्र कभी दण्डनीय नहीं है।"

"यह ठीक है, अभी कानूनी काररवाई कहाँ की जा रही है ? सावधानी और सतर्कता की ओर यह पहला कदम है। निगरानी रखना सतर्क रहना है।"

"यदि मैं स्वयं उनको रास्ते पर ले आऊँ तब ? अभी तक उनको चीन के विश्वासघात का पता नहीं है। जब मैं ली का मृत्यु-वक्तव्य तथा यशोधर का वर्णित वृत्तान्त बताऊँगा, तब मुझे विश्वास है कि उनके विचारों में उसी प्रकार परिवर्तन हो जायगा, जैसा मेरे में हुआ है।"

'तब आप हृदय-परिवर्तन में विश्वास करते हैं ?"

"बेशक, परिस्थिति परिष्कृत हो जाने से दृष्टिकोण भी परिवर्तित होना स्वाभाविक है।"

"तब हमारे देश को कम्यूनी सिद्धान्तों की कोई आवश्यकता नहीं है !"

अविनाश बाबू अपनी स्वीकारोक्ति से फँस गए। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया

"बोलिए, उत्तर दीजिए।"

"तुम तो वकीलों-सी जिरह करती हो।"

"मैंने जिरह कहाँ की ! आप हृदय-परिवर्तन का समर्थन करते है, इसी आधार पर मैंने भी प्रश्न किया है।"

"देखिये, जहाँ तक साध्य का प्रश्न है, उनमें कोई अन्तर नहीं है, केवल साधनों में यह अन्तर लक्षित होता है।"

"साध्य तो गौण हैं, वस्तुतः साधन ही प्रधान हैं। साधनों से ही साध्य की महत्ता घटती-बढ़ती है। कम्यूनिज्म एक साधन है, जिसमें विद्रोह, हत्या, खून-खराबी निहित है, उसमें एक मानव पार्टी की मशीन का पुरजा होकर अपनी मानवीय भावनाओं का खून करने के लिये तैयार किया जाता है। वह

कालान्तर में हत्या तथा रक्तपात का समर्थक बन जाता है, अर्थात् वह मनुष्य से पशु हो जाता है । हमें ऐसा राजतन्त्र न चाहिए । हम इन्सान को इन्सान बने रहने देना चाहते हैं । आप के ही कथनानुसार जब व्यक्ति को परिस्थितियों का ज्ञान हो जायगा, तब स्वयमेव उसमें परिवर्तन होगा । मनुष्य विवेकशील प्राणी है । उसका विवेक जाग्रत कीजिए, वह स्वयं आप से सहयोग करेगा ।"

"इस व्यर्थ की बकवास से क्या मतलब ! आप जैसा कहेंगी, वैसा किया जायगा ।"

"अब मैं आप का ध्यान घर की ओर आकर्षित करती हूँ । आपको यह मालूम हो गया है कि विनू चिन नामक चीनी सुन्दरी के मोहजाल में फंस गया था, और वह मुख्यतः उसी के आकर्षण से देशविरोधी संगठन में सम्मिलित भी हुआ ।"

"हां, ली के वक्तव्य और यशोधर के कथन से इसकी पुष्टि होती है ।"

"तब इन वयस्क पुत्रों का विवाह करना क्या आवश्यक नहीं है ?"

"किन्तु उनकी सहमति भी तो होनी चाहिए ।"

"डाक्टर रोगी की सहमति की कोई परवाह नहीं करता ।"

"आपरेशन के पहले उसकी या उसके अभिभावक की सहमति आवश्यक होती हैं ।"

"विवाह आपरेशन नहीं है ।"

"इससे बड़ा आपरेशन शायद ही कोई दूसरा हो ।"

"यदि ऐसा है तो स्वैर वृत्तियों का तो आपरेशन होना ही चाहिए ।"

"ठीक है कीजिये, किन्तु मेरा ऐसा विचार है कि विनू अब प्रायश्चित करने जा रहा है । यौवन की लहर उसे कुछ समय के लिए पथ-भ्रष्ट कर दूसरी दिशा में ले गई थी, किन्तु अब वह संभल गया है । वह अब सर्वोदय की ओर अग्रसर हो रहा है । इसके अतिरिक्त उसके मन में अब चीनियों के प्रति विद्वेषाग्नि सुलग रही है, वह जब तक देश को सन्नद्ध नहीं कर लेगा तब तक विश्राम नहीं लेगा । और इसीलिए वह विवाह भी नहीं करेगा ।"

"मैंने सोचा था कि चन्द्रकला से यदि उसका विवाह कर दिया जाय तो

ठीक रहेगा ।"

"किन्तु वह उसे बहिन बना चुका है ।"

"मैं भी तो तुम्हें नेता और दादा कहती थी, किन्तु……।"

"वह पतन मेरी ओर से हुआ था ।"

"नहीं, दोनों ओर से समान-रूप में हुआ था ।"

"चलो आज तुमने स्वीकार तो किया ! " यह कह कर वह हँसने लगे ।

"पुरुष और नारी दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । जब वे साथ साथ रहते हैं, और कोई ऐसी बाधा नहीं है, जिससे विवाह न हो सके, तब प्रकृति उनमें पारस्परिक आकर्षण उत्पन्न कर देती है ।"

"किन्तु यहां बाधा है । चन्द्रकला को गायत्री ने गोद लिया है और विनू उसे बहिन मानता है ।"

"मैं समझती हूँ कि गायत्री दीदी को भी यह सम्बन्ध मन्जूर होगा और विनू भी अपने मन से उस संकोच को दूर कर सकेगा ।"

"मैंने जब तुम्हारा नेतृत्व स्वीकार कर लिया है, तब मैं अपनी ओर से कोई विवाद उपस्थित नहीं करूँगा ।"

"ठीक है, तुम यदि मौन रहोगे, तो मैं सब ठीक कर लूंगी ।"

"आप की अब दोनों चिन्तायें दूर हुईं ? यदि कोई तीसरी चिन्ता हो, तो वह भी बताइये ।"

"यशो के लिए क्या सोचते हो ?"

"यदि एक सुझाव रखूं तो क्या उस पर विचार करोगी ?"

"हाँ, शौक से कहिये ।"

"मेरा सुझाव है कि यशो का विवाह यदि चन्द्रकला के साथ कर दिया जाय तो दूध—दोहनी दोनों रह सकती हैं ।"

"कैसे ?"

"विनू भी धर्मसंकट में नहीं पड़ेगा, और गायत्री को अधिक रुचिकर होगा ।"

"और विनू ?"

"जैसा में कह चुका हूँ, वह विवाह के लिये कदापि तैयार न होगा । और फिर उससे, जिसे वह अपनी बहन बना चुका है ! उसके लिये कोई दूसरी लड़की ढूंढ़ लो, या वह स्वयं अपने लिये ढूंढ़ लेगा । युग की पुकार के अनुरूप हमें इस प्रश्न को उन्हीं पर छोड़ देना चाहिए । दहेज प्रथा का तभी अन्त होगा ।"

किन्तु हमारे सामने दहेज का कोई प्रश्न नहीं है । हमारे-तुम्हारे विवाह में भी नहीं था ।"

जब युवक-युवतियां स्वेच्छा से विवाह सम्बन्ध करेंगे, तब उनके अभिभावकों में दहेज मांगने या देने कोई प्रश्न ही न उठेगा ।"

"किन्तु इससे पुरानी परम्परा नष्ट हो जायगी । समाज में व्यभिचार बढ़ सकता है ।"

"हमें अपने युवक-युवतियों पर विश्वास करना चाहिए । इस बड़ी बुराई को मिटाने के लिए यदि थोड़ी बुराई का सामना करना पड़े तो, वह हमें करना ही चाहिए ।"

"इन सामाजिक प्रश्नों को छोड़ो । तुम चाहते हो कि चन्द्रकला का विवाह यशोधर से कर दिया जाय ?"

"हां, मेरा सुझाव तो यही है, फिर तुम्हारी जैसी इच्छा ।"

"यहाँ इच्छा का प्रश्न नहीं है, गृहस्थी की व्यवस्था का प्रश्न है । मैं स्वीकार करती हूँ कि यह सुझाव उत्तम है ।"

"धन्यवाद ! आप अब निश्चिन्त होकर सोयिए । कल प्रात:काल गायत्री से बात करना और चन्द्रकला का भी मन जानने का प्रयत्न करना ।"

"हां, ऐसा ही करूंगी ।"

इसके पश्चात् पति-पत्नी में कोई संलाप नहीं हुआ ।

३०

दूसरे दिन प्रातःकाल की चाय पीने के लिए दम्पति बैठे ही थे कि अविनाश बाबू अपने घर के बाहर कोलाहल सुन कर चौकन्ने हुए और उत्कंठित नेत्रों से उस ओर देखने लगे । मणिमाला ने प्यालों में चाय ढालते हुये कहा—"पहले चाय पी लीजिए, फिर उधर ध्यान दीजिए । यह तो आजकल की दैनिक घटना हो रही है ।"

अविनाश बाबू चुपचाप चाय पीने लगे ।

मणिमाला ने चाय पीते हुए कहा—"नागार्जुन ने ही छिपाकर चिन को यशोधर के साथ भेजा था, और उसने यह भेद हम लोगों पर प्रकट नहीं किया ।"

"किसी का गुप्त भेद प्रकट करना भी तो अनुचित है । एक प्रकार से उसने हमारे साथ भलाई की, जो चिन को भारत के बाहर भेज दिया । उसके यहां रहते हुए संभव था कि ली के साथ जो कांड घटित हुआ है, वैसा ही विनू के साथ होता । विनू का गुप्त प्रणय भी समाज में प्रकट नहीं हुआ ।"

"किन्तु ली के हत्याकान्ड में विनू का नाम आ ही गया । जनता की दृष्टि में हम लोग कुछ गिर गये हैं ।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है, वस्तुतः वह उसकी रक्षा के लिए ही गया था, और यही बात जनता जानती है ।"

"मेरा मतलब था, चीनियों के साथ हमारे वंश के सम्पर्क की ।"

"उससे क्या हानि होती है ? चीनियों के प्रपंच में समग्र भारत फंस गया फिर हमारी क्या बिसात !"

"चीनियों ने हमें बुरी तरह धोखा दिया हैं । बिल्कुल पीठ में छुरा भोका है । मैंने कल तुम्हें एक बड़ा गम्भीर समाचार नहीं बताया ।"

"राज-काज के गुप्त भेदों को मैं जानना भी नहीं चाहता ।"

"वह अब गुप्त नहीं रहा । आज या कल वह समाचार अवश्य दैनिक

पत्रों में छप जायगा ।"

"तब फिर तुम बता सकती हो, यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा हो ।"

"वह मैं तुम्हें अवश्य बताना चाहती हूँ, क्योंकि जिसकी हम आशंका कर रहे थे, वह घटित हो गया ।"

"अर्थात् ।"

"अर्थात् यह कि चीनियों ने मैक मोहन रेखा का उल्लंघन कर भारतीय भूमि पर अधिकार कर लिया है ।"

"बाँध बांधने के पहले ही बाढ़ आ गई ?"

"हाँ, हम कोई प्रबन्ध नहीं कर सके, और चीनियों ने तिब्बत को अधीन करने के पश्चात्, भारत की ओर अपने पग बढ़ाना आरंभ कर दिया है। लेह से लेकर असम तक के पहाड़ी प्रदेश पर अपना अधिकार जमाकर, अपनी चौकियां बैठा दी हैं । समग्र यातायात बन्द कर दिया है, और हमारी चौकी के जवानों को पकड़ ले गये हैं ।"

"युद्ध छिड़ने की स्थिति उत्पन्न हो गई है !"

"हाँ, यदि हम छेड़ना चाहें तो छेड़ सकते हैं, किन्तु हम अपने सिद्धांतों पर दृढ़ रहेंगे । हम अपनी ओर से कोई युद्ध नहीं आरम्भ करेंगे ।"

"परन्तु क्या चीनी उस भू-खण्ड को वापस करेंगे ?"

"अभी नहीं, किन्तु आगामी परिस्थितियाँ उन्हें हमारी भूमि छोड़ने के लिए मजबूर करेंगी । हमारी शान्तिवादी नीति कमजोर राष्ट्र की नीति नहीं है ।"

"मैं इस नीति पर विश्वास नहीं करता । 'शठं प्रति शाठ्यं समाचरेत" यह हमारी नीति होना चाहिए ।"

"फिर भारत की नीति और अन्य देशों की नीति में अन्तर क्या होगा ?"

"तब अपनी नीति पर दृढ़ रहिये और अपना देश विदेशियों को सौंपते जाइए ।"

"नहीं, वस्तुतः हमारी नीति है अन्याय का जवाब न्याय से दीजिए । जो कुछ हमारा गया है, हम उसकी माँग न्यायानुकूल नियमों के साथ करेंगे, और

यदि शत्रु आगे कदम उठायेंगे, तब हम उनका मुकाबला अपने प्राणों की बाजी लगाकर करेंगे ।"

"और मान लीजिए कि यदि शत्रु ने यथैच्छित भूमि ले ली है, और वह आगे कब्जा नहीं करता ?"

"उस समय हम अपनी मांग करेंगे, और भूमि वापस करने के लिए उनको मजबूर करेंगे ।"

"प्रश्न तो यह है कि आप उन्हें मजबूर कैसे करेंगीं । मजबूर वे केवल किए जा सकते हैं युद्ध से, शक्ति से ।"

"क्या शक्ति और बल केवल सेना और शस्त्रों तक ही निहित है ?"

"आजकल के संसार में यही बल सबसे श्रेष्ठ है । नैतिक बल, जिसकी आप कल्पना कर रही हैं, वह शस्त्रास्त्रों तथा सैनिक बल के समक्ष निर्वीर्य है ।"

"नैतिक बल दरअसल सब प्रकार के बलों की नींव है । हिटलर का सैनिक बल और शस्त्रास्त्रों का बल श्रेष्ठ होते हुए भी नैतिक बल से हीन था, इसीलिए उसका पतन हुआ । लोभ, मत्सर आदि दूषित तथा असत् कारणों से जो आक्रमण कर दूसरों की भूमि अपहरण करता है, वह कदापि स्थायी नहीं हो सकता । इन असत् कारणों से ऐसी परिस्थिति स्वयमेव बन जाती है जिनसे आक्रमण का पतन होता है । अन्याय और असत् स्थायित्व नहीं देते ।"

"यों तो समझाने के बहुत मार्ग हैं, किन्तु मैं इसे पराजयवादी कहूँगा ।"

"जरा इस दृष्टि से देखिए, पश्चिमीय देशों अर्थात् यूरोपीय देशों ने समस्त एशिया और अफ्रीका के भू-खन्डों को अपने अधिकार में छल, बल, कौशल से कर लिया था । उनके शोषण से उन्होंने अपनी श्री-सम्पत्ति बढ़ाई, साथ-साथ सैनिक बल भी बढ़ाया, और वे कुछ काल, अथवा यों कहिए, कुछ शताब्दियों तक उन पर अधिकार जमाए रहे । परन्तु आज क्या स्थिति है । ऐसी परिस्थितियाँ स्वयमेव उत्पन्न हो गई हैं, और हो रही हैं, कि आक्रामक देश स्वतः उन देशों को स्वतंत्र कर उनका उसी भाँति पोषण कर रहे हैं, जिस प्रकार उन्होंने उनका शोषण किया था ।"

"हाँ अधीन राष्ट्रों को स्वाधीन किया जा रहा है, परन्तु उसके लिए कारण विशेष है। युग का चलन ही बदल गया है।"

"इन्हीं को मैं परिस्थितियों की संज्ञा दे रही हूँ। इन अनैतिक कार्यों की प्रतिक्रिया इस प्रकार उत्पन्न होकर शक्त हुई कि उसने युग को परिवर्तित कर दिया।"

"परन्तु समय की भी कोई सीमा होनी चाहिए। शताब्दियों तक जिन्होंने उत्पीड़न सहा, वे तो मर कर चले गये, और स्वाधीनता मिली उनके पौत्रों अथवा प्रपौत्रों को।"

"किन्तु मिली उन्हीं देशों को। उसके निवासियों से नहीं, आप देशों से गणना कीजिए। वृक्षों के पत्ते झड़ते हैं, फिर उत्पन्न होते हैं इसी प्रकार देश के निवासी मरते हैं, फिर उत्पन्न होते हैं।"

"सीधे प्रश्न पर आइए। क्या आप विश्वास करती हैं कि चीन उन भू-खण्डों का जिन पर उसने आधिपत्य जमा लिया है, स्वेच्छा से आपको भेंट कर देगा ?"

"अवश्य, नैतिक बल से संसार में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होगी, जिससे वह मजबूर होकर हमारा प्रान्त हमें वापस करेगा। संसार का दृष्टिकोण बदल रहा है। युद्ध से किसी समस्या का हल नहीं होता, यह प्रायः सभी राष्ट्र मानने लगे हैं। नैतिक बल से केवल भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त की है। इस उदाहरण से संसार प्रभावित हुआ है, और हो रहा है। यदि चीन आगे बढ़ेगा तो संसार के राष्ट्र उसकी इस अनैतिकता के विरुद्ध हमारा न्यायोचित समर्थन करेंगे। युद्ध से प्रबल शक्ति है अन्य राष्ट्रों की सद्भावना, और सहानुभूति। पाशविक बल कभी स्थायी नहीं हुआ है और न वह हो सकता है।"

इसी समय केसरिया साड़ियों से अलंकृत गायत्री और चन्द्रकला ने प्रवेश किया। उनके पीछे विनोद और यशोधर तथा आनन्द, जो अब चलने-फिरने लगा था, मन्द-मन्द गति से आ रहे थे। उन सबों के बाँएँ हाथों में छोटी-छोटी राष्ट्रीय पताकायें थीं, और दाहिने हाथ में शंख। उन्होंने प्रवेश करते ही शंख-ध्वनि की। आनन्द भी उनकी देखा-देखी शंख फूकने लगा, किन्तु वह स्वर न

निकाल सका। मणिमाला ने उसे गोद में उठाकर उसका मुख चूमते हुए पूछा—बेटा यह क्या है ?"

उसने बड़े गर्व के साथ कहा—"मामी जी, चीनियों ने हमारे देश पर हमला किया है, हम देश को जगाने जा रहे हैं।"

अविनाश बाबू ने गायत्री से हँसते हुए पूछा—"इस स्वाँग का नेतृत्व तुम कर रही हो !"

गायत्री ने साभिमान उत्तर दिया—"हाँ भैया, तुमने क्रान्ति कर भारत को स्वतंत्र किया, हम सब स्वाधीन भारत को जगाने जा रही है कि सब एक-मन तथा संगठित हो, द्वार पर खड़े अपनी स्वाधीनता के शत्रु से लोहा लेने के लिए तैयार हो जाओ। 'जागो, उठो और कर्म में प्रवृत्त हो' यही हमारा नारा है, और यही संदेश हम भारत के घर-घर पहुँचने के लिए केसरिया बाने से निकली हैं।"

"विनू, यशो, और चन्द्रकला सभी तुम्हारे साथ हैं ?"

इसी बीच आनन्द ने मणिमाला की गोद से उतरते हुए कहा—'और मामा जी, मैं भी इनके साथ हूँ। आप मुझे क्यों भूले जा रहे हैं ?"

चन्द्रकला ने उत्तर दिया—"हाँ मामा जी, हम सभी माँ के साथ है। हम शंखध्वनि से भारत के प्रत्येक वृद्ध, युवा और बालक को जगा कर उन्हें साव-धान करेंगी, और कहेंगी कि स्वतंत्रता देवी के बलिदान का खप्पर अभी भरा नहीं है। अभी और बलिदान की आवश्यकता है। यदि आवश्यकता आ जावे तो हम सब मिल कर उसे भरने के लिए तैयार रहें, यही हमारा सन्देश है।"

"यह अभियान तुम्हारा अनोखा होगा। किन्तु इस अभियान में तुमने मुझको आमंत्रित नहीं किया ?"

"उसी के लिए तो हम सब आये हैं भैया।" गायत्री ने कहा।

चन्द्रकला ने बगल से एक केसरिया साड़ी निकाल कर मणिमाला को देते हुए कहा—"मामी जी आइये, इसे पहन कर हमारा नेतृत्व कीजिए।"

उसे लेते हुए मणिमाला ने कहा—अवश्य, अवश्य। यह तो मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात है। स्वतंत्रता के प्रहरी को सतत सचेष्ट होना आवश्यक है।"

अविनाश बाबू ने कहा—"निस्संदेह स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् उसकी रक्षा सतत जागरूकता से ही हो सकती है। प्रमाद और निश्चिन्तता उसके हरण का मार्ग बनाते हैं। गायत्री, मैं भी तुम्हारे इस पुण्य-अभियान में साथ दूंगा। यद्यपि हमारी संख्या अभी बहुत अल्प है, तथापि उसमें अनेक देश-सेवकों का बल उसी प्रकार मिलेगा, जैसे नदी अपने उदगम स्थान में बहुत पतली अथवा एक क्षुद्र नाले के रूप में बहती है, परन्तु वह ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती जाती है त्यों-त्यों नदियां उस में सम्मिलित होकर उसे एक विशाल नद का रूप देती हैं।"

गायत्री ने विनोद को कुछ संकेत किया। उसने एक केसरिया धोती और कुरता अपने थैले से निकाल कर पिता को देते हुए कहा—"अब हमारा प्राय-श्चित-कर्म आज से आरम्भ होता है। हम भारत में बुद्धस्तान हरगिज नहीं बनने देंगे। अब भारत का पुनर्विभाजन कदापि न होगा।"

मणिमाला ने पुलकित होते हुए कहा—"सत्य है विनू, भारत में बुद्धस्तान बनाने का स्वप्न उसी प्रकार नष्ट और विलुप्त हो जायगा, जिस प्रकार निद्रा से जागने पर अन्य स्वप्नों का अस्तित्व मिट जाता है।"

यह कहकर मणिमाला ने आनन्द से शंख लेकर अपनी पूर्ण शक्ति के साथ फूंका। उसके साथ सबों ने शंखध्वनि की।

और, वह तुमुल शंखनाद आकाश में व्याप्त होता हुआ दिग्दिगन्त में फैलकर भारत-निवासियों को जाग्रत करने के लिए पथगामी हुआ।

इति